अग्नि-पुराण

(द्वितीय खण्ड)

सम्पादक—
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन
२० स्मृतियां और अठारह पुराणों के,
प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक—
संस्कृति-संस्थान,
ख्वाजाकुतुब (वेदनगर) बरेली
(उत्तर-प्रदेश)

प्रथम संस्करण) १९६८ (मूल्य ७ रु०

प्रकाशक :
संस्कृति संस्थान,
ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)
बरेली। (उ० प्र०)

※

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

※

※

प्रथम संस्करण
१९६८

※

मुद्रक :
वृन्दावन शर्मा
जन जागरण प्रेस,
मथुरा।

※

दो शब्द

— ❀❀ —

क साहित्य मे जिन ग्रन्थो की गणना की जाती है उनकी सख्या
। महापुराण, लघुपुराण, उपपुराण आदि के भेदों से लोगा ने
क्त ग्रन्थों की सख्या ही ५०—६० तक पहुँचादी है। फिर
त जैसे ग्रन्थो को भी पुराणो मे ही गिना जाता है। कई
मे भी अनेक ग्रन्थ ऐसे लिखे गये हैं जो पौराणिक विषयों का
और जिनका महत्त्व तथा प्रचार अनेक महापुराण कहे जाने
ते है।

न सभी पुराणो का मुख्य उद्देश्य धार्मिक कथाओ के रूप मे
ाप-पुण्य के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान प्रदान करना, उनके
ी भक्ति का बीज बोना और सृष्टि रचना तथा प्राचीन राज-
वृत्त बतलाना होता है। इस दृष्टि से सभी प्रसिद्ध पुराणो का
ा है। पर अपने-अपने विशेष मान्य सम्प्रदाय अथवा देवता के
ा कुछ भाव अवश्य प्रकट किया गया है। किसी-किसी पुराण
ी कटु आलोचना भी अधिक परिमाण मे की गई है। इन्ही
अनेक विद्वान् विभिन्न पुराणो के महत्व को न्यूनाधिक

अग्निपुराण म कई ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर अभी
। इसके विरुद्ध कोई अभिमत प्रकट नही किया। सभवत पाठक
से यह समझते हो कि इसम अग्नि-देव' की महिमा, पूजा, उपासना
शेष रूप से वर्णन किया गया हो, या उनका कोई चरित्र विस्तार
न किया गया गया हो पर वास्तव मे इसमे इस दृष्टि से कही एक

अग्निपुराण द्वितीय भाग

१०५ यजुर्विधानम्

यजुर्विधान वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रद शृणु ।
ओंकारपूर्विका राम महाव्याहृतयो मता ॥१
सर्वकल्मपनाशिन्य. सर्वकामप्रदास्तथा ।
आज्याहुतिसहस्रेण देवानाराधयेद्बुधः ॥२
मनसः काङ्क्षित राम मनसेप्सितकामदम् ।
शान्तिकामो यवै कुर्यात्तिलैः पापापनुत्तये ॥३
धान्यै. सिद्धार्थकैश्चैव सर्वकामकरैस्तथा ।
औदम्बरीभिरिध्माभि: पशुकामस्य शस्यते ॥४
दध्ना चैवान्नकामस्य पयसा शान्तिमिच्छत ।
अपामार्गसमिद्भिस्तु कामयन्कनक बहु ॥५
कन्याकामो घृताक्तानि युग्मशो ग्रथितानि तु ।
जातीपुष्पाणि जुहुयाद् ग्रामार्थी तिलतण्डुलान् ॥६
वश्यकर्मणि शाखोट वासापामार्गमेव च ।
विपासृङ्मिश्रसमिधो व्याधिघाताय भार्गव ॥७

पुष्कर ने कहा—अब मैं यजुर्वेद के विधान को बताता हूं जो भुक्ति और मुक्ति दोनो के प्रदान करने वाला है। उसका तुम श्रवण करो। हे राम! ओंकार जिनमे पहिले होता है ऐसी महाव्याहृतियाँ मानी गई हैं ॥१॥ ये समस्त कल्मषो को नाश करने वाली और सभी कामनाओ के प्रदान करने वाली होती हैं। पण्डित मानव का कर्त्तव्य है कि घृत की एक सहस्र आहुतियाँ देकर देवो की आराधना करे ॥२॥ हे राम! मन से जो भी कुछ इच्छा की गई हो उस मन के इच्छित काम के फल को देने वाला है। जो शान्ति की कामना रखता

हो उसे ओम्रो से होम करना चाहिये । जो पापो के दूर करने के लिए करे उ तिलो से हवन करना चाहिये ॥३॥ और सिद्धार्थक धान्यो के द्वारा हवन स कामो के करने वाला होता है । जो पशुओ की कामना रखता हो उसके लि गूलर की समिधाएँ प्रशस्त होती हैं ॥४॥ अन्न की इच्छा वाला दधि से-शान्ति की कामना वाला दूध से-बहुत सुवर्ण की कामना रखने वाला अपामार्ग (औंधा) की समिधाओं से हवन करे ॥५॥ जो कन्या की इच्छा रखता हो उसे जाती के दो-दो पुष्पो को घृत मे डुबोकर हवन करना चाहिए । ग्राम की इच्छा वाले पुरुष को तिल और तण्डुल (चावल) मे होम करना आवश्यक होता है। ॥६॥ वश्य करन के कर्म मे शाखोट-वासा और अपामार्ग की समिधाएँ होनी चाहिए । विष और रक्त से मिश्रित समिधाएँ हे भार्गव ! व्याधि के घात। लिये होनी चाहिए ॥७॥

क्रुद्धस्तु जुहुयात्सम्यक् शत्रूणा वधकाम्यया ।
सर्वव्रीहिमयी कृत्वा राज्ञ प्रतिकृति द्विज ॥८
सहस्रमस्तु जुहुयाद्राजा वशगतो भवेत् ।
वस्त्रकामस्य पुष्पाणि दूर्वा व्याधिविनाशिनी ॥९
ब्रह्मवर्चसकामस्य वासोऽग्र च विधीयत ।
प्रत्यङ्गिरेषु जुहुयात्तुषकण्टकभस्मभि ॥१०
विद्वेषणे च पक्ष्माणि काककौशिकयोस्तथा ।
कापिल च घृत हुत्वा तथा चन्द्रग्रह द्विज ॥११
वचाचूर्णेन सपातात्समानीय च ता वचाम् ।
सहस्रमन्त्रिता भुक्त्वा मेधावी जायते नर ॥१२
एकादशाङ्गुल शङ्कु लौह खादिरमेव च ।
द्विषतो वधोऽपीति जपन्निखनेद्रिपुवेश्मनि ॥१३
उच्चाटनमिद कर्म शत्रूणा कथित तव ।
चक्षुष्या इति जप्त्वा च विनष्ट चक्षुराप्नुयात् ॥१४
उपयुञ्जत इत्येतदनुवाक तथाऽन्नदम् ।
तनूनपाग्ने सदिति दूर्वा हुत्वाऽर्तिवर्जित ॥१५

शत्रुओं के वध करने की कामना से क्रुद्ध होते हुए हवन करना चाहिए। ब्राह्मण को समस्त व्रीहियों की राजा की एक मूर्ति बनाकर एक सहस्र आहूतियाँ देनी चाहिएँ तो अवश्य ही राजा वश में होने वाला हो जाता है। वस्त्र की इच्छा रखने वाले को पुष्प और दूभ व्याधियों के विनाश करने वाली होती है ॥८॥९॥ जो ब्रह्मवर्चस (तेज) की कामना वाला हो उसे वासोऽग्र का विधान करना चाहिए। प्रत्यङ्गिरों में तुप-कण्टक और भस्म के द्वारा हवन करना चाहिए ॥१०॥ जब किन्हीं दो व्यक्तियों में विद्वेषण कराना अभीष्ट हो तो कौआ और उल्लू के पखों के द्वारा होम करे। हे द्विज ! चन्द्र ग्रहण में कपिला गौ के घृत को लाकर उसमें होम करे। सम्पात से वचा को लाकर उसके चूर्ण से एक सहस्र बार अभिमन्त्रित करे फिर उसका भक्षण करे तो मनुष्य परम बुद्धिमान् हो जाता है ॥११॥१२॥ एकादश (ग्यारह) अङ्गुल की एक लोहे की कील तथा खदिर की बनी हुई कील को 'द्विपतो वधोऽसि'—इसे जपते हुए शत्रु के घर में गाढ़ दे तो इससे शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है। यह वहाँ से उच्चाटन करने का कर्म मैंने तुम्हें बता दिया है। चक्षुष्प्राम्'—इसका जप करे तो उसकी चक्षु विनष्ट हो जाती है ॥१३॥१४॥ 'उपयुञ्जते'—यह अनुवाक अन्न के देने वाला है 'तनून पाग्ने सद'—यह दूर्वा (दूभ) के हवन करने से अग्नि वर्जित होता है ॥१५॥

भेपजमसीति दध्याज्यैर्होमं पशूपसर्गनुत् ।
त्रियम्बक यजामहे होम' सौभाग्यवर्धन ॥१६
कन्यानाम गृहीत्वा तु कन्यालाभकर परं ।
भयेषु तु जपन्नित्य भयेभ्यो विप्रमुच्यते ॥१७
धुस्तूरपुष्प सघृत हुत्वा स्यात्सर्वकामभाक् ।
हुत्वा तु गुग्गुल राम स्वप्ने पश्यति शङ्करम् ॥१८
युञ्जते मनोनुवाक जप्त्वा दीर्घायुराप्नुयात् ।
विष्णो रराटमित्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ॥१९
रक्षोघ्न च यशस्य च तथैव विजयप्रदम् ।
अय नो अग्निरित्येतत्सङ्ग्रामे विजयप्रदम् ॥२०

इदमाप प्रवहत स्नाने पापापनोदनम् ।
विश्वकर्मन्नु हविषा सूची लौही दशाङ्गुलाम् ॥२१
कन्याया निखनेद्द्वारि साऽन्यस्मै न प्रदीयते ।
देव सवितरेतेन हुतेनैतेन चान्नवान् ॥२२

'भेषजमसि'—इसके द्वारा दधि और घृत से होम करने पर पशुओं के उपसर्ग का नाश होता है। 'त्रियम्बकं यजामहे'—इस मन्त्र से हवन करने पर सौभाग्य की वृद्धि होती है ॥१६॥ कन्या का नाम लेकर हवन करने से अवश्य ही कन्या के लाभ करने वाला होता है। भयों के उपस्थित होने पर नित्य जाप करने से मनुष्य भय से मुक्त हो जाता है ॥१७॥ धतूरे के पुष्पों को घृत के साथ हवन करने से समस्त कामनाओं की सिद्धि वाला होता है। हे राम ! यदि गुग्गुल को लेकर उपर्युक्त मन्त्र से होम करे तो स्वप्न में भगवान् शङ्कर के दर्शन प्राप्त होते हैं ॥१८॥ 'युञ्जते मनोनुवाक' का जप करके दीर्घ आयु की प्राप्ति हुआ करती है। 'विष्णोरराट'—इससे सभी बाधाओं का विनाश होता है ॥१९॥ 'अयं नो अग्नि' यह राक्षसों का हनन करने वाला, यश बढ़ाने वाला और संग्राम में विजय के प्रदान करने वाला होता है ॥२०॥ 'इदमाप प्रवहत'—यह स्नान करने में पापों के अपनोदन करने वाला होता है। 'विश्वकर्मन्नु हविषा'—इसके द्वारा दश अङ्गुल की लोहे की कील कन्या के द्वार पर गाढ़ देवे तो फिर वह कन्या किसी दूसरे को नहीं दी जाती है। 'देव सवित'—इसके द्वारा हवन करने से अन्न वाला होता है ॥२१।२२॥

अग्नौ स्वाहेति जुहुयाद्बलकामो द्विजोत्तम ।
तिलैर्यवैश्च धर्मज्ञ तथाऽपामार्गतण्डुलैः ॥२३
सहस्रमन्त्रिता कृत्वा तथा गोरोचना द्विज ।
तिलकं च तथा कृत्वा जनस्य प्रियतामियात् ॥२४
रुद्राणां च तथा जप्यं सर्वाघविनिषूदनम् ।
सर्वकर्मकरो होमस्तथा सर्वत्र शान्तिदः ॥२५
अजाविकानामश्वानां कुञ्जराणां तथा गवाम् ।
मनुष्याणां नरेन्द्राणां बालानां योषितामपि ॥२६

ग्रामाणां नगराणां च देशानामपि भार्गव ।
उपद्रुतानां धर्मज्ञ व्याधितानां तथैव च ॥२७
मरणे समनुप्राप्ते रिपुजे च तथा भये ।
रुद्रहोमः परा शान्तिः पायसेन घृतेन च ॥२८
कूष्माण्डघृतहोमेन सर्वान्पापान्व्यपोहति ।
सक्तुयावकभैक्षाशी नक्तं मनुजसत्तम ॥२९
बहिःस्नानरतो मासान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ।
मधु वातेति मन्त्रेण होमादिलोऽखिलं लभेत् ॥३०

'अग्नौ स्वाहा'—इससे बनकाम द्विजोत्तम को तिलों से तथा यव और रामार्ग के तण्डुलों से, हे धर्मज्ञ ! हवन करना चाहिए ॥२३॥ हे द्विज ! एक हस्र बार गोरोचन को अभिमन्त्रित करके उससे तिलक करे तो सब मनुष्यों ा प्रिय बन जाता है ॥२४॥ रुद्रों का जप समस्त पापों का नाश करने वाला ोता है । होम समस्त कर्मों का करने वाला और सर्वत्र शान्ति देने वाला होता ॥२५॥ अजाविकाओं (भेड़ों) का, अश्वों का, हाथियों का, गौओं का, मनुष्यों ा, राजाओं का, बालकों का, स्त्रियों का, ग्रामों का, नगरों का और देशों का पद्रव युक्त तथा व्याधि वाले होने पर, मरण को प्राप्त होने पर तथा शत्रु से त्पन्न भय के होने पर रुद्र होम से परम शान्ति होती है जो होम पायस खीर) और घृत से किया जाता है ॥२६।२७।२८॥ कूष्माण्ड (पेठा) और त के होम से समस्त पापों का निवारण होता है । हे मनुजों में श्रेष्ठ ! सतुआ, ावक और भिक्षा के भोजन करने वाला जो कि रात्रि में एक बार किया जावे। ाहिर स्नान करने की रति रखने वाला एक मास ऐसा करने से मनुष्य ब्रह्म त्या से मुक्त हो जाता है । 'मधु वात'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा होमादि स बकी प्राप्ति होती है ॥२९।३०॥

दधिक्राव्णेति हुत्वा तु पुत्रान्प्राप्नोत्यसंशयम् ।
तथा घृतवतीत्येतदायुष्यं स्याद्घृतेन तु ॥३१
स्वस्ति न इन्द्र इत्येतत्सर्वबाधाविनाशनम् ।
इह गावः प्रजायध्वमिति पुष्टिविवर्धनम् ॥३२

घृताहुतिसहस्रेण तथाऽलक्ष्मीविनाशनम् ।
स्रुवेण देवस्य त्वेति हुत्वाऽपामार्गतण्डुलम् ॥३३
मुच्यते विकृताच्छीघ्रमभिचारान्न संशयः ।
रुद्र पते पलाशस्य समिद्भिः कनकं लभेत् ॥३४
शिवो भवेत्यग्न्युत्पाते व्रीहिभिर्जुहुयान्नरः ।
या सेना इति चैतच्च तस्करेभ्यो भयापहम् ॥३५
या अस्मभ्यमरातीयाद्धुत्वा कृष्णतिलान्नरः ।
सहस्रशोऽभिचाराच्च मुच्यते विकृताद् द्विज ॥३६

'दधि क्राव्णो'—इस मन्त्र से हवन करके मनुष्य निश्चय ही पुत्रों की प्राप्ति किया करता है। इसी प्रकार से 'घृतवती'—यह मन्त्र घृत के द्वारा होम करने पर आयु के देने वाला होता है ॥३१॥ 'स्वस्ति न इन्द्र'—यह समस्त प्रकार की बाधाओं का नाश करने वाला होता है। 'इह गाव प्रजायध्वम्'—यह मन्त्र पुष्टि के विशेष रूप से वर्धन करने वाला होता है ॥३२॥ एक सहस्र घृत की आहुतियों के देने से अलक्ष्मी (दारिद्र्य) का विनाश होता है। 'स्रुवेण देवस्य त्वा'—इस मन्त्र से अपामार्ग के तण्डुलों से हवन करे तो विकृत अभिचार से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है—इसमें कोई भी संशय नहीं है। 'रुद्र पते'—इस मन्त्र से पलाश (ढाक) की समिधाओं से हवन करे तो कनक (सोना) की प्राप्ति होती है ॥३३॥३४॥ 'शिवोभव'—इस मन्त्र से अग्नि के उत्पात होने पर मनुष्य को व्रीहियों के द्वारा हवन करना चाहिये—यह मन्त्र और 'या सेना'—यह मन्त्र तस्करों से भय का अपहरण करने वाला होता है। ॥३५॥ 'या अस्मभ्यमरातीयात्'—इससे मनुष्य एक सहस्र बार कृष्ण (काले) तिलों की आहुतियाँ देवे तो हे द्विज ! बिगड़े हुए अभिचार से छुटकारा पा जाता है ॥३६॥

अन्नेनान्नपतेत्येव हुत्वा चान्नमवाप्नुयात् ।
हंस शुचिषदित्येतज्जप्तं तोयेऽघनाशनम् ॥३७
चत्वारि शृङ्ग इत्येतत्सर्वपापहरं जले ।
देवा यज्ञेति जप्त्वा तु ब्रह्मलोके महीयते ॥३८

वसन्तेति च हुत्वाऽऽज्यमादित्याद्वरमाप्नुयात् ।
सुपर्णोऽसीति चेत्यस्य कर्म व्याहृतिवद्भवेत् ॥३९
नमः स्वाहेति त्रिर्जप्त्वा बन्धनान्मोक्षमाप्नुयात् ।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य द्रुपदां सर्वपापमुक् ॥४०
इह गावः प्रजायध्व मन्त्रोऽस्य बुद्धिवर्धनः ।
हुत तु सर्पिषा दध्ना पयसा पायसेन वा ॥४१
श नो देवीति चैतेन हुत्वा पर्णफलानि च ।
आरोग्य श्रियमाप्नोति जीवित च चिर तथा ॥४२
ओषधीः प्रतिमोदध्व वपने लवनेऽर्थकृत् ।
अश्वावती पायसेन होमाच्छान्तिमवाप्नुयात् ॥४३

'अन्नेनान्नपत'—इस प्रकार से इससे हवन करने से अन्न की प्राप्ति किया करता है। 'इम. शुचिपद्'—इसका जप जल मे स्थित होकर करने से अघो का नाश होता है ॥३७॥ 'चत्वारिश्रृङ्ग'—इसका जल मे जाप सब तरह के पापो का हरण करने वाला है। 'देवायज्ञ'—इस ऋचा का जप करके ब्रह्मलोक मे महान् प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया करता है ॥३८॥ 'वसन्त'—इस मन्त्र से घृत का होम करके मनुष्य सूर्य से वरदान का लाभ किया करता है। और 'सुपर्णोऽसि' इसका व्याहृतियो से युक्त जो कर्म होता है। 'नमः स्वाहा' इसका तीन बार जप करके बन्धन से मोक्ष होने का लाभ होता है। जल के अन्दर बैठकर 'द्रुपदाम्' इस मन्त्र की तीन आवृत्ति करने से सब पापो से मुक्त हो जाता है ॥३९।४०॥ 'इह गाव. प्रजायध्वम्'—यह मन्त्र बुद्धि के बढाने वाला है। इस मन्त्र से घृत, दधि, दूध अथवा खीर से हवन करना चाहिये ॥४१॥ 'शनो देवी'—इस मन्त्र से पर्ण (पत्ते) फलो का हवन करे तो मनुष्य स्वस्थता श्री और चिरकाल तक जीवित रहने की प्राप्ति किया करता है। 'ओषधी. प्रतिमोदध्वम्'—यह मन्त्र बीजो के बोने मे तथा फसल के काटने मे लाभदायक होता है। 'अश्वावती'—इस मन्त्र से पायस (खीर) का होम करे तो शान्ति की प्राप्ति हो जाती है ॥४२।४३॥

तस्मा इति च मन्त्रेण बन्धनस्थो विमुच्यते ।
युवा सुवासा इत्येव वासास्याप्नोति चोत्तमम् ॥
मुञ्चन्तु मा शपथ्या (था) दिसर्वकिल्विषनाशनम् ।
मा मा हिंसीस्तिलाज्येन हुत रिपुविनाशनम् ॥४५
नमोऽस्तु सर्पेभ्यो हुत्वा घृतन पायसेन तु ।
कृणुष्व पाज इत्येतदभिचारविवाशनम् ॥४६
दूर्वाकाण्डायुत हुत्वा काण्डात्काण्डेति मानव ।
ग्रामे जनपदे वाऽपि मरणे तु शम नयेत् ॥४७
रोगार्त्तो मुच्यत रोगात्तथा दु खात्तु दु खित ।
औदुम्बरीश्च समिधो मधुमान्नो वनस्पति ॥४८
हुत्वा सहस्रशो गाम धनमाप्नोति मानव ।
सौभाग्य महदाप्नोति व्यवहारे तथा जयम् ॥४९
अपा गर्भमिति हुत्वा देव वर्षापयेद्ध्रुवम् ।
अप विधत्ति च तथा हुत्वा दधि घृत मधु ॥५०
प्रवर्तयति धर्मज्ञ महावृष्टिमनन्तरम् ।
नमस्ते रुद्र इत्येतत्सर्वोपद्रवनाशनम् ॥५१

"तस्मा"—इस मन्त्र के द्वारा जो बन्धन मे स्थित हो वह विमुक्त हो जाता है। "युवा सुवास"—इस मन्त्र के करन से उत्तम वस्त्रो की प्राप्ति करता है। "मुञ्चन्तु मा शपथ्यादि"—यह समस्त किल्विषो (पापो) का नाश करने वाला है। "मामा हिंसी"—यह मन्त्र तिल और घृत से हवन किये जाने पर शत्रुओ का विनाश करने वाला होता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ "नमोऽस्तु सर्पेभ्य" इस मन्त्र से घृत तथा पायस से हवन करके "कृणुष्व पाजं"—इस मन्त्र का आराधन करे तो अभिचार का नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ "काण्डात्काण्ड"—इस मन्त्र से काण्डायुत दूर्वा का मानव हवन करे तो ग्राम मे तथा जनपद मे मरण का शमन होता है ॥ ४७ ॥ जो कोई रोग से आर्त्त हो वह रोग मे मुक्त हो जाता है। यदि कोई दु ख हो तो दु ख से छुटकारा हो जाता है। "मधुमान्नो वनस्पति"—इस मन्त्र से उदुम्बर (गूलर) की समिधाओ का हवन

करे और महस्र आहुतियाँ देवे तो हे राम ! वह मनुष्य धन का लाभ किया करता है। तथा महान् सौभाग्य को और व्यवहार में जय को प्राप्त करता है। ॥ ४८ ॥ ४६ ॥ "अपां गर्भम्"—इस मन्त्र से हवन करने पर निश्चय ही देव को बरसाता है। इसी तरह से अप.पिब"—इससे दधि, घृत और मधु का हवन करे तो हे धर्मज्ञ ! अनन्तर में महा वृष्टि होती है। "नमस्ते रुद्र"—इस मन्त्र में सब तरह के उपद्रवों का नाश होता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

सर्वशान्तिकरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ।
अध्यवोचदित्यनेन रक्षणं व्याधितस्य तु ॥५२
रक्षोघ्नं च यशस्यं च चिरायुपुष्टिवर्धनम् ।
सिद्धार्थकानां क्षेपेण पथि चतज्जपन्सुखी ॥५३
असौ यस्ताम्र इत्येतत्पठन्नित्यं दिवाकरम् ।
उपतिष्ठेत धर्मज्ञ मार्यं प्रातरतन्द्रितः ॥५४
अन्नमक्षयमाप्नोति दीर्घमायुश्च निन्दति ।
प्रमुञ्च धन्वन्नित्येतत्षड्भिराराधयन्नर. ॥५५
रिपूणां भयदं युद्धे नात्र कार्या विचारणा ।
मा नो महान्त इत्येव बालानां शान्तिकारकम् ॥५६

उक्त मन्त्र एक प्रकार की शान्ति के करने वाला और महान् पातकों के नाश करने वाला कहा गया है। 'अध्यवोचत्'—इस मन्त्र से जो व्याधि ग्रस्त हो उसकी रक्षा होती है। राक्षसों के हनन करने वाला, यश के प्रदान करने वाला, अधिक समय तक की आयु के देने वाला और पुष्टि की वृद्धि करने वाला है। सिद्धार्थकों के क्षेप करके मार्ग इसका जाप करने वाला सुखी होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ 'असौ यस्ताम्र'—इस मन्त्र को पढ़ता हुआ नित्य ही दिवाकर (सूर्य) का उपस्थान करे। हे धर्म के ज्ञाता ! अतन्द्रित होकर इसे सायङ्काल और प्रात.काल दोनों समयों में करना चाहिए। ऐसा करने वाला व्यक्ति अक्षय अन्न और दीर्घ आयु को प्राप्त करता है। 'प्रमुञ्च धन्वन्'—इससे छै बार आराधना करने वाला युद्ध में शत्रुओं का भेद देने वाला होता

है, इसमे तनिक भी विचार नही करना चाहिए। 'भानो महान्त'—इस मन्त्र बालको की शान्ति होती है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

नमो हिरण्यबाहव इत्यनुवाकसप्तकम् ।
राजिका कटुतैलाक्ता जुहुयाच्छत्रुनाशनीम् ॥५७
नमो व किरिकेभ्यश्च पद्मलक्षकृतैर्नर ।
राज्यलक्ष्मीमवाप्नोति तथा बिल्वैः सुवर्णकम् ॥५८
इमा रुद्रायेति तिलैर्होमाच्च धनमाप्यते ।
दूर्वाहोमेन चाऽऽज्येन सर्वव्याधिविवर्जित. ॥५९
आशु शिशान इत्येतदायुधाना च रक्षणे ।
सङ्ग्रामे कथित राम सर्वशत्रुनिबर्हणम् ॥६०
वाजश्च मेति जुहुयात्सहस्र पञ्चभिर्द्विज ।
आज्याहुतीना धर्मज्ञ चक्षुरोगाद्विमुच्यते ॥६१
श नो वनस्पते गृहे होम स्याद्वास्तुदोषनुत् ।
अग्न आयू षि हुत्वाऽऽज्य द्वेष नाऽऽप्नोति केनचित् ॥६२
अपा फेनेति लाजाभिर्हु त्वा जयमवाप्नुयात् ।
भद्रा इतीन्द्रियैर्हीनो जपन्स्यात्सकलेन्द्रिय ॥६३

'नमो हिरण्य बाहव'—इस सात अनुवाक को कडुवे तैल से युक्त राई की आहुतियाँ देवे तो शत्रुओ का नाश करने वाली होती है ॥ ५७ ॥ 'नमो व किरिकेभ्यश्च'—इस मन्त्र से पद्म दल की एक लक्ष आहुतियाँ देवे तो राज्य लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और बिल्व दलो से देवे तो सुवर्ण का लाभ होता है। ॥ ५८ ॥ 'इमा रुद्राय'—इस मन्त्र से तिलो के द्वारा हवन करे तो धन को प्राप्त करता है। दूर्वा के होम से घृत के हवन से समस्त व्याधियो से रहित हो जाता है ॥ ५९ ॥ आशु शिशान'—इस मन्त्र का प्रयोग आयुधो की रक्षा मे किया जाता है। हे राम! सग्राम मे इस मन्त्र के कहने से समस्त शत्रुओ का निबर्हण होता ॥ ६० ॥ हे द्विज! वाजश्च मे'—इस पाँचो से एक सहस्र बार हवन करे और घृत की आहुतियाँ देवे तो हे धर्मज्ञ! चक्षुओ के रोग से वे मुक्ति हो जाता है। ६१ ॥ शनो वनस्पते'—इस मन्त्र से घर मे होम करे

नो वास्तु के दोष का निवारण करने वाला होता है। 'अग्ने आयूंषि—इस मन्त्र से घृत का हवन करने से किसी के साथ द्वेष नहीं होता है॥ ६२॥ 'अपां फेन'—इस मन्त्र से नाराचों (खीलों) का हवन करने से जय की प्राप्ति होती है। 'भद्रा इन्द्रियैर्हीनः'—इसका जाप करने वाला मानव सकल इन्द्रियों वाला हो जाता है॥ ६२॥ ६३॥

अग्निश्च पृथिवी चेति वशीकरणमुत्तमम् ।
अध्वनेति जपन्मन्त्रं व्यवहारे जयी भवेत् ॥६४
ब्रह्मराजन्यमिति च कर्मारम्भे तु सिद्धिकृत् ।
संवत्सरोऽसीति घृतैर्लक्षहोमादरोगवान् ॥६५
केतुं कृण्वन्नितीत्येतत्सङ्ग्रामे जयवर्धनम् ।
इन्द्रोऽग्निर्धर्म इत्येतद्रणे धर्मनिबन्धनम् ॥६६
धनुर्नागेति मन्त्रश्च धनुर्ग्राहिणिकः परः ।
यजीतेति तथा मन्त्रो विज्ञेयो ज्याभिमन्त्रणे ॥६७
मन्त्रश्चाहिरिवेत्येनेच्छराणां मन्त्रणे भवेत् ।
वन्हीनां पितरित्येतत्तूणमन्त्रं प्रकीर्तितं ॥६८
युञ्जतीति तथाऽश्वाना योजने मन्त्र उच्यते ।
आशुः शिशान इत्येतद्यात्रारम्भणमुच्यते ॥६९
विष्णोः क्रमेति मन्त्रश्च रथारोहणिकः परः ।
आजङ्घतीति चाश्वानां ताडनीयमुदाहृतम् ॥७०

'अग्निश्च पृथिवी च'—यह मन्त्र उत्तम वशीकरण करने वाला है। 'अध्वना' इस मन्त्र को जपता हुआ व्यवहार में जय प्राप्त करने वाला होता है। ॥ ६४॥ 'ब्रह्म राजन्यम्'—यह मन्त्र कर्म के आरम्भ में सिद्धि का करने वाला होता है। 'सम्वत्सरोऽसि'—इस मन्त्र से घृत के द्वारा एक लक्ष आहुतियाँ देने से रोग से रहित हो जाता है ॥ ६५॥ 'केतुं कृण्वन्'—यह मन्त्र सग्राम में जय के बढ़ाने वाला होता है। इन्द्रोऽग्निर्धर्म'—यह मन्त्र रण में धर्म के निबन्धन करने वाला है॥ ६६॥ 'धनुर्नाग'—यह मन्त्र परम धनु के ग्रहण कराने वाला है। 'यजीत'—यह मन्त्र ज्या (धनुष की डोरी) के अभिमन्त्रण

करने का जानना चाहिए ॥ ६७ ॥ 'अहिरिव' यह मन्त्र उसके दारों के मन्त्रण करने के लिए होता है। 'वह्लीना पित'-यह मन्त्र तूणीर (तरकश) के अभिमन्त्रण करने के लिये कहा गया है ॥ ६८ ॥ 'युञ्जीत'-यह मन्त्र अश्वों के योजन करने के समय बोलना चाहिए। 'आशु शिशान'-यह मन्त्र यात्रा के आरम्भ करने में का। जाता है ॥ ६९ ॥ 'विष्णो क्रम'-यह मन्त्र रथ पर आरोहण करने वाला परम श्रेष्ठ होता है। आजङ्घति' इस मन्त्र के द्वारा अश्वों का ताडन करना चाहिए ॥ ७० ॥

या सेना अभित्वरीति मरसैन्यमुखे जपेत्।
दुन्दुभ्य इति च्येतद् दुन्दुभीताडनं भवेत् ॥७१
एलं पूर्वहुतैर्मन्त्रैं कृत्वैव विजयी भवेत्।
यमेन दत्तमित्यस्य कोटिहोमाद्विचक्षण ॥७२
रथमुत्पादयच्छीघ्रं संग्रामे विजयप्रदम्।
आ कृष्णेति तथैतस्य कर्म व्याहृतिवद्भवेत् ॥७३
शिवसंकल्पजापेन समाधि मनसो लभेत्।
पञ्च नद्य पचलक्ष हुत्वा लक्ष्मीमवाप्नुयात् ॥७४
यदा बध्नन्दाक्षायणा मन्त्रेणानेन मन्त्रितम्।
सहस्रकृत्व कनक धारयेद्रिपुवारणम् ॥७५
इम जीवेभ्य इति च शिला लोष्ट चतुर्दिशम्।
क्षिपेद् गृहे तदा तस्य न स्याच्चौरभयं निशि ॥७६
परि मे गामनेनेति वशीकरणमुत्तमम्।
हन्तुमस्यामनन्तत्र वशो भवति मानव ॥७७

या सेना अभित्वरी'-यह मन्त्र मरते हुए सैन्य के मुख पर जपना चाहिए। 'दुन्दुभ्य'—इस मन्त्र से दुन्दुभि ताडन करना चाहिए ॥ ७१ ॥ इन मन्त्रों से जिनसे पहिले हवन कर लिया गया हो, पूरा विधान करके युद्ध भूमि में जाता है वह अवश्य ही विजयी होता है। 'यमेन दत्तम्'—इस मन्त्र से एक करोड होम करके पण्डित रथ को बनावे तो शीघ्र ही संग्राम में विजय प्रदान

करने वाला होता है। 'अ कष्ण'—इस मन्त्र का कर्म व्याहृतियों से युक्त होता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ 'शिव सकल्प'—इसके जाप से मन की समाधि का लाभ होता है। 'पञ्चनद्य'—इसका पाँच लाख हवन करके लक्ष्मी को प्राप्त किया करता है ॥ ७४ ॥ 'यदा बध्नन्दाक्षायणाना'—इस मन्त्र से अभिमन्त्रित, जो कि एक सहस्र बार पढ कर अभिमन्त्रण किया गया हो, कनक को धारण करे तो शत्रु का वारण होता है ॥ ७५ ॥ 'इमजीवेभ्य'—इस मन्त्र को पढकर चारो दिशाओ में शिला के टुकडे फेंके तो फिर उसके घर मे रात्रि म चोरो का भय नहीं होता है ॥ ७६ ॥ 'परि मेगाम्'—इस मन्त्र म उत्तम प्रकार का वशीकरण होता है। जो मनुष्य हवन करने को आया हो वह भी तुरन्त वशीकरण हो जाता है ॥ ७७ ॥

भक्ष्यताम्बूलपुष्पाद्य मन्त्रित तु प्रयच्छति ।
यस्य धर्मज्ञ वशग सोऽस्य शीघ्र भविष्यति ॥७८
श नो मित्र इतीरयेतत्सदा सर्वत्र शान्तिदम् ।
गणाना त्वा गणपति कृत्वा होम चतुष्पथे ॥७९
वशी कुर्याज्जगत्सर्व सर्वधान्यरसाशयम् ।
हिरण्यवर्णा शुचयो मन्त्रोऽयमभिषेचने ॥८०
श नो देवीरभिष्टये तथा शान्तिकर पर ।
एकचक्र ति म त्रे ण हुतेनाऽऽज्येन भागश ॥८१
ग्रहेभ्य शान्तिमाप्नोति प्रसाद न च सशय ।
गावो भग इति द्वाभ्या हुत्वाऽऽज्य गा अवाप्नुयात् ॥८२
प्रवादा प सोपदिति गृ हयज्ञे विधीयते ।
देवेभ्यो वनस्पत इति द्रु मयज्ञे विधीयते ॥८३
गायत्री वैष्णवी ज्ञेया तद्विष्णो परम पदम् ।
सर्व पापप्रशमन सर्वकामकर तथा ॥८४

खाने के योग्य वस्तु ताम्बूल तथा पुष्प य दि अभिमन्त्रित करके जो देता है, हे धर्मज्ञ ! जिसका वशवर्ती होना है वह इसका वश्य शीघ्र ही हो जाता ॥ ७८ ॥ 'शनो मित्र'—यह मन्त्र सर्वत्र और सर्वदा शान्ति के देने वाला

है। 'गणानां त्वा गणपति'—इससे चतुष्पथ पर समस्त धान्यों से समस्त जगत् को वशी करना चाहिए। 'हिरण्य वर्णा शुचय'—यह मन्त्र अभिषेचन करने में प्रयुक्त करे॥ ७९॥ ८०॥ 'शन्नो देवी रभिष्टये'—यह मन्त्र परम शान्ति करने वाला होता है। 'एक चक्र'—इस मन्त्र से घृत का भागशः हवन करने पर ग्रहों से शान्ति की प्राप्ति होती है और ग्रहों की प्रसन्नता हो जाती है, इसमें कुछ भी सशय नहीं है। 'गावो भग'—इन दो मन्त्रों के द्वारा घृत का हवन करने से गौओं को प्राप्त किया करता है॥ ८१॥ ८२॥ 'प्रवादा य सोपद्'—इस मन्त्र का गृह यज्ञ में विधान किया जाता है। 'देवेभ्यो वनस्पत' इस मन्त्र का द्रुम यज्ञ में विधान है॥ ८१॥ ८२॥ ८३॥ गायत्री वैष्णवी जानने के योग्य है। वह विष्णु भगवान् का परम पद है। इससे समस्त प्रकार के पापों का शमन होता है तथा यह सम्पूर्ण कामनाओं को करने वाली है। ॥ ८४॥

१०८—उत्पातशान्तिः

श्रीसूक्तं प्रतिवेदं च ज्ञेयं लक्ष्मीविवर्धनम्।
हिरण्यवर्णां हरिणीमृच पञ्चदश श्रियं ॥१
रथेष्वक्षेषु वाजेति चतस्रो यजुषि श्रियं।
स्रावन्तीयं तथा साम श्रीसूक्तं सामवेदके ॥२
श्रियं धातर्मयि धेहि प्रोक्तमाथर्वणे तथा।
श्रीसूक्तं यो जपेद्भक्त्या हुत्वा श्रीस्तस्य वै भवेत् ॥३
पद्मानि चाथ बिल्वानि हुत्वाऽऽज्यं वा तिलान् श्रियं।
एकं तु पौरुषं सूक्तं प्रतिवेदं तु सर्वदम् ॥४
सूक्तेन दद्यान्निष्पापो ह्येकैकया जलाञ्जलिम्।
स्नात एकैकया पुष्पं विष्णोर्दत्त्वाऽघहा भवेत् ॥५
स्नात एकैकया दत्त्वा फलं स्यात्सर्वकामभाक्।
महापापोपपापान्तो भवेज्जप्त्वा तु पौरुषम् ॥६

कृच्छ्रैर्विशुद्धो जप्त्वा च हुत्वा स्नात्वाऽथ सर्वभाक् ।
अष्टादशभ्यः शान्तिभ्यस्तिस्रोऽन्याः शान्तयो वसः ॥७
अमृता चाभया सौम्या सर्वोत्पातविमर्दना ।
अमृता सर्वदैवत्या अभया ब्रह्मदेवता ॥८

इस अध्याय में उत्पातों की शान्ति के विषय में बतलाया जाता है। पुष्कर ने कहा—श्री सूक्त और प्रति वेद लक्ष्मी को विशेष रूप से वर्धन करने जानना चाहिए। श्री सूक्त की 'हिरण्य वर्णां हरिणीम्'—इत्यादि पन्द्रह ऋचाऐं होती हैं ॥ १ ॥ रथेष्वक्षेषु वाच'—ये चार यजुर्वेद में श्री की ऋचाऐं हैं। तथा सामवेद में 'स्रावन्तीयं तथा साम'—यह श्री सूक्त होता है ॥ २ ॥ 'श्रिय धातर्मयि धेहि'—यह अथर्ववेद में कहा गया है। जो पुरुष श्री सूक्त को परम दृढ भक्ति के साथ जपता है और इसके मन्त्रों के द्वारा हवन किया करता उसके श्री अवश्य ही हो जाती है ॥ ३ ॥ श्री के लिये कमल के दल, बिल्व घृत और तिलों का हवन करना चाहिए। एक प्रतिवेद पुरुष सूक्त सबका प्रदान करने वाला होता है ॥ ४ ॥ सूक्त के द्वारा पापों से रहित पुरुष एक एक ऋचा से जल की अञ्जलि देवे। स्नान करके एक एक ऋचा से विष्णु के लिये पुष्प देने वाला पुरुष समस्त पापों का नाश करने वाला होता है ॥५॥ स्नान करके एक-एक ऋचा से फल को देने से सभी कामनाओं की सिद्ध वाला होता है। पुरुष सूक्त के जाप से महापाप और उप पातकों का अन्त हो जाता है ॥ ६ ॥ कृच्छ्र व्रतादि के द्वारा विशुद्ध होकर जो इसका जप किया करता है तथा हवन करता है और स्नान करके करता है वह सब कुछ को प्राप्त कर लेता है। अठारह शान्तियों से तीन अन्य शान्तियाँ होती हैं ॥ ७ ॥ अमृता, अभया और सौम्या ये तीन समस्त उत्पातों के विमर्दन करने वाली होती हैं। जो अमृता शान्ति होती है वह सभी दैवो वाली होती है। अभया-शान्ति का ब्रह्मा देवता होता है ॥ ८ ॥

सौम्या च सर्वदैवत्या एका स्यात्सर्वकामदा ।
अभया मणिः कार्यो वरुणस्य भृगूत्तम ॥९

शतकाण्टोऽमृतायाश्च सौम्याया शङ्खजो मणि ।
तद्दैवत्यास्तथा मन्त्रा सिद्धो स्यान्मणिबन्धनम् ॥१०
दिव्यान्तरी क्षभौमादिसमुत्पातार्दना इमा ।
दिव्यान्तरी क्षभौम तु अद्भुत त्रिविधं शृणु ॥११
ग्रहर्क्ष वैकृत दिव्यमान्तरीक्ष निबोध मे ।
उल्कापातश्च दिग्दाह परिवेशस्तथैव च ॥१२
गन्धर्वनगर चैव वृष्टिश्च विकृता च या ।
चरस्थिरप्रभ भूमौ भूकम्पमपि भूमिजम् ॥१३
सप्ताहाभ्यन्तरे वृष्टावद्भुत निष्फल भवेत् ।
शांति विना त्रिभिर्वर्षैरद्भुत भयकृद्भवेत् ॥१४
देवतार्चा प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च ।
आरटन्ति च रोदन्ति प्रस्विद्यन्ते हसन्ति च ॥१५
अर्चाविकारापशमोऽभ्यर्च्य हुत्वा प्रजापते ।
जलग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे न भूरानि स्वनम् ॥१६

सौम्या शान्ति भी सब देवता हानी है अर्थात् इससे भी सभी देवता प्रसन्न होते है। यह एक ही समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली होती है। हे भृगूत्तम ! जो अभया शान्ति है उसका मणि धारण का करना चाहिए। अमृता का शतकाण्ड और सौम्या का शङ्ख मणि (मन्त्र) होता है। जो उसका देवता हो उसके उसी प्रकार के मन्त्र भी हैं सिद्धि में मणि बन्धन होता है ॥ ९ ॥ १० ॥ दिव्य—अन्तरिक्ष और भूमि मे होने वाला समुत्पातों की विमर्दन करने वाली य शान्तियाँ होती हैं। दिव्य—अन्तरिक्ष और भूमि में होने वाले ये तीन प्रकार के उत्पात बडे ही अद्भुत होते हैं। इनका तुम अब श्रवण करो ॥ ११ ॥ दिन और नक्षत्र म जो वैकृत होता है वह दिव्य तथा अन्तरिक्ष म होने वाला उत्पात समझो। उल्कापात, दिशाओं में दाह तथा परिवेश, गन्धर्व नगर, वृष्टि जो विकृत रूप वाली हो, चर और स्थिर स्वरूप मे होने वाला भूकम्प भी भूमि म भूमिज उत्पात होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥ एक सप्ताह के अन्दर वर्षा हो जाने पर अद्भुत निष्फल हो जाया करता है।

अन्यथा विना शान्ति किये हुए अद्भुत तीन वर्ष तक भयकारी होता है ॥१४॥ देवतार्चा कृत्य करते है, कम्पायमान होते हैं, प्रज्वलित होते है, आराम करते है, रोदन करते है, प्रसन्न होते है और हँसते है ॥ १५ ॥ इनके विकार का उपशम प्रजापति का अभ्यर्चन कर तथा हवन करके करना चाहिए। जहाँ वनाग्नि दीप्त होती है और राष्ट्र मे बहुत अधिक शोर गुल होता है ॥ १६ ॥

न दीप्यते चेन्धनवास्तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपं ।
अग्निवैकृत्यशमनमग्निमन्त्रैश्च भार्गवः ।
अकाले फलिता वृक्षा क्षीरं रक्तं स्रवन्ति च ।
वृक्षोत्पातप्रशमनं शिवं पूज्य च कारयेत् ॥१८
अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षायोभयं मतम् ।
अनृतौ त्रिदिनारब्धवृष्टिर्ज्ञेया भयाय हि ॥१६
वृष्टिवैकृत्यनाश. स्यात्पर्जन्येन्द्रकपूजनात् ।
नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च ॥२०
नद्यो ह्रदप्रस्रवणा विरसाश्च भवन्ति च ।
सलिलाशयवैकृत्ये जप्तव्यो वारुणो मनुः ॥२१
अकालप्रसवा नार्यः कालतो वाऽप्रजास्तथा ।
विकृतप्रसवाश्चैव युग्मप्रसवनादिकम् ॥२२
स्त्रीणां प्रसववैकृत्ये स्त्रीविप्रादिं प्रपूजयेत् ।
वडवा हस्तिनी गौर्वा यदि युग्मं प्रसूयते ॥२३
विजात्यं विकृतं वाऽपि षड्भिर्मासैर्म्रियेत वै ।
विकृतं वा प्रसूयन्ते परचक्रभयं भवेत् ॥२४

वह राष्ट्र ईधन के द्वारा नही जलता है प्रत्युत राजाओ के द्वारा पीड़ित किया जाता है। हे भार्गव! इस अग्नि के विकार का शमन अग्नि मन्त्रो द्वारा किया जाना है ॥ १७ ॥ अकाल मे अर्थात् असमय मे ही वृक्ष फलित होते है और क्षीर रक्त का स्रवण किया करते हैं। इस प्रकार का जो वृक्षो के होने वाले उत्पात का उपशमन शिव का पूजन करके कराना चाहिए ॥ १८ ॥ आवश्यकता से कहीं अधिक वर्षा का होना अति वृष्टि कही

जाती है। एक बूँद भी पानी का मेघों से नहीं पड़ना अनावृष्टि कही जाती है यह दोनों ही दुर्भिक्ष (अकाल पड़ जाना) कहा गया है क्योंकि अतिवृष्टि और अनावृष्टि दोनों के होने से भूमि में कुछ भी उत्पन्न नहीं हुआ करता है। बिना ऋतु के तीन दिन तक बराबर वृष्टि का होते रहना भी भयप्रद होता है ॥१६॥ इस प्रकार की वृष्टि की विकृति का नाश पर्जन्य चन्द्र अर्क के पूजन से हुआ करता है नगर से चल जाते हैं और समीप में प्राप्त हो जाते हैं।। २० ॥ नदियाँ, हृद और प्रस्रवण विरस हो जाया करते हैं। इस तरह पानी के आशयों की विकृति हो जाने पर वरुण का मन्त्र जपना चाहिए ॥ २१ ॥ स्त्रियों की प्रसव, विकृति कई प्रकार की हुआ करती है, कुछ स्त्रियाँ अकाल में ही प्रसव (बच्चा जनना) वाली होती हैं, कुछ स्त्रियाँ समय आ जाने पर भी बिना औलाद वाली रह जाती हैं। कुछ नारियों के प्रसव तो होता है किन्तु वह विकृत स्वरूप वाला होता है। कुछ नारियाँ दो-दो बच्चों का प्रसव किया करती हैं इत्यादि नारियों की प्रसव विकृति हुआ करती है ॥ २२ ॥ स्त्रियों के प्रसव के वैकृत्य (बिगड़ जाना) में स्त्री का विप्र आदि का पूजन करना चाहिए। घोड़ी, हथिनी अथवा गौ इनके यदि युग्म का प्रसव होता है ॥ २३ ॥ विजातिरूप अर्थात् भिन्न जाति वाला अथवा विकृत रूप वाला प्रसव हो और छैं मास में बच्चा मर जाता है। किम्वा बिगड़े हुए रूप का प्रसव करे तो पर चक्र का भय होता है। ॥२४।

होमः प्रसूतिवैकृत्ये जपो विप्रादिपूजनम् ।
यानि चान्यान्ययुक्तानि युक्तानि न वदन्ति च ॥२५
आकाशे तूर्यनादादच महद्भयमुपस्थितम् ।
प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः ॥२६
अरण्यं यान्ति वा ग्राम्या जलं यान्ति स्थलोद्भवाः ।
स्थलं वा जलजा यान्ति राजद्वारादिके शिवाः ॥२७
प्रदोषे कुक्कुटो वासे शिवा चार्कोदये भवेत् ।
गृहं कपोतः प्रविशेत्क्रव्यादो मूर्ध्नि लीयते ॥२८

मधु वा मक्षिका कुर्यात्काको मैथुनगो दृशि ।
प्रासादतोरणोद्यानद्वारप्राकारवेश्मनाम् ॥२९
अनिमित्त तु पतन दृढाना राजमृत्यवे ।
रजसा वाऽथ धूमेन दिशो यत्र समाकुला ॥३०
केतूदयोपरागो च च्छिद्रता शशिसूर्ययो ।
ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत् ॥३१
अग्निर्यत्र न दीप्येत स्रवन्ते चोदकुम्भका ।
मृतिर्भय शून्यतादि ह्युत्पाताना फल भवेत् ॥३२

इस उक्त प्रकार की प्रसूति की विकृति के होने पर जप और विप्र आदि का पूजन करना चाहिए । जो जो इस तरह के अयुक्त प्रसवादि हो और जिन्हे युक्त नही कहते है उनका शमन विप्रादि पूजन और जप से होता है । ॥ २५ ॥ आकाश मे तूर्य व द्य का शब्द होना भी महान् भय का होना बताता है । जिस समय मे जगल के रहने वाले मृग और पक्षीगण ग्राम मे प्रवेश करते हैं अथवा ग्राम के रहने वाले पशु पक्षी गण जङ्गल मे प्रवेश किया करते हैं तथा स्थल भाग के रहने वाले जल मे प्रवेश करते हैं या जल मे वास करने वाले जीव स्थल से निकल कर आ जाते है तथा राजद्वार आदि स्थानो पर गीदड आदि आ जाया करते हैं । प्रदोष के समय मे मुर्गा और सूर्योदय के समय मे गीदड निकले तथा गृह म कबूतर प्रवेश करे अथवा काष्ठादि मस्तक पर लीन हो ॥ २८ ॥ मधुमक्षिका अथवा कौआ मैथुन करता हुआ दृष्टिगत होवे । प्रासाद, तोरण प्रधान द्वार, उद्यान द्वार, प्राकार तथा वेश्म (गृह) का बिना ही किसी निमित्त के दृढ होते हुए भी पतन हो जावे तो राजा की मृत्यु करने वाले होते हैं । जहाँ पर रज से अथवा धूँए स समस्त दिशाऐ समाकुल (घिरी हुई) हो, केतु का उदय तथा उपराग, चन्द्रमा और सूर्य म छिद्र का हो जाना और नक्षत्रो की विकृतियाँ होती हैं । जहाँ पर ये होती है वहाँ भय की सूचना दिया करती हैं ॥ २९ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जहाँ अग्नि दीप्त न होवे और जल के कुम्भ स्रवण किया करते हैं वहाँ मृत्यु भय और शून्यता आदि उत्पातो का

फल हुआ करता है। इन समस्त उत्पातों की शान्ति द्विज, देव आदि की पूजा से, मन्त्रों के जप से और हवन करने से हो जाती है ।। ३१ ।। ३२ ।।

१०६–विष्णु पञ्जरम्

त्रिपुरं जघ्नुषः पूर्वं ब्रह्मणा विष्णुपञ्जरम् ।
शङ्करस्य द्विजश्रेष्ठ रक्षणाय निरूपितम् ॥१
वागीशेन च शक्रस्य बलं हन्तुं प्रयास्यतः ।
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि तत्वं शृणु जयादिमत् ॥२
विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री हरिर्दक्षिणतो गदी ।
प्रतीच्यां शार्ङ्गधृग्विष्णुर्जिष्णुः खड्गी ममोत्तरे ।।३
हृषीकेशो विकोणेषु तच्छिद्रेषु जनार्दनः ।
क्रोडरूपी हरिर्भूमौ नरसिंहोऽम्बरे मम ॥४
क्षुरान्तममलं चक्रं भ्रमत्येतत्सुदर्शनम् ।
अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान् ॥५
गदा चेयं सहस्रार्चिः प्रदीप्तपावकोज्ज्वला ।
रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च नाशनी ॥६
शार्ङ्गं विस्फूर्जितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपून् ।
तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन्हन्त्वशेषतः ॥७
खड्गधाराज्ज्वलज्योत्स्नानिर्धूता ये समाहिताः ।
ते यान्तु शाम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः ॥८

पुष्कर ने कहा—हे द्विजों में श्रेष्ठ ! पहिले त्रिपुरासुर को मारने की इच्छा वाले भगवान् शङ्कर की रक्षा के लिये ब्रह्माजी ने विष्णु पञ्जर का निरूपण किया था ।। १ ।। और बृहस्पति जी ने बल को मारने के लिये प्रयाण करने वाले इन्द्र की रक्षा के लिये विष्णु पञ्जर को बताया था। अब मैं उस विष्णु पंजर के स्वरूप को बताता हूँ जो कि युद्ध में जय आदि के करने वाला होता है। उसका तुम श्रवण करो ।। २ ।। विष्णु पूर्व में स्थित हैं, चक्रधारी हरि दक्षिण में स्थित हैं, गदा को धारण करने वाले पश्चिम में स्थित हैं, शार्ङ्ग

नुष को धारण करने वाले विष्णु और खड्गधारी विष्णु मेरे उत्तर में स्थित हैं ॥ ३ ॥ भगवान् हृषीकेश विकोणों में स्थित हैं और उनके छिद्रों में जनार्दन हैं। क्रोड रूप वाले हरि भूमि पर स्थित है तथा मेरे अम्बर में नृसिंह हैं ॥४॥ निरान्त अमल यह सुदर्शन चक्र भ्रमण कर रहा है। इस चक्र की जो किरणों की मालाएं हैं वे बहुत ही कठिनाई से देखने के योग्य हैं। यह प्रेत और निशाचरों को हनन करने के लिये घूम रहा है ॥ ५ ॥ यह विष्णु की गदा सहस्र अर्चियों वाली है और प्रदीप्त अग्नि के समान उज्ज्वल है। यह राक्षस भूत, पिशाच और डाकिनियों के नाश करने वाली है ॥ ६ ॥ वासुदेव के शार्ङ्ग धनुष का विस्फूर्जन मेरे शत्रुओं को और तिर्यक् योनि वाले, मनुष्य, कूष्माण्ड और प्रेत आदि का पूर्ण रूप से हनन करे ॥ ७ ॥ उज्ज्वल ज्योत्स्ना के सदृश जो खड्ग की धारा उससे निर्धूत है जो यहाँ समाहित शत्रु है वे सब गरुड़ के द्वारा सर्पों की भाँति तुरन्त शमन को प्राप्त हो जावें ॥ ८ ॥

ये कूष्माण्डास्तथा यक्षा ये दैत्या ये निशाचरा ।
प्रेता विनायका. क्रूरा मनुष्या जम्भगाः खगा ॥९
सिंहादयश्च पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगा ।
सर्वे भवन्तु ते सौम्या कृष्णशङ्खरवाहता ॥१०
चित्तवृत्तिहरा ये मे ये जना स्मृतिहारका ।
बलौजसा च हर्तारश्छायाविभ्रंशकाश्च ये ॥११
ते चोपभोगहर्तारो ये च लक्षणनाशका ।
कूष्माण्डास्त प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहता ॥१२
बुद्धिस्वास्थ्य मन स्वास्थ्य स्वास्थ्यमैन्द्रियक तथा ।
ममास्तु देवदेवस्य वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥१३
पृष्ठे पुरस्तान्मम दक्षिणोत्तरे विकोणतश्चास्तु जनार्दनो हरिः ।
तमीड्यमीशानमनन्तमच्युत जनार्दन प्रणिपततो न सीदति ॥१४
यथा पर ब्रह्म हरिस्तथा परो जगत्स्वरूपश्च स एव केशव ।
सत्येन तेनाच्युतनामकीर्तनात्प्रणाशयेत्तु त्रिविध मामशुभम् ॥१५

जो कूष्माण्ड हैं तथा यक्ष हैं, दैत्य हैं निशाचर हैं, प्रेत हैं, विनायक हैं तथा क्रूर स्वभाव वाले मनुष्य हैं और जम्भग पक्षीगण हैं सिंह आदि पशु हैं दन्द शूक एवं पन्नग हैं वे सब भगवान् कृष्ण के शङ्ख की ध्वनि से हत होकर सौम्य हो जावें ॥ ९ ॥ १० ॥ जो भी कोई मेरी चित्त की वृत्ति को हरण करने वाले हैं और जो मनुष्य मेरी स्मृति के हरण करने वाले हैं तथा मेरे बल और ओज के हरण करने वाले हैं, जो छाया के विध्वंसक हैं, जो भी कोई मेरे उपभोग के हरण करने वाले शत्रु हैं जो लक्षण अर्थात् शुभ लक्षणों के नाश करने वाले हैं वे कूष्माण्ड सब भगवान् विष्णु के चक्र की ध्वनि से आहत होकर नष्ट हो जावें ॥ ११ ॥ १२ ॥ बुद्धि की स्वस्थता, मन का स्वास्थ्य और इन्द्रियों से सम्बन्ध रखने वाली स्वस्थता मेरी भगवान् देवों के देव वासुदेव के कीर्तन से अर्थात् इस विष्णु पञ्जर के पढ़ने से हो जावे। आगे, पीछे दक्षिण और उत्तर में तथा विकोणों में मेरे सभी ओर जनार्दन हरि रहें। उन पूजा के योग्य अनन्त, ईशान और अच्युत जनार्दन भगवान् को प्रणिपात करने वाला कभी भी दुःखी नहीं होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥ जिस प्रकार से ब्रह्म सबसे परात्पर है उसी तरह परात्पर हरि इस जगत् के स्वरूप वाला वह ही केशव है। सच्चे भाव से उन भगवान् के नाम के कीर्तन करने से मेरे तीनों प्रकार के अशुभों का नाश हो जावे ॥ १५ ॥

११० वेदशाखादिकथनम्

सर्वानुग्राहका मन्त्राश्चतुर्वर्गप्रसाधकाः ।
ऋगथर्व तथा साम यजुः संख्या तु लक्षकम् ॥१
भेदः शांख्यायनश्चैक आश्वलायनो द्वितीयकः ।
शतानि दश मन्त्राणां ब्राह्मणां द्विसहस्रकम् ॥२
ऋग्वेदो हि प्रमाणेन स्मृतो द्वैपायनादिभिः ।
एकोनद्विसहस्रं तु मन्त्राणां यजुषस्तथा ॥३
शतानि दश विप्राणां षडशीतिश्च शाखिकाः ।
काण्वमाध्यन्दिनी सञ्ज्ञा कठी माध्यकठी तथा ॥४

मैत्रायणी च सज्ञा च तैत्तिरीयाभिधानिका ।
वंशपायनिकेत्याद्या. शाखा यजुषि सस्थिता. ॥५
साम्न कौथुमसज्ञका द्वितीयाऽथर्वणायनी ।
गानान्यपि च चत्वारि वेद आरण्यक तथा ॥६
उक्था ऊहश्चतुर्थश्च मन्त्रा नवसहस्रका: ।
स चतु शतकाश्चैव ब्रह्मसघटका. स्मृता: ॥७
पञ्चविंशतिरेवात्र साममान प्रकीर्तितम् ।
सुमन्तुर्जाजलिश्चैव श्लोकायनिरथर्वके ॥८
शौनक पिप्पलादश्च मुञ्जकेशादयोऽपरे ।
मन्त्राणामयुत षट्शत चोपनिषच्छतम् ॥९

इस अध्याय मे वेद शाखादि का वर्णन किया जाता है । पुष्कर ने कहा वेद के मन्त्र सब पर सभी प्रकार से कृपा करने वाले होते हैं और ये चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के साधन करने वाले हैं । ऋग्वेद, अथर्ववेद, साम-वेद और यजुर्वेद की एक लक्ष संख्या है ॥१॥ इनका एक भेद तो साख्यायन होता है और दूसरा भेद आश्वलायन नाम वाला है । एक सहस्र मन्त्रो के ब्राह्मण भाग दो सहस्र हैं ॥२॥ द्वैपायन आदि के द्वारा प्रमाण से ऋग्वेद कहा गया है । यजुर्वेद मे मन्त्रो की सख्या एक कम दो सहस्र है ॥३॥ एक सहस्र ब्राह्मणो की छयासी शाखाएँ हैं । काण्व, माध्यन्दिनी, कठी, माध्यकठी, मैत्रायणी, तैत्तिरीय नाम वाली, वैशम्पायनिका इत्यादि समस्त शाखाएँ यजु-र्वेद मे होती है ॥४॥५॥ सामवेद की एक तो कौथुम सज्ञा वाली शाखा है और दूसरी अथर्वणायनी होती है । इसके गान भी चार प्रकार के होते हैं—वेद, आरण्यक, उक्थ और चतुर्थ ऊह है । इसमे नौ हजार मन्त्र है । वह चारसौ ब्रह्म सघटक नाम से कहे गये है ॥६॥७॥ सामवेद का मान पच्चीस ही कहा गया है । अथर्ववेद मे सुमन्तु, जाजलि, श्लोकायनि, शौनक, पिप्पलाद और दूसरे मुञ्जकेश आदि हैं । दस हजार साठ सौ मन्त्रो की सख्या है और सौ उप-निषद् हैं ॥८॥९॥

व्यासरूपी स भगवाञ्शाखाभेदाद्यकारयत् ।
शाखाभेदादयो विष्णुरितिहास पुराणकम् ॥१०
प्राप्य व्यासात्पुराणादि सूतो वै लोमहर्षण ।
सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रयु शिशपायन ॥११
कृतव्रतोऽथ सावर्णि षट्शिष्यास्तस्य चाभवन् ।
शाशपायनादयश्चक्रु पुराणाना तु सहिता ॥१२
ब्राह्मादीनि पुराणानि हरिर्विद्या दशाष्ट च ।
महापुराणे ह्याग्नेये विद्यारूपो हरि स्थित ॥१३
सप्रपञ्चो निष्प्रपञ्चो मूर्तामूर्तस्वरूपधृक् ।
त ज्ञात्वाऽभ्यर्च्य सस्तूय भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१४
विष्णुर्जिष्णुर्भविष्णुश्च अग्निसूर्यादिरूपवान् ।
अग्निरूपेण देवादेर्मुख विष्णु परा गति ॥१५
वेदेषु स पुराणेषु यज्ञमूर्तिश्च गीयते ।
आग्नेयाख्य पुराण तु रूप विष्णोर्महत्तरम् ॥१६

भगवान् ने व्यास के रूप में अवतीर्ण होकर इसकी शाखाओं के भेद आदि किये हैं । शाखाओ के भेद आदि का विष्णु पुराण इतिहास है ॥१०॥ लोमहर्षण सूत ने व्यास से पुराण आदि को प्राप्त किया था । उसके सुमति, अग्निवर्चा, मित्रयु, शिशपायन, कृतव्रत और सावर्णि ये छ शिष्य हुए थे। शाशपायन आदि ने पुराणो की सहिताओ की रचना की थी ॥११॥१२॥ ब्राह्म आदि अठारह पुराणो को हरि जानते हैं । महापुराण आग्नेय मे विद्या रूप वाले हरि स्थित हैं ॥१३॥ वह प्रपञ्च के सहित और इस माया के प्रपञ्च रहित मूर्त तथा अमूर्त दोनो प्रकार के स्वरूपो को धारण करने वाला है । उसको भली-भाँति जानकर और उसका अर्चन करके तथा उसका स्तवन करके मानव समस्त प्रकार के सांसारिक भोगो का सुख और अन्त मे ससार मे जन्म-मरण के आवागमन के बन्धन से छुटकारा प्राप्त कर लेता है ॥१४॥ विष्णु जिष्णु और भविष्णु अग्नि और सूर्य आदि के रूप वाले हैं । अग्नि के रूप के द्वारा देवादि का मुख विष्णु परा गति है ॥१५॥ वह विष्णु वेदो मे और पुराणो मे

यज्ञ की मूर्ति वाला गान किया जाता है। यह आग्नेय नाम वाला पुराण अर्थात् अग्नि पुराण भगवान् विष्णु का महत्तर (अधिक बड़ा) स्वरूप है ॥१६॥

आग्नेयाख्यपुराणस्य कर्ता श्रोता जनार्दन ।
तस्मात्पुराणमाग्नेय सर्ववेदमय महत् ॥१७
सर्वविद्यामय पुण्य सर्वज्ञानमय वरम् ।
सर्वात्महरिरूप हि पठता शृण्वता नृणाम् ॥१८
विद्यार्थिना च विद्यादथिना श्रीधनप्रदम् ।
राज्यार्थिना राज्यद च धर्मद धर्मकामिनाम् ॥१९
स्वर्गार्थिना स्वर्गद च पुत्रद पुत्रकामिनाम् ।
गवादिकामिना गोद ग्रामद ग्रामकामिनाम् ॥२०
कामार्थिनां कामद च सर्वसौभाग्यसप्रदम् ।
गुणकीर्तिप्रद नृणां जयद जयकामिनाम् ॥२१
सर्वेप्सूनां सर्वद तु मुक्तिद मुक्तिकामिनाम् ।
पापघ्न पापकर्तॄणामाग्नेय हि पुराणकम् ॥२२

इस आग्नेय नाम वाले पुराण की रचना करने वाला कर्त्ता और इसका श्रवण करने वाला श्रोता भगवान् जनार्दन ही है। इस कारण से यह आग्नय पुराण समस्त वेदो से परिपूर्ण स्वरूप वाला है ॥१७॥ समस्त प्रकार की विद्याओ से पूर्ण, पुण्य स्वरूप, सम्पूर्ण ज्ञान से भरा हुआ, श्रेष्ठ और इसके पढने तथा सुनने वाले मनुष्यो के लिये यह सर्वात्म रूप से साक्षात् हरि के ही स्वरूप वाला है ॥१८॥ जो विद्या के चाहने वाले हैं उनको विद्या देने वाला और जो धन की इच्छा रखते हैं उनको धन प्रदान करने वाला यह होता है। राज्य के प्राप्त करने की इच्छा वालो को राज्य देने वाला और जो धर्म पान की कामना रखते हैं उन्हे धर्म देने वाला होता है ॥१९॥ स्वर्ग के कामुको को स्वर्ग देने वाला है और जो पुत्र पाने की इच्छा करते हैं, उन्हे पुत्र प्रदान करता है। गौ आदि की चाह जिन्हे होती है उन्हे गौ देता है। ग्रामाधीश होने की भावना रखने वालो को ग्राम प्रदान करा देता है ॥२०। काम वासना की चाह वालो को काम देता है और समस्त प्रकार के सौभाग्य का देने वाला है। गुण

और कीर्ति मानवों को देता है। जो जय की कामना रखते हैं उन्हें जय देने वाला होता है ॥२१॥ सभी तरह की इच्छाऐं जो रखते हैं उन्हें सभी प्रकार की वस्तुएँ देने वाला है। जो मुक्ति चाहते हैं उन्हें मुक्ति का प्रदान किया करता है। पापों के करने वाले मानवों के पापों का यह आग्नेय पुराण नाश कर दिया करता है ॥२२॥

१११ पुराणदानादिमाहात्म्यम्

ब्रह्मणाऽभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये ।
लक्षार्धार्धं तु तद्ब्राह्मं लिखित्वा सम्प्रदापयेत् ॥१
वैशाख्यां पौर्णमास्यां च स्वर्गार्थी जलधेनुमत् ।
पाद्मं द्वादशसाहस्रं ज्येष्ठे दद्याच्च धेनुमत् ॥२
वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः ।
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं प्राह चापयेत् ॥३
जलधेनुमदाषाढ्यां विष्णोः पदमवाप्नुयात् ।
चतुर्दश सहस्राणि वायवीयं हरिप्रियम् ॥४
श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान्वायुरिहाब्रवीत् ।
दद्याल्लिखित्वा तद्विप्रे श्रावण्यां गुडधेनुमत् ॥५
यत्राधिकृत्य गायत्रीं कीर्त्यते धर्मविस्तरः ।
वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमुच्यते ॥६
सारस्वतस्य कल्पस्य प्रौष्ठपद्यां तु तद्ददेत् ।
अष्टादश सहस्राणि हेमसिंहसमन्वितम् ॥७
यत्राऽऽह नारदो धर्मान्बृहत्कल्पाश्रितानिह ।
पञ्चविंशसहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥८
सधेनुं चाऽऽश्विने दद्यात्सिद्धिमात्यन्तिकीं लभेत् ।
यत्राधिकृत्य शकुनीं धर्माधर्मविचारणा ॥९
कार्तिक्यां नवसाहस्रं मार्कण्डेयमथार्पयेत् ।
अग्निना यद्वसिष्ठाय प्रोक्तं चाऽऽग्नेयमेव तत् ॥१०

इस अध्याय में पुराणों के दान आदि का माहात्म्य वर्णित किया जाता है । पुष्कर ने कहा—पहिले ब्रह्माजी ने मरीचि के लिये जितना कहा था वह एक लक्ष के अर्ध भाग का भी अर्ध भाग अर्थात् पच्चीस हजार ब्राह्म पुराण है (यहाँ अनुष्टुप् छन्दों के द्वारा संख्या निश्चित की जाया करती है) उसको लिखकर दान कराना चाहिए ।।१।। इसका दान वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि में जल धेनुवत् स्वर्ग की इच्छा रखने वाला करे। पाद्म पुराण बारह सहस्र है उसे धेनु के साथ ज्येष्ठ मास में दान करना चाहिए ।।२।। वारह कल्प के वृत्तान्त को लेकर पराशर मुनि ने तेईस हजार वैष्णव को कहा था, आषाढी पूर्णिमा में इसका दान करने से विष्णु के स्थान की प्राप्ति होती है। चौदह सहस्र हरि का प्रिय वायवीय पुराण है जो कि श्वेत कल्प के प्रसङ्ग से वायु ने इसमें धर्मों को बतलाया है। इसे गुडधेनुमत् श्रावणी पूर्णिमा में ब्राह्मण को लिखकर दान देवे ।।३।।४।।५।। यात्रा का अधिकार करके धर्म का पूर्ण विस्तार गायत्री का जिसमें कीर्त्तन किया जाता है। वृत्रासुर के वध में युक्त जो है वह भागवत पुराण कहा जाता है ।।६।। यह सारस्वत कल्प का पुराण है। इसे प्रौष्ठपदी में अर्थात् भाद्रपद की पूर्णिमा में हेम के सिंह से समन्वित करके दान देवे। यह अठारह सहस्र अनुष्टुप् छन्दों वाला पुराण है ।।७।। जिसमें नारद ऋषि ने वृहत्कल्प के आश्रित धर्मों को कहा है वह पच्चीस हजार संख्या वाला नारदीय पुराण कहा जाता है। इसे धेनु के सहित आश्विन मास की पूर्णिमा में दान देवे तो आत्यन्तिकी सिद्धि की प्राप्ति होती है। जिसमें अधिकार करके शकुनों के धर्म और अधर्म की विचारणा है। यह नौ सहस्र की संख्या वाला मार्कण्डेय पुराण होता है। इसका कार्तिक मास की पूर्णिमा में दान करना चाहिए। अग्निदेव के द्वारा जो वसिष्ठ मुनि से कहा गया है वह आग्नेय पुराण के नाम से प्रसिद्ध है ।।८।९।१०।।

लिखित्वा पुस्तक दद्यान्मार्गशीर्ष्यां स सर्वद ।
द्वादशैव सहस्राणि सर्वविद्यावबोधनम् ।।११
चतुर्दश सहस्राणि भविष्य सूर्यसभवम् ।
भवस्तु मनवे प्राह दद्यात्पौष्यां गुडादिमत् ।।१२

सावर्णिना नारदाय ब्रह्मवैवर्तमीरितम् ।
रथन्तरस्य वृत्तान्तमष्टादशसहस्रकम् ॥१३
माघ्यां दद्याद्वराहस्य चरितं ब्रह्मलोकभाक् ।
यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थो धर्मान्प्राह महेश्वर. ॥१४
आग्नेयकल्पे तल्लिङ्गमेकादशसहस्रकम् ।
तद्दत्वा शिवमाप्नोति फाल्गुन्यां तिलधेनुमत् ॥१५
चतुर्विंशसहस्राणि वाराहं विष्णुनेरितम् ।
भूम्यै वराहचरितं मानवस्य प्रवृत्तितः ॥१६

इस अग्नि पुराण को जो कि समस्त विद्याओं का ज्ञान कराने वाला है और बारह सहस्र सख्या वाला है। इसे लिखकर सब कुछ देने वाला पुरुष मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा मे दान देवे ॥११॥ चौदह सहस्र सूर्य से उत्पत्ति वाला भविष्य पुराण है। भव (शिव) ने इसे मनु से कहा था, गुड आदि से युक्त इसे पौषी पूर्णिमा मे देना चाहिए ॥१२॥ सावर्णि ने नारद देवर्षि के लिये ब्रह्म वैवर्त पुराण को कहा था। यह रथन्तर का वृत्तान्त है और इसकी सख्या अठारह सहस्र है ॥१३॥ वराह के चरित का माघी पूर्णिमा मे दान करना चाहिए। इससे ब्रह्मलोक मे जाने वाला हो जाता है। जिसमे अग्निलिङ्ग के मध्य मे स्थित भगवान् महेश्वर ने धर्मों को बतलाया है ॥१४॥ आग्नेय कल्प मे वह लिङ्ग एकादश सहस्र की सख्या वाला है। तिल और धेनु से युक्त उस लिङ्ग पुराण को फाल्गुनी पूर्णिमा म दान करके भगवान् शिव की प्राप्ति करता है ॥१५॥ भगवान् विष्णु ने वाराह पुराण चौबीस हजार सख्या से युक्त कहा है। यह वाराह पुराण म नव की प्रवृत्ति से भूमि के लिये कहा गया है ॥१६॥

सहेम गारुड चैत्र्यां पदमाप्नोति वैष्णवम् ।
चतुरशीतिसाहस्रं स्कान्दं स्कन्देरितं महत् ॥१७
अधिकृत्य सधर्मांश्च कल्पे तत्पुरुषेऽर्पयत् ।
वामनं दशसाहस्रं धौमकल्पे हरे कथाम् ॥१८
दद्याच्छरदि विषुवे धर्मार्थादिनिबोधनम् ।
कूर्म चाष्टसहस्रं च पूर्मोक्तं च रसातले ॥१९

इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन दद्यात्तद्धेमकूर्मवत् ।
त्रयोदश सहस्राणि मात्स्य कल्पादितोऽब्रवीत् ।।२०
मत्स्यो हि मनवे दद्याद्विषुवे हेममत्स्यवत् ।
गारुड चाष्टसाहस्रं विष्णूक्तं तार्क्ष्यकल्पके ।।२१
विश्वाण्डाद्गरुडोत्पत्ति तद्दद्याद्धेमहंसवत् ।
ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् यत् ।।२२
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्ड तद्द्विजेऽर्पयेत् ।
भारते पर्वसमाप्तौ वस्त्रगन्धस्रगादिभि- ।।२३
वाचक पूजयेदादौ भोजयेत्पायसैर्द्विजान् ।
गोभूग्रामसुवर्णादि दद्यात्पर्वणि पर्वणि ।।२४

सुवर्ण के सहित गारुड पुराण को चैत्री पूर्णिमा में दान करने से वैष्णव पद की प्राप्ति होती है । स्कन्द के द्वारा कहा हुआ स्कन्द पुराण बहुत बड़ा है और इसकी संख्या चौरासी सहस्र है ।।१७।। सधर्मो का अधिकार करके तत्पुरुष कल्प मे इसका दान करना चाहिए । वामन पुराण की संख्या दश हजार है । यह धौम कल्प मे भगवान् हरि की कथा है । इसको जो कि धर्मार्थ आदि का ज्ञान कराने वाला है, शरत्काल मे विषुव मे देना चाहिए अर्थात् इसको लिखकर दान करे । कूर्म पुराण की संख्या आठ सहस्र ही है और इसको रसातल मे कूर्म भगवान् ने कहा है ।।१८।।१९।। इन्द्रद्युम्न के प्रसङ्ग से इसे कहा गया है ।। हेम के कूर्म से युक्त इसका दान करना चाहिए । मत्स्य पुराण कल्पादि से तेरह सहस्र की संख्या वाला कहा है ।।२०।। इसे मत्स्य भगवान् ने मनु के लिये कहा है । हेम के मत्स्य के साथ विषुव मे इसका दान करना चाहिए । तार्क्ष कल्प मे भगवान् विष्णु ने गारुड पुराण कहा है । इसकी संख्या आठ सहस्र होती है ।।२१।। विश्वाण्ड से गरुड की उत्पत्ति है । इसे हेम के निर्मित हंस के सहित दान मे देना चाहिये । ब्रह्माजी ने ब्रह्माण्ड के माहात्म्य का अधिकार करके इसे बोला था ।।२२।। यह ब्रह्माण्ड पुराण बारह सहस्र की संख्या वाला है । इस ब्रह्माण्ड को ब्राह्मण को दान मे देना चाहिए । भारत में पर्व की समाप्ति पर वस्त्र गन्ध आदि से आदि मे बाँचने वाले का पूजन करे

और पायस (खीर) से ब्राह्मणों को भोजन करावे। पर्व-पर्व पर उनके समाप्ति होने पर गौ, भूमि और सुवर्ण आदि का दान देना चाहिए ॥२३।२४॥

समाप्ते भारते विप्र संहितापुस्तकं यजेत्।
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्रादिनाऽऽवृतम् ॥२५
नरनारायणौ पूज्यौ पुस्तकं कुसुमादिभिः।
गोन्नभूहेम दत्त्वाऽथ भोजयित्वा क्षमापयेत् ॥२६
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च।
मासकौ द्वौ त्रयश्चैव मासे मासे प्रदापयेत् ॥२७
अयनादौ श्रावकस्य दानमादौ विधीयते।
श्रोतृभिः सकलैः कार्यं श्रावके पूजनं द्विज ॥२८
इतिहासपुराणानां पुस्तकानि प्रयच्छति।
पूजयित्वाऽऽयुरारोग्यं स्वर्गमोक्षमवाप्नुयात् ॥२९

जब सम्पूर्ण महाभारत की कथा समाप्त हो जावे तो उस भारत के वाचक ब्राह्मण का और संहिता पुस्तक की पूजा सविधि करे। किसी परम शुभ स्थान पर निवेशित करके रेशमी वस्त्र आदि से उस आवृत करे अर्थात् ढक देवे। पुष्प आदि से पुस्तक और नर-नारायण का पूजन करे। गौ, भूमि, अन्न और सुवर्ण आदि देकर भोजन करावे तथा क्षमा की याचना करे ॥२५॥ ॥२६॥ इस समय महादान देने चाहिए जैसे कामनी अनेक प्रकार के रत्नादि का देवे। दो और तीन मास तक प्रत्येक मास में दान देना चाहिए ॥२७॥ जो श्रावक हैं उनका अयन के आदि में पहिले दान देने का विधान करे। हे द्विज! समस्त श्रोताओं को आदि में श्रावक (सुनाने वाले) का पूजन करना चाहिए ॥२८॥ जो इतिहास पुराणों की पुस्तकों का दान करता है और पूजा करता है वह आयु आरोग्य, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करता है ॥२९॥

११७—सूर्यवंशकीर्तनम्

सूर्यवंशं सोमवंशं राज्ञां वंशं वदामि ते।
हरेर्ब्रह्मा पद्मगोऽभून्मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ॥१

मरीचेः कश्यपस्तस्माद्विवस्वास्तस्य प०
संज्ञा राज्ञी प्रभा तिस्रो राज्ञी रैवतपु
रैवत सुषुवे पुत्र प्रभात च प्रभा रवे
त्वाष्ट्री संज्ञा मनु पुत्र यमलौ यमुन.
छाया संज्ञा च सावर्णि मनु वैवस्वत सुतम् ।
शनि च तपती विष्टि संज्ञाया चाश्विनौ पुन ॥४
मनार्वैवस्वतस्याऽऽसन्पुत्रा वै न च तत्समा ।
इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्ट शर्यातिरेव च ॥५
नरिष्यन्तस्तथा प्राशुर्नाभागाद्यष्ट सत्तमा. ।
करूषश्च पृषध्रश्च अयोध्याया महाबला ॥६
कन्येला च मनोरासीद्बुधात्तस्या पुरूरवा·
पुरूरवसमुत्पाद्य सेला सुद्यु म्नतां गता ॥७
सुद्यम्नादुत्कलगयौ विनताश्वस्त्रयो नृपा. ।
उत्कलस्योत्कल राष्ट्र विनताश्वस्य पश्चिमा ॥८

इस अध्याय मे सूर्य वश का वर्णन किया जाता है। श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं राजाओ के सूर्य वश और सोम वश को क्रम म बतता हूँ। ब्रह्मा हरि के नाभिगत कमल से उत्पन्न हुए थे। फिर उन ब्रह्माजी के पुत्र मरीचि हुए ॥ १ ॥ मरीचि के पुत्र कश्यप उत्पन्न हुए। कश्यप के पुत्र विवस्वान् (सूर्य) हुए। उनकी पत्नी तीन थी जिनके नाम संज्ञा, राज्ञी और प्रभा ये थे ॥ २ ॥ राज्ञी का रैवत पुत्र था, प्रभा का पुत्र प्रभात था और त्वाष्ट्री संज्ञा के मनु पुत्र तथा यमुना और यम ये दोनों यमल (जोड़ला) हुए थे। ॥ ३ ॥ छाया और संज्ञा ने सावर्णि वैवस्वत मनु पुत्र को और शनि को उत्पन्न किया था। संज्ञा मे तपती विष्टि और अश्विनी कुमारो की उत्पत्ति हुई थी। ॥ ४ ॥ वैवस्वत मनु के पुत्र तो हुए किन्तु उसके समान नहीं हुए थे। इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्राशु इस प्रकार से नाभागादि आठ श्रेष्ठ हुए थे। करूष और पृषध्र महाबल वाले अयोध्या म हुए थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ मनु की कन्या इला नाम वाली हुई थी। उस इला मे बुध से पुरूरवा हुए। पुरूरवा को

और पायस । उत्पन्न करके फिर वह सुद्युम्न के पास चली गई थी । सुद्युम्न से समाधि होम्य और विनताश्व ये तीन राजा हुए थे । उत्कल का उत्कल (उड़ीसा) ही राष्ट्र था और विनताश्व का पश्चिम राष्ट्र हुआ था ॥ ७ ॥ ८ ॥

दिक्पूर्वा राजधर्मस्य गयस्य च गया पुरी ।
वसि (सि) ष्ठवाक्यात्सुद्युम्न प्रतिष्ठानमवाप ह ॥९
तत्पुरूरवसे प्रादात्सुद्युम्नो राज्यमाप तु ।
नरिष्यत शका पुत्रा नाभागस्य च वैष्णव ॥१०
अम्बरीष प्रजापालो धार्ष्टक धृष्टत, कुलम् ।
सुकन्यानतो शर्यातिर्देरोह्यानततो नृप ॥११
आनर्तविषयश्चाऽऽसीत्पुरी चाऽऽसीत्कुशस्थली ।
रेवस्य रैवत पुत्र ककुद्मी नाम धार्मिक ॥१२
ज्येष्ठ पुत्रशतस्याऽऽसीद्राज्य प्राप्य कुशस्थलीम् ।
स कन्यासहित श्रुत्वा गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥१३
मुहूर्तभूत देवस्य मर्त्ये बहुयुग गतम् ।
आजगाम जवेनाथ स्वा पुरी यादवैर्वृताम् ॥१४
कृता द्वारवती नाम बहुद्वारा मनोरमाम् ।
भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्ता वासुदेवपुरोगमैः ॥१५
रेवती बलदेवाय ददौ ज्ञात्वा ह्यनित्यताम् ।
तप सुमेरुशिखरे तप्त्वा विष्णवालय गत ॥१६

राजधर्म म श्रेष्ठ गय की राजधानी पूर्व दिशा मे गया थी । वसिष्ठ के वाक्य से सुद्युम्न ने प्रतिष्ठान को प्राप्त किया था ॥ ९ ॥ उस राज्य को सुद्युम्न ने प्राप्त करके पुरूरवा को दे दिया था । नरिष्यत के शक पुत्र हुए और नाभाग के वैष्णव हुए ॥ १० ॥ प्रजा के पालन करने वाला अम्बरीष राजा हुआ । धृष्ट से धार्ष्टक कुल हुआ था । शर्याति के सुकन्यानर्त्त हुए । आनर्त्त से रैव राजा हुआ । आनर्त्त ही विषय (देश) था और कुशस्थली इसकी पुरी थी । रेवका रैवत पुत्र ककुद्मी नाम वाला परम धार्मिक था ॥ ११ ॥ १२ ॥ सौ पुत्रों मे ज्येष्ठ ने कुशस्थली के राज्य को प्राप्त कर गान्धर्व को सुनकर कन्या के

सहित वह ब्रह्मा के समीप मे गया था । वहाँ देवताओं के एक मुहूर्त्त के समय मे मनुष्यों के बहुत से युग व्यतीत हो गये थे । इसके अनन्तर वह बड़ी तेजी से अपनी पुरी मे आया था जो कि उस समय यादवों के द्वारा घिरी हुई थी। ॥ १३ ॥ १४ ॥ वह पुरी बहुत से द्वारो वाली तथा अत्यन्त सुन्दर थी इस लिये उसका नाम उस समय द्वारवती (द्वारका) हो गया था । उस समय यह पुरी वासुदेव प्रधान जिनमें थे ऐसे भोज वृष्णि और अधक नामधारी यादवों के द्वारा रक्षित हो रही थी । उसने फिर अपनी पुरी का लम्बे समय मे रूपान्तर देखकर अनित्यता का ज्ञान प्राप्त किया और रेवती को बलदेव जी को देकर स्वय सुमेरु पर्वत पर तप करने चला गया तथा अन्त मे विष्णु लोक मे प्राप्त हो गया था ॥ १५ ॥ १६ ॥

नाभागस्य च पुत्री द्वौ वैश्यौ ब्राह्मणता गतौ ।
करूपस्य तु कारूपा क्षत्रिया युद्धदुर्मदा ॥१७
शूद्रत्व च पृषध्रोऽगाद्धिंसयित्वा गुरोश्च गाम् ।
मनुपुत्राद्वतेक्ष्वाकोर्विकुक्षिर्देवराड्भूत् ॥१८
विकुक्षेस्तु ककुत्स्थोऽभूत्तस्य पुत्र सुयोधन ।
तस्य पुत्र पृथुर्नाम विश्वगाश्च पृथो सुत ॥१९
आयुस्तस्य च पुत्रोऽभूद् वनाश्वस्तथा सुत ।
युवनाश्वाच्च श्रावन्त पूर्वे श्रावन्तिका पुरी ॥२०
श्रावन्ताद्वृहदश्वोऽभूत्कुवलाश्वस्ततो नृप ।
धुन्धुमारत्वमगम धुन्धोर्नाम्ना च वै पुरा ॥२१
धुन्धुमारात्त्रयो भूपा दृढाश्वो दण्ड एव च ।
कपिलोऽथ दृढाश्वात्तु हर्यश्वश्च प्रमोदक ॥२२
हर्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूत्सहताश्वो निकुम्भत ।
अकृशाश्वो रणाश्वश्च सहताश्वसुतावुभौ ॥२३
युवनाश्वो रणाश्वस्य माधाता युवनाश्वतः ।
माधातु पुरुकुत्सोऽभू मुचकुन्दो द्वितीयक ॥२४

नाभाग के दो पुत्र थे जो वैश्य जाति से ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे। करुष के कारुष हुए जो ऐसे क्षत्रिय थे कि युद्ध में दुर्मद रहते थे ॥ १७ ॥ पृषध्र ने अपने गुरु की गाय का हनन किया था और शूद्रत्व को प्राप्त हो गया था। मनु पुत्र से इक्ष्वाकु और उससे देवराट् विकुक्षि हुआ था ॥ १८ ॥ विकुक्षि से ककुत्स्थ हुआ और उसका पुत्र सुयोधन नाम धारी हुआ था। सुयोधन का पुत्र पृथु और उसका विश्वगाश्व पुत्र हुआ ॥ १९ ॥ उसका पुत्र आयु और आयु का पुत्र युवनाश्व हुआ। युवनाश्व का पुत्र श्रावस्त नाम वाला हुआ जिसकी पूर्व में श्रावस्तिका पुरी थी ॥ २० ॥ श्रावस्त से बृहदश्व हुआ और उससे फिर कुवलाश्व नामधारी राजा हुआ था। धुन्धु के नाम से पहिले धुन्धुमारत्व को प्राप्त हो गया था ॥ २१ ॥ धुन्धुमार से दृढाश्व, दण्ड और कपिल ये तीन नृप हुए थे। दृढाश्व से हर्यश्व और प्रमोदक हुए ॥ २२ ॥ हर्यश्व से निकुम्भ हुआ और निकुम्भ से संहताश्व हुआ। संहताश्व के अकृशाश्व और रणाश्व दो पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥ २३ ॥ रणाश्व के युवनाश्व पुत्र हुआ और युवनाश्व के मान्धाता उत्पन्न हुआ। मान्धाता के पुरुकुत्स हुआ जो द्वितीयक मुचकुन्द था ॥ २४ ।

पुरुकुत्सात्त्रसद्दस्युः सम्भूता नर्मदाभव ।
सम्भूतस्य सुधन्वाऽभूत्त्रिधन्वाऽस्य सुधन्वनः ॥२५
त्रिधन्वनस्तु तरुणस्तस्य सत्यव्रतः सुतः ।
सत्यव्रतात्सत्यरथो हरिश्चन्द्रश्च तत्सुतः ॥२६
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो रोहिताश्वाद्वृकोऽभवत् ।
वृकाद्बाहुश्च बाहोश्च सगरस्तस्य च प्रिया ॥२७
प्रभा षष्टिसहस्राणां सुतानां जननी ह्यभूत् ।
तुष्टादौर्वान्नृपादेका भानुमत्यसमञ्जसम् ॥२८
सुतं पृथिवीं दहन्तः कपिलेनाथ सागराः ।
असमञ्जसोंऽशुमाँश्च दिलीपोंऽशुमतोऽभवत् ॥२९
भगीरथो दिलीपात्तु येन गङ्गाऽवतारिता ।
भगीरथात्तु नाभागो नाभागादम्बरीषकः ॥३०

सिन्धुद्वीपोऽम्वरीपात्तु श्रुतायुस्तत्सुत स्मृत ।
श्रुतायोर्ऋतुपर्णोऽभूत्तस्य कल्मापपादक ॥३१
कल्मापाङ्घ्रे सर्वकर्मा ह्यनरण्यस्ततोऽभवत् ।
अनरण्यात्तु निघ्नोऽथ दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् ॥३२

पुरुकुत्स से नर्मदा से उत्पन्न होने वाला त्रसदस्यु सम्भूव हुआ। सम्भूत के सुधन्वा हुआ और सुधन्वा के त्रिधन्वा उत्पन्न हुआ था ॥ २५ ॥ त्रिधन्वा के तरुण पुत्र हुआ और उसके सत्यव्रत सुत हुआ था। सत्यव्रत का पुत्र सत्यरथ हुआ और उसका पुत्र हरिश्चन्द्र नृप हुआ था। राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व हुआ और रोहिताश्व से वृक नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई थी। वृक से बाहु और बाहु से सगर नामधारी राजा की उत्पत्ति हुई थी। सगर की प्रिया प्रभा नाम वाली साठ हजार पुत्रो को प्रसव करने वाली माता थी। तुण्डदीर्घ नृप से भानुमती ने एक ही असमञ्जस नामक पुत्र उत्पन्न किया था। ॥ १५ ॥ से ॥ २८ ॥ तक पृथिवी को खोदते हुए सगर के साठ हजार पुत्रो को कपिल ऋषि ने शाप देकर दग्ध कर दिया था। असमञ्जस का पुत्र अंशुमान् उत्पन्न हुआ और अंशुमान् का पुत्र दिलीप हुआ था ॥ २९ ॥ दिलीप से भगीरथ की उत्पत्ति हुई जिसने स्वर्ग से गङ्गा का अवतरण कराया था। भागीरथ से नाभाग हुआ और नाभाग का पुत्र अम्वरीप हुआ था ॥ ३० ॥ अम्वरीप से सिंधु द्वीप हुआ और उसका पुत्र श्रुतायु नाम वाला पैदा हुआ था। श्रुतायु का पुत्र ऋतुपर्ण हुआ और उसका पुत्र कल्मापपादक नाम वाला हुआ था ॥ ३१ ॥ कल्माप पाद का पुत्र सर्वकर्मा हुआ और उसका पुत्र अनरण्य नाम वाला उत्पन्न हुआ था। अनरण्य से निघ्न हुआ और उसका दिलीप हुआ था ॥ ३२ ॥

तस्य राज्ञो रघुर्जज्ञे तत्सुतोऽपि ह्यजोऽभवत् ।
तस्माद्दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥३३
नारायणात्मका सर्वे रामस्तस्याग्रजोऽभवत् ।
रावणान्तकरो राजा ह्ययोध्याया रघूत्तम ॥३४

वाल्मीकिर्यस्य चरित चक्रे तन्नारदश्रवात् ।
रामपुत्री कुशलवौ सीताया कुलवर्धनौ ॥३५
अतिथिश्च कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चाऽऽत्मज ।
निषधान्तु नलो जज्ञे नभोऽजायत वै नलात् ॥३६
नभस पुण्डरीकोऽभूत्सुधन्वा च ततोऽभवत् ।
सुधन्वनो देवानीको ह्यहीनाश्वश्च तत्सुत ॥३७
अहीनाश्वात्सहस्राश्वश्चन्द्रालोकस्ततोऽभवत् ।
चन्द्रावलाकतस्तारापीडाऽस्माच्चन्द्रपर्वत ॥३८
चन्द्रगिरेर्भानुरथ श्रुतायुस्तस्य चाऽऽत्मज ।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवा सूर्यवंशधरा स्मृता ॥३९

उस दिलीप राजा का पुत्र रघु नाम राजा उत्पन्न हुआ और उस रघु नामक राजा का पुत्र अज हुआ । उस अज का पुत्र दशरथ हुआ तथा दशरथ के चार पुत्र हुए थे ॥ ३३ ॥ ये चारो ही पुत्र नारायण के ही स्वरूप वाले थे । इन चारो मे सबसे बडे श्रीराम हुए थे । यह श्री राम ही रावण के हनन करने वाले थे और रघु के वंश मे अयोध्या के सर्वश्रेष्ठ राजा थे ॥ ३४ ॥ वाल्मीकि मुनि ने नारद से श्रवण करके उनके चरित को लिखा था । श्रीराम के दो पुत्र कुश और लव हुए थे । ये दोनो पुत्र सीता से उत्पन्न हुए थे जो कि कुल के बढाने वाले हुए थे ॥ ३५ ॥ कुश से अतिथि की उत्पत्ति हुई और उसका पुत्र निषध नाम वाला हुआ था । निषध से नल उत्पन्न हुआ और नल से नभ नामक राजा की उत्पत्ति हुई थी ॥ ३६ ॥ राजा नभ का पुत्र पुण्डरीक हुआ और पुण्डरीक से सुधन्वा नाम वाले पुत्र की उत्पत्ति हुई थी । सुधन्वा से देवानीक हुआ और उसका पुत्र अहीनाश्व हुआ था ॥ ३७ ॥ अहीनाश्व का पुत्र सहस्राश्व हुआ और उसका पुत्र चन्द्रालोक हुआ था । चन्द्रालोक का पुत्र तारापीड हुआ और तारापीड का पुत्र चन्द्रपर्वत हुआ था ॥ ३८ ॥ चन्द्रपर्वत का पुत्र भानुरथ हुआ उसका पुत्र श्रुतायु नामधारी हुआ था । ये सभी राजा इक्ष्वाकु राजा के वंश मे उत्पन्न होने वाले सूर्यवंश धारी कहे गये हैं । ॥ ३९ ॥

११३—सोमवंशवर्णनम्

सोमवंश प्रवक्ष्यामि पठित पापनाशनम् ।
विष्णुनाभ्यब्जजो ब्रह्मा ब्रह्मापुत्रोऽत्रिरत्रित. ॥१
सोमश्चक्रे राजसूय त्रैलोक्य दक्षिणा ददौ ।
समाप्तेऽवभृथे सोम तद्रूपालोकनेच्छव ॥२
कामबाणाभितप्ताङ्ग्यो नव देव्यः सिषेविरे ।
लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम् ॥३
द्युतिर्विभावसुं त्यक्त्वा पुष्टिर्धातारमव्ययम् ।
प्रभा प्रभाकर त्यक्त्वा हविष्मन्त कुहू स्वयम् ॥४
कीर्तिर्जयन्त भर्तारं वसुर्मारीचकश्यपम् ।
धृतिस्त्यक्त्वा पति नन्दी सोममेवाभजत्तदा ॥५
स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तदा ।
एव कृतापचारस्य तासा भर्तृगणस्तदा ॥६
न शशाकापचाराय शापै शस्त्रादिभि. पुन ।
सप्तलोकैकनाथत्वमवाप्तस्तपसा ह्युत ॥७
विबभ्राम मतिस्तस्य विनयादनयाहृता ।
बृहस्पते स वै भार्या तारा नाम यशस्विनीम् ॥८
जहार तरसा सोमो ह्यवमन्याङ्गिर सुतम् ।
ततस्तद्युद्धमभवत्प्रख्यात तारकामयम् ॥९
देवाना दानवाना च लोकक्षयकर महत् ।
ब्रह्मा निवार्योशनस तारामाङ्गिरसे ददौ ॥१०

श्री अग्निदेव ने कहा—अब मैं सोमवंश का वर्णन करता हूँ जिसके पढ़ने से समस्त पापों का नाश हो जाता है। भगवान् विष्णु की नाभि में उत्पन्न होने वाले कमल से ब्रह्माजी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा का पुत्र अत्रि हुआ और अत्रि से सोम उत्पन्न हुए। उस सोम ने राजसूय नामक यज्ञ किया था जिसमें तीनो लोकों को दक्षिणा मे दे दिया था। इस अवभृथ (यज्ञ) के

समाप्त हो जाने पर सोम के रूप को देखने की इच्छा वाली और काम के वाणों से अभि तप्त अङ्गों वाली नौ देवियों ने सोम की सेवा की थी। लक्ष्मी ने नारायण का त्याग कर दिया और सिनीवाली ने कर्दम को त्याग दिया था ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ ३ ॥ द्युति ने विभावसु को छोड दिया और पुष्टि ने अव्यय धाता का त्याग कर दिया था। प्रभा ने प्रभाकर को त्याग दिया तथा कुहू ने हविष्मान् को छोड दिया था ॥ ४ ॥ कीर्ति ने जयन्त का त्याग कर दिया तथा मरीचि के पुत्र भर्त्ता कश्यप का वसु ने छोड दिया था। धृति ने पति का त्याग कर दिया जो कि नन्दी उसका स्वामी था। उस समय इन सबने अपने स्वामियों का त्याग करके एक ही सोम का सेवन करना प्रारम्भ कर दिया था ॥ ५ ॥ सोम ने भी उन देवियों का स्वकीया पत्नी की भाँति उपभोग किया था। इस प्रकार से अपचार करने वाले को उन देवियों के भर्तृगण ने उस समय शशाङ्क (चन्द्र) के अपचार के लिये शाप और शस्त्रादि का उपयोग नहीं किया क्यों कि इसने सात लोकों का एक स्वामी होना तप के द्वारा ही प्राप्त किया था। ॥ ७ ॥ विभव से उसकी बुद्धि को नयहीन करके भ्रान्त कर दिया था। उसने सुरगुरु बृहस्पति की यशस्विनी भार्या तारा का वेगपूर्वक हरण किया था और अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति का अपमान किया। इसके पश्चात् तारकामय प्रख्यात युद्ध हुआ जो कि देव और दानवों का महान् लोक के क्षय करने वाला था। ब्रह्मा ने उशना को निवारण करके तारा को अङ्गिरस का दे दिया था ॥ ८ ॥ ॥ ६ ॥ १० ॥

सामन्त प्रसवा दृष्ट्वा गर्भं त्यजाब्रवीद्गुरुः ।
गर्भस्त्यक्तः प्रदीप्तोऽथ प्राहाहं सोमसम्भवः ॥११
एवं सोमाद्बुधः पुत्रः पुत्रस्तस्य पुरूरवा ।
स्वर्गं त्यक्त्वोर्वशी सा तं वरयामास चाप्सरा ॥१२
तया सहावसद्राजा दश वर्षाणि पञ्च च ।
पञ्च षट्सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ महामुने ॥१३
एकोऽग्निरभवत्पूर्वं तेन त्रेता प्रवर्तिता ।
पुरूरवा योगशीलो गान्धर्वलोकमीयिवान् ॥१४

आयुर्द्दृढायुरश्वायुर्धनायुर्धृतिमान्वसु ।
दिविजात. शतायुश्च सुषुवे चोर्वशी नृपात् ॥१५
आयुषो नहुष· पुत्रो वृद्धशर्मा रजिस्तथा ।
दम्भो विपाप्मा पञ्चाद्यं रजे· पुत्रशत ह्यभूत् ॥१६

उस तारा को गर्भवती देखकर बृहस्पति ने उससे कहा कि इस गर्भ का त्याग करदे। जब गर्भ का त्याग किया तो यह प्रदीप्त होता हुआ बोला मैं सोम से उत्पन्न होने वाला हूँ ॥ ११ ॥ इस तरह से सोम का पुत्र बुध हुआ था। उसका पुत्र फिर पुरूरवा हुआ। उर्वशी अप्सरा ने स्वर्ग का त्याग करके यहाँ आकर उसका वरण कर लिया था। उस उर्वशी अप्सरा के साथ उस राजा ने दश और पाँच वर्ष तक तथा पाँच षट्सत और आठ वर्ष तक उसका हे महामुने! उपभोग किया था ॥ १२ ॥ १३ ॥ पहिले एक अग्नि हुआ था उसने त्रेता को प्रवर्तित किया था। योग के शील वाले पुरूरवा गन्धर्व लोक में प्राप्त हुआ था ॥१४॥ उर्वशी ने राजा पुरूरवा से आयु, दृढायु, अश्वायु, धनायु, धृतिमान्, बसु, दिविजात और शतायु को प्रसूत किया था ॥१५॥ आयु का पुत्र राजा नहुष हुआ और वृद्धशर्मा, रजि दम्भ, विपाप्मा इस तरह पाँच पुत्र हुए थे। रजि के सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥१६॥

राजेया इति विख्याता विष्णुदत्तवरो रजि: ।
देवासुरे रणे दैत्यानवधीत्सुरयाचित ॥१७
शताऽश्वेन्द्राय पुत्रत्व दत्वा राज्य दिव गत ।
रजे पुत्रं हृत राज्य शक्रस्याथ सुदुर्मना: ॥१८
ग्रहशान्त्यादिविधिना गुरुरिन्द्राय तद्ददौ ।
मोहयित्वा रजिसुतानास्सते निजधर्मत ॥१९
नहुषस्य सुता सप्त यतिर्ययातिरुत्तम. ।
उद्भव: पञ्चकश्चैव शर्यातिमेघपालकौ ॥२०
यति. कुमारभावेऽपि विष्णु ध्यात्वा हरि गत ।
देवयानो शुक्रकन्या ययाते· पत्न्यभूत्तदा ॥२१

वृषपर्वजा शर्मिष्ठा ययातेः पञ्च तत्सुता. ।
यदुं च तर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥२२
द्रुह्यं चानुं च पुरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ।
यदुः पुरुश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ ॥२३

ये सब पुत्र राजेय, इस नाम से प्रख्यात हुए थे। रजि ने भगवान् विष्णु से वरदान प्राप्त किया था। जब देवासुर संग्राम हुआ था उसमें समस्त देवों ने इससे प्रार्थना की थी और इसने रण में दैत्यों का वध किया था ॥१७॥ दानवों को इन्द्र के लिये पुत्र के रूप में देकर और राज्य देकर वह दिवङ्गत हो गया था। रजि के पुत्रों के द्वारा इन्द्र के राज्य का हरण कर लिया गया था। इसके अनन्तर सुदुमना गुरु ने ग्रहशान्ति आदि की विधि से उसे इन्द्र के लिये दे दिया था। और निज धर्म से रजि के पुत्रों को मोहित कर दिया था ॥१८॥ ॥१९॥ राजा नहुष के सात पुत्र थे उनके नाम यति, ययाति, उत्तम, पञ्चक, शर्याति और मेघ पालक ये थे। यति कुमारावस्था में ही भगवान् विष्णु के ध्यान में रत होकर हरि की सन्निधि में चला गया था। शुक्राचार्य दैत्यगुरु की कन्या जो देवयानी थी वह राजा ययाति की पत्नी हुई थी ॥२०॥२१॥ वृषपर्वा और शर्मिष्ठा थी। उनके ययाति से पाँच पुत्र हुए थे। देवयानी ने यदु और तुर्वसु का जन्म दिया था। द्रुह्य, चानु और पुरु को शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ने उत्पन्न किया था। उनमें से यदु और पुरु ये दोनों वंशों के वर्धन करने वाले हुए थे ॥२२॥२३॥

११४—यदुवंशवर्णनम्

यदोरासन्पञ्च पुत्रा ज्येष्ठस्तेषु सहस्रजित् ।
नीलाञ्जिको रघुः क्रोष्टुः शतजिच्च सहस्रजित् ॥१
शतजिद्धैहयो रेणुहयो हय इति त्रय ।
धर्मनेत्रो हैहयस्य धर्मनेत्रस्य भहत ॥२
महिमा महतस्यासीन्महिम्नो भद्रसेनक ।
भद्रसेनाद्दुर्गमोऽभूद्दुर्गमात्कनकोऽभवत् ॥३

कनकात्कृतवीर्यस्तु कृताग्निः करवीरकः ।
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्तु सोऽर्जुन. ॥४
दत्तोऽर्जुनाय तपते सप्तद्वीपमहीशताम् ।
ददौ बाहुसहस्रं च ह्यजेयत्व रणे तथा ॥५
अधर्मे वर्तमानस्य विष्णुहस्तान्मृतिध्रुवा ।
दश यज्ञसहस्राणि सोऽर्जुन. कृतवान्नृप. ॥६
अनन्तद्रव्यता राष्ट्रे तस्य सस्मरणादभूत् ।
न नून कार्तवीर्यस्य गति यास्यन्ति वै नृपा ॥७

इस अध्याय मे यदु के वश का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—यदु के पाँच पुत्र हुए थे। उनमे जो सबसे बडा था उसका नाम सहस्रजित् था। अन्य चारो के नाम नीलाञ्जिक, रघु, क्रोष्टु और शतजित् ये थे ॥१॥ शतजित् के हैहय, रेणुहय और हय ये तीन पुत्र हुए थे। हैहय का पुत्र धर्मनेत्र उत्पन्न हुआ और धमनेत्र का पुत्र सहत नामधारी उत्पन्न हुआ था। ॥२॥ सहत का पुत्र महिमा और महिमा का पुत्र भद्रसेनक हुआ था। भद्रसेनक से दुर्गम नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई और दुर्गम का पुत्र कनक हुआ था ॥३॥ कनक से कृतवीर्य, कृताग्नि, करवीरक और चतुर्थ कृतौजा ये चार पुत्र उत्पन्न हुए थे। कृतवीर्य से वह अर्जुन उत्पन्न हुआ जिस अर्जुन को तप करते हुए सातो द्वीपो का स्वामी बना दिया गया था। एक सहस्र बाहु उसे दी और युद्ध मे अजेय होने का भी वरदान उसे दिया था ॥४।५॥ अधर्म मे वर्तमान होने वाले की मृत्यु विष्णु के हाथ से ही निश्चित है—यह भी कहा गया था। उस सहस्रार्जुन राजा ने दश सहस्र यज्ञ किये थे। ६॥ उस कार्त्तवीर्य राजा के राष्ट्र मे द्रव्य कभी नष्ट नही होता और उसके ना के स्मरण करने से यह प्रभाव होता था। अन्य कोई भी राजा कार्त्तवीर्य राजा की गति को नही प्राप्त होगे ॥७॥

यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च ।
कार्तवीर्यस्य च शत पुत्राणा पञ्च वै परम् ॥८
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टोक्त कृष्ण एव च ।

जयध्वजश्च नामाऽऽसीदावन्त्यो नृपतिर्महान् ॥६
जयध्वजात्तालजङ्घस्तालजङ्घात्ततः सुताः ।
हैहयानां कुलाः पञ्च भोजाश्चाऽऽवन्तयस्तथा ॥१०
वीतिहोत्राः स्वयं जाताः शौण्डिकेयास्तथैव च ।
वीतिहोत्रादनन्तोऽभूदनन्ताद्दुर्जयो नृपः ॥११
क्रोष्टोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातो हरिः स्वयम् ।
क्रोष्टास्तु वृजिनीवांश्च स्वाहाऽभूद्वृजिनीवतः ॥१२
स्वाहापुत्रो रुषद्गुश्च तस्य चित्ररथः सुतः ।
शशबिन्दुश्चित्ररथाच्चक्रवर्ती हरौ रतः ॥१३

यज्ञों के द्वारा तपों के द्वारा, विक्रम से और श्रुत से कार्त्तवीर्य के सौ पुत्र हुए थे, उनमें पाँच प्रधान थे। उन पाँचों के नाम शूरसेन, शूर, धृष्टोक्त, कृष्ण और जयध्वज ये थे। आवन्त्य एक महान् नृपति हुआ था ॥८॥९॥ जयध्वज से तालजङ्घ हुआ और तालजङ्घ के पुत्र हुए थे। उन हैहयों के पाँच कुल हुए थे जिनके नाम भोज, आवन्त्य, वीतिहोत्र, स्वयंजात और शौण्डिकेय थे। वीतिहोत्र से अनन्त हुआ और अनन्त से दुर्जय नृप उत्पन्न हुआ था ॥१०॥११॥ अब क्रोष्टु के वंश का वर्णन किया जाता है जिसमें हरि स्वयं उत्पन्न हुए थे। क्रोष्टु का पुत्र वृजिनीवान् हुआ और वृजिनीवान् का पुत्र स्वाहा हुआ था। स्वाहा का पुत्र रुषद्गु हुआ और उसका पुत्र चित्ररथ नामधारी उत्पन्न हुआ था। चित्ररथ का पुत्र शशबिन्दु हुआ जो चक्रवर्ती राजा था और हरि में रति रखने वाला था ॥१२॥१३॥

शशबिन्दोश्च पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ।
धीमतां चारुरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम् ॥१४
पृथुश्रवाः प्रधानोऽभूत्तस्य पुत्रः सुयज्ञकः ।
सुयज्ञस्यात्मजो धर्मस्तिस्त्रिशुग्रस्य सुतः ॥१५
तिनिश्चास्तु मरुताऽभूत्तस्मात्कं बलबर्हिषः ।
पञ्चाशद्वषकवचाद्रुक्मेषु पृथुरुक्मकः ॥१६
ह्वविज्यामध पापघ्ना ज्यामघ औशितोऽभवत् ।

शैव्यायां ज्यामघादासीद्विदर्भस्तस्य कौशिक ॥१७
लोमपादः क्रथः श्रेष्ठात्कृतिः स्याल्लोमपादतः ।
कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपा, स्मृता. ॥१८
क्रथाद्विदर्भपुत्राच्च कुन्ति कुन्तेस्तु धृष्टक ।
धृष्टकस्य धृतिस्तस्य उदर्काख्यो विदूरथ. ॥१९
दशार्हपुत्रो व्योमस्तु व्योमाज्जीमूत उच्यते ।
जीमूतपुत्रो विकलस्तस्य भीमरथ सुत ॥२०

शशविन्दु के सुन्दर स्वरूप वाले, बुद्धिमान् और अधिक धन और तेज वाले सौ पुत्रों के सौ ही पुत्र हुए थे उन सौ मे पृथुश्रवा प्रधान पुत्र था। उस पृथुश्रवा का पुत्र सुयज्ञक नाम वाला हुआ। सुयज्ञ का पुत्र उशमा और उसका पुत्र तितिक्षु नामधारी हुआ था। १४॥१५॥ तितिक्षु का सुत मरुत और उसका पुत्र कम्बल वर्हिष हुआ। पद्म शद्.श्कवच से रुक्मेषु. पृथुरुक्मक, हवि, ज्यामघ और पापघ्न हुए। ज्यामघ जीजित् हुआ था। शैव्या मे ज्यामघ से विदर्भ हुआ था और उसका कौशिक हुआ ॥१६॥१७॥ श्रेष्ठ से लोमपाद और क्रथ हुए। लोमपाद से कृति उत्पन्न हुआ। कौशिक पुत्र चिदि हुआ था। उस चिदि से चैद्य नृप कहे गये हैं ॥१८॥ क्रथ से विदर्भ पुत्र और कुन्ति हुए। कुन्ति का धृष्टक पुत्र हुआ। धृष्टक का धृति और उसका पुत्र उदर्क नाम वाला हुआ और विदूरथ हुआ था ॥१९॥ व्योम दशार्ह का पुत्र हुआ था तथा व्योम से जीमूत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। जीमूत का पुत्र विकल हुआ और विकल का पुत्र भीमरथ हुआ था ॥२०॥

भीमरथान्नवरथस्तस्मो दृढरथोऽभवत् ।
शकुन्तिश्च दृढरथाच्छकुन्तेश्च करम्भक ॥२१
करम्भाद्देवरातोऽभूद्देवक्षेत्रश्च तत्सुत ।
देवक्षेत्रान्मधुर्नाम मधोर्द्रवरसोऽभवत् ॥२२
द्रवरसात्पुरुहूतोऽभूज्जन्तुरासीत्तु तत्सुत. ।
गुणी तु यादवो राजा जन्तुपुत्रस्तु सात्वत ॥२३
सात्वताद्भजमानस्तु वृष्णिरन्धक एव च ।

देवावृधश्च चत्वारस्तेषां वंशास्तु विश्रुता ॥२४
भजमानस्य बाह्योऽभूद्वृष्टि कृमिर्निमिस्तथा ।
देवावृधाद्बभ्रुरासीत्तस्य श्लोकोऽत्र गीयते ॥२५
यथैव शृणुमो दूराद्गुणास्तद्वत्समन्तिकात् ।
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥२६
चत्वारश्च सुता बभ्रोर्वासुदेवपरा नृपाः ।
कुकुरो भजमानस्तु शिनिः कम्बलबर्हिषः ॥२७
कुकुरस्य सुतो धृष्णुर्धृष्णोस्तु तनयो धृतिः ।
धृतेः कपोतरोमाऽभूत्तस्य पुत्रस्तु तित्तिरिः ॥२८
तित्तिरेस्तु नरः पुत्रस्तस्य चाऽऽनकदुन्दभिः ।
पुनर्वसुस्तस्य पुत्र आहुकश्चाऽऽहुकीसुतः ॥२९
आहुकाद्देवको जज्ञे उग्रसेनस्ततोऽभवत् ।
देववानुपदेवश्च देवकस्य सुता स्मृता ॥३०

भीमरथ से नवरथ और उसका सुत दृढरथ उत्पन्न हुआ था। दृढरथ से शकुन्ति और इसका आत्मज करम्भक हुआ था ॥२१॥ करम्भक से देवरात पैदा हुआ और देवरात का सुत देवक्षेत्र नाम वाला हुआ। देवक्षेत्र से मधु नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ और मधु का द्रवरस पुत्र हुआ था ॥२२॥ द्रवरस का पुरुहूत हुआ और उसका पुत्र जन्तु हुआ था। यह गुणी यादव राजा था। जन्तु का पुत्र सात्वत हुआ ॥२३॥ सात्वत से भजमान, वृष्णि, अन्धक और देववृध ये चार उनके परम प्रसिद्ध वंश हुए थे ॥२४॥ भजमान का बाह्य, वृष्टि और कृमि तथा निमि हुए। देवावृध से बभ्रु हुआ जिसके यश का गान किया जाता है ॥२५॥ उसके गुणों को दूर से ही सुनते हैं। उसके पुत्र को समीप से देखते हैं कि देवावृध देवों के समान था और बभ्रु मनुष्यों में परम श्रेष्ठ था ॥२६॥ बभ्रु के चार पुत्र हुए थे जो वासुदेव परायण राजा थे। जिनके नाम कुकुर भजमान शिनि और कम्बल बर्हिष थे ॥२७॥ कुकुर का पुत्र धृष्णु था और उसका सुत धृति हुआ। धृति का कपोतरोमा हुआ और कपोतरोमा का पुत्र तित्तिरि हुआ था ॥२८॥ तित्तिरि का आत्मज नर और नर का पुत्र

आनकदुन्दभि हुआ था। उसका पुत्र पुनर्वसु उत्पन्न हुआ था और आहुक, आहुकी का पुत्र हुआ था ॥२९॥ आहुक से देवक ने जन्म ग्रहण किया था और देवक का पुत्र उग्रसेन हुआ था। उग्रसेन के अतिरिक्त देववान् और उपदेव भी उस देवक के पुत्र कहे गये है ॥३०॥

तेषा स्वसार: सप्ताऽऽसन्वसुदेवाय ता ददौ।
देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा ॥३१
श्रीदेवी सत्यदेवी च सरापी चेति सप्तमी।
नवोग्रसेनस्य सुता. कसस्तासा च पूर्वज. ॥३२
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्क: शङ्कुश्च भूमिप.।
सुतनू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टि सुमुष्टिक. ॥३३
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथमुख्यो विदूरथ।
राजाधिदेव शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ॥३४
राजाधिदेवपुत्रौ द्वौ शोणाश्व श्वेतवाहनः।
शोणाश्वस्य सुता पञ्च शमीशत्रुजिदादयः ॥३५
शमीपुत्र: प्रतिक्षेत्र प्रतिक्षेत्रस्य भोजक।
भोजस्य हृदिक पुत्रो हृदिकस्य दशाऽऽत्मजा ॥३६
कृतवर्मा शतधन्वा देवार्हो भीषणादय.।
देवार्हात्कम्बलबर्हिरसमौजास्ततोऽभवत् ॥३७
सुदंष्ट्रश्च सुवासश्च धृष्टोऽभदसमौजस.।
गान्धारी चैव माद्री च धृष्टभार्ये बभूवतु ॥३८
सुमित्रोऽभूच्च गान्धार्यां माद्री जज्ञे युधाजितम्।
अनमित्र शिनिर्धृष्टात्ततो वै देवमीढुप ॥३९
अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि प्रसेनक।
सत्राजित. प्रसेनोऽथ मणि सूर्यात्स्यमन्तकम् ॥४०
प्राधारण्ये चरन्त तु सिंहो हत्वाऽग्रहीन्मणिम्।
हतो जाम्बवता सिंहो जाम्बवान्हरिणाजित: ॥४१
तस्मान्मणि जाम्बवती प्राप्यागाद्द्वारका पुरीम्।

सत्राजिताय प्रददौ शतधन्वा जघान तम् ।।४२
हत्वा शतधनु कृष्णो मणिमादाय कीर्तिभाक् ।
बलयादवमुख्यानां क्रूराय मणिमार्पयत् ।।४३

उनकी सात भगिनी थी जो कि वसुदेव को दी गई थी। उन सातों बहिनों के नाम देवकी, श्रुतिदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी और सातवी सुरापी थी। उग्रसेन के पुत्र नौ हुए थे किन्तु उन सबसे बडा कंस नाम वाला था। ३१।।३२।। न्यग्रोध सुनामा, कङ्क, शङ्कु, भूमिप, सुतनु राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि और सुमुष्टिक ये उनके नाम है।।३३।। भजमान का पुत्र रथमुख्य विदूरथ था। राजाधिदेव और शूर विदूरथ के पुत्र हुए ।।३४।। राजाधिदेव के शोणाश्व और श्वेतवाहन नाम वाले दो पुत्र हुए थे। शोणाश्व के शमी शत्रुजित् आदि पाँच धात्मज उत्पन्न हुए थे ।।३५।। शमी का पुत्र प्रतिक्षेत्र और प्रतिक्षेत्र का सुत भोजक तथा भोजक का पुत्र हृदिक और हृदिक से पुत्र दश हुए थे। ।।३६।। जिनके नाम कृतवर्मा, शतधन्वा, देवार्ह और भीषण आदि थे। देवार्ह से कम्बलवर्हि हुआ और उसका पुत्र असमौजा हुआ था। असमौजा के सुदंष्ट्र, सुवास और धृष्ट पुत्र हुए थे। धृष्ट की गान्धारी और माद्री दो भार्या हुई थी।। ।।३७।३८।। गान्धारी का पुत्र सुमित्र और माद्री के युधाजित उत्पन्न हुआ था। धृष्ट से अनमित्र शिनि हुए और फिर उनसे स्वपथ पुत्र हुआ था ।।३९।। अनमित्र का पुत्र निघ्न उत्पन्न हुआ तथा निघ्न का पुत्र प्रसेनक हुआ था। सत्राजित् से प्रसन्न ने सूर्य से स्यमन्तक मणि को प्राप्त किया था। और जङ्गल में भ्रमण करने वाले उसका सिंह ने मारकर उस मणि को ग्रहण कर लिया था। जाम्बवान् के द्वारा उस सिंह का वध कर दिया गया और हरि के द्वारा जाम्बवान् को युद्ध में जीत लिया गया था ।।४०।४१।। उस जाम्बवान् से वह स्यमन्तक मणि और उसकी कन्या जाम्बवती को प्राप्त कर हरि द्वारकापुरी को चले गये थे। तब उसे सत्राजित् को दे दिया था। शतधन्वा ने उसको मार दिया था। शतधनु का वध करके श्रीकृष्ण ने मणि को प्राप्त किया और परम कीर्ति के पात्र हो गये थे। बलयादवों में मुख्यों के सामने वह स्यमन्तक मणि अक्रूर को दे दी गई थी। ४२।४३।।

मिथ्याभिशस्ति कृष्णस्य त्यक्त्वा स्वर्गी च सपठन् ।
सत्राजितो भङ्गकार सत्यभामा हरे प्रिया ॥४४
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे सत्यकस्तु शिने सुत ।
सत्यकात्सात्यकिर्जज्ञे युयुधानाद्धुनिर्बभूव ॥४५
धुनेर्युगधर पुत्र स्वाह्योऽभूत्स युधाजित ।
ऋषभक्षेमकौ तस्य ह्यृषभाच्च स्वफल्कक ॥४६
स्वफल्कपुत्र ह्यक्रूरा ह्यक्रूराच्च सुधन्वक ।
शूरात्तु वसुदेवाद्या पृथा पाण्डा प्रियाऽभवत् ॥४७
धर्माद्युधिष्ठिर पाण्डार्वायो कुन्त्या वृकोदर ।
इन्द्राद्धनजयो माद्र्या नकुल सहदवक ॥४८
वसुदेवाच्च रोहिण्या राम सारणदुर्गमौ ।
वसुदेवाच्च देवक्यामादौ जात सुषेणक ॥४९
कीर्तिमान्भद्रसेनश्च जारुख्यो विष्णुदासक ।
भद्रदेह कस एतान्षड्गर्भान्निजधान ह ॥५०
तता वलस्तत कृष्ण सुभद्रा भद्रभाषिणी ।
चारुदेष्णश्च शाम्बाद्या कृष्णाज्जाम्बवतीसुता ॥५१

श्रीकृष्ण का जो मिथ्या अपयश हुआ था उसका त्याग कर स्वर्गी सप-ठन करता हुआ सत्राजित भङ्गाकार ने सत्यभामा को हरि की प्रिया बना दी थी ॥४४॥ अनमित्र स शिनि उत्पन्न हुआ और शिनि का पुत्र सत्यक हुआ था। सत्यक स सात्यकि पैदा हुआ तथा युयुधान स धुनि की उत्पत्ति हुइ थी ॥४५॥ धुनि का पुत्र युगधर हुआ और स्वाहा का पुत्र युधाजित हुआ था। युधाजित के ऋषभ और क्षेमक हुए और ऋषभ से श्वफल्क की उत्पत्ति हुई थी ॥४६। श्वफल्क का पुत्र अक्रूर हुआ तथा अक्रूर से सुधन्वक पैदा हुआ था। शूर से वसुदेव आदि उत्पन्न हुए थे और पाण्डु की पत्नी पृथा हुई थी ॥४७॥ पाण्डु का पुत्र धर्म से युधिष्ठिर उत्पन्न हुआ—वायुदेव से कुन्ती में वृकोदर (भीम) उत्पन्न हुआ था। इन्द्रदेव से धनञ्जय (अर्जुन) उत्पन्न हुआ और माद्री नाम वाली भार्या म नकुल और सहदेव की उत्पत्ति हुई थी ॥४८॥ वसुदेव से

रोहिणी मे सारण दुर्गम राम अर्थात् बलराम उत्पन्न हुए। वसुदेव से देवकी मे आदि मे सुषेणक की उत्पत्ति हुई थी। कीर्तिमान्, भद्रसेन, जाख्य, विष्णुदासक —भद्रदेह य छ गर्भ हुए थे जिनको कि कंस ने उत्पन्न होते ही मार दिया था। ॥४६।५०॥ इनके बाद बलराम और इसके पश्चात् कृष्ण का अवतरण हुआ था। सुभद्रा भद्रभाषिणी बहिन उत्पन्न हुई थी। चारुदेष्ण और साम्बादि कृष्ण से जाम्बवती मे पुत्र उत्पन्न हुए थे ॥५१॥

११५ द्वादश सङ्ग्रामाः

कश्यपो वसुदेवोऽभूद्देवकी चादितिर्वरा ।
देवक्या वसुदेवात्तु कृष्णोऽभूत्तपसाऽन्वित ॥१
धर्मसंरक्षणार्थाय ह्यधर्महरणाय च ।
सुरादे पालनार्थं च दैत्यादेर्मथनाय च ॥२
रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती प्रिया ।
सत्यभामा हरे सेव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा ॥३
मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा ।
सुशीला च तथा माद्री कौशल्या विजया जया ॥४
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि तु षोडश ।
प्रद्युम्नाद्याश्च रुक्मिण्या भीमाद्या सत्यभामया ॥५
जाम्बवत्या च साम्बाद्या कृष्णस्यासंस्तथा परे ।
शत शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमत ॥६
अशीतिश्च सहस्राणि यादवा कृष्णरक्षिता ।
प्रद्युम्नस्य तु वैदर्भ्यामनिरुद्धो रणप्रिय ॥७
अनिरुद्धस्य वज्राद्या यादवा सुमहाबला ।
तिस्र कोटयो यादवानां षष्टिर्लक्षाणि दानवा ॥८

इस अध्याय मे बारह सग्रामों का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—कश्यप ऋषि तो वसुदेव हुए और श्रेष्ठ अदिति देवकी के रूप मे उत्पन्न

हुई थी। वसुदेव से देवकी में तप से युक्त श्रीकृष्ण हुए ॥१॥ धर्म के संरक्षण करने के लिए और अधर्म के नाश करने के वास्ते तथा सुरों के पालनार्थ एवं दुष्ट दैत्यों का मथन करने के लिये ही श्रीकृष्ण का अवतार हुआ था ॥२॥ रुक्मिणी, सत्यभामा, सत्या, नाग्नजिती ये सब श्रीकृष्ण की प्रिया थी। सत्यभामा हरि की सेवन के योग्य प्रिया थी तथा गान्धारी, लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, कालिन्दीदेवी, जाम्बवती, सुशीला, माद्री, कौशल्या, विजया, जया इस प्रकार से सोलह सहस्र देवियाँ थी जो कि श्रीकृष्ण की पत्नियाँ हुई थी। रुक्मिणी में प्रद्युम्न आदि और सत्यभामा के द्वारा भीम आदि तथा जाम्बवती में साम्ब आदि भगवान् धीमान् उन श्रीकृष्ण के शत सहस्र पुत्र हुए थे ॥३।४।५।६॥ अस्सी हजार यादव थे जो कि श्रीकृष्ण के द्वारा रक्षित रहते थे। प्रद्युम्न का पुत्र वैदर्भी में रण से प्यार करने वाला अनिरुद्ध उत्पन्न हुआ था ॥७॥ अनिरुद्ध के वज्रनाभ आदि सुमहान् बल पौरुष वाले यादव उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार से तीन करोड़ यादवों की संख्या थी और साठ लाख दानव हुए थे ॥८॥

मनुष्ये बाधका ये तु तन्नाशाय बभूव स ।
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं मनुष्यो जायते हरिः ॥६
देवासुराणां सङ्ग्रामा दायार्थं द्वादशाभवन् ।
प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयो वामनो रणः ॥१०
सङ्ग्रामस्त्वथ वाराहश्चतुर्थोऽमृतमन्थनः ।
तारकामयसङ्ग्रामः षष्ठो ह्याजीवको रणः ॥११
त्रैपुरश्चान्धकवधो नवमो वृत्रघातकः ।
जितो हालाहलश्चाथ घोरः कोलाहलो रणः ॥१२
हिरण्यकशिपोश्चोरो विदार्य च नखैः पुरा ।
नारसिंहो देवपालः प्रह्लादं कुलवान्नृपम् ॥१३
देवासुरे वामनश्च च्छलित्वा बलमूर्जितम् ।
महेन्द्राय ददौ राज्यं काश्यपोऽदितिसम्भवः ॥१४
वराहस्तु हिरण्याक्षं हत्वा देवानपालयत् ।
उज्जहार भुवं मग्नां देवदेवैरभिष्टुतः ॥१५

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् ।
सुरासुरैश्च मथितं देवेभ्यश्चामृतं ददौ ॥१६

जो मानवों को बाधा पहुँचाने वाले थे उनके समूल नाश करने के लिये ही श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए थे । धर्म की बिगड़ी हुई दशा को सुधार कर उसका व्यवस्थित स्वरूप देने के लिये ही भगवान् हरि मनुष्य के रूप में यहाँ संसार में आये थे ॥६॥ देवों और असुरों के दाय के लिये बारह महान् संग्राम हुए थे । उन बारह संग्रामों में सबसे प्रथम संग्राम नारसिंह था । दूसरा संग्राम वामन नाम वाला हुआ था ॥१०॥ इसके अनन्तर वाराह नामक संग्राम हुआ था । चौथा संग्राम समुद्र से अमृत के मंथन का हुआ था । छठा संग्राम तारकामय हुआ था । आजीवक संग्राम त्रैपुर (त्रिपुरासुर वध वाला) अन्धक वध वाला संग्राम और नवम वृत्रघातक संग्राम हुआ था । हालाहल जीता गया और अति घोर कोलाहल वाला रण हुआ था ॥११।१२॥ हिरण्यकशिपु के वक्षःस्थल का नखों से विदारण कर पहिले नारसिंह स्वरूपी देवों के पालक ने उनके पुत्र प्रह्लाद को राजा बनाया था ॥१३॥ देवासुर में वामन ने परम ऊर्जित (बली) बलि राजा को छलकर समस्त राज्य महेन्द्र को दे दिया था । काश्यप स्वरूप अदिति से उत्पन्न हुआ था ॥१४॥ वराह स्वरूप धारण करके हिरण्याक्ष का वध किया था और देवों का पालन किया था । समस्त देवदेवों के द्वारा जब स्तवन करके प्रार्थना की थी तो इस भग्न हुई भूमि का वराह रूप से उद्धार किया था ॥१५॥ मन्दर गिरि को मन्थान बनाकर और वासुकि नामक सर्प की नेती (मथन करने की डोरी) बना करके सुर और असुर दोनों के द्वारा मन्थन कराया गया था और जब समुद्र मन्थन करने पर उससे अमृत निकला तो उसे केवल देवों को ही पिला दिया था ॥१६॥

तारकामयसङ्ग्रामे तदा दनाद्य पालिता ।
निवार्य ट्र गुरुन्दवान्दानवान्सोमवंशजान् ॥१७
विश्वामित्रवसिष्ठात्रिरवयस्य रणे सुरान् ।
अपालयस्त निवार्य रागद्व पादिदानवान् ॥१८
पृथ्वीरथे ब्रह्मयन्तुरीशस्य शरणो हरिः ।

ददाह त्रिपुर देवपालको दैत्यमर्दन ॥१९
गौरी जिहीर्पुणा रुद्रमन्धकेनार्दित हरिः ।
अनुरक्तश्च रेवत्यां चक्रे ह्यान्धासुरार्दनम् ॥२०
अपां फेनमयो भूत्वा देवासुररणे हरन् :
वृत्रं देववर विष्णुर्देवधर्मानिपालयत् ॥२१
शाल्वादीन्दानवाञ्जित्वा हरि परशुरामक ।
अपालयत्सुरादींश्च दुष्टक्षत्रं निहत्य च ॥२२
हालाहलं विप दैत्यं निराकृत्य महेश्वरात् ।
भय निर्णाशयामास देवाना मधसूदन ॥२३
देवासुरे रणे यश्च दैत्य कोलाहलो जितः ।
पालिताश्च सुरा सर्वे विष्णुना धर्मपालनात् ॥२४
राजानो राजपुत्राश्च मुनयो देवता हरिः ।
यदुक्तं यच्च नैवोक्तमवतारा हरेरिमे ॥२५

तारकामय सग्राम मे उस समय देवो की रक्षा की गई थी । सोम वंश के करने वाले ने इन्द्र का निवारण करके गुरुओ, देवो और दानवो का युद्ध कराया था ॥१७॥ विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्रि और कवि (शुक्र) ने रण मे राग-द्वेषादि दानवो को छोडकर सुरो का पालन किया था ॥१८॥ पृथ्वीरथ मे वह्ना-यन्ता ईश का रक्षक हरि थे । देवताओ के पालन करने वाले और दैत्यो का मर्दन करने वाले ने त्रिपुर का दाह किया था ॥१९॥ गौरी के हरण करने की इच्छा वाले अन्धक ने रुद्र को अर्दित (पीडित) किया था । तब रेवती मे अनुरक्त हरि ने अन्धकासुर का मर्दन किया था ॥२०॥ देवासुर युद्ध मे जलो का फेनमय होकर विष्णु ने देववर वृत्र का हरण करते हुए देव धर्मो का पालन किया था ॥२१॥ परशुराम के स्वरूप वाले हरि ने शाल्वादि दानवो को जीतकर और दुष्ट प्रकृति वाले क्षत्रियो का निहनन करके सुर आदि का पालन किया था ॥२२॥ मधुसूदन भगवान् ने हालाहल विष का जो कि समुद्र के मन्थन करने मे समुद्र से निकला था महेश्वर महादेव के द्वारा निराकरण करके अर्थात् महादेव के कण्ठ मे उसे धारण कराकर देवताओ के भय का

विनाश किया था ।।२३।। देवासुर रण में जो कोलाहल दैत्य था उसको जीत लिया था और विष्णु ने धर्म के पालन से समस्त सुरों की रक्षा की थी ।।२४।। राजा लोग, राजपुत्र, मुनिगण और देवता हरि हैं। जो कुछ कह दिया गया है और जो नहीं भी कहा गया है ये सब हरि के ही अवतार है ।।२५।।

२१६ — सिद्धौषधानि

आयुर्वेद प्रवक्ष्यामि सुश्रुताय यमब्रवीत् ।
देवो धन्वन्तरि सार मृतसंजीवनीकरम् ।।१
आयुर्वेद मम ब्रूहि नराश्वेभरुगर्दनम् ।
सिद्धयोगान्सिद्धमन्त्रान्मृतसंजीवनीकरान् ।।२
रक्षन्बल हि ज्वरित लङ्घित योजयेद् भिषक् ।
सविश्व लाजमण्ड तु तृड्ज्वरान्त शृत जलम् ।।३
मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनादीच्यनागरै ।
षडहे च व्यतिक्रान्ते तिक्तक पाययेद् ध्रुवम् ।।४
स्नहयत्यक्तदोष तु ततश्च विरेचयेत् ।
जीर्णा षष्टिकनीवाररक्तशालिप्रमोदका ।।५
तद्विधास्ते ज्वरविष्टा यवाना विकृतिस्तथा ।
मुद्गा मसूराश्चणका कुलत्थाश्च मकुष्टका ।।६
आढक्यो लावकाद्याश्च कर्कोटकपटोलकम् ।
पटोल सफल निम्ब पर्पट दाडिम ज्वरे ।।७
अधोगे वमन शस्तमूर्ध्वगे च विरेचनम् ।
रक्तपित्ते तथा पान षडङ्ग शुण्ठिवर्जितम् ।।८

इस अध्याय में जो सिद्ध औषध है उनका वर्णन है। श्री अग्नि देव ने कहा—भगवान् धन्वन्तरि ने सार स्वरूप और मृत को संजीवन करने वाला आयुर्वेद सुश्रुत के लिये जो बोला था उसका अब मैं वर्णन करता हूँ। ।।१।।सुश्रुत ने धन्वन्तरि से कहा था कि मुझे आयुर्वेद शास्त्र के विषय में बतलाइये जो कि मनुष्य, अश्व और हाथियों के रोग का नाश करने वाला है

इस सम्बन्ध मे जो परम सिद्ध योग है तथा सिद्ध मन्त्र हैं और मृत को भी जीवित कर देने वाले हैं उन्हे बतलाइये ॥ २ ॥ इस प्रार्थना पर भगवान् धन्वन्तरि ने कहा कि वैद्य का कर्तव्य होता है कि बल की रक्षा करते हुए जिसको ज्वर हो उसको लघन कराने की योजना करनी चाहिए । ज्वरयुक्त पुरुष को सविश्व लाजाओ का मांड (खीलो का माड) और तृड् ज्वरान्त को शृत जल देना चाहिए ॥ ३ ॥ छैं दिन व्यतीत हो जाने पर मुस्त (मोथा) पर्पटक, उशीर (खस), चन्दन, उदीच्य और नागर इनसे तिक्त किया हुआ अर्थात् उक्त वस्तुओ का क्वाथ (काढा) विधिवत रूप से रोगी को पिलाना चाहिए ॥ ४ ॥ जब दोषो से रहित हो जावें तो उसको स्नेहन करावे और स्नेहन कराने के पश्चात् उसे विरेचन करावे अर्थात् दस्त कराने चाहिए । जीर्ण अर्थात् पुराने षष्ठिक (यव आदि), नीवार, रक्त शालि और प्रमोदक इस प्रकार के धान्य ज्वरों मे इष्ट हुआ करते हैं तथा मलो की विकृति भी अभीष्ट होती है । मुद्ग (मूग), मसूर, चणक, मकुष्टक कुलत्थ, आढ का (अरहर) लावकादि, कर्कोटक, पटोलक, पटोल, सफल निम्ब, पर्पट और दाडिम (अनार) ये ज्वर मे विधि पूर्वक औचित्य का विचार कर दिये जाते हैं यदि ज्वर अधोगामी हो वमन कराना और ऊर्ध्वगामी हो तो विरेचन कराना अच्छा लाभप्रद होता है । रक्त पित्त मे शुण्ठि (सोठ) से रहित षडङ्ग का पान कराना चाहिए ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ ८ ॥

सक्तुगोधूमलाजाश्च यवशालिमसूरका ।
सवष्टचणका मुद्गा भक्ष्या गोधूमका हिता ॥९

माषिता घृतदुग्धाभ्या क्षौद्र वृपरसो मधु ।
अतीसारे पुराणाना शालीना भक्षण हितम् ॥१०

अनभिष्यन्दि यच्चान्न लोध्रवल्कलसयुतम् ।
शस्त वर्जयेद्दत्त कार्यो गुल्मेषु सर्वदा ॥११

वाट्य क्षीरेण चाश्नीयाद्वास्तुक घृतसाधितम् ।
गोधूमशालयस्निक्ता हिता जठरिणामथ ॥१२

गोधूमशालयो मुद्गा मसूराः खदिरोऽभया ।
पञ्चकोल जाङ्गलाश्च निम्बधान्य पटोलकाः ॥१३

मातुलुङ्गरमाजाजिशुष्कमूलकसैन्धवा ।
कुष्ठिना च तथा शस्त पानार्थे खदिरोदकम् ॥१४

मसूरमुद्गौ यूपार्थे भोज्या जीर्णाश्च शालय- ।
निम्बपर्पटकौ शाकौ जागलाना तथा रस ॥१५

विडङ्ग मरिच मुस्त कुष्ठ लोध्र सुवर्चिका ।
मन शिला वचा लेप कुष्ठहा मूत्रपेषित ॥१६

सक्तु (सतुआ), गोधूम (गेहूँ) और लाज (खील), यव (जौ) शालि, मसूर, छिलके सहित चना, मुद्ग (मूग) इनका भक्षण करना चाहिए। गोधूम लाभप्रद हैं ॥ ९ ॥ ये उपर्युक्त वस्तुऐं घृत तथा दुग्ध से साधित होनी चाहिए। क्षौद्र, वृषरस और मधु देवे। अतिसार में (दस्त लग जाने की बीमारी में) पुरानी शालियों का खाना लाभदायक होता है ॥ १० ॥ अनभिष्यन्दि जो धान्य हो और लोध्र वल्कल से सयुत हो वह वातिक अर्थात् वायु बढाने वाला होता है उसको वर्जित रखना चाहिए। गुल्मों में सर्वथा यत्न करना चाहिए ॥ ११ ॥ क्षीर के साथ वास्तु का अशन करना चाहिए। घृत से साधित वास्तुक (बथुआ) खावे। जो जठर के रोग वाले लोग हैं उनको तिक्त गोधूम शालि हित कर होते हैं ॥ १२ ॥ गोधूम शाली, मूँग, मसूर खदिर, अभया, पञ्चकोल, जाङ्गल, निम्बधान्य, पटोलक, मातुलुङ्गरस अजाजि शुष्क मूलक और सैन्धव कुष्ठियो के लिये हितकर होते हैं और इनके पान करने के लिए खदिर का जल अधिक अच्छा होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥ दालो के लिए मसूर और मूग लेने चाहिए तथा पुराने शालि खाने के योग्य होते हैं। निम्ब और पर्पटक के शाक तथा जाङ्गलो का रस लाभदायक है ॥ १५ ॥ जो जो कुष्ठ का हनन करना चाहता है उस विडङ्ग, मिर्च (काली), मुस्त, कुष्ठ, लोध्र, सुवर्चिका, मैनसिल और वच इनको मूत्र मे पीस का लेप करना चाहिए ॥ १६ ॥

अपूपकुष्ठकुल्मापयवाद्या मेहिना हिता ।
यवान्नविकृतिर्मुद्गा कुलत्था जीर्णशालय ॥१७
तिक्तरूक्षाणि शाकानि तिक्तानि हरितानि च ।
तैलानि तिलशिग्रुकविभीतकेङ्गुदानि च ॥१८
मुद्गा सयवगोधूम धान्य वर्षस्थित च यत् ।
जाङ्गलस्य रस शस्ता भोजने राजयक्ष्मिणाम् ॥१९
कुलत्थमुद्गकोलाद्यै शुष्कमूलक जाङ्गलै ।
पूर्ववां विष्किरै सिद्ध दधिदाडिमसाधितै ॥२०
मातुलुङ्गरसक्षौद्रद्राक्षाव्योपादिसस्कृतै ।
यवगोधूमशाल्यन्नैर्भोजयेच्छ्वासकासिनम् ॥२१
दशमूलबलारास्नाकुलत्थैरुपसाधिता ।
पेया घृतरसक्वाथा श्वासहिक्कानिवारणा ॥२२
शुष्कमूलककौलत्थमूलजागलजै रसै ।
यवगोधूमशाल्यन्न जीर्ण सोशीरमाचरत् ॥२३
शोथवान्सगुडा पथ्या खादद्वा गुडनागरम् ।
तक्र च चित्रकश्चाभौ ग्रहणीरोगनाशनौ ॥२४

अपूप, कुष्ठ, कुल्माष और यव आदि वस्तुए खान म प्रमेह के रोगिया को लाभप्रद होती हैं । यवान्न की विकृति, मूग कुलत्थ और जीर्ण (पुरानी) शालि तथा तिक्त और रूक्ष एव हरे शाक और तिल, शिग्रुक, विभीतक और इङ्गु दी के तैल मूग और जौ क साथ गेहूँ धान्य जो एक वर्ष तक रक्खे हुए हो—जांगल का रस यह राजयक्ष्मा के रोगियो क भोजन मे प्रशस्त होते हैं । ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ जिनको श्वास और कास (खाँसी) का रोग हो उन मनुष्यो को कुलत्थ मुद्ग, कोल आदि शुष्क मूलक और जागल तथा पूर्व एव विष्किर सिद्ध करके और दही तथा अनार स साधित करके एव मातुलुङ्ग का रस क्षौद्र, द्राक्षा और व्योष आदि से सस्कार करके यव तथा गोधूम और शालि अन्नो स भोजन कराना चाहिए ॥ २० ॥ २१ ॥ दशमूल, बला, रास्ना और कुलत्थ और साधित घृत, रस और क्वाथ श्वास तथा हिक्का (हिचकी)

के निवारण करने वाले पीने चाहिए ॥ २२ ॥ शुष्क मूलक, कौलत्थ मूल और जङ्गल रसों से जीर्ण जौ, गेहूँ और शालि धान को उशीर के साथ खाना चाहिए ॥ २३ ॥ जिसको शोथ (सूजन) हो और उसे गुड के साथ पथ्या अथवा गुडनागर को खाना चाहिए। तक्र (मट्ठा) और चित्रक ये दोनों ग्रहणी रोग के नाशक होते हैं ॥ २४ ॥

पुराणयवगोधूमशालयो जाङ्गलो रसः ।
मुद्गामलकखर्जूरमृद्वीका बदराणि च ॥२५
मधु सर्पिः पयस्तक्रं निम्बपर्पटको वृषम् ।
तक्रारिष्टाश्च शस्यन्ते सततं वातरोगिणाम् ॥२६
हृद्रोगिणो विरेच्यास्तु पिप्पल्यो हिक्किना हिताः ।
तुषारनालसीधूनि युक्तानि शिशिराम्भसा ॥२७
मुस्ता सौवर्चलाऽजाजी मद्य शस्तं मदात्यये ।
सक्षौद्रपयसा लाक्षा पिबेच्च क्षतवान्नरः ॥२८
क्षये मांसरसाहारो वह्निसंरक्षणाज्जयेत् ।
शालयो भोजने रक्ता नीवारवलमादयः ॥२९
यवान्नविकृतिर्मांसं शाकं सौवर्चलं शटी ।
पथ्या तथैवार्शसां यन्मण्डस्तक्रं च वारिणा ॥३०
मुस्ताभ्यासस्तथा लेपश्चित्रकेण हरिद्रया ।
यवान्नविकृतिः शालिवास्तूकं ससुवर्चलम् ॥३१
अपूपवास्तु गोमूत्रा क्षौरेक्षुघृतसंयुता ।
मूत्रकृच्छ्रे च शस्ता स्युः पाने मण्डसुरादयः ॥३२
लाजा, सक्तुश्च मधुना क्षौद्रं पूर्व्यं मांसं परूषकम् ।
वार्ताकुलावशिखितित्तिरदधिघ्ना पानकानि च ॥३३
कारव्यं तोमशाखमी केवलोष्णे घृतेऽपि वा ।
तृष्णाघ्ने मुस्तगुडयोर्गुटिका वा मुखे धृता ॥३४

जो मानव वात के रोगी होवें हैं उनके लिये पुराने जौ, गेहूँ, शाली, जाङ्गल रस, मूंग, आंवला, खजूर, मृद्वीका, बेर, मधु घृत, दूध, मट्ठा, निम्ब,

पर्पटक, वृष और तक्रारिष्ट ये सदा हितकारी होते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥ जो हृदय के रोगी होते हैं उन्हें विरेचन देना चाहिए। जो हिक्का (हिचकी) के रोग वाले है उनको पीपल हितप्रद होती हैं। जिन्हे मदात्यय का रोग हो उनके लिये तक्रार नाल सीधु जो कि ठडे पानी से युक्त हो तथा मुस्ता, सौवर्चला, अजाजी और मद्य प्रशस्त होते है अर्थात् लाभप्रद कहे गये हैं। जो क्षतो वाला मानव हो उसे क्षौद्र के सहित पय से लाक्षा का पान करना चाहिए ॥ २७ ॥ २८ ॥ मासरस का आहार करने वाला वह्नि के संरक्षण से क्षय रोग पर जय प्राप्त किया करना है। भोजन मे रक्त शाली, नीवार कलम आदि, यवान्न की विकृति, माष, शाक, सौवर्चल, शटी, जल के सहित तक्र और मण्ड ये वस्तुऐ अर्श (बवासीर) के रोगियो को पथ्य होती हैं ॥२९॥३०॥ मूत्र कृच्छ्र क रोग मे मुस्नाभ्यास और चित्रक का हल्दी के साथ लेप, यवान्न विकृतशाली, वास्तूक (बथुमा) सुवर्चल के साथ, त्रपुष्टक्षार और गेहूँ जो क्षीर, ईख और घृत से सयुत ये खाने मे लाभप्रद होने है तथा पान मे मांड और सुरा आदि प्रशस्त कहे गये हैं। ३१ ॥ ३२ ॥ जिसको छर्दि का रोग हो उसके इसके नष्ट करने के लिये लाजा (खील) तथा सक्तु (सतुआ) क्षौद्र, धून्य माम, पक्ष्पक, वार्त्ता कुलावशिखी और पानक लाभप्रद होते है। ।३३। तृष्णा का रोग हो तो शाली अन्न और केवल उष्ण पानी और पय अथवा घृत हो उसमे देना चाहिए इससे सतृष्णा के राग का नाश होता है। अथवा मुस्त और गुड की गुटिका बना कर उसे मुख मे रखले और चूमता रहे तो भी तृष्णा की शान्ति हो जाती है ॥ ३४ ॥

यवान्नविकृति यूप शुष्क वलकर तथा।
शाक पटोलवेत्राग्रमुरुस्तम्भविनाशनम् ॥३५
मुद्गाढकमसूराणा सतिलंर्जाङ्गलै रसै।
ससैन्धवघृतद्राक्षामुण्ठ्यामल कजोलजैं ॥३६
यूपं पुराणगोधूमयवशाल्यन्नमभ्यसेत्।
विसर्पी ससिताक्षौद्रमृद्वीकादाडिमोदकम् ॥३७

रक्तपष्टिकगोधूमयवमुद्गादिक लघु ।
कावमाची च वेत्राग वास्तुक च सुवर्चला ॥३८
वातशोणितनाशाय तोय शस्त सित मधु ।
नासारोगेषु च हित घृत दूर्वाप्रसाधितम् ॥३६
भृङ्गराजरसे सिद्ध तैल धात्रीरसेऽपि वा ।
नस्य सर्वामयध्विष्ट मूधजन्तूद्भवेषु च ॥४०
शीततोयान्नपान च तिलाना विप्र भक्षणम् ।
द्विजदार्ढ्यकर प्रोक्त तथा तुष्टिकर परम् ॥४१
गण्डूष तिलतैलेन द्विजदार्ढ्यकर परम् ।
विडङ्गचूर्ण गोमूत्र सर्वत्र कृमिनाशने ॥४२
धात्रीफलान्यथाऽऽज्य च शिरोलेपनमुत्तमम् ।
शिरोरोगविनाशाय स्निग्धमुष्ण च भोजनम् ॥४३
तैल वा वस्तमूत्र च कर्णपूरणमुत्तमम् ।
वर्णशूलविनाशाय सर्वशुक्तानि वा द्विज ॥४४

यदि उरुस्तम्भ का रोग हो तो उसका विनाश यवाग्न को विकृति, यूप, शुष्क लकज, शाक, पटोल और बत्र का अन्न लेने से हो जाता है ॥ ३५ ॥ मूग, अरहर, मसूर व तिलो के सहित जांगल रस वाले, सेंधव से युक्त घृत, द्राक्षा सुठि (सोठ), आमलक (आँवला) और कतोल से उत्पन्न होने वाले यूषो से पुराने गहूँ यव और शाली क अन्न का अभ्यास करना चाहिए। जो विसर्प रोग वाला हो उसे मिश्र क साथ क्षौद्र, मृद्वीका और अनार का जल लेना चाहिए ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ वात शोणित रोग के नाश के लिये रक्त पष्टिक, गोधूम यव और मुद्ग (मूग) आदि लघु आहार तथा काकमाची, वेत्राग्र, वास्तुक और सुवचला का प्रयोग करना चाहिए। सित और मधु तोय (पानी) प्रशस्त होता है। दूर्वा (दूब) स प्रसाधित (बनाया हुआ) घृत नासा क रोगो म लाभप्रद होता है ॥ ३८ ॥ ३६ ॥ भृङ्गराज (भंगरा) के रस मे अथवा धात्री क रस म सिद्ध किया हुआ तैल भी लाभप्रद होता है। मूर्धजन्तूद्भव सम त रोगो म नस्य लाभ देने वाला होता है ॥ ४० ॥ शीतल जल और

जल का पान तथा हे विप्र। तिलो का भक्षण दांतो के मजबूत करने वाला कहा गया है ॥ ४१ ॥ तिल के तैल से कुल्ली करना दांतो के मजबूत करने मे परम श्रेष्ठ कहा गया है। वायविडङ्ग का चूर्ण और गोमूत्र सभी जगह के कृमियो के नाश करने वाले हैं ॥ ४२ ॥ शिरो रोग के विनाश करने के लिये धात्री (आंवला) के फल और घृत का लेपन उत्तम होता है। स्निग्ध (चिक्कणता से युक्त) और उष्ण भोजन होना चाहिए ॥ ४३ ॥ तैल अथवा वस्तमूत्र कानो मे डालने के लिये परम उत्तम होता है। हे द्विज! सर्व शुक्त कर्ण शूल के विनाश के लिये होते हैं ॥ ४४ ॥

गिरिमृच्चन्दन लाक्षा मालतीकलिका तथा।
सयोज्य या कृता वर्ति क्षतश्विनहरी तु सा ॥४५
व्योप त्रिफलया युक्त तुत्थक च तथा जलम्।
सर्वाक्षिरोगशमन तथा चैव रसाञ्जनम् ॥४६
त्याज्यभृष्ट शिलापिष्ट लोध्रकाञ्जिकसैन्धवै।
आश्च्योतनविनाशाय सर्वनेत्रामये हितम् ॥४७
गिरिमृच्चन्दनैर्लेपो वहिर्नेत्रस्य शस्यते।
नेत्रामयविघातार्थं त्रिफला शीलयेत्सदा ॥४८
रात्रौ तु मधुसर्पिर्भ्या दीर्घमायुर्जिजीविषु।
शतावरीरसे सिद्धौ वृष्यौ क्षीरघृतौ स्मृतौ ॥४९
कलविङ्कानि मापाश्च वृष्यौ क्षीरघृतौ तथा।
आयुष्या त्रिफला ज्ञेया पूर्ववन्मधुकान्विता ॥५०
मधूकादिरसोपेता वलीपलितनाशिनी।
वचासिद्धघृत विप्र भूतदोषविनाशनम् ॥५१
कव्य बुद्धिप्रद चैव तथा सर्वार्थसाधनम्।
बलाकल्ककषायेण सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥५२
रास्नासहचरैर्वाऽपि तैल वातविकारिणाम्।
अनभिष्यन्दि यच्चान्न तद्व्रणेषु प्रशस्यते ॥५३

सक्तु पिण्डी तथैवाऽऽम्ला पाचनाय प्रशस्यते ।
पक्वस्य च तथा भेदे निम्बचूर्णं च रोपणे ॥५४

पर्वत की मृत्तिका, चन्दन, लाक्षा और मालती के पुष्प की कली इन सबको संयुक्त करके जो वर्ति बनाई जाती है वह क्षत और क्रिमि के हरण करने वाली होती है ॥ ४५ ॥ त्रिफला से युक्त तुत्थ (तूतिया) का ज्योष तथा जल समस्त प्रकार के नेत्रों के रोगों का शमन करने वाला होता है। तथा रसाञ्जन, रसाञ्जन,भृङ्ग और शिलापिष्ट लोध, काँजी और सैन्धव के द्वारा आश्च्यातन समस्त नेत्रों के द्वारा जो नेत्रों के बाहिर चारों ओर लेप होता है वह बहुत ही अच्छा है यदि नेत्रों के रोगों का निघात करना अभीष्ट है तो सदा त्रिफला का प्रयोग करना चाहिए ॥ ४८ ॥ (रात्रि में मधु और घृत के साथ सेवन करने से दीर्घ आयु तक जीवन रहता है। शतावरी के रस में सिद्ध क्षीर और घृत वृष्य कहे गये हैं। कलविङ्क और माष (उर्द) क्षीर और घृत में सिद्ध वृष्य होते हैं। (घृत की भाँति मधु (शहद) से युक्त त्रिफला आयु के बढाने वाली होती है)॥ ५० ॥(मधुर आदि के रस से युक्त त्रिफला वली और पलित (बालों का सफेद हो जाना) का नाश करने वाली होती है जो शरीर में झुर्रियाँ हो जाती हैं वे वली कही जाती हैं) वचा (वच) के द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत हे विप्र ! भूतों के दोषों को मिटा देने वाला होता है ॥ ५१ ॥ कथ्य बुद्धि का प्रदान करने वाला तथा समस्त अर्थों का साधन करने वाला है। बला के कल्क (चूर्ण) क्वाथ में जो सिद्ध किया जाता है वह अप्सङ्कल के लिए बहुत ही लाभप्रद होता है ॥ ५२ ॥ रास्ना सहचरी के द्वारा जो तैल बनाया जाता है वह वात के विकार वाले रोगियों को लाभदायक हुआ करता है। जो घृत अभिष्यन्दि नहीं है वह ही व्रण रोगों में लाभप्रद कहे जाते हैं। ॥ ५३ ॥ सक्तु पिण्डी तथा अम्ल (खट्टे) पाचन क्रिया करने में प्रशस्त होते हैं। और पक्व के भेदन करने में प्रशस्त है। रोपण में नीम का चूर्ण लाभदायक होता है ॥ ५४ ॥

तथा मृत्युपचारश्च बलिकर्म विशेषत ।
सूतिका च तथा रक्षा प्राणिना तु सदा हिता ॥५५

भक्षणं निम्बपत्राणां सर्पदष्टस्य भेषजम् ।
तालनिम्बदल वेश्य जीर्णं तैलं यवा घृतम् ॥५६
धूपो वृश्चिकदष्टस्य शिखिपत्रघृतेन वा ।
अर्कक्षीरेण सपिष्ट लेपो बीज पलाशजम् ॥५७
वृश्चिकार्तस्य कृष्णा वा शिवा च फलसयुता ।
अर्कक्षीर तिल तैल पलल च गुडम् समम् ॥५८
पानाज्जयति दुर्वार श्वविष शीघ्रमेव च ।
पीत्वा मूल त्रिवृत्तुल्य तण्डुलीयस्य सर्पिषा ॥५६
सर्पकीटविषाण्याशु जयत्यतिबलान्यपि ।
चन्दन पद्मक कुष्ठ लताम्बूशीरपाटला. ॥६०
निर्गुण्डी सारिवा सेलुर्लु ताविषहरोऽगद ।
शिराविरेचन शस्त गुडनागरक द्विज ॥६१
स्नेहपाने तथा वस्तौ तैल घृतमनुत्तमम् ।
स्वेदनीय परो वन्हि शीताम्भ स्तम्भन परम् ॥६२
त्रिवृद्धि रेचन श्रेष्ठा वमने मदन तथा ।
वस्तिविरेको वमन तैल सर्पिस्तथा मधु ॥६३

इसी प्रकार से सूची का (इन्जेक्शन) उपचार भी होना है और विशेष करके बलि कम होता है एव सूतिका भी होती है। कुछ भी करना पड़े किन्तु सदा प्राणियों की रक्षा करना हितकर होता है ॥ ५५ ॥ जिस सर्प ने काट खाया हो उसे नीम के पत्तों का खाना बहुत हितकर होता है। ताल निम्बदल पुराना तेल और ताजा घृत श्रेय होना है ॥ ५६ ॥(बीछू के द्वारा काटे हुए के लिये धूप है जो शिखि पत्र घृत हो अथवा आक के दूध के साथ पिसे हुए ढाक के बीज हो। काल बीछू के दशन का पीडित हो तो भी फल सयुत कल्याण कारिणी होती है) (आक का दूध तिल तेल, पलल और गुड ये सम भाग लेकर खावे दुर्वार भी कुत्ते का विष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। अर्थात् कुत्ते के विष पर विजय प्राप्त हो जाती है। समान तण्डुलीय त्रिवृत् के मूल को घृत के साथ पीकर सर्प कीट के विषों को, चाहे वह कितना ही सबल

वयो न हो शीघ्र नष्ट कर देता है। चन्दन, पद्मक, कुष्ठ और लताम्बु, उशीर तथा पाटल, निर्गुण्डी, सारिवा, और सेलू ये वस्तुऐं लूता के विष से होने वाले रोग को नष्ट कर देती हैं। हे द्विज ! गुड और नागरक शिरो विरेचन में प्रशस्त कहा गया है। वस्ति कर्म में जो स्नेह पान होता है उसमें तैल उत्तम है घृत उत्तम नहीं होता है। पर वह्नि का स्वेदन करना चाहिए। शीत जल से स्तम्भन पर होता है। रेचन में त्रिवृत् श्रेष्ठ होता है, वमन में मदन है। वस्ति, विरेक वमन तैल, घृत और मधु वात, पित्त और बलासाओं की क्रम से परम औषध है ॥ ५७ से ६३ तक ॥

११७—सर्वरोगहराण्यौषधानि

शारीरमानसाग्रन्तुसहजा व्याधयो मता ।
शारीरा ज्वरकुष्ठाद्या क्रोधाद्या मानसा मता ॥१
आगन्तवो विघातोत्था सहजा क्षुज्जरादय ।
शारीरागन्तुनाशाय सूर्यवारे घृत गुडम् ॥२
लवण सहिरण्य च विप्रायाऽर्च्य समर्पयेत् ।
चन्द्रे चाभ्यङ्गदो विप्रे सर्वरोगै प्रमुच्यते ॥३
तैल शनैश्चरे दद्यादाश्विने गोरसान्नद ।
घृतेन पयसा लिङ्ग सस्नाप्य स्याद्रुजोज्झित. ॥४
गायत्र्या हावयेद्वह्नौ दूर्वा त्रिमधुराप्लुताम् ।
यस्मिन्भे व्याधिमाप्नोति तस्मिन्स्थाने बलि शुभे ॥५
मानसाना रजादीना विष्णो स्तोत्र हर भवेत् ।
वातपित्तकफा दोषा धावतश्च तथा शृणु ॥६
भुक्त पक्वाशयादध द्विधा याति च सुश्रुत ।
अशेनैकेन किट्टत्व रसता चापरेण च ॥७
किट्टभागो मलस्तत्र विण्मूत्रस्वेदरूपवान् ।
नासामल कर्णमलस्तथा देहमल स्मृत ॥८

इस अध्याय म समस्त रोगा क हरण करने वाली औषधो का वर्णन किया जाता है। भगवान् धन्वन्तरी ने कहा—मानसी व्याधियाँ शारीरिक, आगन्तुक और सहज चार प्रकार की हुआ करती हैं। जो शारीरिक व्याधियाँ है वे ज्वर एव कुष्ठ आदि अनेक होती हैं। क्रोध आदि मानसिक रोग कहे गये है॥ १॥ जो विघात से उत्पन्न हो जाते है वे आगन्तुक रोग कहे जाते हैं। भूख और वृद्धता आदि सहज रोग है जो सभी को अपने समय आने पर हुआ करते हैं। शारीरिक और आगन्तुक व्याधियो के नाश करने के लिये रविवार के दिन म घृत, गुड, लवण और सुवर्ण ब्राह्मण की पूजा करके उसे देने चाहिए। चन्द्र वार के दिन मे विप्र को अभ्यङ्ग का दान करने वाला समस्त रोगा से छुटकारा पा जाया करता है॥ २॥ ३॥ शनिवार के दिन तैल का दान करे। आश्विन म गोरस और अन्न का दान करना चाहिए। घृत और पय स लिंग का सस्नापन करके रोग से छुटकारा हो जाता है॥४॥ त्रिमधुर से डुबा डुबा कर दूभ को गायत्री मन्त्र क द्वारा अग्नि मे हवन कराना चाहिए। दूध, घृत और मधु (शहद) य त्रिमधुर कहे जाते हैं। जिस नक्षत्र म व्याधि प्राप्त हो उस शुभ स्थान म बलि देना चाहिए॥५॥ जो मानस क्रोध चिन्ता आदि अनेक रोग होत हैं उनका निवारण करन के लिय भगवान् विष्णु के स्तोत्रो का पाठ करना चाहिए। इसस मानसिक व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। अब वात, पित्त और कफ य तीन महादोष दौड लगाया करते हैं। उनके विषय म श्रवण करो॥६॥ हे सुश्रुत! जो भी अन्न खाया जाता है वह खाया हुआ अन्न दो प्रकार से पक्वाशय से जाया करता है उसका एक भाग तो किट्ट रूप मे हो जाता है और उसका दूसरा भाग रस के रूप परिणत होता है अर्थात् जो भी अन्न खाया गया है वह पक्वाशय म पहुँचकर दो भागो म बट जाता है॥७॥ जो उसका किट्ट भाग है वह तो मल के रूप म बन जाता है जो विष्ठा मूत्र और पसीना क रूप वाला होता है। नासा (नाक) का मल कान का मैल और देह का मल कहा गया है॥८॥

रसाभागाद्रसस्तत्र समाच्छोणिततां व्रजेत्।
मासं रक्तात्ततो मेदो मेदसोऽस्थनश्च सम्भव ९

अस्थ्नो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्रागस्तथौजसः ।
देशमार्ति बलं शक्तिं कालं प्रकृतिमेव च ॥१०
ज्ञात्वा चिकित्सितं कुर्याद्भेषजस्य तथा बलम् ।
तिथिं रिक्तां त्यजेद्भौमं मन्दभं दारुणोग्रकम् ॥११
हरिगोद्विजचन्द्रार्कसुरादीन्प्रतिपूज्य च ।
शृणु मन्त्रमिमं विद्वन्भेषजारम्भमाचरेत् ॥१२
ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः ।
ऋषयश्चौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पान्तु ते ॥१३
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥१४
वातश्लेष्मकरो देशो बहुवृक्षो बहूदकः ।
अनूप इति विख्यातो जाङ्गलस्तद्विवर्जितः ॥१५
किंचिद्वृक्षोपको देशस्तथा साधारणः स्मृतः ।
जाङ्गलं पित्तबहुलं मध्यः साधारणः स्मृतः ॥१६

जो दूसरा रस का भाग है वह रुधिर के रूप को धारण किया करता है। रस से रक्त और रक्त से मांस, मांस से मेद और मेद से अस्थि (हड्डी) इनकी क्रम से उत्पत्ति हुआ करती है ॥८॥ अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है जिससे राग और ओज बनता है। देश, व्याधि, बल, शक्ति, काल और मानव की प्रकृति इन सबको भली-भांति जानकर वैद्य को भेषज (औषध) की ताकत का भी समझ कर चिकित्सा करनी चाहिये। चिकित्सा के आरम्भ में वैद्य को रिक्ता तिथि भौमवार, मन्द, दारुण और उग्र नक्षत्र का त्याग कर देना चाहिए। अर्थात् उक्त समय, दिन और नक्षत्रों में चिकित्सा का आरम्भ नहीं करना चाहिए। यह मैं एक मन्त्र बताता हूँ इसको सावधानता के साथ तुम श्रवण करो। हरि, गौ, द्विज, चन्द्र, सूर्य और देवगण आदि की अर्चा करके विद्वान् वैद्य को औषध का आरम्भ करना चाहिए ॥ ॥९।१०।११।१२॥ वैद्य को कहना चाहिए जब कि वह औषध को देना आरम्भ करे—ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र इन्द्र, भूमि, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, समस्त

ऋषिगण, औषध समूह और भूत सब तेरी रक्षा करें ।।१३।। ऋषियों की रसायन की भाँति देवों के अमृत की तरह और उत्तम नागों की सुधा के सदृश यह औषध तुम्हारे लिय होवे ।।१४।। जिस देश में बहुत से वृक्ष हों और अत्यधिक जल वाला हो वह देश वात और श्लेष्मा (कफ) के करने वाला होता है। ऐसा देश "अनूप,'–इस नाम से विख्यात होता है । इसके विपरीत जो देश होता है वह "जङ्गल" कहा जाया करता है ।।१५।। कुछ वृक्षों वाला जो देश होता है वह "साधरण"–इस नाम वाला कहा जाता है । जाङ्गल देश में पित्त की बहुलता हुआ करती है । जो मध्य देश होता है वह साधारण कहा गया है ।। १६ ।।

रूक्ष. शीतश्चलो वायु पित्तमुष्णं कटुत्रयम् ।
स्थिराम्लस्निग्धमधर बलास च प्रचक्षते ।।१७
वृद्धि. समानैरेतेषा विपरीतैर्विपर्यय. ।
रसा स्वाद्वम्ललवणा श्लेष्मला वायुनाशना ।।१८
कटुतिक्तकषायाश्च वातला श्लेष्मनाशना ।
कट्वम्ललवणा ज्ञेयास्तथा पित्तविवर्धना. ।।१९
तिक्तस्वादुकषायाश्च तथा पित्तविनाशना ।
रसस्यैव गुणो नास्ति विपाकस्यैव इष्यते ।।२०
वीर्योष्णा कफवातघ्ना शीताः पित्तविनाशना ।
प्रभावतस्तथा कर्म ते कुर्वन्ति च सुश्रुत ।।२१
शिशिरे च वसन्ते च निदाघे च तथा क्रमात् ।
चयप्रकोपप्रशमा कफस्य तु प्रकीर्तिता ।।२२
निदाघवर्षारात्रौ च तथा शरदि सुश्रुत ।
चयप्रकोपप्रशमा. पवनस्य प्रकीर्तिता ।।२३
मेघकाले च शरदि हेमन्ते च तथा क्रमात् ।
चयप्रकोपप्रशमास्तथा पित्तस्य कीर्तिता ।।२४

वायु रूक्ष शीत और चल होता है । पित्त उष्ण होता है, तीनों कटु हैं । स्थिर-अम्ल और स्निग्ध मधर बलास कहा जाता है । इनके समान रहने पर

तो वृद्धि (बढ़ाव) होती है और जब ये वात-पित्तादि विपरीत हो जाते हैं तो विपर्यय अर्थात् वृद्धि का अभाव होता है। अम्ल (खट्टा) और लवण (खारी) मधुर स्वाद वाले जो रस होते हैं वे श्लेष्मल अर्थात् कफ की वृद्धि करने वाले होते हैं तथा वायु के नाश कारक हैं ॥१७॥१८॥ कटु (कड़ुवे), तिक्त (चरपरे) और कषाय (कसैले) स्वाद वाले रस वायु के बढ़ाने वाले तथा कफ के नाश करने वाले होते हैं। कटु, अम्ल और लवण रस पित्त के बढ़ाने वाले होते हैं। ॥१६॥ तिक्त, मधुर और कषाय रस पित्त के नाशक हुआ करते हैं। यह केवल रस का ही गुण नहीं होता है किन्तु उनके विपाक का यह हुआ करता है। ॥१६॥२०॥ जो वीर्योष्ण होते हैं वे कफ और वात के नाश करने वाले होते हैं। जो शीत होते हैं वे पित्त के नाशक हैं। हे सुश्रुत ! वे प्रभाव से कर्म किया करते हैं। शिशिर, वसन्त और निदाघ (ग्रीष्म) में क्रम से कफ के चय (इकट्ठा होना), प्रकोप (कुपित होना) और उपशम (शान्त होना) बताया गया है। ॥२०॥२१॥२२॥ हे सुश्रुत ! ग्रीष्म, वर्षा और रात्रि में तथा शरद् ऋतु में वायु के क्रम से सञ्चय, प्रकोप और उपशम हुआ करते हैं ॥२३॥ मेघों के समय में शरद् ऋतु में और हेमन्त में से क्रम से पित्त का चय–प्रकोप और प्रशमन होता है ॥ २४ ॥

वर्षादयो विसर्गास्तु हेमन्ताद्यास्तथा त्रय. ।
शिशिराद्यास्तथाऽऽदान ग्रीष्मान्ता ऋतवस्त्रयः ॥२५
सौम्यो विसर्गस्त्वादानमाग्नेय परिकीर्तितम् ।
वर्षादीश्चीनृतून्सोमश्चरन्पर्यायशो रसान् ॥२६
जनयत्यम्ललवणमधुरांश्चीन्यथाक्रमम् ।
शिशिरादीनृतूनर्कश्चरन्पर्यायशो रसान् ॥२७
विवर्धयेत्तथा तिक्तकषायकटुकान्क्रमात् ।
यथा रजन्यो वर्धन्ते बलमेव हि वर्धते ॥२८
क्रमशोऽथ मनुष्याणां हीयमानासु हीयते ।
रात्रिभुक्तदिनानां च वयसश्च तथैव च ॥२६
आदिमध्यावसानेषु कफपित्तसमीरणा ।

प्रकोपं यान्ति कोपादौ काले तेषां चय. स्मृत ॥३०
प्रकोपोत्तरके काले शमस्तेषां प्रकीर्तित. ।
अतिभोजनतो विप्र तथा चाभोजनेन च ॥३१
रोगा हि सर्वे जायन्ते वेगोदीरणधारणैः ।
अन्नेन कुक्षेर्द्वावंशावेक पानेन पूरयेत् ॥३२
आश्रय पवनादीनां तथैकमवशेषयेत् ।
व्याधेर्निदानस्य तथा विपरीतमथौषधम् ॥३३

वर्षा आदि तथा हेमन्तादि तीन विसर्ग होते हैं। शिशिरादि तथा ग्रीष्मान्ता तीन ऋतु आदान मे होती हैं ॥२५॥ विसर्ग, सौम्य तथा आदान आग्नेय कहा गया है। चन्द्रमा वर्षादि तीन ऋतुओं मे विचरण करता हुआ बारी से अम्ल, लवण और मधुर रसों को यथाक्रम उत्पन्न किया करता है। शिशिरादि ऋतुओं मे सूर्य विचरण करता हुआ पर्याय (बारी) से रसों का विवर्धन किया करता है। तिक्त, कटु और कषायों को क्रम से जैसे रजनी बढाती हैं वैसे ही बल भी इसी प्रकार से बढता है ॥२६।२७।२८॥ मनुष्यों के बल इनके हीयमान होने पर इसी तरह से कम हो जाया करते हैं। रात्रि भुक्त दिनों का तथा अवस्था का आदि-मध्य और अवसान मे कफ, पित्त और वायु प्रकुपित होते हैं और कोप के आदि काल मे उनका सचय हुआ करता है ॥२९।३०॥ पहिले सचय फिर प्रकोप और प्रकोप के उत्तर समय मे उनका उपशमन हुआ करता है। हे विप्र ! अत्यधिक भोजन कर लेने से और भोजन के न करने से समस्त रोग उत्पन्न हुआ करते हैं। वेगों के उदीरण और धारण करने से भी रोगों की उत्पत्ति होती है। कुक्षि (उदर) के दो अश (भाग) अन्न से भरे और उसका एक भाग जल से पूरित करना चाहिए। चौथा भाग वायु आदि के आश्रय के लिये खाली रखना चाहिए। तात्पर्य यह है कि आधा पेट ही अन्न से भरे। व्याधि का जो निदान (मूल कारण का ज्ञान) हो उसके विपरीत औषध होनी चाहिए ॥३१।३२।३३॥

कर्त्तव्यमितदेवात्र मया सार प्रकीर्तितम् ।
नाभेरूर्ध्वमधश्चैव गुदश्रोण्योस्तथैव च ॥३४

बलासपित्तवातानां देहे स्थानं प्रकीर्तितम् ।
तथाऽपि सर्वगाश्चैते देहे वायुर्विशेषतः ॥३५
देहस्य मध्ये हृदयं स्थानं तन्मनसः स्मृतम् ।
कृशोऽल्पकेशश्चपलो बहुवाग्विषमानलः ॥३६
व्योमगश्च तथा स्वप्ने वातप्रकृतिरुच्यते ।
अकालपलितः क्रोधी प्रस्वेदी मधुरप्रियः ॥३७
स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिरुच्यते ।
दृढाङ्गः स्थिरचित्तश्च सुप्रभः स्निग्धमूर्धजः ॥३८
शुद्धाम्बुदर्शी स्वप्ने च कफप्रकृतिको नरः ।
तामसा राजसाश्चैव सात्त्विकाश्च तथा स्मृताः ॥३९

इस तरह से व्याधि के मूल कारण का निवारण करने के लिये ही औषध करनी चाहिये । यह ही इसका सार है जिसको मैंने बतला दिया है । नाभि के ऊपर और नीचे गुद श्रोणियाँ हैं । यही बलास-पित्त और वात का शरीर में स्थान बताया गया है । तो भी ये शरीर में सर्वत्र गमन करने वाले होते हैं और वायु विशेष रूप से देह में रहा करता है ॥३४।३५॥ शरीर के मध्य मे हृदय होता है वही मन का स्थान कहा गया है । कृश, थोड़े बालों वाला चपल, बहुत बातें करने वाला, विषमानल तथा स्वप्न मे आकाश में विचरण करने वाला वात प्रकृति का कहा जाता है । असमय मे ही सफेद बालों वाला, क्रोधी, शरीर में पसीने आने वाला, मिठाई से प्यार करने वाला और स्वप्न में दीप्ति से युक्त को देखने वाला मनुष्य पित्त प्रकृति का कहा जाता है । मजबूत अङ्गों वाला, स्थिर चित्त वाला, अच्छी कान्ति से युक्त, स्निग्ध केशों वाला और स्वप्न मे शुद्ध जल को देखने वाला पुरुष कफ की प्रकृति वाला होता है । इसी प्रकार से मनुष्य तामस, राजस और सात्त्विक बताये गये हैं ॥३६॥ ॥३७।३८॥३९॥

मनुष्या मुनिशार्दूल वातपित्तकफात्मकाः ।
रक्तपित्तं व्यवायाच्च गुरुकर्मप्रवर्तनैः ॥४०
कदन्नभोजनाद्वायुर्देहे शोकाच्च कुप्यति ।

विदाहिना तथोल्कानामुष्णान्नाध्वनिषेविणाम् ॥४१
पित्त प्रकोपमायाति भयेन च तथा द्विज ।
अत्यम्बुपानगुर्वन्नभोजिना भुक्तशायिनाम् ॥४२
श्लेष्मा प्रकोपमायाति तथा ये चालसा जनाः ।
वाताद्युत्थानि रोगाणि ज्ञात्वा शाम्यानि लक्षणै ॥४३

हे मुनि शार्दूल ! मनुष्य वात, पित्त और कफ के स्वरूप वाले हुआ करते हैं। व्यवाय (मैथुन) से रक्तपित्त होता है। बहुत बड़े काम में प्रवृत्ति करने से तथा कदन्न के भोजन से और शोक से शरीर में वायु कुपित हो जाती है। विशेष दाह करने वाले उल्क (उल्वण) और उष्ण अन्न तथा मार्ग के सेवन करने वालों का पित्त प्रकुपित हो जाया करता है। हे द्विज ! भय से भी पित्त कुपित होता है। अधिक जल पीने वाले, भारी अन्न के भोजन करने वाले तथा खाकर शयन करने वाले पुरुषों का कफ प्रकुपित हो जाता है। जो आलसी होते हैं उनका भी कफ प्रकुपित होता है। वायु आदि दोषों के प्रकोप से उत्पन्न होने वाले रोगों को भली-भाँति समझ कर जो कि लक्षणों द्वारा जाने जाते हैं शमन करे ॥४०।४१।४२।४३॥

अस्थिभङ्ग कषायत्वमास्ये शुष्कास्यता तथा ।
जृम्भणं रोमहर्षश्च वातिकव्याधिलक्षणम् ॥४४
नखनेत्रशिराणां तु पीतत्वं कटुता मुखे ।
तृष्णा दाहोष्णता चैव पित्तव्याधिनिदर्शनम् ॥४५
आलस्यं च प्रसेकश्च गुरुता मधुरास्यता ।
उष्णाभिलाषिता चेति श्लैष्मिकव्याधिलक्षणम् ॥४६
स्निग्धोष्णमन्नमभ्यङ्गस्तैलं पानादि वातनुत् ।
आज्यं क्षीरं सिताद्यं च चन्द्ररश्म्यादि पित्तनुत् ॥४७
मक्षौद्रं त्रिफला तैलं व्यायामादि कफापहम् ।
तथा गात्रमाम्लं स्याद्विष्णोर्ध्यानं च पूजनम् ॥४८

अस्थि का भङ्ग, मुख का कसैला स्वाद मुख का सूखापन, जँभाइयों का आना, रोमहर्ष (रोगट खड़े होना) ये सब वातजन्य व्याधि के लक्षण होते

है ॥४४॥ नख, नेत्र और शिराओं का पीलापन, मुख का कड़ुआ जायका, तृष्णा (प्यास अधिक लगना), दाह और उष्णता का होना ये सब पित्त के प्रकोप से उत्पन्न व्याधि के लक्षण होते है ॥४५॥ आलस्य का रहना, प्रमेह भारापन, मुख का मीठा स्वाद होना तथा गर्म-गर्म वस्तुओं के सेवन करने की इच्छा का रहना ये सब कफ के प्रकोप से समुत्पन्न रोग का लक्षण होता है ॥ ॥४६॥ स्निग्ध और उष्ण अन्न, अभ्यङ्ग करना, तैल और पानादि वायु को शान्त करने वाले होते हैं। घृत क्षीर और मिश्री आदि तथा चन्द्रमा की किरणों का सेवन पित्त का शमन करने वाले हैं ॥४७॥ क्षौद्र (शहद) के साथ त्रिफला तैल और व्यायाम आदि कफ के प्रकोप से होने वाले रोग का शमन किया करते हैं। समस्त रोगों की प्रशान्ति के लिये भगवान् विष्णु का ध्यान और पूजन होना है ॥४८॥

११८ रसादिलक्षणम्

रसादिलक्षणं वक्ष्ये भेषजानां गुणं शृणु।
रसवीर्यविपाकज्ञो नृपादीन्रक्षयेन्नर ॥१
रसाः स्वाद्वम्ललवणाः सोमजाः परिकीर्तिताः।
कटुतिक्तकषायाश्च तथाऽऽग्नेया महाभुज ॥२
त्रिधा विपाको द्रव्यस्य कट्वम्ललवणात्मकः।
द्विधा वीर्यं समुद्दिष्टमुष्णं शीतं तथैव च ॥३
अनिर्देश्यप्रभावश्च औषधीनां द्विजोत्तम।
मधुरश्च कषायश्च तिक्तश्चैव तथा रस ॥४
शीतवीर्या समुद्दिष्टा शेषास्तूष्णाः प्रकीर्तिताः।
गुडूची नत्र तिक्ताऽपि भवत्युष्णाऽतिवीर्यत ॥५
उष्णा कषायाऽपि तथा पथ्या भवति मानद।
मधुरोऽपि तथा मांसं उष्णं एव प्रकीर्तितं ॥६
लवणो मधुरश्चैव विपाके मधुरौ स्मृतौ।
अम्लाख्यश्च तथा प्रोक्तः शेषाः कटुविपाकिनः ॥७

वीर्यपाके विपर्यस्तप्रभावात्तत्र निश्चयः ।
मधुरोऽपि कटु पाके यच्च क्षौद्रं प्रकीर्तितम् ॥८

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब मैं भेषजों (औषधियों) का रसादि लक्षण बताता हूँ उसको तुम श्रवण करो। रस, वीर्य और विपाकों के ज्ञान रखने वाले मनुष्य अर्थात् वैद्य को नृप आदि की रक्षा करनी चाहिए ॥१॥ मधुर, अम्ल और लवण रस सोम से उत्पन्न कहे गये हैं। कटु तिक्त और कषाय रस हे महान् भुजाओं वाले आग्नेय ! अर्थात् अग्नि से समुत्पन्न कहे गये हैं ॥२॥ द्रव्य का कटु, अम्ल और लवण के स्वरूप वाला तीन प्रकार का विपाक होता है। दो प्रकार से द्रव्य का शीत तथा उष्ण वीर्य कहा गया है। ॥३॥ हे द्विजों में उत्तम ! औषधियों का प्रभा निर्देश करने के योग्य नहीं होता है। मधुर, कषाय और तिक्त रस शीत वीर्य वाले बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त शेष समस्त रस उष्ण वीर्य वाले कहे गये हैं। गुडूची (गिलोय) तिक्त होते हुए भी अत्यन्त वीर्य होने के कारण उष्ण होती है ॥४। ५॥ हे मानद ! वह उष्ण कषाय होते हुए भी पथ्य (हितकर) होती है। मांस मधुर भी होते हुए उष्ण ही कहा गया है ॥६॥ लवण और मधुर विपाक में मधुर ही कहे गये हैं। तथा आम्लोष्ण कहा गया है। शेष समस्त रस कटु विपाक वाले होते हैं ॥७॥ वीर्य के पाक में विपर्यस्त प्रभाव से वहाँ ठीक निश्चय होता है। मधुर भी रस पाक के होने पर कटु हो जाता है जो कि क्षौद्र बताया गया है ॥८॥

कषाययेत्षोडशगुणे पिबेद्द्रव्याच्चतुर्गुणम् ।
कल्पनैषा कषायस्य यत्र नोक्तो विधिर्भवेत् ॥६
कषाय तु भवेत्तोय स्नेहपाके चतुर्गुणम् ।
द्रव्यतुल्य समुद्धृत्य द्रव्य स्नेहं क्षिपेद् बुधः ॥१०
तावत्प्रमाणं द्रवस्य स्नेहपाद ततः क्षिपेत् ।
तोयवर्जं तु यद्द्रव्यं स्नेहद्रव्य तथा भवेत् ॥११
सर्वविनौषध पाक स्नेहाना परिकीर्तितः ।
तत्तुल्यता तु लेह्यस्य तथा भवति सुश्रुत ॥१२
स्वच्छन्दमल्पौषध वत्राथ कषाय चोक्तवद् भवेत् ।

अथ चूर्णस्य निर्दिष्ट कषायस्य चतुष्पलम् ॥१३
मध्यमैषा स्मृता मात्रा नास्ति मानाविकल्पना ।
वय काल बल वन्हि देश द्रव्य रुज तथा ॥१४
समवेक्ष्य महाभाग मात्राया कल्पना भवेत् ।
सौम्यास्तत्र रसा प्रायो विज्ञेया धातुवर्धना ॥१५
मधुरास्तु विशेषेण विज्ञेया धातुवर्धना ।
दोषाणा चैव धातूनां द्रव्य समगुण तु यत् ॥१६
तदेव वृद्धये ज्ञेय विपरीत क्षयावहम् ।
उपक्रमनय प्रोक्त देहेऽस्मिन्मनुजोत्तम ॥१७

सोलह गुने का क्वाथ करे और द्रव्य से चौगुने का पान करे। यह कल्पना कषाय की होती है जहाँ कि कोई विशेष विधि कही हुई न होवे ॥६। जल कषाय होता है। स्नेह पाक में चतुर्गुण होता है। द्रव्य के बराबर लेकर द्रव्य में स्नेह का (तैलादि को) विद्वान् को क्षेप करना चाहिए ॥१०॥ द्रव्य के तावत्प्रमाण स्नेह पाद को डाले। जो द्रव्य जल से रहित हो तथा स्नेह द्रव्य हो तो स्नेहो का सवर्तित औषध वाला पाक बनाया गया है। हे सुश्रुत ! जो लेह्य (चाटने के योग्य हो) हो उसका तत्तुल्य प्रमाण होता है ॥११।१२॥ उप-र्युक्त की भाँति स्वच्छ और थोडी औषध वाला क्वाथ कषाय होता है। चूर्ण का अक्ष बताया गया है और कषाय का चार पल प्रमाण होता है। यह मात्रा (खुराक) मध्यम बताई गई है। इसमे मात्रा का कोई भी विकल्प नही होता है। अवस्था, समय बल अग्नि, देश द्रव्य और रोग इन सबका भली-भाँति अवेक्षण करके, हे महाभाग ! मात्रा (खुराक) की कल्पना की जाया करती है। उनमें जो रस सौम्य होते हैं वे प्राय धातु के बढाने वाले जानने चाहिएँ ॥ ॥१३।१४।१५॥ विशेष रूप स जो मधुर होते हैं वे धातु के बर्द्धक जानने के योग्य होते हैं। धातुओ के दोषो के समान गुण वाला जो द्रव्य होता है वह ही वृद्धि क करने वाला समझना चाहिए। इसके विपरीत जो होगा वह क्षय करने वाला ही होता है। हे मनुजोत्तम ! इस देह मे तीन उपक्रम बताये गये हैं ॥१६॥१७॥

आहारो मैथुन निद्रा तेषु यत्नः सदा भवेत् ।
असेवनात्सेवनाच्च अत्यन्त नाशमाप्नुयात् ॥१८
क्षयस्य बृहणं कार्यं स्थूलदेहस्य कर्षणम् ।
रक्षणं मध्यकायस्य देहभेदास्त्रयो मता. ॥१९
उपक्रमद्वय प्रोक्तं तर्पण वाऽप्यतर्पणम् ।
हिताशी न मिताशी च जीर्णाशी च तथा भवेत् ॥२०
ओषधीना पञ्चविधा तथा भवति कल्पना ।
रस कल्कः शृत शीतः फाण्टश्च मनुजोत्तम ॥२१
रसश्च पीडको ज्ञेय कल्क आलोडिताद् भवेत् ।
क्वथितश्च शृतो ज्ञेयः शीत पर्युषितो निशि ॥२२
सद्योभिशृतपूत यत्तत्फाण्टमभिधीयते ।
करणाना शत चैव षड्विंशच्चैवाधिका स्मृता ॥२३
यो वेत्ति स ह्यजेय स्यात्सत्रन्धे बाहुशौण्डिक. ।
आहारशुद्धिरम्यर्थमग्निमूल बल नृणाम् ॥२४

आहार, मथुन और निद्रा ये तीन है। इनमे सर्वदा यत्न करना चाहिए इनके न सेवन करने से और सेवन करने से अत्यन्त नाश की प्राप्ति हो जाती है ॥१८। जो क्षय है उसका बृहण (वृद्धि) करना चाहिए। जिसका स्थूल देह हो उसका कर्षण करना अभीष्ट होता है। जिसका मध्यकाय अर्थात् मध्यम श्रेणी का न कृश और न स्थूल शरीर होता है उसका रक्षण करना चाहिए। ये तीन ही देह के भेद बताये गये हैं ॥१९॥ दो प्रकार के उपक्रम बताए गये है एक तर्पण और दूसरा अतर्पण। हित अर्थात् लाभप्रद वस्तुओं का खाने वाला, मित अर्थात् जितना देह के अनुसार आवश्यक है उतना ही खाने वाला और जीर्ण होने पर या जीर्ण होने के योग्य वस्तुओ के खाने वाला होना चाहिए ॥२०॥ ओषधियो के पाँच प्रकार एव स्वरूप होते हैं। वैसी ही उनकी कल्पना भी हुआ करती है। रस, कल्क, शृत, शीत और फाण्ट ये पाँच प्रकार हैं ॥२१॥ जो पीडक होता है वह रस समझना चाहिए। आलोडन करने से कल्क की रचना हुआ करती है। जो क्वथित किया जावे अर्थात्

जिसको पकाकर क्वाथ (काढ़ा) बनाया जावे वह मृत होता है । जो रात्रि में पर्युषित किया जावे वह शीत फाण्ट इस नाम से कहा जाया करता है । इनके करण एक सौ साठ बताये गये हैं ।२३।। जो इन सबको जानता है वह बाहु शौण्डिक सम्बन्ध में अजेय होता है । अग्नि के लिये आहार की शुद्धि होनी चाहिए क्योंकि मनुष्यों का जो बल होता है उसका मूल अग्नि ही होता है ।।२४।।

ससिन्धुत्रिफला चाद्यात्मृद्दु शाश्यभिवर्णदाम् ।
जांगल च रस सिन्धुयुक्त दधि पय वगणाम् ।।२५
रसाधिक सम कुर्यान्नरो बालाधिकोऽपि वा ।
निदाघे मदन प्राक्त शिशिरे च सम बहु ।।२६
यम त मध्यम ज्ञ य निदाघे मदनोत्तरणम् ।
त्वच तु प्रथम मर्द्य मज्जा च तदनन्तरम् ।।२७
स्नायुरुधिरदहेपु अस्थि चातीव मासतम् ।
स्कन्धौ बाहू तथतेह तथा जङ्घे सजानुनी ।।२८
अरिवन्मदयत्प्राज्ञा जतु वक्षश्च पूववत् ।
अगसविपु सर्वेपु निष्पीड्य बहुल तथा ।।२९
प्रसारयदङ्गमखीन न क्षेपेण चाक्रमात् ।
नाजीर्णे तु श्रम कुर्यात्र भक्ता पीनवान्नर ।।३०
दिनस्य तु चतुर्भाग ऊध्व तु प्रहराधके ।
व्यायाम नैव कत्तव्य स्नायाच्छीताम्बुना सकृत् ।।३१
वायुं प्राण च श्रम जनाध ना श्वास न धारयत् ।
व्यायामश्च कफ हन्याद्ध न हन्याच्च मदनम् ।।३२
स्नान पित्ताधिक हन्यात्स्यान्त चाऽऽतपो प्रिया ।
आतपवातश्रमा ऽद्धा श्लेष्मव्यायाम उत्तर ।।३३

सिन्धु के सहित त्रिफला के अभिवर्ण के देने वाली त्रिफला भली भाँति खानी चाहिए । और जाङ्गल रस तथा सिन्धु युक्त दधि पय के वर्ण का सेवन करना चाहिए ।।२५।। जो मनुष्य बाल का अधिकता वाला हो उस रस

से अधिक अथवा बराबर करना चाहिए। ग्रीष्म में मर्दन कहा गया है। तथा शिशिर ऋतु में सम एवं बहु मानना चाहिए। बसन्त में मध्यम प्रमाण में तथा निदाघ में (ग्रीष्म ऋतु में) मर्दन से उत्वरण करे। पहिले त्वचा का मर्दन करके फिर इसके अनन्तर मज्जा का करे ॥२६॥२७॥ स्नायु, रुधिर और देहों में अस्थि अत्यन्त मांसल है। इनका करके दोनों स्कंधे, बाहु तथा दोनों जंघाओं और जानुओं (घुटनों) का अनु में समान बुद्धिमान् को मर्दन कराना चाहिए। पूर्व की भाँति जत्रु और वक्ष स्थल का मर्दन करे। समस्त अंगों की संधियों का खूब निष्पीडन करके अधिक मर्दन करना चाहिए। क्षेप और अक्रम से अङ्गों की सन्धियों को प्रसारित न करे। जब अजीर्ण हो उस समय में श्रम नहीं करना चाहिए। भोजन करके तथा पान करके भी श्रम नहीं करना चाहिए ॥२८॥ २९॥३०॥ दिन के चौथे भाग में और एक प्रहर के अर्थ भाग के ऊपर व्यायाम नहीं करना चाहिए। शीतल जल से एक बार स्नान करे ॥३१। गर्म जल श्रम को दूर करता है। दूर में गमन करने वाला श्वास को धारण न करे। व्यायाम कफ का हनन करता है और मर्दन वात नाश किया करता है। स्नान पित्त की अधिकता का नाश करता है। उसके अन्त में आतप प्रिय होता है। आतप क्लेश वर्म आदि में क्षेम कर व्यायाम उत्तर में होता है ॥३२। ३३॥

२१६—वृक्षायुर्वेदः

वृक्षायुर्वेदमाख्यास्ये प्लक्षश्चोत्तरत शुभ ।
प्राग्वटो याम्यतस्त्वाम्र आप्येऽश्वत्थ क्रमेण तु ॥१
दक्षिणा दिशमुत्पन्ना समीपे कण्टकद्रुमा ।
उद्यान गृहवासे स्यात्तिलान्वाप्यथ पुष्पितान् ॥२
गृह्णीयाद्रोपयेद्वृक्षान्द्विज चन्द्र प्रपूज्य च ।
ध्रुवाणि पञ्च वायव्य हस्त प्राजेशवैष्णवम् ॥३
नक्षत्राणि तथा मूल शस्यन्ते द्रुमरोपणे ।
प्रवेशयेन्नदीवाहान्पुष्करिण्या तु कारयेत् ॥४

हस्तो मघा तथा मैत्रमाद्य पुष्पं सवासवम् ।
जलाशयसमारम्भे वारुणं चोत्तरात्रयम् ॥५
सपूज्य वरुणं विष्णु पर्जन्य तत्समाचरेत् ।
अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषा सप्रियगव ॥६
अशोक कदली जम्बुस्तथा वकुलदाडिमा ।
साय प्रातस्तु धर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे ॥७
वर्षारात्रौ भुव शोषे सेक्तव्या रोपिता द्रुमा ।
उत्तमा विंशतिहस्ता मध्यमा षोडशान्तरा ॥८

श्री धन्वन्तरि ने कहा—अब मै वृक्षायुर्वेद को बताऊँगा प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष उत्तर मे शुभ होता है। प्राची (पूर्व) दिशा म वट का वृक्ष, याम्य दिशा मे आम्र पश्चिम मे अश्वत्थ (पीपल) क्रम से होना चाहिए ॥१॥ दक्षिण दिशा म समीप म ही काटेदार वृक्ष रहने चाहिए। ऐसा उद्यान पास म हो तथा पुष्पित तिलो के पेड भी रहे। ब्राह्मण और चन्द्रमा का अर्चन करके वृक्षो का आरोपण करे तथा ग्रहण करना चाहिए। पाँच ध्रुव वायव्य, हस्त, प्रजेश वैष्णव तथा मूल ये नक्षत्र द्रुमो के रोपण करने मे प्रशस्त होते हैं। नदी वाहो म प्रवेश करते हुए पुष्करिणी म बनवानी चाहिए ।२।३।४। हस्त मघा मैत्र आद्य पुष्प सवासव वारुण तीनो उत्तरा ये नक्षत्र जलाशय के समारम्भ म उत्तम हैं ।५। भगवान् विष्णु वरुण और पर्जन्य देव की भली-भाँति अर्चना करके इस कम का आचरण करे। अरिष्ट अशोक पुन्नाग शिरीष प्रियगु कदली (केला) जम्बु (जामुन) वकुल दाडिम (अनार) इन वृक्षो का सायकाल तथा प्रातःकाल म और शीतकाल म घाम के अन्त म दिना तर म तथा वर्षा रात्रि मे अब भूमि का शोषण हो जावे उस समय म रोपे हुए पेडो को सींचना चाहिए। बीस हाथ के अन्तर म तो उत्तम आरोपण होता है। मध्यम सोलह हाथ के अन्तर वाले माने जाते हैं ।।६।।७।।८।।

स्थानात्स्थानान्तर कार्यं वृक्षाणा द्वादशावरम् ।
विफला स्युर्घना वृक्षा शस्त्रेणादौ हि शोधनम् ॥९

विडङ्गघृतपङ्काक्तान्सेचयेच्छीतवारिणा ।
फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैर्यवैस्तिलैः ॥१०
घृतशीतपय सेकः फलपुष्पाय सर्वदा ।
आविकाजशकृच्चूर्णं यवचूर्णं तिलानि च ॥११
गोमांसमुदकं चैव सप्तरात्रं निधापयेत् ।
उत्सेकः सर्ववृक्षाणां फलपुष्पादिवृद्धिदः ॥१२
मत्स्याम्भसा तु सेकेन वृद्धिर्भवति शाखिनः ।
विडङ्गतण्डुलोपेतं मात्स्यं मासं हि दोहदम् ॥१३
सर्वेषामविशेषेण वृक्षाणां रोगमर्दनम् ॥१४

स्थान से अन्य स्थान का बारह हाथ का अन्तर जो होता है वह मध्यम श्रेणी का कहा गया है । घने वृक्षो का रोपण करना विफल होता है । आदि मे ही शस्त्र के द्वारा इनका शोधन कर देना चाहिए ॥६॥ विडङ्ग और घृत पङ्क से अक्त इनका सेचन ठण्डे जल से करे । जब फलो का नाश हो जावे तो कुलत्थ, माष (उर्द) मुद्ग (मूंग), यव (जौ) और तिलो के द्वारा घृत एवं शीतल जल से सेक करना फलो एवं पुष्पो के लिये सदा हितकर होता है । आविकाज अर्थात् भेड और बकरी की मैंगनियो का चूरा, यवो का चूर्ण और तिल गोमांस तथा जल सात रात्रि तक डाले । इस प्रकार से उत्सेक करने से समस्त वृक्षो के फल और फूल आदि की वृद्धि करने वाला हुआ करता है । ॥१०॥११॥१२॥ मत्स्य (मछली) के जल से सेक (सींचना) करने से वृक्षो की वृद्धि हुआ करती है । विडङ्ग और तण्डुल से युक्त मत्स्य मांस बहुत ही वृक्षो को लाभप्रद हुआ करता है ॥१३॥ समस्त वृक्षो का रोपण साधारण तथा रोगो का मर्दन करने वाला होता है ॥१४॥

१२०—नानारोगहराण्यौषधानि

सिंही शटी निशायुग्म वत्सकं क्वाथसेवनम् ।
शिशोः सर्वातिसारेषु स्तन्यदोषेषु शस्यते ॥१

शृङ्गी सकृष्णातिविषा चूर्णिता मधुना लिहेत् ।
एका चातिविषा कासच्छर्दिज्वरहरी शिशोः ॥२
बाले सेव्या वचा साज्या सदुग्धा वाऽथ तैलयुक् ।
मञ्जिष्ठा शङ्खपुष्पी वा बाल क्षीरान्विता पिबेत् ॥३
वाग्रूपमपथ्रूक्त्वायुर्मेधा श्रीर्वर्धते शिशोः ।
वचा ह्यग्निशिखावासाशुण्ठीकृष्णानिशागदम् ॥४
सयष्टिसैन्धवं बालः प्रातर्मेधावर पिबेत् ।
दवदारुसहाशिग्रुफलत्रयपयोमुचाम् ॥५
क्वाथ सकृष्णामृद्वीकाकल्क सर्वान्क्रमीन्हरेत् ।
त्रिफलाभृङ्गविश्वाना रसेषु मधुसर्पिषा ॥६
मेषीक्षीरे च गोमूत्रे सिक्त रोगे हिन शिशा ।
नासारक्तहरो नस्याद्दूर्वारस इहोत्तम ॥७
लशुनार्द्रकशिग्रूणां रस वर्णस्य पूरणम् ।
तैलमार्द्रकजाद्य वा शूलनुच्चोष्टरागनुत् ॥८

इस अध्याय म अनक रोगो क हरण करने वाली औषधियो का वर्णन किया जाता है। श्री धन्वन्तरि भगवान् ने कहा—लिहो, शटी दोनो प्रकार की हल्दी,वत्सक के क्वाथ का सवन करन म छोटे बच्चे के सब प्रकार क अतिसार (दस्त) म तथा स्तन्य (मा का दूध) क दोषो में प्रशस्त अर्थात् लाभप्रद होता है ॥१॥ शृगी कृष्णा और अतिविषा का चूर्ण शहद के साथ चाटना चाहिए। एक अतिविषा ही ऐसी औषधि है कि छोटे बच्चे की खासी छर्दि और ज्वर का हरण कर दिया करती है ॥२॥ बालको को घृत के साथ वचा का सेवन करना चाहिए। यह दूध क साथ भी सवन करनी चाहिए। तैल से युक्त मञ्जिष्ठा अथवा शङ्खपुष्पी (शङ्खाहूली को दुग्धक्षीर से युक्त करके पीवे तो लाभप्रद है ॥३॥ इनके सेवन स वाणी रूप, सम्पत् आयु और मेधा तथा श्री इनकी बालक का वृद्धि होती है। वच, अग्निशिखा वासा, शुण्ठि कृष्णा निशा (हल्दी) इन औषधियो का यष्टि और सैन्धव (नमक) के साथ बालक प्रातःकाल म सेवन कर अथात् पीवे तो मेधा (बुद्धि) का वर्धन करो

वाला होता है। देवदारु, शिग्रु, फलत्रय, पर्णमुक, इनका साथ चूर्ण और मृद्वीका के कल्प सब प्रकार के कृमियों का नाश किया करता है। त्रिफला, भृङ्ग और विश्व के रसों में मधु और घृत और मेपी के तथा गो मूत्र में सिक्त छोटे बच्चों के रोग में बहुत ही हितकारी होता है (नासिका से आने वाले रक्त का निवारण करने के लिये नस्य से भी अधिक उत्तम दूर्वा का रस होता है) ॥४॥५॥६॥७॥ (लहसुन, अदरख और शिग्रु का रस कान में डालना चाहिए। कान की पीड़ा इससे शान्त हो जाती है। अदरख द्वारा बनाया हुआ तेल पू: हटा देता है ओठ के रोग का हरण करता है) ॥८॥

जातीपत्रं फलं व्योषं कवलं मूत्रकं निशा।
दुग्धक्वाथेऽभयाकल्के सिद्धं तैलं द्विजातिनुत् ॥६
धान्याम्बुनारिकेलं च गोमूत्रं क्रमुकविश्वयुक्।
क्वाथितं कवलं कार्यं जिह्वाव्याधिप्रशान्तये ॥१०
साधितं लाङ्गलीकल्के तैलं निर्गुण्डिकारसैः।
गण्डमालागलगण्डौ नाशयेन्नस्यकर्मणा ॥११
पल्लवैरर्कपूतीकस्नुहीशम्पाकजातिकैः।
उद्वर्तं येत्सगोमूत्रैः सर्वत्वग्दोषनाशनं ॥१२
वाकुची सतिला भुक्ता वत्सरात्कुष्ठनाशिनी।
पथ्या भल्लातकी तैलगुडपिण्डी तु कुष्ठजित् ॥१३
मूषिकावह्निरजनी त्रिफलाव्योषचूर्णयुक्।
तक्रं गुदाङ्कुरे पेयं भक्ष्या वा सगुडाऽभया ॥१४
फलदार्वीविशालाजं क्वाथो धात्रीरसोऽथ वा।
पातव्यो रजनीकल्कं क्षौद्राक्षौद्रप्रमेहिणा ॥१५
वासागर्भो व्याधिघातं क्वाथ एरण्डतैलयुक्।
वातशोणितहृत्पानात्पिप्पली स्यात्प्लीहाहरी ॥१६

जातीपत्र, फल, व्योप कवल, मूत्रक और निशा (हल्दी) ये वस्तुऐं दुग्ध के क्वाथ में और अभया (हरीतकी) के कल्क में सिद्ध किया हुआ तैल दांतों की वेदना को दूर करता है। धान्याम्बु नारियल गोमूत्र, क्रमुक, विश्व

का क्वाथ बनाकर कवल करे तो जिह्वा की व्याधि शान्त हो जाती है ॥९॥ ॥१०॥ निर्गुण्डी के रस से लाङ्गली के कल्क मे साधित किया हुआ तैल गलगण्ड और गण्डमाला को नस्य कर्म से नाश किया करता है ॥११॥ अर्क (आक), पूतीक, स्नुही (थूहर) स्वर्ण जातिक के पत्तों को गोमूत्र से उद्वर्तन करे इससे त्वचा के समस्त दोषों का नाश हो जाता है ॥१२॥ तिलों के साथ बाकुची खाने से एक वर्ष कुष्ठ रोग का नाश हो जाता है। तेल और गुड मे पिण्डी की हुई भल्लातकी कुष्ठ की जीतने वाली एवं पथ्य होती है। ॥१३॥ मूषिका, वह्नि और रजनी (हल्दी) त्रिफला व्योष चूर्ण से युक्त तक्र (मट्ठा) गुदांकुर (मस्सों) मे खाने चाहिए अथवा गुड के साथ अभया को खाना चाहिए ॥१४॥ फल दार्वी और विशाखा से बनाया हुआ क्वाथ अथवा धात्री का रस पिलाना चाहिए। क्षौद्रा-क्षौद्र प्रभेद वाले को हल्दी का कल्क लेना चाहिए ॥१५॥ वासा गर्भ एरण्ड के तैल के साथ क्वाथ किया जावे तो व्याधि के घात करने वाला होता है। वातुजन्य रुधिर का हरण करने वाला होता है। पीपल प्लीहा (तिल्ली) का हरण करने वाली होती। १६॥

सेव्या जठरिणा कृष्णा स्नुक्क्षीरबहुभाविता।
पयो वाऽरुचिहृन्त्वग्निविडङ्गव्योषकल्कयुक् ॥१७
ग्रन्थिकोग्राऽभया कृष्णा विडङ्गाक्ता घृत तथा।
मास तक्र ग्रहण्यर्श पाण्डुगुल्मकृमीन्हरेत् ॥१८
फलत्रयामृतवासातिक्तभूनिम्बजस्तथा।
क्वाथ समाक्षिको हन्यात्पाण्डुरोग सकामलम् ॥१९
रक्तापित्ती पिबद्वासास्वरस समित मधु।
वगीद्राक्षाबलाशुण्ठीसाधित वा पय पृथक् ॥२०
वगी विदारी पथ्या च बलाश्च सवासकम्।
श्वदंष्ट्रामधुमिर्श्र्यामालिहेत्क्षयरोगवान् ॥२१
पथ्याशिग्रु यरक्षार्कत्वक्सार मधुसिन्धुमत्।
समूत्र विद्रधि हन्ति परिपाकाय तन्त्रजित् ॥२२

निवृता जीवती दन्ती मञ्जिष्ठा शर्वरीद्वयम् ।
तार्क्षजं निम्बपत्रं च लेपः शस्तो भगन्दरे ॥२३
रुग्घातरजनीलाक्षातूर्णाजिक्षौद्रसयुता ।
वासोवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥२४

जठर के रोग वाले पुरुष को बहुत बार स्नुक्क्षीर से भावित करके चूर्ण का सेवन करना चाहिए। पय विडङ्ग, अग्नि से व्योषवल्क से युक्त अरुचि के रोग का नाशक होता है ॥१७॥ ग्रन्थिकोग्रा, अभया, कृष्णाविडङ्ग से भक्त हो तथा घृत और मास पर्यन्त तक्र ग्रहणी रोग, अर्श (बवासीर), पाण्डु एव कामला रोग के कृमियो को नष्ट करता है ॥१८॥ फलत्रय अर्थात् त्रिफला, अमृत (गिलोय), वासा (अडूसा) तथा तिक्तभूनिम्ब स बनाया हुआ क्वाथ माक्षिक (शहद) के साथ कामला के रोग का हनन कर देता है ॥१९॥ जिस मनुष्य का रक्त पित्त की बीमारी हो उसे मिश्री और शहद के साथ वासा (अडूसा) का स्वरस पीना चाहिए। अथवा वरी, द्राक्षा (मुनक्का), बला और सोंठ से साधित पय पृथक् पीना चाहिए ॥२०॥ वरी, विदारी कन्द, पथ्या, तीनो बला (अतिबला, नागबला और महाबला) और वासा को कुत्ता से काटा जाने वाला और क्षय रोग वाला मधु और घृत के साथ चाटे तो रोग नष्ट हो जाता है ॥२१॥ पथ्या, शिग्रु, करञ्ज (कजा), आक इनकी छाल के सार जो मधु सिन्धु से युक्त होवे समूत्र विदधि का हनन करता है। परिपाक के तन्त्रजित् होता है ॥२२॥ त्रिवृता, जीवन्ती, दन्ती, मञ्जिष्ठा (मजीठ), दोनो प्रकार की हल्दी, तार्क्षज और नीम के पत्ते इनका लेप भगन्दर के लिये लाभदायक होता है ॥२३॥ रुग्घात, रजनी (हल्दी), लाख, तूर्णाजि क्षौद्र से युक्त वस्त्र की वत्ती का प्रयोग व्रण मे करना चाहिए। यह व्रण का शोधन करने वाली और गति के नाश करने वाली होती है ॥२४॥

श्यामायष्टिनिशालोध्रपद्मकोत्पलचन्दनैः ।
समरीचैः शृतं तैलं क्षीरे स्याद्व्रणरोहणम् ॥२५
श्रीकार्पासदलैर्भस्म फलापलवणा निशा ।
तत्पिण्डीस्वेदनं ताम्रे तत्तैलं स्यात्क्षतौषधम् ॥२६

कुम्भीसारं पयोयुक्तं वह्निदग्धं व्रणे लिपेत् ।
तदेव नाशयेत्सेकान्नारिकेलरजोघृतम् ॥२७
विश्वाजमोदसिन्धत्थचिञ्चात्वग्भिः समाऽभया ।
तक्रेणोष्णाम्बुना वाऽथ पं तातीसारनाशिनी ॥२८
वत्सकातिविषाविश्वाबिल्वमुस्तशृतं जलम् ।
सामे पुराणेऽतीसारे सासृक्शूले च पाययेत् ॥२६
अङ्गारदग्धं सुगतं सिन्धुमुष्णाम्बुना पिबेत् ।
शूलवानथ वा तद्वि सिन्धुहिंगुकणाभया ॥३०
कटुरोहाल्कणातङ्कुलाजचूर्णं मधुप्लुतम् ।
वस्त्रच्छिद्रगतं ववत्रे न्यस्तं तृष्णां विनाशयेत् ॥३१
पाठादार्वीजातिदलं द्राक्षामूलवलात्रयं ।
साधितं समधु ववाथं कवलं मुखपाकहृत् ॥३२

श्यामा, यष्टि, निशा (हरिद्रा) लोध, पद्मक, उत्पल और चन्दन काली मिर्चों के साथ धृत किया हुआ तैल क्षीर में व्रण का रोहण करने वाला होता है ॥२५॥ श्री कार्पास के हलों से भस्म और फलोपलवणा निशा (हल्दी) इसको पिण्डी द्वारा स्वेदन तथा ताम्र में वह तैल क्षतों की औषधि है ॥२६॥ कुम्भीसार को आग से दग्ध करके पय से युक्त व्रण पर लेप करे। यही नारिकेलरजो धृत सेक से नाश कर देती है ॥२७॥ विश्वाजमोद, सिन्धत्थ, चिञ्चा की छाल के समान अभया (हर्र), मट्ठा या जल के साथ पीने से अतीसार का नाश होता है ॥२८॥ वत्सका, अतिविषा, विश्वा, बिल्व मुस्त का धृत जल साम में, पुराने अतिसार में और रक्त के साथ शूल के रोग में पिला देना चाहिए ॥२६॥ अंगारे में दग्ध किया हुआ सुगत सिन्धु को गर्म जल के साथ शूलवाला पीवे। अथवा उसके साथ सिन्धु हिंगु (हींग) कणा और अभया को लेना चाहिए ॥३०॥ कटुरोहाल्कणातङ्कु और खील का चूर्ण दाहत से प्लुत (मिला हुआ) वस्त्र के छेद से निकला हुआ मुख में रक्खे तो तृष्णा का विनाश करता है ॥३१॥ पाठा, दार्वी और जाती के दल को द्राक्षा, मूल और तीनों प्रकार बलाओं के साथ साधित करके मधु के साथ कवल से मुख के अन्दर

जो पाक होता है उसका हरण करने वाला होता है। अर्थात् मुँह के अन्दर होने वाले छालों को नष्ट करने वाला है ॥३२॥

कृष्णातिविषतिक्तेन्द्रदारुपाठापयोमुचाम् ।
क्वाथो मूत्रे शृता क्षौद्री सर्वकण्ठगदापहा ॥३३
पथ्यागोक्षुरदु स्पर्शराजवृक्षशिलाकृत ।
कषाय समधु पीतो मूत्रकृच्छ्र व्यपोहति ॥३४
वशत्वग्वरुणक्वाथ शर्कराश्मविघातन ।
शाखोटक्वाथसक्षौद्रक्षीराशी श्लीपदी भवेत् ॥३५
मापार्कत्वक्पयस्तैल मधु सिक्त च सैन्धवम् ।
पादरोग हरेत्सर्पिर्जलकुक्कुटज तथा ॥३६
शुठीसौवर्चलाहिंगुचूर्ण शुठीरसंघृतम् ।
रुज हरेदथ क्वाथो विद्धि वद्धाग्निसाधने ॥३७
सौवर्चलाग्निर्हिंगूमा सदीप्याना रसंयुतम् ।
विड्दीप्यक युक्त वा तक्र गुल्मातुर पिवेत् ॥३८
धात्रीपदोलमुद्गाना क्वाथ साज्यो विसर्पहा ।
शुठीदारुनवाक्षीरक्वाथो मूत्रान्वितोऽपर ॥३९
सव्योपायोरज क्षार फलक्वाथश्च शोथहृत् ।
गुडशिग्रु त्रिवृद्भिश्च सैन्धवाना रजोयुत ॥४०
त्रिवृताफलज क्वाथ सगुड स्याद्विरेचन ।
वचाफलकपायोत्य पयो वमनकृद् भवेत् ॥४१

कृष्णा, अतिविषा, तिक्ता, इन्द्र, दारु, पाठा और पयोमुक् इनका क्वाथ (काढा) मूत्र मे शृत किया हुआ क्षौद्री सब प्रकार के गले के रोगो का विनाश करने वाला होता है ॥३३॥ पथ्या, गोखरू मधु के सहित पीने से मूत्र कृच्छ्र रोग को दूर भगा देता है ॥३४॥ वाँस की छाल और वरुण का क्वाथ शर्कराश्म का नाशक होता है। शाखोट का क्वाथ क्षौद्र के सहित क्षीर का अशन करने वाला श्लीपद रोग वाला होता है। एक पैर बेहद मोटा हो जाने वाला रोग का नाम श्लीपद होता है ॥३५॥ माष और आक की छाल, पय,

तैल, मधु स सिक्त और सैन्धव पाद के रोग का हरण करता है। जल बुदबुद उत्पन्न सर्पि (घृत), सौंठ, सौवर्चला, हींग का चूर्ण सुरठीरस से धृत रोग का हरण कर देता है। अथवा वडाग्नि साधन मे क्वाथ करे ॥३६॥३७॥ सौवचला, अग्नि और हींग को सदीप्य करके रससे युक्त करे अथवा विड दीप्यक से युक्त करे और उस तक्र (मट्ठा) का सेवन करे तो गुल्म के रोग का हरण हो जाता है ॥३८॥ धात्री पटोल पत्र और मुद्ग का क्वाथ घी के साथ सेवन करने से विसर्प का नाश हो जाता है। सौंठ, दारु और नवाक्षीर का क्वाथ जो कि मूत्र से युक्त हो यह दूसरी विसर्प रोग की औषधि है ॥३९॥ सप्तोपायोरज क्षार और फल का क्वाथ शोथ (सूजन) का हरण करने वाला होता है। गुड़ शिग्रु और त्रिवृत् के साथ सैन्धवो चूर्ण से युक्त त्रिवृता फल का काढा गुड के सहित विरेचन करने वाला होता है। वचा, फल के कषाय से उत्पन्न जल वमन कारक होता है ॥४०॥४१॥

त्रिफलाया पलशत पृथग्भृङ्गरजोन्वितम् ।
विडङ्ग लोहचूर्ण च दशभागसमन्वितम् ॥४२
शतावरीगुडूच्यग्निपलाना पञ्चविंशति ।
मध्वाज्यतिलजैलिह्याद्वलीपलितवर्जित ॥४३
शतमब्द हि जीवेत् सवरोगविवर्जित ।
त्रिफला सवरोगघ्नी समधु शर्करान्विता ॥४४
सितामधु घृतैर्युक्ता सकृष्णा त्रिफला तथा ।
पथ्या चित्रकशु ठयश्च गुडूची मुशलीरज ॥४५
सगुड भक्षित रोगहर त्रिशतवर्षकृत् ।
किंचिच्चूर्ण जपापुष्प पीडित विमृजेज्जले ॥४६
तैल भवद् घृताकार किंचिच्चूर्ण जलान्वितम् ।
धूपार्थं दृश्यत चित्र वृषद शजरायुना ॥४७
पुनर्माक्षिकधूपेन दृश्यते तद्यथा पुरा ।
कर्पूरजतुकाभेकतैल पाटलिमूलयुक् ॥४८

पिष्ट्वाऽऽलिप्य पदे द्वे च चरेदङ्गारके नरः ।
तृणोत्थानादिकं व्यूह्य दर्शयन्वै कुतूहलम् ॥४९
विषग्रहरुजध्वंसक्षुद्र कर्म च कामिकम् ।
तत्ते षट्कर्मकं प्रोक्तं सिद्धिद्वयसमाश्रयम् ॥५०
मन्त्रध्यानौषधिकथामुद्रेज्या यत्र मुष्टयः ।
चतुर्वर्गफलं प्रोक्तं य पठेत्स दिवं व्रजेत् ॥५१

(सौ पल त्रिफला भृङ्गरज से युक्त, विडङ्ग और लोह चूर्ण दश भाग तथा शतावर, गिलोय और अग्नि के पच्चीस भाग को मधु घृत और तिलज के साथ लेहन करे अर्थात् चाटे तो मनुष्य वृद्धावस्था के कारण होने वाली वली एवं पलित (सफेदी) से रहित हो जाता है ।॥४२॥४३॥ वह आदमी समस्त प्रकार के रोगो से रहित होकर सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है । मधु और शर्करा से युक्त त्रिफला सभी रोगों के हनन करने वाली होती है ॥४४॥ मिश्री मधु और घृत से युक्ता कृष्णा के सहित त्रिफला और पथ्या, (चित्रक तथा सोठ गिलोय और मुसली का चूर्ण गुड के साथ खाने पर रोगो का हरण होता है और तीन सौ वर्ष की आयु करने वाला है) इस कुष्ठ चूर्ण और जपा का पुष्प पीडित को जल मे विसर्जित करे ॥४५॥४६॥ जलान्वित कुष्ठ चूर्ण से तैल घृताकार हो जाता है । वृताकार हो जाता है । वृष दशज वायु से धूप के लिये चिह्न दिखलाई देता है ॥४७॥ फिर मासिक धूप से वह पहिले की भाँति दिखाई देता है ।(कपूर, जलूका और भेक का तैल पाटलि के मूल से युक्त पीस कर दोनो पैरो मे लेप करके मनुष्य अङ्गारो पर चला जाता है।) तृणोत्थान आदि का ढेर करके कुतूहल दिखा देवे ॥४८॥४९॥ विषग्रह, रोग इनका ध्वंस करना क्षुद्र कामिक कर्म है । वह सिद्धिद्वय के समाश्रित रहने वाला षट् कर्म कहा गया है ॥५०॥ मन्त्र, ध्यान, औषधि, कथा, मुद्रा और इज्या ये जहाँ मुष्टियाँ हैं । इससे चतुर्वर्ग का फल कहा गया है । जो इसे पढता है वह स्वर्ग को जाता है ॥५१॥

१२१ मन्त्ररूपौषधकथनम्

आयुरारोग्यकर्तार ओंकाराद्याश्च नाकदाः ।
ओंकार परमो मन्त्रस्त जप्त्वा चामरो भवेत् ॥१
गायत्री परमो मन्त्रस्त जप्त्वा भुक्तिमुक्तिभाक् ।
ॐ नमो नारायणाय मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥२
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय सर्वद ।
ॐ हू ू नमो विष्णवे मन्त्रोऽय चौषध परम् ॥३
अनेन देवा ह्यसुरा सश्रियो नीरुजोऽभवन् ।
भूतानामुपकारश्च तथा धर्मो महौषधम् ।४
धर्म सद्धर्मकृद्धर्मी ह्येतैर्धर्मैश्च निर्मलः ।
श्रीद श्रीश श्रीनिवास श्रीधर श्रीनिकेतन ॥५
श्रिय पति श्रीपरमो ह्येते श्रियमवाप्नुयात् ।
कामी कामप्रद काम कामपालस्तथा हरि. ॥६
आनन्दो माधवश्चैव नाम कामाय वै हरे ।
रामः परशुरामश्च नृसिंहो विष्णुरेव च ॥७
त्रिविक्रमश्च नामानि जप्तव्यानि जिगीषुभि. ।
विद्यामभ्यस्यता नित्य जप्तव्य पुरुषोत्तम ॥८

इस अध्याय मे मन्त्र रूप औषधो का वर्णन किया जाता है। भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—ओङ्कार आदि आयु और आरोग्य के करने वाले तथा स्वर्ग की प्राप्ति कराने वाले होते हैं। ओङ्कार परम मन्त्र है। इसका जाप करके मानव अमर हो जाया करता है ॥१॥ गायत्री परम श्रेष्ठ मन्त्र है। इसका जप करके मनुष्य सांसारिक समस्त भोगो का उपभोग और अन्त मे मोक्ष को प्राप्त किया करता है। "ओं नमो नारायणाय"—यह मन्त्र समस्त अर्थों की साधना करने वाला होता है ॥२॥ "ओं नमो भगवते वासुदेवाय"—यह मन्त्र सब कुछ देने वाला है। "ओं हू ू नमो विष्णवे"—यह मन्त्र परम औषध होता है ॥३॥ इस मन्त्र से देव और असुर सब नीरोग और श्री युक्त हुए थे। प्राणियो का

उपकार तथा धर्म और महोपध, धर्म और अच्छे धर्म के करने वाला धर्मी—इन धर्मों से मनुष्य निर्मल अर्थात् शुद्ध हो जाता है। श्रीद, श्रीश, श्रीनिवास, श्रीधर, श्री निकेतन, श्रिय पति और श्री परम—इन नामों के जाप से श्री की प्राप्ति किया करता है। कामी, कामप्रद, काम, कामपाल, हरि, आनन्द और माधव ये हरि के नाम काम की पूर्ति करने वाले होते हैं अर्थात् इनके जाप से कामनाऐं पूर्ण हो जाती हैं। राम, परशुराम, नृसिंह विष्णु और त्रिविक्रम इन नामों का जाप जय की इच्छा रखने वालों को करना चाहिए। जो विद्या का अभ्यास या अध्ययन करने वाले मनुष्य हैं उन्हें नित्य ही पुरुषोत्तम नाम का जप करना चाहिए ॥४ ५।६।७।८॥

दामोदरो बन्धहर पुष्कराक्षोऽक्षिरोगनुत् ।
हृषीकेशो भयहरो जपेदौषधकर्मणि ॥६
अच्युतं चामृतं मन्त्र सङ्ग्रामे चापराजितः ।
जलतारे नारसिंह पूर्वादौ क्षेमकामवान् ॥१०
चक्रिणं गदिनं चैव शार्ङ्गिणं खड्गिनं स्मरेत् ।
सर्वेशमजितं भक्त्या व्यवहारेषु सस्मरेत् ॥११
नारायणं सर्वकाले नृसिंहोऽखिलभीतिनुत् ।
गरुडध्वजश्च विषहृद्वासुदेवं सदा जपेत् ॥१२
धान्यादिस्थापने स्वप्ने ह्यनन्ताच्युतमीरयेत् ।
नारायणं च दुःस्वप्ने दाहादौ जलशायिनम् ॥१३
हयग्रीवं च विद्यार्थी जगत्सूतिं सुताप्तये ।
बलभद्रं शौर्यकाय एक नामार्थसाधकम् ॥१४

दामोदर—बन्ध के हरण करने वाला भगवान् का नाम है, अर्थात् इसके जप से बन्धन छूट जाता है। भगवान् के पुष्कराक्ष—यह नाम अपने से नेत्रों की बीमारी दूर होती है। हृषीकेश—यह नाम भय को हटाता है' इसका जाप करे। औषध कर्म में अच्युत—यह नाम अमृत मन्त्र होता है। संग्राम में अपराजित होता है। जल के तारण में नृसिंह नाम का जप करे। पहिले आदि में क्षेम की कामना वाला चक्री—गदी—शार्ङ्गी और खड्गी नाम का स्मरण करता

चाहिए। व्यवहारों में सर्वत्र अजित के नाम को भक्ति पूर्वक भली-भाँति स्मरण करना चाहिए ॥८।१०।११॥ अन्य समस्त समय में नारायण नाम का स्मरण तथा जप करना चाहिए। नृसिंह—यह नाम सब प्रकार की भीति (भय) का नाश करने वाला होता है। गरुडध्वज—यह नाम विष का हरण करता है। वासुदेव नाम का सर्वदा जाप करना चाहिए ॥१२॥ धान्यादि के स्थापन करने में और स्वप्न पर अनन्त और अच्युत—इन नामों का उच्चारण करना चाहिए। दुःस्वप्न में और दाह आदि में जल में शयन करने वाले नारायण का स्मरण तथा जाप करे ॥१३॥ विद्यार्थी को हयग्रीव का तथा पुत्र की प्राप्ति के लिये जगत्प्रसूति नाम का स्मरण करना चाहिए। शौर्य के काम के लिये एवं समस्त अर्थों के साधक बलभद्र के नाम का स्मरण करे ॥१४॥

१२२ मृतसंजीवनकरसिद्धयोगः

सिद्धयोगान्पुनर्वक्ष्ये मृतसञ्जीवनीकरान् ।
आत्रेयभाषितान्दिव्यान्सर्वव्याधिविमर्दनान् ॥१
विल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ।
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वभोज्य वा ॥२
आमलक्यभया कृष्णा वन्हि सर्वज्वरान्तक ।
विल्वाग्निमन्थस्योनाककाश्मर्यं पाटला स्थिरा ॥३
त्रिकण्टक पृश्निपर्णी बृहतीकण्टकारिका ।
ज्वराविपाकपार्श्वार्तिकासघ्नुत्कुशमूलकम् ॥४
गुडूची पर्पटो मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् ।
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं स्मृतम् ॥५
त्रिवृद्विशालाकटुकात्रिफलारग्वधैः कृतः ।
सक्षारो भेदनः क्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥६
देवदारुबलावासात्रिफलाव्योषपद्मकैः ।
सविडङ्गं सितातुल्य तच्चूर्णं पञ्चकासजित् ॥७

दशमूलीशटीरास्नापिप्पलीविल्वपौष्करैः ।
शृङ्गीतामलकीभार्गीगुडूचीनागवल्लिभिः ॥८
यवागूं विधिना सिद्धं कषायं वा पिबेन्नरः ।
कासहृद्ग्रहणीपार्श्वहिक्काश्वासप्रशान्तये ॥९

इस अध्याय में मृत सजीवन करने वाले सिद्ध योगों के विषय में वर्णन किया जाता है। श्री धन्वन्तरि भगवान् बोले—अब मैं फिर जो सिद्ध योग हैं उन्हें बताता हूँ जो कि मृत को सजीवन देने वाले होते हैं और आत्रेय के द्वारा कहे हुए दिव्य तथा समस्त व्याधियों के विमर्दन करने वाले हैं ॥१॥ आत्रेय ने कहा—बिल्व आदि पञ्चमूल का क्वाथ वातिक ज्वर में लाभप्रद होता है। पिप्पली मूल—गुडूची (गिलोय) और विश्वज पावन होता है। आमलकी—अभया, कृष्णा और वह्नि (चीता) ये सब प्रकार के ज्वर का अन्त करने वाले हैं। विल्व, अग्नि, मन्थ स्योनाक, काश्मरी, पाटला स्थिरा, त्रिकण्टक पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारिका ये सब ज्वर के विपाक में पार्श्वों की पीड़ा, खाँसी को दूर करती हैं। कुशा का मूल, गिलोय, पर्पटी, मुस्त, किरात और विश्व भेषज इनको वात पित्तजन्य ज्वर में देना चाहिए। यह पञ्चभद्र—इस नाम से कहा गया है ॥२।३।४।५॥ त्रिवृत्, विशाला, कटुका, त्रिफला, आरग्वध के द्वारा क्षार सहित भेदन करने वाला क्वाथ समस्त ज्वरों का हटाने वाला पीना चाहिये ॥६॥ देवदारु, बला, वासा, त्रिफला, व्योष, पद्मक और वायविडङ्ग का चूर्ण और समान मिश्री यह पञ्च कामजित् होता है ॥७॥ दशमूल शटी, रास्ना, पिप्पली, विल्व, पौष्कर, शृङ्गी आमलकी, भार्गी, गुडूची और नागवल्ली के द्वारा विधि पूर्वक बनाई हुई यवागू अथवा सिद्ध किया हुआ कषाय मनुष्य को खाँसी, हृदय रोग, ग्रहणी, पार्श्व, हिचकी और श्वास की शान्ति के लिये पीना चाहिये ॥८।९॥

मधुकं मधुना युक्तं पिप्पलीं शर्करान्विताम् ।
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं लवणत्रयम् ॥१०
कारव्यजाजी मरिचं द्राक्षा वृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चलं गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥११

शृङ्गवेररसं चैव मधुना सह पाययेत् ।
अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफान्तकम् ॥१२
वट शृङ्गीशिलालोध्रदाडिमं मधुकं मधु ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन च्छर्दितृष्णानिवारणम् ॥१३
गुडूची वासकं लोध्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ।
कफान्वितं जयेद्रक्तं तृष्णाकासज्वरापहम् ॥१४
वासकस्य रसस्तद्वत्समधुस्ताम्रजो रसः ।
शिरीषपुष्पसुरसभावितं मरिचं हितम् ॥१५
सर्वार्तिनुन्मयूरोऽथ पित्तमुक्तण्डुलीयकम् ।
निर्गुण्डीमारिवाशेलुरङ्कोलश्च विषापहः ॥१६

मधु से युक्त मधूक तथा शर्करा से युक्त पिप्पली—गुड़ के साथ नागर और तीनों प्रकार के लवण हिक्का के नाशक होते हैं ॥१०॥ कारव्यजाजी, मरिच, द्राक्षा, वृक्षाम्ल, दाडिम, सौवचल, गुड़ और क्षौद्र—यह समस्त प्रकार की अरुचि के रोग का नाश करने वाला होता है ॥११॥ शृङ्गवेर का रस मधु के साथ पिलाना चाहिए। इससे अरुचि श्वास, खाँसी का नाश हो जाता है और प्रतिश्याय (जुकाम) तथा कफ के विकार का हनन करने वाला है ॥१२॥ वट, शृङ्गी, शिला लोध्र दाडिम मधुक और मधु इनको तण्डुल (चावल) के पानी के साथ पान करने से छर्दि और तृष्णा का नाश होता है ॥१३॥ गुडूची (गिलोय) वासक, लोध्र पीपल और क्षौद्र कफ के साथ आने वाले रक्त पर जय प्राप्त किया करता है तथा तृष्णा कफ और ज्वर का भी अपहरण करता है ॥१४॥ वासक का रस और उसके बराबर मधु, ताम्रज रस को शिरीष के फूलों के रस से भावना देकर काली मिर्च भी मिलावे तो समस्त प्रकार की पीडा का नाशक होता है। मयूर पित्त का नाशक है। तण्डुलीयक, निर्गुण्डी, सारिवा, शेलु और अङ्कोल विष का अपहरण करने वाले हैं ॥१५।१६॥

महौषधामृताक्षुद्रापुष्करग्रन्थिकोद्भवम् ।
पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्छायां च मदेषु च ॥१७
हिङ्गु सौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।

चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥१८
शङ्खपुष्पीवचाकुष्ठैः सिद्धं ब्राह्मीरसैर्युतम् ।
पुराणं हन्त्यपस्मारं सोन्मादं मेध्यमुत्तमम् ॥१९
पञ्चगव्यं घृतं तद्वत्कुष्ठमुच्चाभयायुतम् ।
पटोलत्रिफलानिम्बगुडूचीधावनीवृषैः ॥२०
सकरञ्जं घृतं सिद्धं कुष्ठनुद्वज्रक स्मृतम् ।
निम्बं पटोलं व्याघ्री च गुडूची वासकं तथा ॥२१
कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य सकुट्टितान् ।
जलद्रोणे विपक्तव्य यावत्पादावशेषितम् ॥२२
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ।
पञ्चतिक्तमिति ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ॥२३
अशीति वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ।
विंशति श्लैष्मिकान्कासपीनसार्शोव्रणादिकान् ॥२४

महौषध, अमृता, पुष्कर, ग्रन्थिका से बनाया हुआ कषाययुक्त क्वाथ मूर्च्छा और मद मे पीना चाहिए ॥१७॥ हिङ्गु (हींग), सोवर्चल व्योष दो पल और एक आढक घृत चौगुने गोमूत्र मे सिद्ध करे तो उन्माद के रोग का नाश हो जाता है । १८॥ शङ्खपुष्पी (शङ्खाहुली) वच, कुष्ठ और ब्राह्मी बूँटी का रस से सिद्ध किया हुआ पुराने अपस्मार (मृगी) रोग का नाशक है तथा उत्तम मेध्य एवं उन्माद को हटाने वाला होता है ॥१९॥ पञ्चगव्य–घृत उसी प्रकार से अभया से युक्त हो तो कुष्ठ (कोढ) रोग का नाशक होता है । पटोल-पत्र, त्रिफला, नीम, गिलोय, धावनी, वृष, करञ्ज इनसे सिद्ध किया हुआ घृत कुष्ठ रोग के लिये वज्र के समान नाश करने वाला कहा गया है । नीम, पटोल, व्याघ्री, गिलोय, वासक इनके एक एक के दश पल भाग लेकर भली-भाँति कूट लेवे, द्रोण मात्र जल मे इनको पकावे जब चतुर्थ भाग शेष रहे तो उतार कर एकप्रस्थ घृत उसके साथ त्रिफला भाग से युक्त पाचन करे–यह पञ्च तिक्त इस नाम से प्रसिद्ध है । यह बनाया हुआ घृत कुष्ठ (कोढ) के रोग का नाश करने वाला होता है ॥२०।२१।२२ २३॥ यह अस्सी प्रकार के जो वायु से उत्पन्न

होने वाले रोग होते हैं उनको और चालीस प्रकार के पित्त के दोष से समुत्पन्न रोगों को एवं बीस प्रकार के कफ दोष से होने वाले रोगों का तथा खाँसी, पीनस, बवासीर और सब प्रकार के व्रणादि को नष्ट किया करता है ॥२४॥

हन्त्यन्यान्योगराजोऽयं यथाऽर्कस्तिमिरं खलु ।
त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन च ॥२५
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ।
पटोलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवोऽथ वा ॥२६
गुण्डयेच्च गजेनापि त्रिफलाचूर्णकेन च ।
त्रिफलायारजोयष्टिमार्कवोत्पलमारिचं ॥२७
समन्धर्व पचेत्तैलमभ्यङ्गाच्छर्दिकापहम् ।
सक्षीराम्मार्कवरसान्द्विप्रस्थमधुकोत्पलैः ॥२८
पचेत्तु तैलकुडवं तन्नस्यं पलितापहम् ।
निम्ब पटोल त्रिफला गुडूची खदिरं वृषम् ॥२९
भूनिम्बपाठात्रिफलागडूचीरक्तचन्दनम् ।
मासद्वय ज्वरं हन्ति कुष्ठव्रणमसूरिका ॥३०
पटोल त्रिफला चैव गुडूचीमुस्तचन्दनैः ।
सदूर्वा राहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ॥३१
कषायाऽय ज्वरं हन्ति कुष्ठं विस्फोटकादिजम् ।
पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्पटैः ॥३२
खदिराब्जयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तिकृत् ।
दशमूली छिन्नरुहा पथ्या दारु पुनर्नवा ॥३३
ज्वरविद्रधिदोषेषु शिग्रुविश्वजिला हिता ।
मधूकनिम्बपत्राणां लेपः स्याद्व्रणशोधनः ॥३४

यह उपर्युक्त महान् योगराज कहा गया है जिस प्रकार से अन्धकार का नाशक सूर्य होता है वैसे ही यह रोगों का नाश करने वाला होता है। त्रिफला के कषाय से और भृङ्गराज (भँगरा) के स्वरस से उपदंश (गर्मी) के व्रणों को धोना चाहिए। पटोलदल के चूर्ण से अथवा दाडिमत्वग् (दाडिम

पुष्प) का गुण्डन करे, गज के और त्रिफला के चूर्ण से सैन्धव के सहित त्रिफला मयोरज मद्दि, मार्कव, उत्पल और मिर्च (गोल मिर्च) से तैल का पाचन करे, उस तैल से शरीर का अभ्यङ्ग करे तो छर्दि के रोग का नाश हो जाता है। (दूध के सहित मार्कव रसो को दो प्रस्थ मधुकोत्पलों के द्वारा कुडव तैल को पकावे फिर उसका नस्य बनाले। इससे पलित (बालो की सफेदी) का नाश हो जाता है। अर्थात् सफेद बालो की जगह बाल काले हो जाते है। नीम, पटोल, त्रिफला (हरं, बहेडा, आंवला), गिलोय, खदिर, वृष तथा भूनिम्ब, पाठा, त्रिफला, गिलोय और रक्त चन्दन ये दो योग है जो ज्वर का हनन करते है और कुष्ठ, व्रण तथा मसूरिकाओ का भी नाश कर देते है ॥२५।२६।२७।२८। २६।३०॥ पटोलपत्र, त्रिफला, गिलोय, मुस्त, चन्दन से दूध के सहित पाठा, रोहिणी, रजनी, मदुरालभा इनका कषाय ज्वर को मिटा देता है और कुष्ठ तथा विस्फोटक आदि से उत्पन्न कुष्ठ को नष्ट कर देता है। पटोल, अमृत, भूनिम्ब, वासारिष्ट, पर्पट, खदिर और अब्ज इनका कषाय (काढा) विस्फोट से होने वाले ज्वर को नष्ट या शान्त कर देता है। दशमूली, छिन्नरुहा, पथ्या, दारु, पुनर्नवा, शिग्रु और विश्वजिता ये वस्तुएँ ज्वर, विद्रधि और शोथ में लाभप्रद होती हैं। मधूक और नीम के पत्रो का लेप व्रणो का शोधन कर देता है ॥ ३१।३२। ॥ ३३॥३४ ॥

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधातिबलाकुशा ।
निम्बमूलकपत्राणा कषाया शोधने हिताः ॥३५
करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणकृमीन् ।
धातकीचन्दनबलासमङ्गामधुकोत्पलैः ॥३६
दार्वीमेदोन्वितैलेप सासर्पिर्व्रणरोपण. ।
गुग्गुलुत्रिफलाव्योपसमांशैर्घृतयोगत ॥३७
नाडीदुष्टव्रण शूल भगदरमुख हरेत् ।
हरीतकी मूत्रसिद्धा सतैललवणान्विताम् ॥३८
प्रात प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ।
त्रिकटुत्रिफलाक्वाथ सक्षारलवण पिवेत् ॥३९

कफवातात्मकेऽत्वेव विरेकं कफवृद्धिनुत् ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलवचाचित्रकनागरै ॥४०
क्वथितं वा पिवेत्तोयमामवातविनाशनम् ।
रास्नां गुडूचीमेरण्डदेवदारुमहौषधम् ॥४१
पिबेत्सर्वाङ्गिके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ।
दशमूलकषायं वा पिबेद्वा नागराम्भसा ॥४२

त्रिफला, खदिर, दार्वी न्यग्रोध, अतिबला, कुशा, नीम और मूलक के पत्तों का कषाय भी व्रणों के शोधन करने मे हितकारी हुआ करता है ॥३५॥ कन्कुष्ठ खदिर निर्गुण्डी रस व्रण में रहने वाले कृमियों को नष्ट कर देते हैं। धातकी चन्दन, बलासमञ्जा मधुक उत्पल दार्वीमेद से युक्त करके लेप घृत के साथ किया जावे तो व्रणों का रोपण हो जाता है। गुगल, त्रिफला, व्योष समान भागों के साथ घृत के योग से नाडी का दुष्ट व्रण, शूल और भगन्दर का दुःख दूर हो जाता है। तैल और लवण के साथ मूत्र में सिद्ध की हुई हरीतकी (हर्रे) रोज प्रातःकाल में सेवन करे तो कफ और वात के रोग को दूर कर देती है। त्रिकुटा और त्रिफला का क्वाथ क्षार लवण के साथ पान करे तो कफ वातात्मकों मे विरेक होता है तथा कफ की वृद्धि का नाश कर देता है। पिप्पली मूल और पिप्पली, वच, चित्रक और नागर से क्वथित किये हुए को पीवे तो आमवात का विनाश होता है। रास्ना, गिलोय अरण्ड, देवदारू महौषध को समस्त अङ्ग में वात के हो जाने पर पीना चाहिये। जबकि आम के सहित वायु सन्धि, अस्थि और मज्जा मे पहुँच गया हो दशमूल का कषाय पान के रस के साथ पीना चाहिए ॥३६ से ४२॥

शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः ।
सामवातकटीशूलपाण्डुरोगप्रणाशनः ॥४३
समूलपत्रशाखायाः, प्रसारण्याश्च तैलकम् ।
गुडूच्याः स्वरसं कल्कचूर्णं वा क्वाथमेव च ॥४४
प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ।
पिप्पली वर्धमानं वा सेव्यं पथ्या गुडेन वा ॥४५

पटोलत्रिफलातीव्रकटुकामृतसाधितम् ।
पङ्कं पीत्वा जयत्याशु सदाह वातशोणितम् ॥४६
गुग्गुलं कोष्णशीतेन गुडूचीत्रिफलाम्भसा ।
बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥४७
सहिङ्गुलवणैः पीत सद्यो वातरुजापहम् ।
कार्षिक पिप्पलीमूल पञ्चैव लवणानि च ॥४८
पिप्पली चित्रक शुण्ठी त्रिफला त्रिवृता वचा ।
द्वौ क्षारौ शीतला दन्ती स्वर्णक्षीरी विषाणिका ॥४९
कोलप्रमाणां गुटिका पिबेत्सौवीरकायुताम् ।
शोथावपाके त्रिवृता प्रवृद्धे चोदरादिके ॥५०
क्षीर शोथहरं दारुवर्षाभूर्नागरैः शुभम् ।
सेकस्तथाऽर्कवर्षाभूनिम्बक्वाथेन शोथजित् ॥५१

(सोठ और गोखरू का काढा रोज प्रात काल मे सेवन करने से आम से युक्त वात, कमर का दर्द, पाण्डु रोग का नाश होता है)॥४३॥ जड और पत्ते डालियाँ सब प्रसारिणी का लेकर तैल पकावे, गिलोय का स्वरस, कल्क, चूर्ण अथवा क्वाथ अधिक समय तक सेवन करने से वात शोणित से मुक्ति होती है। पिप्पली अथवा वर्धमान को पथ्या या गुड के साथ सेवन करना चाहिए ॥४४। ॥४५॥ दाह के साथ यदि वात रक्त हो तो पटोल, त्रिफला, तीव्र कटुक अमृत से साधित पङ्क पीवे, इससे शीघ्र लाभ हो जाता है ॥४६॥ म दोष्ण गिलोय और त्रिफला के जल के साथ गूगल, का सेवन करे अथवा बला, पुनर्नवा, एरण्ड बृहती, दोनो छोटे-बडे गोखरू, हीग और लवण के द्वारा साधित का पान करे तो शीघ्र ही वायु के रोग का अपहरण हो जाता है। कार्षिक पिप्पली मूल, पाचो प्रकार के नमक, पीपल, चित्रक, सोंट, त्रिफला, त्रिवृता, वच, दो क्षार, शीतलदन्ती, स्वर्ण क्षीरी, विषाणिका इन सबकी कोल प्रमाण वाली बटी बनावे और उसे सौवीर के साथ ग्रहण करे तो वातज रोगो को लाभ होता है। शोथाव पाक मे त्रिवृता अबकि उदरादिक में बहुत बढ जावे तो लेना चाहिए। क्षीर वर्षाभु, दारु और नागर के साथ लेने पर शोथ (सूजन) के हरण करने

में अच्छा काम किया करता है। अर्क, वर्षा भूनिम्ब के क्वाथ से सेक करने करने पर भी शोथ म लाभ होता है ॥४७ स ५१॥

साधित पिवत मपि पतत्यर्शो न सशय ॥५२
विल्ववसेनाञ्जनिर्गुण्डीसाधित चापि लवणम् ।
विडङ्गानलसिन्धूत्थरास्नाग्रक्षीरदारुभि. ॥५३
तैल चतुर्गुण सिद्ध कटुद्रव्य जलेन वा ।
गण्डमालापह तैलमभ्यगाद्गलगण्डनुत् ॥५४
शटीभुनागवलयक्वाथ क्षीररसंयुतम् ।
पयस्यापिप्पलीवासाकल्क सिद्ध क्षये हितम् ॥५५
वचाविडमयाशु ठीहिंगुकुष्ठाग्निदीप्यकान् ।
द्वित्रिपट्चतुरेकासप्तपञ्चा शिका. क्रमात् ॥५६
चूर्ण पीत हन्ति गुल्ममुदर शूलकासनुत् ।
पाठानिकुम्भत्रिकटुत्रिफलाग्निमुसाधिता ।५७
मूत्रेण चूर्णगुटिका गुल्मप्लीहादिमर्दनी ।
वासानिम्बपटोलानि त्रिफला वातपित्तनुत् ॥५८

पलाश के क्वाथ मम को त्रिगुन भस्म के जल मे साधित करके घृत पीवे तो अर्श का पतन हो जाता है, इसम कुछ भी सशय नही है ॥५१॥ विल्वत्रसेन, अञ्ज, निर्गुण्डी म साधित लवण विडङ्ग, अनल, सिन्धूत्थ रास्नाग्र क्षीर दारु म सिद्ध चतुर्गुण तैल अथवा जल के साथ कटुद्रव्य का तैल गण्डमाला का अपहरण करने वाला है और अभ्यङ्ग करने से गलगण्ड को नष्ट करता है ।५३॥५४॥ शटीभुनाग वलय का क्वाथ क्षार रस से युक्त पयस्या पिप्पली और वासा (अडूसा) का कल्क सिद्ध किया हुआ क्षय मे लाभ करता है। वच विड, अभया सौंठ, हींग कुष्ठ, अग्नि दीप्यकों को दो, तीन, छ, चार, एक, सात और पाँच क्रम से भाग लेकर चूर्ण बनावे और उसको ग्रहण करे तो गुल्म उदर शूल कास को नष्ट करता है। पाठा, निकुम्भ, त्रिकुटी (सौंठ, मिर्च और पीपल) और त्रिफला को अग्नि सुसाधित करके मूत्र के साथ चूर्ण करके गुटिका बनावे। इसके सेवन से गुल्म, प्लीहा आदि का मर्दन करने वाली

होती है। वाचा, नीम और पटोल पत्र तथा त्रिफला वात और पित्त का नाशक है ॥५६॥५७॥५८॥

लिह्यात्क्षौद्रेण विडङ्गचूर्णं कृमिविनाशनम् ।
विडङ्गसैन्धवक्षारमूत्रेणापि हरीतकी ॥५६
शल्लकीबदरीजम्बुपियालाम्रार्जुनत्वच ।
पीता क्षीरेण मध्वक्ता पृथक्शोणितवारणाः ॥६०
बिल्वाम्रधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसा समा ।
पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ॥६१
चांगेरीकोलदध्यम्बुनागरक्षारसंयुतम् ।
घृतयुक्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥६२
विडङ्गातिविषामुस्तदारुपाठाकलिंगकम् ।
मरीचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥६३
शर्करासिन्धुशुण्ठीभिः कृष्णा मधुगुडेन वा ।
द्वे द्वे खादद्धरीतक्यौ जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥६४

बायविडङ्ग का चूर्ण क्षौद्र (शहद) के साथ चाटने से कृमियों का विनाश होता है। विडङ्ग, सैन्धव क्षार और मूत्र के साथ हरीतकी भी कृमिनाशक होती है। (मूत्र के नाम से गोमूत्र का ही ग्रहण करना चाहिए)॥५६॥ शल्लकी, बदरी, जम्बू, पियाल, आम्र और अर्जुन वृक्षों की छाल क्षीर के साथ मधु से भक्त कर के पीने से शोणित (रक्त) का वारण होता है ॥६०॥ बिल्व (बेल), आम्र धातकी पाठा, सोंठ और मोचरस सम भाग पीने से गुड़ और तक्र (मट्ठा) के साथ दुर्जय अतीसार को भी बन्द कर देते हैं ॥६१॥ चांगेरी (खट्टी तिपत्ती), कोल दधि अम्बु नागर क्षार से युक्त क्वाथ करके घृत के सहित पीना चाहिए। इससे गुद भ्रंश के रोग का नाश होता है ॥६२॥ बायविडङ्ग अतिविषा,मुस्त दारु पाठा और लिंगक को गोल मिर्चों से सम युक्त करके सेवन करने से शोथ अतिसार का नाश होता है ॥६३॥ शर्करा सिन्धु और शुण्ठी के साथ कृष्णा अथवा मधु और गुड के साथ दो दो हर्रे खानी

चाहिए। इससे मनुष्य सुखी रहते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है। ॥६४॥

त्रिफला पिप्पलीयुक्ता समध्वाज्या तथैव सा।
चूर्णमामलकं तेन सुरसेन तु भावितम् ॥६५
मध्वाज्यशर्करायुक्तं लीढ्वा क्षीरं पयः पिबेत्।
माषापिप्पलिशालीना यवगोधूमयोस्तथा ॥६६
चूर्णभागं समांश्च पचेत्पिप्पलिकां शुभाम्।
तां भक्षयित्वा च पिबेच्छर्करामधुरं पयः ॥६७
नवश्चटकवद्गच्छेद्दश वारान्स्त्रियं ध्रुवम्।
समङ्गाधातकीपुष्पलोध्रनीलोत्पलानि च ॥६८
एतत्क्षीरेण दातव्यं स्त्रीणां प्रदरनाशनम्।
बीजं कौरण्टकं चापि मधुकं श्वेतचन्दनम् ॥६९
पद्मोत्पलस्य मूलानि मधुकं शर्करातिलान्।
द्रवमाणेषु गर्भेषु गर्भस्थापनमुत्तमम् ॥७०

त्रिफला और पीपल मधु और घृत के सहित उसी प्रकार से सेवन करे। आँवले का चूर्ण उसी सुरस से भावित कर मधु घृत और शर्करा से युक्त चाटे अथवा क्षीर का स्वच्छ दूध पीवे। माष, पिप्पली, शाली, यव और गोधूम (गेहूँ) का चूर्ण के सम भाग पिप्पलिका का पाचन करे और फिर उसे खाकर शर्करा से मधुर बनाया हुआ दूध पीवे तो नवीन चटक की भाँति दशवार स्त्री का समर करने की शक्ति प्राप्ति होती है। समङ्गा लोध्र, नीलोत्पल इनको क्षीर के साथ लेने से स्त्रियों के प्रदर का नाश हो जाता है। कौरण्टकबीज, मधुक, श्वेत चन्दन, पद्मोत्पल का मूल, मधुक, शर्करा और तिलों को गर्भों के द्रवमाण होने पर सेवन करने से गर्भ की स्थापना उत्तम रीति से हो जाती है। ।६५ से ७० तक।

देवदारु सम कुष्ठ नलद विश्वभेषजम्।
लेपः काञ्जिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोतिनुत् ॥७१

वस्त्रपूतं क्षिपेत्कोष्णं सिन्धूत्थं कर्णशूलनुत् ।
लशुनार्द्रकशिग्रूणां कदल्या वा रसः पृथक् ॥७२
बलाशतावरीरास्नामृता सैरीयकैः पिबेत् ।
त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमम् ॥७३
त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थैर्घृतं सिद्धं पिबेन्नरः ।
चक्षुष्यं भेदनं हृद्यं दीपनं कफरोगनुत् ॥७४
नीलोत्पलस्य किञ्जल्कं गोशकृद्रसयुतम् ।
गुटिकाञ्जनमेतस्याद्दिनराज्यन्ध्ययोर्हितम् ॥७५
यष्टीमधुवचाकृष्णाबीजानां कुटजस्य च ।
कल्केनाऽऽलोड्य निम्बस्य कषायो वमनाय सः ॥७६
स्निग्धस्विन्नयवं तोयं प्रादातव्यं विरेचनम् ।
अन्यथा योजितं कुर्यान्मन्दाग्निं गौरवारुची ॥७७
पथ्यासैन्धवकृष्णानां चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ।
विरेकं सर्वरोगघ्नं श्रेष्ठो नाराचसंज्ञकः ॥७८
सिद्धयोगा मुनिभ्यो ये आत्रेयेण प्रदर्शिताः ।
सर्वरोगहराः सर्वयोगाग्र्या सुश्रुतेन हि ॥७९

देवदारु, नमक, कुष्ठ, नलद तिष्यभेषज इनको कांजी के साथ भली भाँति पीसकर तैल के सहित लेप करने से शिरोवेदना का नाश होता है ॥७१॥ थोड़ा गर्म सिन्धूत्थ को वस्त्र से छान कर कान में डालने से कर्ण पीड़ा का नाश होता है। लहसुन, अदरख, शिग्रू का रस अथवा पृथक् कदली (केला) का रस, बला शतावर रास्ना और अमृता सैरीयक के साथ पीवे। त्रिफला के साथ घृत तिमिर का उत्तम नाशक होता है ॥७२॥७३॥ त्रिफला, व्योष, सिन्धूत्थ के द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत मनुष्य पीवे तो चक्षुष्य, भेदन, हृद्य दीपन तथा कफो के रोगों का नाशक होता है ॥७४॥ नीलोत्पल का किञ्जल्क गौ के गोबर के रस में युक्त गुटिकाञ्जन दिन रात्र्यन्ध, के लिये लाभप्रद होता है ॥७५॥ यष्टी, वचा और कृष्णा के बीज और कुटज के कल्क से आलोडित कर और नीम का कषाय वमन के लिए होता है ॥७६॥ स्निग्ध यव का अन्न

विरेचन के लिये देना चाहिए। अन्य प्रकार से योजित किया हुआ यह मन्दाग्नि, भारापन और अरुचि करता है ॥७७॥ यथा, सैन्धव और कृष्णा का चूर्ण उष्णजल के साथ पीवे तो नाराच संज्ञा वाला विरेक समस्त रोगों का नाशक एवं श्रेष्ठ होता है ॥७८॥ आत्रेय ने मुनियों को ये सिद्ध योग बताये हैं। सुश्रुत ने ये समस्त योगों से श्रेष्ठ तथा सब रोगों को हरने वाले कहे हैं ॥७६॥

१२३—मृत्युञ्जयकल्पाः

कल्पान्मृत्युञ्जयान्वक्ष्ये ह्यायुर्दान्रोगमर्दनान् ।
त्रिशती रोगहा सेव्या मध्वाज्यत्रिफलामृता ॥१
पल पलार्धं कर्षं वा त्रिफला खक्ला तथा ।
विल्वतैलस्य नस्य च मास पञ्चशती कवि ॥२
रोगापमृत्युवलिजित्तिल भल्लातक तथा ।
पञ्चाङ्ग बाकुचीचूर्णं षण्मास खदिरोदकं ॥३
क्वाथं कुष्ट जयेत्सेव्य चूर्णं नीलकुरुण्टजम् ।
क्षीरेण मधुना वाऽपि शतायु खड्दुग्धभुक् ॥४
मध्वाज्यशुण्ठी ससेव्य पल प्रात स मृत्युजित् ।
वलीपलितजिज्जीवन्माण्डूकीचूर्णदुग्धपा ॥५
उच्चटा मधुना कर्षं पयसा मृत्युजिन्नर ।
मध्वाज्य पयसा वाऽपि निर्गुण्डी मृत्युरोगजित् ॥६
पलाशतैल कर्षक षण्मास मधुना पिबेत् ।
दुग्धभाजी पञ्चशती महत्यायुर्भवेन्नर ॥७
ज्योतिष्मतीपत्ररस पयसा त्रिफला पिबेत् ।
मधुनाऽऽज्य तनस्तद्वच्छनावर्या रज पलम् ॥८

भगवान् धन्वन्तरि ने कहा—अब हम मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले तथा आयु के देने वाले और रोगों का मर्दन करने वाले कल्पों को बतायेंगे। (मधु घृत त्रिफला और अमृता (गिलोय) त्रिशती (तीन सौ वर्ष तक) रोगों को हरण करने वाली सेवन करनी चाहिए)॥१॥ एक पल, आधापल या

एक कर्ष त्रिफला तथा सकला की और बिल्व तैल के नस्य को एक मास तक सेवन करने से पञ्चशती की आयु वाला कवि होता है)। रोग, अपमृत्यु और बली के ऊपर विजय पाता है। तिल, भल्लातक और पञ्चाङ्ग बाकुची का चूर्ण को खदिर के जल के क्वाथ के सेवन से कुष्ठ पर जय पाता है। नील कुरुण्ट के चूर्ण को दूध के अथवा मधु के साथ सेवन करने से और लौह से युक्त दूध पीने से मनुष्य सौ वर्ष की आयु वाला हो जाता है।२।३।४। (मधु घृत और सौंठ एक पल प्रातःकाल में सेवन करने वाला मृत्यु को जीतने वाला हो जाता है) माण्डूकी के चूर्ण को दूध के साथ सेवन से बली (झुर्रियाँ) और पलित (बुढ़ापे में होने वाली केशों की सफेदी) को जीत लेता है ॥५॥ मधु और पय के सेवन से मनुष्य मृत्युजित् होता है। शहद और घृत अथवा दूध के साथ निर्गुण्डी का सेवन भी मृत्यु एवं रोगों को जीतने वाला बना देता है ॥६॥ एक कर्ष पलाश (ढाक के बीज) का तैल छै मास तक मधु के साथ पीवे और दूध का भोजन रक्खे पाँच सौ सहस्र आयु वाला मनुष्य हो जाता है ॥७॥ ज्योतिष्मती के पत्तों का स्वरस को और त्रिफला दूध के साथ पीवे तथा इसी भाँति मधु के साथ घृत और एक पल शतावर का चूर्ण सेवन करे ॥८॥

क्षौद्राज्यं पयसा वाऽपि निर्गुण्डी रोगमृत्युजित् ।
पञ्चाङ्ग निम्बचूर्णस्य खदिरक्वाथभावितम् ॥९
कर्षं भृंगरसेनापि रोगजिच्चामरो भवेत् ।
रुदन्तिकाज्यमधुभुग्दुग्धभोजी च मृत्युजित् ॥१०
कर्षचूर्णं हरीतक्या भावितं भृंगराड्रसैः ।
घृतेन मधुनाऽऽसेव्य त्रिशतायुश्च रोगजित् ॥११
वाराहिकाभृंगरजं लोहचूर्णं शतावरी ।
साज्यं कर्षं पञ्चशती कान्तचूर्णं शतावरी ॥१२
भावितं भृंगराजेन मध्वाज्यं त्रिशतो भवेत् ।
आम्रामृतात्रिवृत्तुल्यं गन्धकं च कुमारिका ॥१३
रसैर्विमृज्य द्वे गुञ्जे साज्यं पञ्चशताब्दवान् ।
अश्वगन्धाफलं तैलं साज्यं खण्डं शताब्दवान् ॥१४

पल पुनर्नवाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबेद् ।
अशोकचूर्णस्य पल मध्वाज्य पयसार्तिनुत् ॥१५
निम्बस्य तैल समधु नस्यात्कृष्णकच शती ।
वर्षमक्ष समध्वाज्य शतायु पयसा पिबन् ॥१६

शहत घृत अथवा दूध के साथ निर्गुण्डी का सेवन करने से रोगों पर तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। नीम के पञ्चाङ्ग (पत्र, पुष्प फल मूल और छाल) का चूर्ण खदिर के क्वाथ से भावित करे अर्थात् भावना देवे। उसमे से एक वर्ष प्रमाण लेकर भृङ्गराज (भंगरा) के रस से सेवन करना चाहिए। इससे रोगों पर विजय पाता है और अमर हो जाता है। रुदन्तिका अर्थात् रुदवन्ती का मधु और घृत के साथ सेवन करे और दुग्ध का आहार कर तो मृत्यु को जीत लेता है ॥९॥१०॥ हरीतकी (हर) का एक वर्ष चूर्ण को भृंगराज के रस की भावना देव और फिर घृत और मधु के साथ सेवन करे तो मनुष्य रोगों को जीतकर तीन सौ वर्ष की आयुवाला हो जाता है। ॥११॥ वाराहिका भृंगरस लोह चूर्ण शतावर एक वर्ष घृत के साथ सेवन करे तो पाँच सौ वर्ष की उम्र वाला हो जावे। कास चूर्ण, शतावर को भृंगराज के रस से भावना देवे और मधु और घृत के साथ सेवन करे तो तीन सौ वर्ष की आयु वाला त्रिशती बन जाता है। आम्र, अमृता और त्रिवृत् के बराबर गन्धक को घृत कुमारी के रस से विमृष्ट करके दो गुञ्जा के प्रमाण में घृत के साथ सेवन करे तो पाँच सौ वर्ष की आयु वाला हो जाता है। अश्वगन्धा फल और तैल को घृत के सहित खांड का सेवन करने से सौ वर्ष की आयु वाला हो जाता है ॥१२॥१३॥१४॥ एक पल पुनर्नवा का चूर्ण शहत, घृत और दूध के साथ सेवन करे तथा एक पल अशोक का चूर्ण मधु घृत और दूध के साथ सेवन करने से आर्ति (रोग तथा पीडा) का नाशक है ॥१५॥(मधु के साथ निम्ब के तैल एवं नस्य से कृष्ण केशों वाला और सौ वर्ष की आयु वाला होता है) एक वर्ष अक्ष मधु और घृत के सहित दूध को पीवे तो शतायु (सौ वर्ष की आयु वाला) होता है ॥१६॥

अभया सगुडो जग्ध्वा घृतेन मधुरादिभि ।
दुग्धान्नभुक्कृष्णकेशोऽरोगी पंचशताब्दवान् ॥१७
पल कूष्माण्डिकाचूर्णं मध्वाज्यपयसा पिबन् :
मास दुग्धान्नभोजी च सहस्रायुर्विरोगवान् ॥१८
शालूकचूर्णं भृंगाज्य सुमध्वाज्य शताब्दकृत् ।
कटुतुम्बीतैलनस्य वर्ष शतद्वयाब्दवान् ॥१९
त्रिफला पिप्पली शुण्ठी सेविता त्रिशताब्दकृत् ।
शतावर्या पूर्वयोग सहस्रायुर्बलातिकृत् ॥२०
चित्रकेण तथा पूर्व तथा शुण्ठीविडङ्गत. ।
लोहेन भृंगराजेन वलया निम्बपञ्चकैः ॥२१
खदिरेण च निर्गुण्डया कटकार्यऽथ वासकात् ।
वर्षाभूवा तद्रसैर्वा भावितो वटिकाकृत' ॥२२
चूर्णं घृतैर्वा मधुना गुडाद्यै वारिणा तथा ।
ॐ हूं रु स इतिमन्त्रेण मन्त्रितो योगराजक ॥२३
मृतसञ्जीवनीकल्पो रोगमृत्युञ्जयो भवेत् ।
सुरासुरैश्च मुनिभि सेविता कल्पसागरा' ॥
गजायुर्वेद प्रोवाच पालकाप्योऽङ्गराजकम् ॥२४

(गुड क साथ अभया को घृत तथा मधु आदि के साथ खावे और दुग्धान्न का भोजन करे तो काले बालो वाला, बिना रोगो वाला और पाँच सौ वर्ष की आयु वाला हो जाता)है ॥१७॥ एक पल कूष्माण्डिका का चूर्ण एक पल को मधु, घृत और दूध के साथ पान कर और एक मास पर्यन्त दुग्धान्न का भोजन करे तो नीरोग और एक सहस्र वर्ष की आयु वाला हो जाता है। ॥१८॥ शालूक का चूर्ण और भृंगाज्य तथा मधु और घृत एक सौ वर्ष की आयु करने वाला होता है। कटुतुम्बी के तैल का नस्य एक वर्ष प्रमाण सेवन से दो सौ वर्ष की आयु प्रदान कर देता है ॥१९॥ (त्रिफला, पिप्पली, सोंठ का सेवन करने से तीन सौ वर्ष की आयु होती है) शतावरी का पूर्व योग करे तो सहस्र की आयु और बल करने वाला होता है ॥२०॥ तथा पहिले

चित्रक, शुंठि, विडंग, लौह, भृंगराज, बला, निम्ब के पञ्चक, खदिर, निर्गुण्डी, कटकारी, वासा और वर्षाभू इनसे अथवा इनके रसों से भावित कर वटिका बना लेवे अथवा चूर्ण को घृत, मधु गुड आदि तथा जल के साथ "ओं हूं सः"—इस मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित करे तो यह योगराज होता है तथा मृत सञ्जीवन कल्प होता है जो रोगों को और मृत्यु को जीत लेता है। ये कल्पों के सागर हैं। इनको सुर और असुरों ने तथा मुनियों ने सेवित किया है। पालकाप्य ने अंगराज के गजों के आयुर्वेद को बताया था ॥२१॥२२॥ ॥२३॥२४॥

१२४—गजचिकित्सा

गजलक्ष्मचिकित्सां च लोमपाद वदामि ते ।
दीर्घहस्ता महोच्छ्वासा प्रशस्तास्ते सहिष्णव. ॥१
विंशत्यष्टादशनखा शीतकालमदाश्च ये ।
दक्षिणश्चोन्नतो दन्तो बृंहितं जलदोपमम् ॥२
कर्णौ च विपुलौ येषां सूक्ष्मबिन्द्वन्वितास्त्वचि ।
ते धार्या न तथा धार्या वामना ये त्वलक्षणा ॥३
हस्तिन्य पार्श्वगर्भिण्यो ये च मूढा मतंगजा ।
वर्णं सत्त्वं बलं रूपं कान्तिं सहननं जवं ॥४
समस्थितो गजश्चेद्दवपड्ग्रामेऽरीञ्जयेत्सदा ।
कुञ्जरा परमा शोभा शिबिरस्य बलस्य च ॥५
आहनं कुञ्जरेश्चैव विजय पृथिवीक्षिता ।
पाकलेषु च सर्वेषु कर्तव्यमनुवासनम् ॥६
घृततैलाभ्यङ्गयुक्तं स्नानं वातविवर्जितम् ।
स्कन्धेषु च क्रिया कार्या तथा पालकवन्नृपं ॥७
गोमूत्रं पाण्डुरोगेषु रजनीभ्यां घृत द्विज ।
आनाहे तैलसिक्तस्य निषेवस्तस्य शस्यते ॥८

इस अध्याय में गजों की चिकित्सा के विषय में बताया जाता है। पालकाप्य ने कहा—हे लोमपाद ! अब मैं तुमको हाथियों के लक्षण और उनकी बतलाता हूँ। गज दीर्घहस्त (शुण्ड) वाले, महान् उच्छ्वास से युक्त और सहनशील होते हैं वे प्रशस्त माने जाते हैं ॥१॥ बीस अष्टादश नखों वाले और शीत काल में मद च्योतन करने वाले हैं तथा दाहिना दाँत जिनका कुछ उन्नत हो, बृहत् मेघ के समान हो, जिनके दोनों कान बड़े हों तथा जिनके त्वचा में छोटे छोटे बिन्दु हों ऐसे ही हाथियों पर सवारी करनी चाहिए। जो छोटे कद वाले और सुलक्षणों से रहित हों उन पर कभी सवारी नहीं करनी चाहिए और न ऐसे गजों को अपने यहाँ रखना ही चाहिए ॥२॥३॥ जिनके पार्श्व वर्तिनी हथिनियाँ गर्भिणी हों और मूढ़ गज हों ये अलक्षण गज होते हैं। वर्ण, सत्त्व, बल, रूप, कान्ति, संहनन, जव ये सातों लक्षण जिसमें स्थित हों ऐसा हाथी हो तो सर्वदा युद्ध स्थल में शत्रुओं को जीत लेता है। हाथी शिविर और सेना दोनों की परम शोभा करने वाले हुआ करते हैं ॥४॥५॥ राजा का विजय हमेशा हाथियों के द्वारा ही आदर वाला होता है। समस्त पालकों में अनुवासन करना चाहिए ॥६॥ घृत और तैल के अभ्यङ्ग में युक्त स्नान वात से रहित होता है। स्कन्धों में राजाओं की पालक की भाँति क्रिया करनी चाहिए ॥७॥ हे द्विज ! पाण्डु रोगों में गोमूत्र दानों तरह की हल्दी से घृत तैल से सिक्त उनके आनाह पर निषेक करना प्रशस्त कहा जाता है ॥८॥

लवणैः पञ्चभिर्मिश्रा प्रतिपानाय वारुणी ।
विडङ्गत्रिफलाव्योषसैं घवैः कवलान्कृतान् ॥९
मूर्च्छासु भोजयेन्नाग क्षौद्रं तोयं च पाययेत् ।
अभ्यगं शिरसः शूले नस्यं चैव प्रशस्यते ॥१०
नागानां स्नेहपुटकं पादरोगानुपक्रमेत् ।
पञ्चारकल्ककषायेण शोधनं च विधीयते ॥११
शिखितित्तिरलावानां पिप्पलीमरिचान्वितैः ।
रसैः सभोजयेन्नागं वेपथुर्यस्य जायते ॥१२

बालबिल्वं तथा लोध्रं धातकी सितया सह ।
अतीसारविनाशाय पिंडीं भुञ्जीत कुञ्जरः ॥१३
नस्यं करग्रहे देयं घृतं लवणसंयुतम् ।
मागधी नागराऽजाजी यवागूर्मुस्तसाधिता ॥१४
उत्कर्णके तु दातव्या वाराहं च तथा रसम् ।
दशमूलकुलत्थाम्लकाकमाचीविपाचितम् ॥१५
तैलं शृङ्खलसंयुक्तं गलग्रहगदापहम् ।
अष्टभिर्लवणैः पिष्टैः प्रसन्नं पाययेद्घृतम् ॥१६

पाँचो प्रकार के नमकों से मिश्रित वारुणी प्रतिपान के लिये देवे और विड ग त्रिफला, व्योष और सैन्धव से कवल करावे ॥६॥ नाग (हाथी को) मूच्छा में खिलवावे और क्षौद्र तथा जल पिलवावे । सिर के मूल में अभ्यंग एवं नस्य बहुत अच्छा कहा जाता है ॥१०॥ ह थियों के पाद रोगों में स्नेह पुटकों के द्वारा उपक्रम करना चाहिए । इसके अनन्तर वरक के कषाय से शोधन करने का विधान किया जाता है ॥११॥ जिस हाथी को कम्प होता है उसको मोर, तीतर लावाओं का पिप्पली, मिर्च से युक्त रसों के द्वारा भोजन कराना चाहिए ॥१२॥ यदि हाथी को अतीसार हो तो उसको नष्ट करने के लिए बालबिल्व लोध और धातकी का मिश्री के साथ पिण्ड बनाकर हाथी को खिलाना चाहिए । १३॥ करग्रह में लवण से युक्त घृत का नस्य देना चाहिए । मागधी, नागर अजाजी और मुस्त से साधित यवागू उत्कर्णक में गज को देनी चाहिए । तथा वाराह रस दशमूल कुलत्थ, अम्ल और काकमाची के द्वारा विपाक रूप में पकाया हुआ तैल शृङ्खला से युक्त करके देवे तो गलग्रह के रोग का नाशक होता है । आठ प्रकार के लवणों को पीसकर उनसे प्रसन्न घृत को पिलवाना चाहिए ॥१४॥१५॥१६॥

मूत्रभङ्गेऽथ वा वीजं वर्वयित्वा त्रपुषस्य च ।
त्वग्दोषेषु विधेन्निम्बं वृषं वा क्वथितं द्विपः ॥१७
गवां मूत्रं विडङ्गानि कृमियोष्ठेषु शस्यते ।
शुष्त्वरवणादाधासनमभि शृतं पयः ॥१८

क्षतक्षयकरं पाम तथा मांसरसः शुभः ।
मुद्गौदनं व्योषयुतमरुचौ तु प्रशस्यते ॥१९
त्रिवृद्व्योषाग्निदन्त्यर्कश्यामा क्षीरेभपिप्पली ।
एतैर्गुल्महरः स्नेहः कृतश्चैव तथा परः ॥२०
भेदनद्रावणाभ्यङ्गस्नेहपानानुवासनैः ।
सर्वानेव समुत्पन्नान्विद्रधीन्समुपाहरेत् ॥२१
षष्टिकं मुद्गयूषेण शारदेन तथा पिबेत् ।
बालबिल्वैस्तथा लेपः कटरोगेषु शस्यते ॥२२
विडङ्गेन्द्रयवौ हिंगु सरलं रजनीद्वयम् ।
पूर्वाह्णे दापयेत्पिण्डान्सर्वशूलोपशान्तये ॥२३
प्रधानभोजने तेषां षष्टिकव्रीहिशालयः ।
मध्यमौ यवगोधूमौ शेषा दन्तिनि चाधमाः ॥२४

मूत्र भंग में बीज और मधुप का क्वाथ देवे। त्वचा के दोषों में हाथी को नीम अथवा वृष का क्वाथ पिलाना चाहिए ॥१७॥ कोष्ठगत कृमियों में गोमूत्र और विडंग बहुत लाभप्रद होते हैं। शृंगवेर, कणा, द्राक्षा और शर्करा से भृत पय क्षतों के करने वाला होता है। पामा के लिये मांस का रस शुभ होता है। व्योष से युक्त मुद्गौदन अरुचि में लाभप्रद होता है ॥१८॥१९॥ त्रिवृत्, व्योष, अग्नि, दन्ती, अाक, श्यामा क्षीर,और पिप्पली इनके द्वारा तैयार किया हुआ स्नेह (तैल) गुल्म रोग को नष्ट करता है। इससे भेदन, द्रावण, अभ्यंग, स्नेहपान और अनुवासन से समस्त प्रकार की उत्पन्न विद्रधि की बीमारियों का हरण होता है ॥२०॥२१॥ तथा शारद मुद्ग यूष के साथ षष्टिक का पान करे। बालबिल्वों के द्वारा लेप करने से कट रोगों में लाभ होता है। ॥२२॥ विडंग इन्द्रजौ, हींग सरल और दोनों प्रकार की हल्दी इनके पिण्ड बनवा कर पूर्वाह्न में समस्त प्रकार के शूलों में दिलवाना चाहिए। इस से शूलों की शान्ति हो जाती है ॥२३॥ गजों का प्रधान भोजन षष्टिक, व्रीही और शाली होना चाहिए। इनका मध्यम श्रेणी का भोजन यव और गोधूम (गेहूँ)

माना गया है। शेष सभी प्रकार के हाथी के भोजन मध्यम श्रेणी के होते हैं। ।।२४।।

यवश्चैव तथैवेक्षुर्नागाना बलवर्धन ।
नागाना यवस शुष्क तथा धातुप्रकोपणम् ।।२५
मदक्षीणस्य नागस्य पय पान प्रशस्यते ।
दीपनीयस्तथा द्रव्यै शृतो मासरस शुभ ।।२६
वायस कुक्कुरश्चोभौ काकोलूककुल हरि ।
भवेत्क्षौद्रेण सयुक्त पिण्डोद्रेकगदापह ।।२७
कटुमत्स्यविडङ्गानि क्षार कोपातकीपय ।
हरिद्रा चेति धूपोऽय कुञ्जरस्य जयावह ।।२८
पिप्पलीतण्डुलीतैल माध्वीक माक्षिक तथा ।
नेत्रयो परिषेकोऽय दीपनीय प्रशस्यते ।।२९
पुरीष चटकायाश्च तथा पारावतस्य च ।
क्षीरवृक्ष करीपश्च प्रसन्न चेष्टमञ्जनम् ।।३०
अनेनाञ्जितनेत्रस्तु करोति कदन रणे ।
उत्पलानि च नीलानि मुस्त तगरमेव च ।।३१
तण्डुलोदकपिष्टानि नेत्रनिर्वापण परम् ।
नखवृद्धौ नखच्छेदस्तैलसेकश्च मास्यपि ।।३२
शय्यास्थान भवेच्चास्य करीषं पासुभिस्तथा ।
शरन्निदाघयो मध्ये सर्पिषा च तथेष्यते ।।३३

जौ और ईख हाथियों के बल के प्रति बढ़ाने वाले हैं। गजों को यवस शुष्क और धातु को प्रकुपित करने वाला होता है।।२५।। मद से जो हाथी क्षीण हो गया हो उसको दूध का पान प्रशस्त माना जाता है। दीपन करने वाले द्रव्यों के द्वारा शृत मास रस लाभप्रद होता है। वायस कुक्कुर ये दोनों काक उलूक और हरिण ये क्षौद्र में सयुक्त हो तो पिंड द्रेक रोग का नाशक होते हैं।।२६।।२७।। कटु मत्स्य, विडङ्ग क्षार, कोपातकी पय और हल्दी इनके द्वारा बनाया हुआ धूप गज को जय प्रदान करने वाला होता है।

पिप्पली और तण्डुली का तैल मात्वीक, मानिक इनमे नेत्रो मे परिषेक दीपनीय होता है और दीपन के लिये प्रशस्त माना जाता है ॥२८॥२६॥ घटका का पुरीष (बीट) तथा पारावत (कबूतर) का पुरीष, क्षीर वृक्ष और करीष मे प्रसन्न हो तो इनका अ ंजन बहुत ही अभीष्ट होता है। इस प्रकार के निर्मित अ जन से अञ्जित नेत्रो वाला रणभूमि मे एक दम कदन (संहार) किया करता है। नील उत्पल, मुस्त और तगर इनको तण्डुलोदक के द्वारा पीसकर नेत्रों निर्वापण करना बहुत अच्छा होता है। नखो की वृद्धि होने पर उनका छेदन करे और तैल के द्वार से कभी करना चाहिए। इसके शय्या का स्थान करीष और पांसु (धूलि) के द्वारा होना चाहिए। शरद और ग्रीष्म मे घृत से सेक अभीष्ट होता है ॥३० से ३२ तक॥

१२५—अश्ववाहनसार:

अश्ववाहनसार च वक्ष्ये चाश्वचिकित्सनम् ।
वाजिना सग्रह कार्यो धर्मकामर्थिसिद्धये ॥१
अश्विनी श्रवण हस्तमुत्तरात्रितय तथा ।
नक्षत्राणि प्रशस्तानि हयानामादिवाहने ॥२
हेमन्त शिशिरश्चैव वसन्तश्चाश्ववाहने ।
ग्रीष्मे शरदि वर्षासु निषिद्ध वाहन हये ॥३
तीक्ष्णैर्न चपलैर्दण्डैर्वदने न च ताडयेत् ।
कोलास्थिसकुले चैव विषमे कण्टकान्विते ॥४
वालुकापङ्कसछन्ने गर्तागर्तप्रदूषिते ।
अचित्तज्ञो विनोपायैर्वाहन कुरुते तु य ॥५
स वाह्यते हयेनैव पृष्ठस्थ कटिवा विना ।
छन्द विज्ञापयेत्कोऽपि सुकृती धीमता वर ॥६
अभ्यासादभियोगाच्च विना शास्त्र स्वचाहव ।
स्नातस्य प्राङ मखस्याथ देवान्वपुषि योजयेत् ।७

प्रणवादिनमोन्तेन स्वबीजेन यथाक्रमम् ।
ब्रह्मा चित्ते बले विष्णुर्वैनतेयः पराक्रमे ॥८

भगवान् धन्वन्तरी ने कहा—अब मैं इस अध्याय में अश्व वाहन का सार बताऊँगा और अश्वों की चिकित्सा भी वर्णन करूँगा। अश्वों का सङ्ग्रह धर्म कर्म के अर्थ की सिद्धि के लिये अवश्य ही करना चाहिए ॥१॥ घोड़ों के आदि वाहन करने के लिये अश्विनी, श्रवण, हस्त और तीनों उत्तरा ये नक्षत्र परम प्रशस्त माने गये हैं ॥२॥ अश्वों के वाहन में अर्थात् सवारी करने में हेमन्त, शिशिर और वसन्त ये तीनों ऋतु प्रशस्त होती हैं। ग्रीष्म शरद, और वर्षा इन ऋतुओं में अश्वों का वाहन निषिद्ध माना गया है ॥३॥ तेज और चपल दाढ़ों से शरीर में ताड़न नहीं करना चाहिए। कील, अस्थि (हड्डी) से घिरे हुए, विषम (ऊँचे-नीचे) कण्टकों से युक्त, बालू और कीच से सहित, खारखड्डों से प्रदूषित स्थल में जिस को न जानने वाला जो बिना उपायों के वाहन किया करता है वह अश्व के द्वारा ही पीठ पर बिना कटिबन्ध के लिये वहन किया जाता है। ऐसे पुरुष को बुद्धिमानों में श्रेष्ठ पुण्यात्मा किसी का छात्र बिताया करा देना चाहिए। ४॥५॥६॥ अभ्यास और अभियोग से बिना शास्त्र के ज्ञान के अश्ववाहन करता है उसे स्नान करके और पूर्व की ओर मुख करके शरीर पर देवों को योजित करना चाहिए ॥७॥ आदि में प्रणव और अन्त में नमः —यह लगाकर स्व बीज से चित्त में ब्रह्मा का, बल में विष्णु का और पराक्रम में वैनतेय का न्यास करना चाहिए ॥८॥

पार्श्वे रुद्रा गुरुर्बुद्धौ विश्वे देवाश्च मर्मसु ।
दृगावर्ते हृदीन्द्रश्चैवर्गायोरश्विनौ तथा ॥९
जठरेऽग्निः स्वधा स्वेदे वाग्जिह्वायां जवेऽनिलः ।
पृष्ठतो नाकपृष्ठस्तु खुराग्रे सर्वपर्वताः ॥१०
नागाश्च रोमकूपेषु हृदि चान्द्रमसी कला ।
तेजस्यग्नी रतिः श्रोण्यां ललाटे च जगत्पतिः ॥११

ग्रहाश्च ह्रेषिते चैव तथैवोरसि वासुकिः ।
उपोषितोऽर्चयेत्सादी हय दक्षश्रुतौ जपेत् ॥१२
हय गन्धर्वराजस्त्वं शृणुष्व वचन मम ।
गन्धर्वकुलजातस्त्वं मा भूस्त्व कुलदूषक. ॥१३
द्विजाना सत्यवाक्येन सोमस्य गरुडस्य च ।
रुद्रस्य वरुणस्यैव पवनस्य बलेन च ॥१४
हुताशनस्य दीप्त्या च स्मर जाति तुरगम ।
स्मर राजेन्द्रपुत्रस्त्वं सत्यवाक्यमनुस्मर ॥१५
स्मर त वारुणी कन्या स्मर त्व कौस्तुभ मणिम् ।
क्षीरोदसागरे चैव मथ्यमाने सुरासुरै ॥१६
तत्र देवकुले जात. स्ववाक्य परिपालय ।
कुले जातस्त्वमश्वाना मित्र मे भव शाश्वतम् ॥१७

पार्श्व भाग मे रुद्र, बुद्धि मे गुरु, मर्म भागो मे देवगण, इरावर्ती नेत्रो मे इन्दु और सूय, कानो मे अश्विनीकुमार, पेट मे अग्नि, पसीने मे स्वधा, जिह्वा मे वाग्देवता, वेग मे अनिल, पृष्ठ भाग मे नाकपृष्ठ, खुरो के अग्रभाग में समस्त पर्वत, रोमकूपो मे तारागण, हृदय मे चन्द्रमा की कला, तेज मे अग्नि, श्रोणी मे रति, ललाट प्रदेश मे जगत् के स्वामी, ह्रेषित (हिनहिनाना) मे ग्रहगण, उर स्थल मे वासुकि का ध्यान करके सादी (सवार होने वाले) को हय का उपोषित रहकर अर्चन करना चाहिए तथा दक्ष श्रुति मे जप करना चाहिए ॥६ से १२॥ अश्व के समक्ष उसका पूजन करने के पश्चात् कहे—हे अश्व ! आप गन्धर्व राज है, मेरे वचन का श्रवण करो। आप गन्धर्व कुल मे उत्पन्न हुए है। इसलिये आप कुल का दोष लगाने वाले मत होवो ॥१३॥ ब्राह्मणो के सत्य वाक्य से सोम, गरुड, रुद्र, वरुण और पवन क बल से तथा हुताशन (अग्नि) की दीप्ति से हे तुरङ्गम ! अपनी जाति का स्मरण करो। तुम राजेन्द्र के पुत्र हो—इसका स्मरण करो और सत्य वचनो का अनुस्मरण कर लो ॥१४।१५॥ तुम वारुणी कन्या का स्मरण करो और तुम कौस्तुभ मणि की याद करो। सुर और असुरो के द्वारा क्षीर सागर के मन्थन किये जाने पर वहाँ देव कुल मे

आप उत्पन्न हुए हैं। अत अपने वाक्य का पालन करो। आप अश्वों के कुल में अब उत्पन्न हुए हैं। इसलिए मेरे सर्वदा रहने वाले मित्र हो जाओ ॥१६।१७॥

शृणु मित्र त्वमेतच्च सिद्धो मे भव वाहन।
विजय रक्ष मा चैव समरे सिद्धिमावह ॥१८
तव पृष्ठ समारुह्य हता दैत्या सुरै पुरा।
अधुना त्वा समारुह्य जेष्यामि रिपुवाहिनीम् ॥१९
कर्णे जाप तत कृत्वा विमुह्य च तथाऽप्यरीन्।
पर्यनियद्धय सादी वाहयेद्युद्धगो जयम् ॥२०
सजाता स्वशरीरेण दोषा प्रायेण वाजिनाम्।
हन्यन्तेऽतिप्रयत्नेन गुणा सादिवरै पुन ॥२१
सहजा इव दृश्यन्त गुणा सादिवरोद्भवा,।
नाशयन्ति गुणानन्ये सादिन सहजानपि ॥२२
गुणानेको विजानाति वेत्ति दोषास्तथाऽपर।
धन्यो धीमान्द्वय वेत्ति नोभय वेत्ति मन्दधीः ॥२३
अकर्मज्ञोऽनुपायज्ञो वेगासक्तोऽपि कोपन।
जपदण्डरानिश्चितो य शस्तोऽपि न शस्यते ॥२४

हे मित्र ! सुनो तुम मेरे वाहन सिद्ध हो गये हो अब तुम मेरी और विजय की रक्षा करो और सग्राम म सिद्धि प्रदान करो ॥१८॥ पहिले प्राचीन समय म देवगण ने तुम्हारी पीठ पर चढ़कर दैत्यो को युद्ध म मारा था, अब मैं तुम्हारी पीठ पर चढ़कर शत्रु की सेना को जीतूंगा ॥१९॥ इस प्रकार से अश्व के कान म इसका सुनाकर फिर शत्रुओ को विमोहित करके सादी (सवार) को अश्व पर पर्यानियन करना चाहिए और इसके विधान से युद्ध स्थल म जाने वाला सवार जय प्राप्त कर ॥२०॥ अपने शरीर स प्राय अश्वो के दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनका हनन किया जाता है। सादियो को पुन अत्यन्त प्रयत्न से गुण उत्पन्न करने चाहिए ॥२१॥ सादि श्रेष्ठो के उत्पन्न गुण स्वाभाविक से दिखलाई दिया करते हैं। सादिगण (सवार) उनके सहज गुणो को भी नष्ट कर

दिया करते हैं ॥२२॥ एक तो उनके गुणों को जानता है और दूसरा उनके दोषों का ज्ञान रखता है। वह बुद्धिमान् पुरुष धन्य है जो अश्व को पहिचानता है। जो मन्दबुद्धि वाला होता है वह दोनों बात नहीं जानता है। ॥२३॥ धर्म का ज्ञान न रखने वाला, उपायों को नहीं जानने वाला, वेगासक्त क्रोधी, जय, दण्ड मे रति रखने वाला जो चित्त होता है वह प्रशस्त होता हुआ भी प्रशंसनीय नहीं कहा जाता है ॥२४॥

उपायज्ञोऽश्व चित्तज्ञो विशुद्धो दोषनाशनः।
गुणार्जनपरो नित्यं सर्वकर्मविशारदः ॥२५
प्रग्रहेण गृहीत्वाऽथ प्रविष्टो बाहभूतलम्।
सव्यापसव्यभेदेन वाहनीयः सुसादिना ॥२६
आरुह्य सहसा नैव ताडनीयो हयोत्तमः।
ताडनाद् भयमाप्नोति भयान्मोहश्च जायते ॥२७
प्रातः सादी प्लुतैर्नैव वल्गामुद्धृत्य चालयेत्।
मन्द मन्द विना नाल धृतवल्गो दिनान्तरे ॥२८
प्रोक्तमाश्वसम साम भेदोऽश्वेन नियोज्यते।
कशादिताडन दण्डो दान कालसहिष्णुता ॥२९
पूर्वपूर्वविशुद्धौ तु विदध्यादुत्तरोत्तरम्।
जिह्वातले विना योग विदध्याद्वाहने हये ॥३०
गुणोत्तरशता वल्गा सृक्कण्या सह गाहयेत्।
विस्माय वाहन कुर्याच्छिथिलानां शनैं शनैं ॥३१
हयजिह्वाङ्गमाहीने जिह्वाग्रन्थि विमोचयेत्।
यावता मोचवेत्तावद्यावत्स्तोभ न मुञ्चति ॥३२

जो उपायों का ज्ञाता, चित्त का ज्ञान रखने वाला, विशुद्ध और दोषों का नाश करने वाला तथा गुणों का अर्जन करने वाला होता है वह नित्य ही समस्त कर्मों का पण्डित होता है ॥२५॥ बागडोर को प्र ण कर सवारी करके

भूतल म प्रवेश करने वाले दाँये, बाँय व भेद मे अच्छे सवार को अश्व का वाहन करना चाहिए ॥२६॥ तुरन्त चढ़ते ही उत्तम अश्व को ताडित नही करना चाहिए। ताडन करने से अश्व भय को प्राप्त हो जाता है और भय से फिर उसे मोह उत्पन्न होता है ॥२७॥ प्रातःकाल म सादी प्लुत गति से ही वल्गा (लगाम) को पकडकर उसे चलाना चाहिए। धीरे धीरे नाल के बिना वल्गा को पकडकर दिगान्तर म चलावे ॥२८॥ अश्व स रम्य चित्त साम भेद बताया गया है। इसी रीति स अश्व का नियोजन किया जाता है। कशा (चाबुक) आदि स उसका ताडन करना दण्ड दान और काल सहिष्णुता है ॥२९॥ पूव पूव की विशुद्धि होने पर उत्तर उत्तर को करना चाहिए। इसके वाहन करन म वल्गा को बिना योग के जिह्वा के तल म करना चाहिए। ॥३०॥ गुणोत्तरयुत वल्गा (लगाम) को सृक्किणी (मुँह की अगल-बगल की बाही) के साथ वाहन करना चाहिए। वाहन को विश्वासित करके शिथिला को धीरे धीरे करे ॥३१॥ अश्व के जिह्वाग्र को आहीन होने पर जिह्वा की ग्रन्थि को छुडा देना चाहिए। जब तक स्तोभ का त्याग नही करता है तब तक गाढता को नही छुडाना चाहिए ॥३२॥

कुर्यान्छिथिलमुरस्त्राणमविनाश च मुञ्चति।
ऊर्ध्वानन स्वभावाद्यस्तस्योरस्त्राणमश्लथम् ॥३३
विधाय वाहयेद् दृष्ट्वा लीलया सादिसत्तम।
तस्य सव्यन पूर्वण सयुक्त सव्यवल्गया ॥३४
ग कुर्यात्पश्चिम पाद गृहीतस्तेन दक्षिण।
प्रयोगानेन यो वामे कुर्यात वामवल्गया ॥३५
पादो तेनापि पाद स्याद् गृहीतो वाम एव हि।
अग्र चेच्चरणे त्यस्त जायते सुदृढासनम् ॥३६
यो हतौ दुष्करे चात्र मात्के नाटकायनम्।
गत्यहीन गतीनाना हनने गुणान तथा ॥३७
स्वभाव हि तुरगस्य मुख्यश्चायत न पुन।
न चरत्य तुरङ्गाणा पादग्रहणाहनव ॥३८

विश्वस्त हयमालोक्य गाढमापीड्य चाऽऽसनम् ।
रोचयित्वा मुखे पाद ग्राह्यते लोकन स्मृतम् ॥३६
गाढमापीड्य रागाभ्या वल्गामाकृष्य गृह्यते ।
तद्बन्धनाद् यपाद तद्बद्धमतमुच्यते ॥४०

इस उपचारण को करे और अभिमान को त्याग देता है। जो स्वभाव से ऊपर की मुँह करने वाला हो उसका उपचारण अलग होता है ॥३३॥ श्रेष्ठ सवार को ऐसा करके दृष्टि से लोला पूर्वक उसका वाहन करना चाहिए। उसके पूर्व सव्य (दक्षिण) से प्रयुक्त को सव्य वल्गा से पश्चिम पाद को जो करता है उससे दक्षिण गृहीत होता है। इसी क्रम से जो वाम (बाँई) वल्गा (लगाम) से वाम मे करता है उससे भी वाम ही पाद गृहीत होता है। यदि अग्र चरण का त्याग कर दिया जावे तो इसके करने पर मुद्गासन हो जाता है ॥३४॥३५॥३६॥ जो दोनो द्रुत हो तो दुष्कर मोटक मे नाटकायन होता है। सव्य से हीन हवन मे तथा मुख न म सलोकाग होता है। फिर मुख का आवर्तन करना अश्व का स्वभाव होता है। इस प्रकार से अश्वों के पादग्रहण के हेतु नही होते है ॥३७॥३८॥ अश्व को पूर्णतया विश्वस्त देखकर फिर खूब देखकर आसन का प्रपीडन करे। मुख म रोचन करके पाद का ग्रहण कराने वाले का वह लोकन होता है ॥३६॥ दोनो रागो से गाढ रूप से आपीडन करके वल्गा को खीच कर ग्रहण किया जाता है। उसके बन्धन से मुख पाद होता है इसी भाँति बन्धन कहा जाता है ॥४०॥

सम्योज्य वल्गया पादान्वरगामालोच्य वाञ्छितम् ।
बाह्यपाष्णिप्रयोगात्तु यत्र तन्मोटन मतम् ॥४१
प्रलया विप्लवे ज्ञात्वा क्रमेणानेन बुद्धिमान् ।
मोटमेन चतुर्थेन विधिरेप विधीयते ॥४२
नाऽऽयत्तेऽपश्च य पाद योऽश्वो लङ्घनमण्डले ।
मोटनोद्वक्कनाभ्या तु ग्राहयेत्पादमीदृशम् ॥४३
वरण्टयित्वाऽऽसने पाद मन्दमादाय यो व्रजेत् ।
ग्राह्यते सग्रहाद्यन तत्सगहणमुच्यते ॥४४

हत्वा पार्श्वप्रहारेण व्यान यो व्यग्रमानसम् ।
वल्गामाकृष्य पादेन ग्राह्य कण्टकपायनम् ॥४५
उल्केण योड् भ्रिणाऽनेन पार्ष्णिघातात्तुरगम ।
गृह्यते यत्खलीकृत्य खलीकार स चेष्यते ॥४६
गतित्रये प्रिय पादमादत्ते नैव वाञ्छित. ।
हत्वा तु यत्र दण्डेन गृह्यते हनन हि तत् ॥४७
खलीकृत्य चतुष्केण तुरङ्गो वल्गाऽन्य ।
उच्छ्वास्य ग्राह्यतेऽन्यत्र तस्मादुच्छ्वासन पुन. ॥४८

वल्गा स पादों को सयोजित करके और वल्गा को वाञ्छित देखकर बाह्य पार्ष्णि प्रयोग से जहाँ होता है वह मोटन कहा जाता है ॥४१॥ इस क्रम से बुद्धिमान् विप्लव मे प्रलया का ज्ञान करे और चतुर्थ मोटन से इसका विधान किया जाता है ॥४२॥ जो अश्व लङ्घन मण्डल मे नीचे की ओर पैर को नही रखता है । ऐसे पाद को मोटन और उद्वर्त्तन से ग्रहण करना चाहिए ॥४३॥ आसन पर गाढ रूप से वण्टन करके जो धीरे से लेकर जाता है और जहाँ सग्रह से ग्रहण कराया जाता है वह सग्रहण कहा जाता है ॥४४॥ व्यान मे स्थित पार्श्व भाग मे प्रहार मे व्यग्र मन वाले को हनन करके तथा वल्गा को खीच कर पैर से कण्टकपायन ग्रहण करने के योग्य हो और जो अश्व उल्क स चरण के द्वारा पार्ष्णिघातो की मदकर ग्रहण किया जाता है वह खली-करण होने स खलीकार कहा जाता है ॥४५ ।४६॥ तीन गतियो मे प्रिय और वाञ्छित जो पाद को नही रखता है और जहाँ पर दण्डे से हनन करके ही ग्रहण किया जाता है वह हनन कहा जाता है ।।४७।। चतुष्क के द्वारा खली-करण करके अन्य वल्गा से तुरङ्ग उच्छ्वसित करके अन्यत्र ग्रहण किया जाता है इसस उस उच्छ्वासन कहते है ॥४८॥

स्वभावादवहिरस्यन्त तस्या दिशि तदाननम् ।
नियोज्य ग्राह्येत्तत्तु मुखव्यावर्तन मतम् ॥४९
ग्राहयित्वा तत पाद त्रिविधामु यथाक्रमम् ।
साधयेत्तमश्वधारामु क्रमशोमण्डलादिषु ॥५०

आजानूर्ध्वानन वाह शिथिल वाहयेत्सुधी ।
अङ्गेषु लाघव यावत्तावत्त वाहयद्धयम् ॥५१
मृदु स्कन्धे लधुवक्त्रे शिथिल सवसधिषु ।
यदा स सादिना वश्य सगृह्णीयात्तदाहयम् ॥५२
न त्यजेत्पश्चिम पाद यदा साधु भवेत्तदा ।
तदाऽऽकृष्टिंविधातव्या पाणिभ्यामिह वल्गया ॥५३
एकाङ्घ्रिको यथा तिष्ठेदुद्ग्रीवाऽश्व समानन ।
धराया पश्चिमौ पादावन्तरिक्षे यदाश्रयौ ॥५४
तदा सधारण कुर्याद्गाढवाह च मुष्टिना ।
सहसैव समाकृष्टो यस्तुरगो न तिष्ठति ॥५५
शरीर विक्षिपन्त च साधयेन्मण्डलभ्रमै ।
क्षिपेत्स्कन्ध च यो वाह स च स्थाप्या हि वल्गया ॥५६

स्वभाव स बाहिर होने वाले के उसी दिशा म उसके मुख को नियोजित करके ग्रहण कराव । इसको मुख व्यावर्तन कहा गया है ॥४६॥ इसके पश्चात् ग्रहण कराकर क्रमानुसार पाद को तीन प्रकार की पञ्चधाराओ म और मण्डलादि मे साधन कराना चाहिए ॥५०॥ बुद्धिमान् को जानुपर्यन्त ऊर्ध्व आनन (मुख) वाला शिथिल वाहन करना चाहिए । अङ्गो मे जितना लाघव हो उतना ही अश्व का वाहन करना चाहिए ॥५१॥ स्कन्ध म मृदु (मुलायम) मुख म लघु और समस्त सधियो म शिथिल वह जब सवारी करने वाले के वशगत हो जाय तब ही अश्व का सग्रहण करना चाहिए ॥५२॥ जिस समय मे साधु हो तो पिछला पाद को नही त्यागना चाहिए । उस समय म हाथो स वल्गा (लगाम) के द्वारा आकृष्टि (खिचाव) करना चाहिए । ॥५३॥ जिस प्रकार स एक पैर वाला ऊपर को ग्रीवा (गरदन) करके सम न मुख वाला अश्व खडा हो और भूमि म पिछले दोनो पैर अन्तरिक्ष म आश्रित हो उस समय सधारण करना चाहिए और मुष्टि से गाढ वाह करे । इस प्रकार स तुरन्त ही समाकृष्ट (भली भाति म खींचा हुआ) अश्व स्थित न होवे और शरीर का विक्षेपण करता हुआ रह तो उसका मण्डल भ्रमा के

द्वारा साधन करना चाहिए। जो बाए कन्धे का क्षेपण करे उसे वल्गा के द्वारा स्थापित करना चाहिए ॥५४॥५५॥५६॥

गोमय लवण मूत्र वर्जयित मृत्तमन्वितम् ।
अगलेपो मक्षिकादिदशश्रमविनाशन. ॥५७
मध्ये भद्रादिजातीना मण्डो देयो हि सादिना ।
दशन सूक्ष्मकीटस्य निरुत्साह क्षुधा हय ॥५८
यथा वश्यस्तथा शिक्षा विनश्यन्त्यतिवाहिता. ।
अवाहिता न सिध्यन्ति तुरङ्गवस्त्राश्च वाहयेत् ॥५९
सपीडय जानुयुग्मेन स्थिरमुष्टिस्तुरङ्गमम् ।
गोमूत्रा कुटिला वेणी पद्ममण्डलमालिका ॥६०
पञ्चोलूखलिका कार्या गवितास्तेऽतिकीर्तिता ।
सक्षिप्त चैव विक्षिप्त कुञ्चित च यथाचितम् ॥६१
वल्गिनाग्रल्गिनी चैव षोढा चेत्यमुदाहृतम् ।
वीथी धनु शत यावदशीतिर्नवतिस्तथा ॥६२
भद्र सुसाध्यो वाजी स्यान्मन्दो दण्डैकमानस ।
मृगजङ्घो मृगो वाजी सर्वाणस्तत्समन्वयात् ॥६३
शर्करामधुलाजाद सुगन्धोऽश्व शुचिर्द्विज ।
तेजस्वी क्षत्रियश्चाश्वो विनीतो बुद्धिमाश्च य ॥६४
शूद्राऽशुचिश्चलो मन्दो विरूपो विमति खल ।
वल्गया धार्यमाणोऽश्वो लालक यश्च दर्शयेत् ॥६५
भारेद्र योजनीयोऽश्वो मग्रहग्रहमोक्षणे ।
अश्वादिलक्षण वक्ष्ये शालिहोत्रो यथावदत् ॥६६

गोमय (गोबर) लवण (नमक) और मिट्टी से युक्त मूत्र का वर्जन करके अगो म लेप करे तो मक्खी आदि के दशन से जो अश्व को श्रम होता है उसका नाश हो जाता है ॥५७॥ मध्य मे सादी के द्वारा भद्रादि जातियों का मण्ड देना चाहिए। इससे सूक्ष्म कीटों के दशन से जो उत्साह हीनता और क्षुधा का अभाव होता है वह अश्व का नष्ट हो जाता है ॥५८॥ जब जैसा

हो वह वश्य हो जावे वैसे ही प्रति वाहन वाली शिक्षा नष्ट हो जाती हैं। श्रवाहिन शिक्षा सिद्ध नही होती है। अतएव तुङ्ग श्रश्वो का वाहन करना चाहिए ॥५६॥ दोनो जानुश्रो से (घुटनो से) भली-भाँति पीडन करके स्थिर मुष्टि होकर गोमूत्र, कुटिला, वेणी, पद्ममडल मालिका, पञ्चोलूखलिका, गर्विता, अतिकीर्त्तिता वलित, अवल्गित ये इस प्रकार से सोलह मुद्रा बताई गई हैं इन्हे करना चाहिए। मार्ग मे भी धनुष पर्यन्त तथा अस्सी और नब्बे धनुष पर्यन्त मुसाधित करना चाहिए। इससे वह वश मे हो जाता है। जो अश्व मन्द, दर्ढकमानस, मृगजङ्घ, मृगवाची, तत्समन्वय से सकीर्ण, शर्करा मधु लाजाद और सुगन्ध तथा शुचि होता है वह द्विज होता है। जो तेजस्वी होता है वह अश्व क्षत्रिय है जो कि विनीत और बुद्धिमान् होता है। शूद्र अश्व अशुचि, चञ्चल, मन्द, विरूप, विमति, खल और लगाम के द्वारा धार्यमाण होता है और जो लालक (लार वाला) दिखाता है। इस अश्व को भी भार-युक्त करके वागडोर को ग्रहण एव मोक्षणके द्वारा योजन करना चाहिए। अब अश्वादि का लक्षण बतलाऊँगा जैसा कि शालिहोत्र ने कहा था। ६० से ६६ तक॥

१२६—अश्वचिकित्सा

अश्वाना लक्षण वक्ष्ये चिकित्सां चैव सश्रुत ।
हीरदन्तो विदन्तश्च कराल' कृष्णतालुक, ॥१
कृष्णजिह्वश्च यमजोऽजातमुष्कश्च यस्तथा ।
द्विशफश्च तथा शृङ्गी त्रिवर्णो व्याघ्रवर्णक ॥२
खरवर्णो भस्मवर्णो जातवर्णश्च काकदी ।
श्वित्री च काकसादी च खरसारस्तथैव च ॥३
वानराक्ष कृष्णसटा कृष्णगुह्यस्तथैव च ।
कृष्णप्रोथश्च सूकश्च यश्च तित्तिरिसन्निभ. ॥४
विषम: श्वेतपादश्च ध्र वावर्तविवर्जित. ।
अशुभावर्तसयुक्तो वर्जनीयस्तुरंगम: ॥५

रन्ध्रोपरन्ध्रयोर्द्वौ द्वौ द्वौ मस्तकवक्षसो ।
प्रायेण च ललाटस्थकण्ठावर्ता शुभा दश ॥६
सृक्वण्या च ललाटे च कर्णमूले निगालके ।
बाहुमूले गले श्रेष्ठा आवर्तास्त्वशुभा परे ॥७
शुकेन्द्रगोपचन्द्राभा ये च वायससन्निभा ।
सुवर्णवर्णा स्निग्धाश्च प्रशस्तास्तु सदैव हि ॥८

शालिहोत्र ने कहा—हे सुश्रुत ! अब मैं अश्वों का लक्षण और उनकी चिकित्सा को बतलाऊँगा। अब यह बताया जाता है कि किन-किन लक्षणों वाले अश्व का त्याग कर देना चाहिए। जो अश्व हीरदन्त हो—विदन्त—कराल—कृष्ण तालु वाला—कृष्ण जिह्वा वाला—यमज—अजात मुष्क—द्विशफ—शृङ्गी—त्रिवर्ण (तीन वर्णों वाला)—व्याघ्र जैसे वर्ण वाला—खर (गधा) के समान वर्ण वाला—भस्म के तुल्य वर्ण वाला—जात वर्ण—काकुदी और श्वित्री—काकसादी—खरा खर सार—वानर जैसी आँखों वाला—कृष्ण सटा कृष्ण गुह्य—कृष्ण प्रोथ—शूर—तित्तिर के तुल्य—विषम—श्वेतपाद—ध्रुवावर्त्त रहित और अशुभ आवर्तों से संयुक्त जो अश्व हो वह वर्जन करने के योग्य होता है अर्थात् अशुभ एवं ग्रहण न करने योग्य है ॥१।२।३।४।५॥ रन्ध्र उपरन्ध्र पर दो और मस्तक तथा वक्षस्थल पर दो-दो तथा प्राय ललाट और कण्ठ पर स्थित रहने वाले दश आवर्त शुभ हुआ करते है ॥६॥ सृक्विणी पर—ललाट में—कर्णमूल में—निगालक में—बाहुमूल में और गले में जो आवर्त होते हैं वे श्रेष्ठ माने जाते हैं शेष स्थानों पर आवर्त अशुभ कहे गये हैं ॥७॥ शुक—इन्द्रगोप और चन्द्र जैसी आभा वाले तथा वायस (कौवा) के तुल्य एवम् सुवर्ण जैसे वर्ण वाले और स्निग्ध जो अश्व होते हैं वे प्रशस्त अर्थात् बहुत अच्छे सदा ही माने गये हैं ॥८॥

दीर्घग्रीवाक्षिकूटाश्च ह्रस्वकर्णाश्च शोभना ।
राज्ञा तुरङ्गमा यत्र विजयं वर्जयेत्तत ॥९
पालितस्तु हयो दन्ती शुभदो दुःखदोऽन्यथा ।
प्रिय पुत्रास्तु गन्धर्वा वाजिनो रत्नमुत्तमम् ॥१०

अश्वमेधे तु तुरग पवित्रत्वात् हूयते ।
वृपो निम्बबृहत्यौ च गुडूची च समाक्षिका ॥११
सिङ्घाणकहरी पिण्डो स्वेदश्च शिरसस्तथा ।
हिङ्गु पुष्करमूल च नागर साम्लवेतसम् ॥१२
पिप्पलीसैन्धवयुत शूलघ्न चोष्णवारिणा ।
नगरातिविषा मुस्ता सानन्ता विल्वमालिका ॥१३
क्वाथमेषा पिवेद्वाजी सर्वातीसारनाशनम् ।
प्रियगुसारिवाभ्या च युक्तमाज श्रृत पय ॥१४
पर्याप्तशर्कर पीत्वा श्रमाद्वाजी विमुच्यते ।
द्रोणिकाया तु दातव्या तैलवस्तिस्तुरगमे ॥१५

दीर्घ (लम्बी) ग्रीवा (गरदन) वाले—प्रक्षिकूट—ह्रस्वकर्ण (छोटे कानो वाले) अश्व शोभन होते हैं। जहाँ पर राजाओ के ऐसे अश्व हो वहाँ विजय को वर्जित कर देना चाहिए। पातित अश्व और हाथी सुख देने वाला होता है अ यथा दु खदायी होता है। य श्वो के पुत्र और गन्धर्व होते हैं तथा उत्तम रत्न के समान हैं ॥९।१०॥ अश्वमेध यज्ञ म पवित्र होने से अश्व का आह्वान किया जाता है। वृष—निम्ब—बृहती—गिलोय—माक्षिक के सहित सिङ्घाण, कहरी पिण्डो तथा शिरका स्वेद—हिंगु—पुष्करमूल—नागर—अम्ल वेतस पिप्पली—सैन्धव स युक्त गर्म पानी क साथ शूल का नाश करते हैं। नगर—प्रतिविषा—मुस्ता—अनन्त—विल्वमालिका इनका क्वाथ घोडा को पिलाया जावे तो सब प्रकार के अतीसार का नाश हो जाता है। प्रियगु सारिवा स युक्त अज (बकरी का) श्रृत दुग्ध अच्छी शक्कर स युक्त बनाकर पिलाया जावे तो अश्व श्रम का त्याग करता है अर्थात् अत्यन्त थकान से छूट जाता है। द्रोणिका म घोडे को तैल की वस्ति (एनीमा) देनी चाहिए।९।१०।११।१२।१३।१४।१५।

कोष्ठजा वा शिरावध्नास्तन तस्य सुख भवत् ।
दाडिम त्रिफला व्योप गुडश्च समभावित ॥१६
पिण्डमेतत्प्रदातव्यमश्वाना कार्श्यनाशनम् ।
प्रियगुलोध्रमधुभिः पिवेद्वृपरस हय ॥१७

क्षीरं वा पञ्चकोलाद्यं कासनाद्धि प्रमुच्यते ।
प्रस्कन्धेषु च सर्वेषु श्रेयं आदौ विशोधनम् ॥१८
अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नेहनस्यवर्तिक्रम स्मृतः ।
ज्वरिताना तुरङ्गाणां पयसैव क्रियाक्रमः ॥१९
लोध्रकरञ्जयोर्मूलं मातुलुङ्गाग्निनागरा ।
कुष्ठं हिंगु वचा रास्ना लेपोऽयं शोथनाशनः ॥२०

अथवा कोष्ठज शिरा का वेधन करना चाहिए । इसके करने से अथवा दुख दूर हो जाता है । दाडिम (अनार) त्रिफला, त्र्योष और सम्भावित गुड इनका पिण्ड बनाकर देना चाहिए । इससे अश्वों में जो कृशता (दुबलापन) है वह नष्ट हो जाती है ॥१६॥ प्रियगु लोध और मधु के साथ यूप का रस अश्व को पिलाना चाहिए ॥१७॥ अथवा पञ्च कोलादि क्षीर के पीने से खाँसी से प्रमुक्ति हो जाती है । समस्त प्रस्कन्धो में आदि में विशोधन करना कल्याणप्रद होता है ॥१८॥ अभ्यङ्ग, उद्वर्तन स्नेह, नस्य और वर्ति का क्रम ज्वर वाले अश्वों का पय से ही क्रिया क्रम किया जाता है ॥१९॥ लोध और करञ्ज का मूल मातुलुङ्ग अग्नि (चित्रक) और नागर, कुष्ठ, हिंगु (हींग), वच, रास्ना इनका लेप शोथ का नाशक होता है ॥२०॥

मञ्जिष्ठा मधुकं द्राक्षा बृहत्यौ रक्तचन्दनम् ।
त्रपुषीबीजमूलानि शृङ्गाटककशेरुकम् ॥२१
अजापयः शृतमिदं सुशीतं शर्करान्वितम् ।
पीत्वा निग्रहनात्वाजी रक्तमेहात्प्रमुच्यते ॥२२
मन्याहनुनिगालस्थशिराशोथो गलग्रहः ।
अभ्यङ्गं मर्दुनं तत्र तप्तेन सर्पिषा ततः ॥२३
गलग्रहगदं शोथं पायसो गलदेशजं ।
प्रत्यक्पुष्पी तथा वह्निः सैन्धवं सौरसो रसः ॥२४
कृष्णाहिङ्गुयुतैरेभिः कृत्वा नस्यं न सीदति ।
निशा ज्योतिष्मती पाठा कृष्णा कुष्ठं वचा मधु ॥२५

जिह्वास्तम्भे च लेपोऽयं गुडमूत्रयुतो हितः ।
तिलैर्यष्टया रजन्या च निम्बपत्रैश्च योजिता ॥२६
क्षौद्रेण शोधिनी पिण्डी सर्पिषा व्रणरोपिणी ।
अभिघातेन खञ्जन्ति ये ह्यश्वास्तीव्रवेदनाः ॥२७
परिषेकक्रिया तेषां तैलेनाऽऽशु रुजापहा ।
दोषे कोपाभिघाताभ्यां तलजे लिङ्गिते तथा ॥२८
शान्तिर्मत्स्यपिण्डवृद्धाभ्यां पक्वभिन्ने व्रणक्रम ।
अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षमधूकवटविल्वकें ॥२६

यदि अश्व को रक्तमेह हो तो उसके शमन करने के लिये मजिष्ठा (मजीठ), मधुर, द्राक्षा (मुनक्का), बृहती, रक्त चन्दन, त्रपुषी बीज और मूलशृङ्गाटक (सिंघाड़ा), कसेरुक, बकरी का दूध इन सबको शृत करके ठंडा करे और शर्करा के साथ पिलाया जावे तथा अन्य कुछ भी न खिलावे तो रोग का नाश हो जाता है ॥२१॥२२॥ मन्या, हनु और निगाल में होने वाला तथा शिर का शोथ (सूजन) और गलग्रह कड़ुवे तेल से अभ्यङ्ग (मर्दन) वहाँ पर करने से लाभ होता है ॥२३॥ गलग्रह का रोग, शोथ, गलदेश में पायस इसम प्रत्यक्पुष्पी, वह्नि, सैन्धव, सौर सरस, कृष्णा, होंग इन सबका नस्य देने से उक्त रोगों का दुःख दूर होता है। दोनों तरह की हल्दी, ज्योतिष्मती, पाठा, कृष्णा, कुष्ठ, रव और शहद इनका लेप जिह्वा के स्तम्भ होने में गुड़ तथा मूत्र के साथ करने से लाभ देने वाला होता है। तिल, यष्टि, रजनी (हल्दी) और नीम के पत्तों से योजित पिण्डी शहद के साथ शोधन करने वाली होती है और घृत के साथ व्रणों का रोपण करने वाली होती है। जो अभिघात से खञ्जन करते हैं और तीव्र वेदना वाले होते हैं उनकी तेल से परिषेक की क्रिया करने पर शीघ्र ही रोग का नाश होता है। कोप और अभिघात से तलज तथा लिङ्गित दोष होने से मत्स्यपिण्ड और वृद्ध से शान्ति होती है। पक्वभिन्न में व्रणक्रम हो तो पीपल, गूलर, पाकर, महुए, बड़ और विल्व के द्वारा अधिक जल का क्वाथ सुखोष्ण करके देवे तो व्रणों का शोधन होता है ॥२४।२५।२६।२७। २८।२६॥

प्रभूतमनिलक्वाथ मुखोष्णो व्रणशोधन ।
शताह्वानागर रास्नामञ्जिष्ठाकुष्टसैन्धवे ॥३०
देवदारुवचायुग्मरजनीरक्तचन्दन ।
तैल सिद्ध कषायेण गुडूच्या पयसा सह ॥३१
अक्षणो बस्तिनस्ये च योज्य सर्वत्र लिंगिते ।
रक्तस्रावो जलौकाभिर्नेत्रान्ते नेत्ररागिण' ॥३२
खदिरोदुम्बराश्वकषायेण च साधनम् ।
धात्रीदुरालभातिक्ताप्रियंगुकुकुमं समं ॥३३
गुडूच्या च घृत कल्को हितो युक्तावलम्बिने ।
उत्पाते च शिले श्राव्ये शुष्कशोफे तथैव च ॥३४
क्षिप्रकारिणि दोषे च सद्यो वेधनमिष्यते ।
गोशकृन्मञ्जिकाकुष्टरजनीतिलसर्षपं ॥३५
गवा मूत्रेण पिष्टैश्च मदन कण्डुनाशनम् ।
शीतो मधुयुत क्वाथो नासिकाया सशर्करा ॥३६
रक्तपित्तहर पानदश्वकर्णे तथैव च ।
सप्तमे सप्तमे देयमश्वाना लवण दिने ॥३७

शताह्व, नागर, रास्ना, मजीठ कुष्ठ, सैन्धव, देवदारु, बचा, दोनों हल्दी और रक्त चन्दन के द्वारा सिद्ध किया हुआ तैल गिलोय के कषाय और जल के साथ अक्षण करने मे तथा बस्ति और नस्य कम में सर्वत्र लिङ्गित योजित करना चाहिए। नेत्रों के रोगी अश्व के नेत्रान्त मे जो रक्त का स्राव होता है उसके लिए जलौकाओं से और खदिर उदुम्बर,पीपल के कषाय के साधन करे। धात्री दुरालभा, तिक्त प्रियगु और कुकुम समभाग और गिलोय के द्वारा किया हुआ कल्क हितप्रद होता है। युक्तावलम्बी के लिए उत्पात मे, शिल में, श्राव्य म और शुष्क शोफ मे तथा क्षिप्रकारी दोष में तुरन्त वेधन अभीष्ट होता है। गौ का गोबर, मञ्जिका, कुष्ठ हरिद्रा तिल और सरसों गोमूत्र के साथ पीस कर मर्दन करने से कण्डु (खुजली) का नाश हो जाता है। शीत और मधु से युक्त क्वाथ शर्करा के सहित नासिका म देने से रक्त, पित्त का हरण करता

है। पान करने से तथा प्रश्व के कान में दिया जाने से लाभ होता है। हर सातवें दिन में अश्वों को नमक देना चाहिए ॥३० से ३७ तक॥

तथा भक्तवता देया प्रतिपाने च वारुणी ।
जीवनीयैः समधुरैर्मृद्वीकाशर्करायुतैः ॥३८
सपिप्पलीकैः शरदि प्रतिपानं सपद्मकैः ।
विडङ्गपिप्पलीधान्यशताह्वालोध्रसैन्धवैः ॥३९
सचित्रकैस्तुरगाणां प्रतिपानं हिमागमे ।
लोध्रप्रियंगुकामुस्तापिप्पलीविश्वभेषजैः ॥४०
सक्षौद्रैः प्रतिपानं स्याद्वसन्ते कफनाशनम् ।
प्रियंगुपिप्पलीलोध्रयष्ट्याह्वैः समहौषधैः ॥४१
निदाघे सगुडा देया मदिरा प्रतिपानके ।
लोध्रकाष्ठं सलवणं पिप्पल्यो विश्वभेषजम् ॥४२
भवेत्तैलयुतैरेभिः प्रतिपानं घनागमे ।
निदाघोद्वृत्तपित्ता ये शरत्सु पुष्टशोणिताः ॥४३

उस प्रकार से नमक देना चाहिए। जीवनीय मधुर से युक्त तथा मृद्वीका और शर्करा के सहित एवं पीपलों से युक्त प्रतिपान शरद ऋतु में देना चाहिए। हिमागम में पद्मक, विडङ्ग, पीपल धान्य, शताह्व, लोध सैन्धव, चित्रक से युक्त अश्वों को प्रतिपान देना चाहिए। वसन्त ऋतु में लोध, प्रियगु, मुस्ता, पिप्पली, विश्वभेषज और क्षौद्र के सहित कफ का नाशक प्रतिपान होता है। ग्रीष्म में प्रियगु, पीपल, लोध, यष्टि, महौषध गुड के साथ प्रतिपान में मदिरा देनी चाहिए। वर्षा में जब मेघों का आगम हो तब लोधकाष्ठ, लवण, पीपल, विश्व-भेषज तैल से युक्त करके प्रतिपान देवे। ग्रीष्म में उद्भूत हुए पित्त के दोष शरद ऋतु में पुष्ट शोणित वाले होते हैं ॥३८ से ४३ तक॥

प्रावृड्भिन्नपुरीषाश्च पिबेयुर्वाजिनो घृतम् ।
पिबेयुर्वाजिनस्तैलं कफवाताधिकास्तु ये ॥४४
स्नेहात्तापोद्भवो येषां कार्यं तेषां विरूक्षणम् ।
त्र्यहं यवागू रूक्षा स्याद्भोजनं तक्रसंयुतम् ॥४५

शरन्निदाघयोः सर्पिस्तैलं शीतवसन्तयोः ।
वर्षासु शिशिरे चैव वस्तौ यमकमिष्यते ।४६
गुवभिष्यन्दिभक्तानि व्यायाम स्नानमातपम् ।
वायुवर्जं च वाहस्य स्नेहपीतस्य वर्जितम् ॥४७
स्नानं पानं सकृत्कुर्यादश्वानां सलिलागमे ।
अत्यर्थं दुर्दिने काले पानमेकं प्रशस्यते ॥४८

वर्षा ऋतु मे भिन्न मल वाले घोड़ों को घृत पिलाना चाहिए । जो अप कफ और वायु की अधिकता रखते हैं उन्हें तैल ही पिलाना चाहिए ॥४४॥ जिनको स्नेह से वात की उत्पत्ति हुई हो उनका विरेचन करना चाहिए । तीन दिन तक रूखी यवागू मद्रा म युक्त उन्हें भोजन में देनी चाहिए । ४५॥ शरद और ग्रीष्म ऋतुओं में घृत और शीत तथा वसन्त में तैल और वर्षा तथा शिशिर ऋतु में वस्ती कर्म में दोनों को काम में लाना चाहिए ॥४६॥ गुरु,अभिष्यन्दी, भक्त, व्यायाम, स्नान, आतप और वायुवर्जन ये स्नेह का पान किये हुए वाह को निषिद्ध होते है ॥४७। सलिलागम म अश्वों को स्नान और पान एक बार कराना चाहिए । दुर्दिन के समय म जबकि अत्यधिकता हो तो एक बार पान प्रशस्त होता है ॥४८॥

युक्तं शीतातपे काले द्विः पानं स्नपनं सकृत् ।
ग्रीष्मे त्रिः स्नानं पानं स्याच्चिरं तस्यावगाहनम् ॥४६
निस्तुषाणां प्रदातव्या यवानां चतुराढकी ।
चणकव्रीहिमौद्गानि कलाय वाऽपि दापयेत् ॥५०
अहोरात्रेण चाश्वस्य यवसस्य तुला दश ।
अष्टौ शुष्कस्य दातव्याश्चतुर्मोऽथ वबुसस्य ॥५१
दूर्वा पित्तं यवः कासं बुसश्च श्लेष्मसन्ततम् ।
नाशयत्यर्जुनः श्वासं तथा वालो बलक्षयम् ॥५२
वातिका पैत्तिका श्चैव श्लेष्मजाः सान्निपातिकाः ।
न रोगाः पीडयिष्यन्ति दूर्वाहारं तुरङ्गमम् ॥५३

द्वौ रज्जुबन्धौ दुष्टाना पक्षयोरुभयोरपि ।
पश्चाद्वन्धश्च कर्त्तव्यो दूरकीलव्यपाश्रय ॥५४
वा सेयस्तस्तृते स्थाने कृतधूपनभूमय ।
यत्नोपन्यस्तयवसा सप्रदीपा सुरक्षिता ॥५५
कृकवाकजकेपेया धार्याश्चाश्वगृहे मृगा ॥५६

शीतातप काल मे दो बार पान और एक बार स्नपन युक्त होता है । ग्रीष्म ऋतु मे तीन बार स्नान और पान कराना चाहिए । देर तक अवगाहन करावे ॥४६॥ बिना तुष वाले यवो की चतुराढकी देनी चाहिए । चणक (चना), ब्रीहि और मूग का कलाप भी खिलाना चाहिए ॥५०॥ अहोरात्र मे अर्थात् दिनरात के चौबीस घण्टो मे अर्ध यवस की दश तुला तथा गुल्म की आठ एव चार देनी चाहिए । वपुष्मान् को दूर्वा (दूभ) पित्त को, यव खाँसी को, बुस (भुस) कफ के सचय को नष्ट करता है । अर्जुन श्वास को तथा बाल बल के क्षय को नष्ट किया करता है । जो घोडा दूभ खाता है उस वातिक (वायु के), पैत्तिक (पित्त के दोष वाले), श्लेष्मज (कफ से उत्पन्न) तथा सान्निपातिक अर्थात् तीनो दोषो के कोप स होने वाले रोग नही सताते है । ॥५१॥५२॥५३॥ दुष्ट प्रकृति वाले अश्वो के दो रस्सी के बन्ध दानो पक्षो मे होते हैं । पीछे दूर कील के व्यपाश्रय वाला बन्ध करना चाहिए ॥५४॥ खुले एव विस्तृत स्थान मे इनको निवास देना चाहिए । उस भूमि पर धूपन करना चाहिए । यवसो को यत्नपूर्वक उपन्यस्त करे । ये स्थान प्रदीप वाले एव सुरक्षित होने चाहिए । अश्वगृह मे कृक वाकु अजक पय वाले मृग रखने चाहिए । ॥५६॥

१२७—अश्वशान्ति

अश्वशान्ति प्रवक्ष्यामि वाजिरोगविमर्दनीम् ।
नित्या नैमित्तिकी काम्या त्रिविधा शृणु सुव्रत ॥१
शुभे दिने श्रीधर च श्रियमुच्चैःश्रव सुतम् ।
हयराज समभ्यर्च्य साविर्त्रं जुहुयाद् घृतम् ॥२

द्विजेभ्यो दक्षिणा दद्यादश्ववृद्धिस्ततो भवेत् ।
अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्या च शान्तिकम् ।।३
वहि कुर्याद्विशेषेण नासत्यौ वरुणं यजेत् ।
समुल्लिख्य ततो देवीं शाखाभि. परिवारयेत् ।।४
घटान्सर्वरसैः पूर्णान्दिक्षु दद्यात्सवस्त्रकान् ।
यवाज्य जुहुयात्प्रार्च्य यजेदश्वाश्च साश्विनान् ।।५
विप्रेभ्यो दक्षिणा दद्यान्नैमित्तिकमत शृणु ।
मकरादौ हयाना च पद्मं विष्णु श्रिय यजेत् ।।६
ब्रह्माण शङ्कर सोममादित्य च तथाऽश्विनौ ।
रेवन्त उच्चैःश्रवस दिक्पालांश्च दलेष्वपि ।।७
प्रत्येक पूर्णकुम्भेषु वेद्या तत्सौम्यता हुनेत् ।
तिलाक्षताज्यसिद्धार्थान्देवनाना शत शतम् ।।
उपोषितेन कर्तव्य कर्म चाश्वरुजापहम् ।।८

शालिहोत्रजी ने कहा—अब मैं अश्वों के रोगों का विमर्दन करने वाली अश्व शान्ति का वर्णन करूँगा । हे सुश्रुत ! वह नित्य नैमित्तिक, काम्य अनेक प्रकार की होती है । तुम उसका श्रवण करो ।।१।। किसी शुभ दिन में भगवान् श्रीधर श्री और उच्चैःश्रवा के पुत्र हयराज का अभ्यर्चन करे और गायत्री मन्त्र के द्वारा घृत का हवन करना चाहिए ।।२।। इसके अनन्तर ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे । इससे अश्व की वृद्धि होती है । अश्व युक् को शुक्ल पक्ष की पञ्चदशी तिथि में शान्तिक कर्म बाहिर करना चाहिए । विशेष रूप से नासत्यौ वरुण का यजन करे । फिर देवी का समुल्लेख करके शाखाओं से परिवारित करना चाहिए ।।३।।४।। समस्त रसों से भरे हुए घटों को दिशाओं में वस्त्र के सहित स्थापित करे । यव और घृत के द्वारा हवन करे और समर्चन करे तथा अश्विनीयों के सहित अश्वों का यजन करना चाहिए ।।५।। ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए । इसके आगे अब नैमित्तिक को सुनो। मकर आदि में अश्वों का, विष्णु का तथा श्री का पद्मों में यजन करना चाहिए ।।६।। ब्रह्मा, शङ्कर, सोम, आदित्य, अश्विनी कुमार, उच्चैःश्रवा और दलों में

दिक्पालों का यजन करे। प्रत्येक को पूर्ण कुम्भों में वेदी में उनकी सौम्यता के लिये हवन करना चाहिए। प्रत्येक देवता के लिये तिल, अक्षत, घृत और सिद्धार्थ की सौ सौ आहुतियाँ देनी चाहिए। यह कर्म करने वाले को उपोषित रहते हुए कर्म करना चाहिए। इससे अश्वों के रोगों की शान्ति होती है। ॥३॥८॥

१२८—गजशान्ति

गजशान्तिं प्रवक्ष्यामि गजरोगविमर्दनीम् ।
विष्णुं श्रियं च पञ्चम्यां नागमैरावतं यजेत् ॥१
ब्रह्माणं शङ्करं विष्णुं शक्रं वैश्रवणं यमम् ।
चन्द्रार्कौ वरुणं वायुमग्निं पृथ्वीं तथा च खम् ॥२
शेषं शैलान्कुञ्जरांश्च ये तेऽष्टौ देवयोनयः ।
विरूपाक्षं महापद्मं भद्रं सुमनसं तथा ॥३
कुमुदैरावणं पद्मं पुष्पदन्तोऽथ वामनः ।
सुप्रतीकोऽञ्जनो नागा अष्टौ होमोऽथ दक्षिणाम् ॥४
गजं शान्त्युदकं सिक्त्वा वृद्धो नैमित्तिकं शृणु ।
गजानां मकरादौ च ऐशान्यां नगराद् बहिः ॥५
स्थण्डिले कमले मध्ये विष्णुं लक्ष्मीं च केसरे ।
ब्रह्माणं भास्करं पृथ्वीं यजेत्स्कन्दं ह्यनन्तकम् ॥६
खं शिवं सोममिन्द्रादींस्तदस्त्राणि दले क्रमात् ।
वज्रं शक्तिं च दण्डं च तोमरं पाशकं गदाम् ॥७
शूलं पद्मं बहिर्वृत्ते चक्रे सूर्यं तथाऽश्विनौ ।
वसूनष्टौ तथा साध्यान्याम्येऽथ नैर्ऋते दले ॥८
देवानाङ्गिरसश्चाग्न्यान्भृगूंश्च मरुतोऽनिले ।
विश्वे देवास्तथा वृक्षे रुद्रान्रौद्रेऽथ मण्डले ॥९

श्री शालिहोत्र जी ने कहा—अब मैं गज शान्ति को कहता हूँ जो कि गजों के रोगों का विमर्दन करने वाली होती है। पञ्चमी तिथि में भगवान्

विष्णु, श्री और ऐरावत का यजन करना चाहिए ॥१॥ इनके अतिरिक्त ब्रह्मा शङ्कर, विष्णु, इन्द्र, कुबेर, यम, चन्द्र, सूर्य, वायु अग्नि, पृथ्वी, आकाश, शेष पर्वतगण और कुञ्जरों का यजन करे जोकि आठ देवयोनि होती हैं। उनके नाम ये हैं—विरूपाक्ष, महापद्म, भद्र, सुमनस, कुमुदैरावण, पद्म, पुष्पदन्त, वामन, सुप्रतीक अञ्जन ये आठ नाग हैं। इसके अनन्तर होम और दक्षिणा देवे। फिर उन गजों को शान्ति जल से सिक्त करे। अब नैमित्तिक शान्ति के विषय में सुनो मकरादि में अर्थात् मकर सक्रान्ति के आदि में नगर से बाहिर ऐशानी दिशा मे गजों की शान्ति का वर्म होता है। स्थण्डिल में कमल मध्य में विष्णु और लक्ष्मी का यजन करे। केसर मे ब्रह्मा, सूर्य, पृथिवी, स्कन्द और अनन्तक का यजन करना चाहिए ।।२ से ६ तक।। अन्तरिक्ष, शिव, सोम और इन्द्र आदि तथा इनके अस्त्रों का दल में क्रम से यजन करे। वज्र, शक्ति, दण्ड, तोमर, पाशक, गदा, शूल, पद्म का और वहिर्वृत्त में चक्र में सूर्य और अश्विनीकुमार तथा साध्य आठ वसुओं का यजन करे। याम्य और नैर्ऋतदल में आङ्गिरस अन्य देवों का, अनिल मे अर्थात् वायुकोण मे मरुत और भृगुओं का यजन करना चाहिए। विश्व देवों का वृक्ष मे और रौद्र मण्डल में रुद्रों का यजन करे। ॥७॥८॥६॥

वृत्तया रेखया तत्र देवान्वै बाह्यतो यजेत् ।
सूत्रकारानुपीन्वाणी पूर्वादौ सरितो गिरीन् ॥१०
महाभूतानि कोणेषु ऐशान्यादिषु संयजेत् ।
पद्म चक्र गदा शङ्ख चतुरश्र तु मण्डलम् ॥११
चतुर्द्वार तत कुम्भानग्न्यादौ च पताकिका ।
चत्वारस्तोरणान्द्वारि नागानैरावतादिकान् ॥१२
पूर्वादौ चौषधीभिश्च देवाना मार्जनं पृथक् ।
पृथक्शताहुतीश्चाऽऽज्यंगंजानर्च्य प्रदक्षिणम् ॥१३
नाग वन्हि देवतादीन्वाद्य जग्मु. स्वक गृहम् ।
द्विजेभ्यो दक्षिणा दद्याद्धस्तिवैद्यादिकास्तथा ॥१४

करिणं तु समारुह्य वदेत्कर्णे तु कालवित् ।
नागराजे मृते शान्तिं कृत्वाऽन्यस्मिञ्जपेन्मनुम् ॥१५
श्रीगजस्त्वं कृतो राज्ञा भवानस्य गजाग्रणीः ।
गन्धमाल्याग्रभक्तैस्त्वा पूजयिष्यति पार्थिवः ॥१६

वहाँ पर वृत्त रेखा से बाहिर देवों का यजन करे। सूत्रकारों का, ऋषियों का, वारुणी का पूर्वादि में तथा नदियों का और पर्वतों का एवं महाभूतों का ऐशान्य आदि कोणों में भली-भाँति यजन करे। पद्म, चक्र, गदा और शङ्ख चतुरस्र मण्डल होता है ॥१०॥११॥ वह मण्डल चार द्वारों वाला होता है। अग्नि आदि दिशाओं में कुम्भों को स्थापित करे, पताका लगावे, द्वार पर चार तोरण रक्खे और ऐरावत आदि नागों को स्थापित करे ॥१२॥ पूर्व आदि दिशाओं में औषधियों के द्वारा देवों का पृथक् मार्जन करे। घृत से पृथक् सौ आहुतियाँ देवे। गजों का अभ्यर्चन करके प्रदक्षिणा करे। नाग, वह्नि और देवतादि वर्गों के साथ अपने घर पर जावें। ब्राह्मणों के लिये दक्षिणा देनी चाहिए। हस्ति वैद्यादिक को भी देवे। हाथी पर आरोहण करके काल के वेत्ता के कान में कहना चाहिए। नागराज के मृत होने पर शान्ति कर्म का सम्पादन करके अन्य में मन्त्र का जप करे ॥१३॥१४॥१५॥ राजा ने तुमको श्री गज किया है और आप इससे गजों के अग्रणी (नायक) हैं। राजा गन्ध माल्याक्षत अग्र भक्तों के द्वारा तुम्हारा पूजन करेंगे ॥१६॥

लोकस्तदाज्ञया पूजां करिष्यति तदा तव ।
पालनीयस्त्वया राजा युद्धेऽध्वनि तथा गृहे ॥१७
तिर्यग्भावं समुत्सृज्य दिव्यं भावमनुस्मर ।
देवासुरे पुरा युद्धे श्रीगजस्त्रिदशैः कृतः ॥१८
ऐरावतसुतः श्रीमानरिष्टो नाम वारणः ।
श्री गजानां तु तत्तेजः सर्वदेवोपतिष्ठते ॥१९
तत्तेजस्तव नागेन्द्र दिव्यभावसमन्वितम् ।
उपतिष्ठतु भद्रं ते रक्ष राजानमाहवे ॥२०

इत्येवमभिषिक्तं तमारोहेत शुभे नृप ।
तस्यानुगमनं कुर्युः सशस्त्रा नरपुङ्गवाः ॥२१
शालास्वसौ स्थण्डिलेऽब्जे दिक्पालदीन्यजेद् बहिः ।
केसरेषु बलं नागं भुवं चैव सरस्वतीम् ॥२२
मध्ये तु डिण्डिमं प्राच्यं गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
हुत्वा देयस्तु कलशो रसपूर्णो द्विजाय च ॥२३
गजाध्यक्षं हस्तिपं च गणितज्ञं च पूजयेत् ।
गजाध्यक्षाय तु दद्याद्डिण्डिमं सोऽपि वादयेत्॥२४

तब यह लोक भी उनकी आज्ञा से तुम्हारी पूजा करेगा । तुमको राजा का युद्धस्थल में, मार्ग में और घर पर पालन करना चाहिए ॥१७॥ तुम तिर्यक् योनि में उत्पन्न हुए हो इसलिये जो तुम्हारे अन्दर तिर्यग्भाव है उसे त्याग कर दिव्यभाव का अनुस्मरण करना चाहिए । पहिले देवासुरों के युद्ध में देवों ने श्रीगज बनाया था ॥१८॥ ऐरावत का पुत्र श्रीमान् अरिष्ट नाम का वारण था । श्रीगजों का वह तेज सबको उपस्थित हाता है ॥१९॥ हे नागेन्द्र ! वह दिव्य तेज भावसमन्वित तुमको उपस्थित होवे । तुम्हारा कल्याण हो । तुम युद्ध में राजा की रक्षा करो ॥२०॥ इस रीति से अभिषेक किए हुए उस शुभ गज पर राजा चढ़े । उसके पीछे शस्त्रधारी श्रेष्ठ पुरुष अनुगमन करें ॥२१॥ इसे फिर शाला में स्थण्डिल में, कमल में बाहिर दिक्पालों का यजन करना चाहिए । केसरों में बल, नाग, भू और सरस्वती का यजन करे। ॥२२। मध्य में गन्धमाल्य और अनुलेपन के द्वारा डिण्डिम का अर्चन करे। हवन करके रस से भरा हुआ कलश द्विज को दे देना चाहिए ॥२३॥ गज के अध्यक्ष हस्तिप का और गणित के ज्ञाता का पूजन करना चाहिए । गजाध्यक्ष को वह डिण्डिम दे देवे । वह भी उसे बजावे जो घर पर स्थित शुभ गम्भीर शब्दों के द्वारा अभिवादन कराना चाहिए ॥२४॥

१२६—गवायुर्वेदः

गोविप्रपालनं कार्यं राज्ञा गोशान्तिमावहे ।
गावः पवित्रा माङ्गल्या गोषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥१

शकृन्मूत्रं परं तासामलक्ष्मीनाशनं परम् ।
गवां कण्डूयनं वारिदानं श्रृंगस्य मर्दनम् ॥२
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
षडङ्गं परमं पाने दुःस्वप्नादिनिवारणम् ॥३
रोचना विषरक्षोघ्नी ग्रासदः स्वर्गगो गवाम् ।
यद्गृहे दुःखिता गावः स याति नरकं नरः ॥४
परगोग्रासदः स्वर्गी गोहितो ब्रह्मलोकभाक् ।
गोदानात्कीर्तनाद्रक्षां कृत्वा चोद्धरते कुलम् ॥५
गवां श्वासात्पवित्रा भूः स्पर्शनात्किल्बिषक्षयः
गोमूत्रं गोमयं सर्पिः क्षीरं दधि कुशोदकम् ॥६
एकरात्रोपवासश्च श्वपाकमपि शोधयेत् ।
सर्वाशुभविनाशाय पुराऽऽचरितमीश्वरैः ॥७
प्रत्येकं च त्र्यहाभ्यस्तं महासांतपनं स्मृतम् ।
सर्वकामप्रदं चैतत्सर्वाशुभविमर्दनम् ॥८

श्री भगवान् धन्वन्तरि ने कहा--राजा को गौओं और ब्राह्मणों का पालन करना चाहिए । अब मैं गोशान्ति के विषय में बतलाता हूँ । गाय पवित्र और माङ्गल्य होती हैं । गौओं में लोक प्रतिष्ठित होते हैं । गौ का गोबर और मूत्र अलक्ष्मी का नाश करने वाला होता है । गायों को खुजलाना, गौओं को जल पिलाना, गौओं के सीगों का मर्दन करना ॥२॥ गोमूत्र, गोमय, दूध, दही, गोघृत और कुशा का जल ये छै वस्तुएँ हैं जिनके पान करने से दुःस्वप्न आदि का निवारण होता है ॥३॥ गौ की रोचना से विष तथा राक्षसों से रक्षा होती है । गौ को ग्रास देने वाला स्वर्गगामी होता है जिसके घर में गौ दुखित रहा करती है वह नरकगामी होता है ॥४॥ पराई गौ को ग्रास देने वाला स्वर्ग जाता है और गाय का हित करने वाला ब्रह्मलोक का वासी होता है । गौ दान से तथा गौ के कीर्तन से मनुष्य अपनी रक्षा करता हुआ कुल का उद्धार करता है ॥५॥ गौ के श्वास से यह भूमि परम पवित्र हो जाती है । गाय के स्पर्श करने से पापों का क्षय होता है । गौ मूत्र, गोमय (गोबर), गोघृत, गोदुग्ध

गोदधि और कुशोदक का पान और एक रात्रि का उपवास श्वपाक को (मेहतर) भी शोधित कर दिया करता है। समस्त पापों के विनाश करने के लिये पहिले समर्थ पुरुषों ने इसका समाचरण किया है ॥६॥७॥ इन वस्तुओं में से प्रत्येक को तीन दिन तक अभ्यास में लाने से महा सान्तपन नामक व्रत का प्रायश्चित बताया गया है। यह समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा सब प्रकार के अशुभों का विमर्दन करने वाला होता है ॥८॥

कृच्छ्रातिकृच्छ्र पयसा दिवसानेकविंशतिम् ।
निर्मला सर्वकामाप्त्या स्वर्गगा स्युर्नरोत्तमा ॥९
त्र्यहमुष्णं पिबेन्मूत्रं त्र्यहमुष्णं घृतं पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं पय पीत्वा वायुभक्षः पर त्र्यहम् ॥१०
तप्तकृच्छ्रव्रतं सर्वपापघ्नं ब्रह्मलोकदम् ।
शीतैस्तु शीतकृच्छ्रं स्याद्ब्रह्मोक्तं ब्रह्मलोकदम् ॥११
गोमूत्रेणाऽऽचरेत्स्नानं वृत्ति कुर्याच्च गोरसैः ।
गोभिर्व्रजेच्च भुक्तासु भुञ्जीताथ च गोव्रती ॥१२
मासेनैकेन निष्पापो गोलोकी सगणो भवेत् ।
विद्या च गोमती जप्त्वा गोलोकं परमं व्रजेत् ॥१३
गीतैर्नृत्यैरप्सरोभिर्विमाने तत्र मोदते ।
गाव सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलुगन्धिकाः ॥१४
गाव प्रतिष्ठा भूताना गाव स्वस्त्ययनं परम् ।
अन्नमेव परं गावो देवाना हविरुत्तमम् ॥१५
पावन सर्वभूताना क्षरन्ति च वहन्ति च ।
हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि ॥१६

कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत पय से जो इक्कीस दिन का होता है इस व्रत के करने से मनुष्य मल रहित होकर समस्त कामनाओं की प्राप्ति द्वारा स्वर्गगामी हुआ करते हैं ॥९॥ तीन दिन तक उष्ण गोमूत्र पीवे, तीन दिन उष्ण घृत पीवे तीन दिन उष्ण दूध पीवे, तीन दिन तक केवल वायु का भक्षण करके रहे, यह तप्त कृच्छ्र नाम वाला व्रत है जो कि सभी पापों का नाशक और ब्रह्म लोक को

देने वाला कहा जाता है ॥१०॥११॥ गोमूत्र से स्नान करे और गोरसों (दूध दही आदि) से जीवन वृत्ति करे, गायों के साथ वन में जावे तथा उनके खाने पर स्वयं ही खावे यह गो व्रती के लिये विधान है ॥१२॥ एक मास तक ऐसा व्रत करने से मनुष्य निष्पाप होकर अपने गण के साथ गोलोक वासी हो जाता है। गोमती विद्या का जप करके परम गोलोक को चला जाता है ॥१३॥ वहाँ गीत, नृत्य और अप्सराओं के साथ विमान में प्रसन्नता प्राप्त करता है। गौऐं नित्य सुरभि होती हैं, गौऐं गुग्गल की गन्ध वाली होवें, गौऐं प्राणियों की प्रतिष्ठा हैं और परम कल्याण की स्थान होती हैं। देवों की उत्तम हवि और परम अन्न जो समस्त प्राणियों का पावन होना है उसका गौऐं क्षरण किया करती हैं और प्रदान करती हैं। मन्त्र पूत हवि से देवलोक में देवों को तृप्त किया करती हैं ॥१४॥१५॥१६॥

ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमेषु योजिताः।
सर्वेषामेव भूतानां गाव. शरणमुत्तमम् ॥१७
गावः पवित्रं परमं गावो माङ्गल्यमुत्तमम्।
गावः स्वर्गस्य सोपान गावो धन्याः सनातना ॥१८
नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च।
नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमोनमः ॥१९
ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेक द्विधा कृतम्।
एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्र तिष्ठति ॥२०
देवब्राह्मणगोसाधुसाध्वीभि सकल जगद्।
धार्यते वै सदा तस्मात्सर्वे पूज्यतमा मता ॥२१
पिबन्ति यत्र तत्तीर्थं गङ्गाद्या गाव एव हि।
गवां माहात्म्यमुक्त हि चिकित्सा च तथा शृणु ॥२२
शृङ्गामयेषु धेनूनां तैलं दद्यात्ससैन्धवम्।
शृङ्गवेरबलामासीकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ॥२३
कर्णशूलेषु सर्वेषु मञ्जिष्ठाहिंगुसैन्धवैः।
सिद्धं तैल प्रदातव्य रसोनेनाथ वा पुनः ॥२४

ऋषियों के अग्निहोत्र में और होम मे गौएँ ही योजित होती है। मस्तस प्राणियों की गौ सर्वोत्तम धारण (रक्षक) होनी है ॥ १७ ॥ गौ परम पवित्र है तथा गौ परम मङ्गलदायी होती है। गौ स्वर्ग के जाने के लिये सीढी है। गौ सनातन एव परम धन्य हैं ॥१८॥ श्रीमती गौओं के लिये नमस्कार है। सौरभेयी के लिये नमस्कार है। ब्रह्मा की पुत्री गौओं के लिये नमस्कार है। परम पवित्र गौओं के लिये बार-बार नमस्कार है ॥१६॥ ब्राह्मण और गौ एक ही कुल है रूप दो किये गये हैं। एक जगह अर्थात् ब्राह्मण में मन्त्रों का स्थान है तो एक मे अर्थात् गौ मे हवि रहा करता है। ॥२०॥ देव, गौ, ब्राह्मण, साधु और साध्वी इनमे ही यह समस्त जगत् सदा धारण किया जाता है। इसलिये ये सभी पूज्यतम माने गये हैं ॥२१। जहाँ पर तीर्थ का पान करते हैं वह गङ्गा आदि गौऐं ही हैं। अब तक गौओं का महात्म्य बतलाया गया है। अब उनकी चिकित्सा करने की सुनो ॥२२॥ धेनुओं के सींगों के रोगों में सैन्धव के साथ तेल देना चाहिए। सब प्रकार के कर्ण शूलों मे शृङ्गवेर, बला, मामी का माक्षिक (शहद) के साथ बरक सिद्ध करे। अथवा मजीठ, हींग, सैन्धव के द्वारा सिद्ध किया हुआ तैल देना चाहिए अथवा रसोन के साथ देवे ॥२३॥२४॥

बिल्वामलमपामार्ग धातकी च सपाटला।
कुटज दन्तमूलेषु लेपास्तच्छूलनाशनम् ॥२५
दन्तमूलहरैर्द्रव्यैर्घृत रामविपाचितम्।
मुखरोगहर ज्ञेय जिह्वारोगेषु सैन्धवम् ॥२६
शृङ्गवेर हरिद्रे द्वे त्रिफला च गलग्रहे।
हृच्छूले बस्तिशूले च वातरोगे क्षये तथा ॥२७
त्रिफला घृतमिश्रा च गवा पाने प्रशस्यते।
अतीसारे हरिद्रे द्वे पाठा चैव प्रदापयेत् ॥२८
सर्वेषु कोष्ठरोगेषु तथा शाखागदेषु च।
शृङ्गवेर च भार्गी च कासे श्वासे प्रदापयेत् ॥२९

दातव्या भग्नमधाने प्रियगुर्लवणान्विता ।
तैलं वातहरपित्ते मधुयष्ठीविपाचितम् ॥३०
कफे क्षौद्र च समधु सपूतकरजोऽस्रजे ।
तैलाज्य हरिताल च भग्नक्षते घृत ददेत् । ३१
माषास्तिला सगोधूमाः पय क्षीरं घृत तथा ।
एषा पिण्डी सलवणा वत्साना पुष्टिदाल्वियम् ॥३२

बिल्व फल, अपामार्ग, धातकी, पाटला, कुटज इनका लेप दन्त शूलो मे करने से शूल का नाश हो जाता है ॥२५॥ दन्तशूल के हरण करने वाले द्रव्यो के साथ राम विपाचित घृत मुख के रोगो का हरण करने वाला जानना चाहिए। जिह्वा के रोगो मे सैन्धव लाभप्रद होता है ॥२६॥ शृङ्गबेर दोनो प्रकार की हल्दी और त्रिफला गलग्रह मे देना चाहिए। हृच्छूल वस्तिशूल, व तरोग तथा क्षय मे घृत से मिलाकर त्रिफला का पान कराना गौओ के लिये परम प्रशस्त कहा जाता है। अतीसार मे दोनो हल्दी और प ठा दिलवाना चाहिए ॥२७॥२८॥ समस्त कोष्ठ के रोगो मे तथा शाखा गो ो म शृङ्गबेर और भार्ङ्गी देवे तथा कास, श्वास, मे भी ये ही दिलवानी चाहिए ॥२९॥ भग्न संधान मे लवण से युक्त प्रियगु देनी चाहिए। तैल वातहर है और पित्त मे मधु और यष्टि से विपाचित किया हुआ देवे ॥३०॥ कफ मे क्षौद्र मधु के साथ असृज मे सपूप करज तथा भग्नक्षत मे तैल और घृत तथा हरिताल शृत किया हुआ देवे ॥३१॥ माषा (उर्द), तिल गोधूम के सहित तथा पय, क्षीर और घृत इनको पिण्डी नमक के साथ वत्सो को पुष्टि देने वाली तथा बलप्रद होती है ॥३२॥

बलप्रदा विषाणा स्याद् गृहे नाशाय धूमक ।
देवदारु वचा मासी गुग्गुलुहिंगुसर्षपा ॥३३
ग्रहादिगदनाशाय एष धूपो गवा हित ।
घण्टा चैव गवा कार्या धूपेनानेन धूपिता ॥३४
अश्वगन्धातिलै. शुक्ल तेन गौ क्षीरिणी भवेत् ।
रसायन च पिण्याक मूर्ती यो धार्यते गृह ॥३५

गवा पुरीषे पञ्चम्या नित्य शान्त्यै श्रियं यजेत् ।
वासुदेवं च गन्धाद्यं रपरा शान्तिरुच्यते ॥३६
अश्वयुक्शुक्लपक्षस्य पञ्चदश्या यजेद्धरिम् ।
हरिं रुद्रमज सूर्यं श्रियमग्निं घृतेन च ॥३७
दधि सम्प्राश्य गा पूज्या कार्या वन्हिप्रदक्षिणा ।
वृषाणां योजयेद्युद्धं गीतवाद्यरवैर्बहिः ॥३८
गवा तु लवणं देयं ब्राह्मणाना च दक्षिणा ।
नैमित्तिके मकरादौ यजेद्विष्णुं सह श्रिया ॥३९

घर मे विषो के नाश करने के लिये धूप होती है। देवदारु, वच, मांसी गुग्गुल, हींग, सरसो इनका धूप ग्रहणादि के रोग का नाशक और गौओं को हितप्रद होती है। इस धूप से धूपित करके गौओ का घण्टा करना चाहिए। ॥३३॥३४॥ अश्वगन्धा तिलो से युक्त है इससे गौ क्षीर वाली होती है। पिण्याक रसायन है जो मूर्ति मे घर म धारण किया जाता है ॥३५॥ गौओं के पुरीष (गोबर) म पञ्चमी तिथि में नित्य शान्ति के लिये श्री का यजन करना चाहिए। और गन्धाक्षतादि से वासुदेव का यजन करे तो यह दूसरी शान्ति कही जाती है ॥३६॥ अश्वयुक् शुक्ल पक्ष की पञ्चदशी तिथि मे अर्थात् पूर्णिमा में हरि का यजन करे। हरि, रुद्र, अज, सूर्य, श्री अग्नि का घृत से यजन करे। दधि खिलाकर गौ का पूजन करे और अग्नि की प्रदक्षिणा करनी चाहिए। वृषो का युद्ध बाहिर गीत वाद्य की ध्वनि के साथ योजित करे ॥३७॥ ॥३८॥ गायों को लवण देना चाहिए और ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे। नैमित्तिक मकर आदि मे श्री के साथ विष्णु का यजन करे ॥३९॥

स्थण्डिलेऽब्जे मध्यगते दिक्षु केसरगान्सुरान् ।
सुभद्राय रवि पूज्यो बहुरूपो बलिर्बहिः ॥४०
च विश्वरूपा सिद्धिश्च ऋद्धि शान्तिश्च रोहिणी ।
दिग्धेनवो हि दूर्वाद्या कृशरैश्चन्द्र ईश्वर ॥४१
दिक्पाला पद्मपत्रेषु कुम्भेष्वग्नौ च होमयेत् ।
क्षीरवृक्षस्य समिधं सर्षपाक्षततण्डुलान् ॥४२

शत शत सुवर्णं च कास्यादिक द्विजे ददेत् ।
गाव पूज्या विमोक्तव्या शान्त्यै क्षीरादिसयुता ॥४३

स्थण्डिल म मध्यगत कमल म भगवान् का पूजन करना चाहिए। केसरो मे स्थित देवो को दिशाओ में समर्चित करे। सुभद्र के लिये सूर्य की पूजा करनी चाहिए बाहिर म बहुत रूप वाली बलि करनी चाहिए ॥४०॥ अन्तरिक्ष को, विश्वरूपा सिद्धि, ऋद्धि और रोहिणी, पूर्व आदि मे होने वाली दिग्धेनु, कुम्भो के द्वारा चन्द्र, ईश्वर तथा पद्म पत्रो मे दिक्पाल, कुम्भो मे और अग्नि म होम करना चाहिए। क्षीर वृक्षों की समिधा और सरसो, अक्षत और तण्डुलो का हवन करे ॥४१॥४२॥ शत, शत सुवर्ण और कास्य आदि का ब्राह्मण के लिये दान करना चाहिए। क्षीर आदि से सयुत गौओ का पूजन करना चाहिए और शान्ति के लिये इन्हे मुक्त भी करना चाहिए ॥४३॥ अग्नि देव ने कहा—शालि होत्र ने सुश्रुत के लिये हयो का आयुर्वेद कहा था। पालकाप्य ने अङ्गराज के लिये हाथियों के आयुर्वेद को कहा था ॥४४॥

१३०—मन्त्रपरिभाषा

मन्त्रविद्यामह वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदा शृणु ।
विंशत्यर्णाधिका मन्त्रा मालामन्त्रा स्मृता द्विज ॥१
दशाक्षराधिका मन्त्रास्तदर्वाक्बीजसज्ञिता ।
वार्धक्ये सिद्धिदा ह्येते मालामन्त्रास्तु यौवने ॥२
पचाक्षराधिका मन्त्रा सिद्धिदा सर्वदा स्मृता ।
स्त्रीपुनपुसकत्वेन त्रिधा स्युर्मन्त्रजातय ॥३
स्त्रीमन्त्रा वन्हिजायान्ता नमोन्ताश्च नपु सका ।
शेषा पुमासस्ते शस्ता वश्योच्चाटनकेषु च ॥४
क्षुद्रक्रियामयध्वसे स्त्रियोऽन्यत्र नपु सका ।
मन्त्रावाग्नेयसौम्याख्यौ ताराद्यन्तार्धयोर्जपेत् ॥५
तारान्त्याग्निवियत्प्रायो मन्त्र आग्नेय इष्यते ।
शिष्टा सौम्या प्रशस्तौ तौ कर्मणो क्रूर सौम्ययो ॥६

आग्नेयमन्त्र सौम्य स्यात्प्रायशोऽन्ते नमोन्वित ।
सौम्यमन्त्रस्तथाऽऽग्नेय फट्कारेणान्ततो युत ॥७
सुप्त प्रबुद्धमात्रो वा मन्त्र सिद्धि न यच्छति ।
स्वापकालो महाबाहो जागरो दक्षिणावह ॥८
आग्नेयस्य मनो सौम्यमन्त्रस्यैतद्विपर्ययात् ।
प्रबोधकाल जानीयादुभयारुभयोरह ॥६
दुष्क्षराशिविद्ध पिवर्णादीन्वजयन्मनून् ।
राज्यलाभापकाराय प्रारभ्यारि स्वर कुर्वन् ॥१०

अग्निदेव ने कहा—अब हम मन्त्र विद्या का वर्णन करते हैं जो भुक्ति और मुक्ति दोनों को प्रदान करने वाली होती है। तुम उसका श्रवण करो। बीस वर्ण से अधिक वर्ण वाले जो मन्त्र होते हैं वे हे द्विज ! माला मन्त्र कहे गये हैं ॥१॥ दश अक्षरों से अधिक अक्षरों वाले मन्त्र उससे अर्थक बीज संज्ञा वाले होते हैं। ये मन्त्र वृद्धावस्था में सिद्धि के देने वाले हुआ करते हैं और जो माला मन्त्र होते हैं वे युवावस्था में सिद्धिप्रद होते हैं ॥२॥ पाँच अक्षरों से अधिक अक्षरों वाले मन्त्र सर्वदा परम सिद्धि प्रद हुआ करते हैं। मन्त्र, पुरुष स्त्री और नपुंसक के भेद से तीन जातियों वाले होते हैं ॥३॥ जो स्त्री जाति वाले मन्त्र होते हैं वे वह्नि जाया न और नम—इस पद के अन्त वाले नपुंसक हुआ करते हैं। नाम मन्त्र पुरुष ध्वनि वाले होते हैं जो कि वश्य (वशी करण) और उच्चाटन कर्म में परम प्रशस्त (बहुत अच्छे) होते हैं ॥४॥ क्षुद्र क्रिया और रोग के ध्वंस करने में स्त्री मन्त्र प्रयोग में लाये जाते हैं और अन्य कर्मों में नपुंसक मन्त्र अच्छे होते हैं। आग्नेय और सौम्य नाम वाले मन्त्र ताराद्रि प्रत्यय में अपना चाहिए ॥५॥ तारा स्व, अग्नि और वियद् प्राय होने वाला मन्त्र आग्नेय कहा जाता है। शिष्ट सौम्य होते हैं। वे दोनों प्रकार के मन्त्र सौम्य और क्रूर कर्मों में प्रशस्त होते हैं ॥६॥ आग्नेय मन्त्र सौम्य होता है जो प्राय अन्त में नम—इससे युक्त होता है। सौम्य मन्त्र तथा आग्नेय मन्त्र अन्त में फट्कार से अन्वित हुआ करता है ॥७॥ सुप्त और प्रबुद्ध मात्र मन्त्र सिद्धि को नहीं दिया करता है। हे महाबाहो ! स्वापकाल

मे जागर दक्षिणावह होता है ॥८॥ जो आग्नेय मन्त्र है (सौम्य मन्त्र का इससे विपर्यय होता है) उसका दोनो दोनो को दिन प्रबोध काल जानना चाहिए । ॥६॥ दुष्ट नक्षत्र, राशि, विद्वेषी वर्ण आदि वाले मन्त्रो को त्याग देना चाहिए । राज्य लाभ के उपकार के लिये प्रारम्भारि, स्वर और कुछ मन्त्र होते हैं ।१०।

गोपालककुटी प्रायाःपूर्णामित्युदिता लिपि ।
नक्षत्रेषु क्रमाद्योज्यौ स्वरान्त्यौ रेवतीयुजौ ॥११
वेला गुरु स्वरा शोण कर्मणैवेति भेदिता ।
लिप्यर्णा वशिषु ज्ञेया षष्ठेशादीश्च योजयेत् ॥१२
लिपौ चतुष्पथस्थायामाख्यावर्णपदान्तरा ।
सिद्धा साध्या द्वितीयस्था सुसिद्धा वैरिण परे ॥१३
सिद्धादीन्कल्पयेदेव सिद्धोऽत्यन्तगुणैरपि ।
सिद्धे सिद्धो जपात्साध्यो जपपूजाहुतादिना ॥१४
सुसिद्धो ध्यानमात्रेण साधक नाशयेदरि ।
दुष्टार्णप्रचुरो य स्यान्मन्त्र सर्वविनिन्दित ॥१५
प्रविश्य विधिवद्दीक्षामभिषेकावसानिकाम् ।
श्रुत्वा तन्त्र गुरोर्लब्ध साधयेदीप्सित मनुम् ॥१६

प्राय गोपालक कुटी पूर्णा लिपि कही गई है। नक्षत्रो मे क्रम से जिनके अन्त मे स्वर हो और रेवती युक्त हो वे क्रम से योजित करने के योग्य हैं ॥११॥ वेला, गुरु, स्वर, शोण ये सब कर्म से ही भेद वाले होते हैं। लिपि के वर्ण वशो मे जानने चाहिए । षष्ठेशादि को योजित करना चाहिए ॥१२॥ चतुष्पथ मे स्थित लिपि म आख्या वर्ण पदान्तर सिद्ध साध्य, द्वितीयस्थ, सुसिद्धा और दूसरे वैरी होते हैं ॥१३॥ इस प्रकार से सिद्धादि की कल्पना करे। अत्यन्त गुणो से भी सिद्ध है। सिद्ध होने पर सिद्ध है और जप से वह होता है। जप, पूजा और हवन आदि के द्वारा साध्य होता है। जो ध्यान मात्र कर लने स ही सिद्ध हो जाता है वह सुप्रसिद्ध होता है। और जो होता है वह तो साधना करने वाले का नाश कर दता है। दुष्ट वर्ण जिसमें अधिक होते हैं वह मन्त्र सब प्रकार से विनिन्दित अर्थात् बुरा होता है ॥१४॥१५॥ विधि पूर्वक

दीक्षा लेकर जिसमे मन्त्र मे अभिषेक हो और फिर गुरु से तन्त्र का श्रवण करके जो मन्त्र इच्छित हो उसे प्राप्त करके साधन करना चाहिए ॥१६॥

धीरो दक्षः शुचिर्भक्तो जपध्यानादितत्परः ।
सिद्धस्तपस्वी कुशलस्तन्त्रज्ञः सत्यभाषणः ॥१७
निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते ।
शान्तो दान्तः पटुश्चीर्णब्रह्मचर्यो हविष्यभुक् ॥१८
कुर्वन्नाचार्यशुश्रूषां सिद्धोत्साही स शिष्यकः ।
स तूपदेश्यः पुत्रश्च विनयी वसुदस्तथा ॥१९
मन्त्रं दद्यात्सुसिद्धो तु सहस्रं देशिको जपेत् ।
यदृच्छया श्रुतं मन्त्रं छलेनाथ बलेन वा ॥२०
पत्रे स्थितं च गाथां च जनयेद्यदनर्थकम् ।
मन्त्रं यः साधयेदेकं जपहोमार्चनादिभिः ॥२१
क्रियाभिर्भूरिभिस्तस्य सिध्यते स्वल्पसाधनात् ।
सम्यक्सिद्धैकमन्त्रस्य नासाध्यमिह किंचन ॥२२
बहुमन्त्रवतः पुंसः का कथा शिव एव सः ।
दशलक्षजपादेकवर्णो मन्त्रः प्रसिध्यति ॥२३
वर्णवृद्धया जपह्रासस्तेनान्येषां समूहयेत् ।
बीजाद्द्वित्रिगुणान्मन्त्रान्मालामन्त्रे जपक्रिया ॥२४

तन्त्र की दीक्षा जिससे प्राप्त की जावे वही गुरु परम धीर, दक्ष, पवित्र भक्त और जप तथा ध्यान आदि मे तत्पर रहने वाला सिद्ध, तपस्वी, तन्त्र का पूर्ण ज्ञाता, कुशल, तपस्वी, सिद्ध और सत्य भाषण करने वाला, निग्रह और अनुग्रह दोनो के करने मे समर्थ होना चाहिए वह ही गुरु कहा जाता है। जो परम शान्त, दमनशील, पटु (कुशल) चीर्ण, ब्रह्मचर्य रखने वाला, हविष्य के खाने वाला और आचार्य की शुश्रूषा करने वाला सिद्ध एवं उत्साहयुक्त हो वह ही शिष्य होने के योग्य होता है। ऐसे ही शिष्य को उपदेश करना चाहिए। और जो विनययुक्त पुत्र हो तथा धन का दाता हो उसे मन्त्र देना चाहिए। सुसिद्ध होने पर आचार्य को एक सहस्र जप करना चाहिए। यदृच्छा से सुने हुए

मन्त्र को तथा छल से एव बल से प्राण एव पत्र मे स्थित मन्त्र को और गाथा को करे तो वह अनर्थक होता है। जो जप, होम और अर्चना आदि के द्वारा एक मन्त्र की साधन करता है। बहुत सी क्रियाओ के द्वारा उसे स्वल्प साधन से सिद्ध हुआ करते है। भली प्रकार से जिसे एक ही मन्त्र की सिद्धि हो जाती है उसे इस लोक मे फिर कुछ भी असाध्य वस्तु नही रहती है ॥१७॥१८॥१९॥ ॥२०॥२१॥२२॥ जिसे बहुत सारे मन्त्रो की सिद्धि हो उस पुरुष का तो कहना ही क्या है। वह तो साक्षात् शिव ही होता है। दश लक्ष जप करने से एक वर्ण वाला मन्त्र प्रसिद्ध होता है ॥२३॥ वर्ण की वृद्धि से जप का ह्रास हो जाता है अर्थात् जाप सख्या कम हो जाती है। इससे मन्त्रो का एकत्रीकरण करे। बीज से दुगुना, तिगुना मन्त्रो को माला मन्त्रो मे जाप की क्रिया होती है ॥२४॥

सख्यानुक्तौ शत साष्ट सहस्र वा जपादिषु।
जपाद्दशाश सर्वत्र साभिषेक हुत विदु ॥२५
द्रव्यानुक्तौ घृत होमे जपोऽशक्तस्य सर्वत ।
मूलमन्त्राद्दशाश स्यादङ्गादीना जपादिकम् ॥२६
जपात्सशक्तिमन्त्रस्य कामदा मन्त्रदेवता ।
साधकस्य भवेत्तृप्ता ध्यानहोमार्चनादिना ॥२७
उच्चैर्जपादिशिष्ट स्यादुपाशुर्दशभिर्गुणैं ।
जिह्वाजपे शतगुण सहस्रो मानस स्मृत ॥२८
प्राङ्मुखोऽवाङ्मुखो वाऽपि मन्त्रकर्म समारभेत् ।
प्रणवाद्या सर्वमन्त्रा वाग्यतो विहिताशन ॥२९
आसीनस्तु जपेन्मत्रान्देवताचार्यतुल्यदृक् ।
कुटी विविक्ता देशा स्युर्देवालयनदीहृदा ॥३०
सिद्धौ यवागूपूर्वा पयो भक्ष्य हविष्यकम् ।
मन्त्रस्य देवता तावत्तिथिवारेषु वै यजेत् ॥३१
कृष्णाष्टमीचतुर्दश्योर्ग्रहणादौ च साधक ।
दस्रो यमोऽनलो धाता शशी रुद्रो गुरुर्दिति ३२

सर्पा पितरोऽथ भगोऽर्यमा शीतेतरद्युति ।
त्वष्टा मरुत इन्द्राग्नी मिनेन्द्रो निऋ तिर्जलम् ॥३३
विश्वे देवा हृषीकेशो वासव सलिलाधिप ।
अजंकपादहिर्वध्न्य पूषाऽश्विन्यादिदेवता ॥३४

जहाँ सख्या की उक्ति नही है वहाँ एक सौ आठ अथवा एक सहस्र जप आदि करे तथा जप से दशाश भाग अभिषेक के साथ हवन करना चाहिए ।२५। जहाँ किसी विशेष द्रव्य का हवन के लिये कथन न हो वहा होम मे घृत ही लेना चाहिए । यदि होम मे अशक्त हो तो मूलमन्त्र से अङ्गादि का दशाश जप आदि करना चाहिए ॥२६॥ शक्ति के सहित मन्त्र के जप से मन्त्र देवता कामनाओ के देने वाले होते हैं । ध्यान, होम और अर्चना आदि से वे परम तृप्त होकर साधक की कामना पूर्ण किया करते हैं ॥२७॥ ऊचे स्वर से जो जप होना है उससे दशगुना विशिष्ट उपाशु जप होता है । जिह्वा जप शतगुण और मानस जाप सहस्र गुना विशिष्ट कहा गया है ॥२८॥ पूर्व की ओर मुख वाला या अवाड मुख वाला होकर मन्त्र कर्म करना चाहिए समस्त मन्त्रो मे प्रणव आदि मे होना चाहिए । मन्त्र जप करने वाला मौन और विदितासन होना चाहिए । मन्त्रो को बैठकर ही जपना चाहिए और देवता तथा आचार्य दोनों को समान रूप से देखे । मन्त्र जप करने वाले की कुटी एकान्त स्थान मे होनी चाहिए । मन्त्र जाप के लिये देवालय, नदी या ह्रद ये देश उपयुक्त होते हैं । ॥२६॥३०॥ मन्त्र की सिद्धि मे यवागु, पूप, पय अथवा हविष्य का भोजन करना चाहिए । मन्त्र के जो देवता हो उन्हें तिथि और वारों मे समर्पित करे । ॥३१॥ कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा ग्रहण आदि मे साधक को पूजा करनी चाहिए ॥३२॥ दस्र यम, अनल धाता, शशि, रुद्र गुरु, दिति, सर्प, पितर, भग, अर्यमा शीतेतरद्युति अर्थात् सूर्य त्वष्टा, मरुत, इन्द्र, अग्नि, मित्र इन्द्र, निऋ ति, जल, विश्वदेवा हृषीकेश, वासव, वरुण, अज एक पाद, अहि वध्न्य पूषा और अश्विनी आदि देवताओ का समचन करे ॥३२॥३३॥३४॥

अग्निर्दस्त्राकुमानिघ्नो नागश्चन्द्रो दिवाकर ।
मातृदुर्गा दिशामोश कृष्णो वैवस्वत शिव ॥३५

पञ्चदश्या. शशाङ्कस्तु पितरस्तिथिदेवताः ।
हरो दुर्गा गुरु विष्णु ब्रह्मा लक्ष्मीर्धनेश्वर. ॥३६
एते सूर्यादिवारेशा लिपिन्यासोऽथ कथ्यते ।
केशान्तेषु च वृत्तेषु चक्षुषोः श्रवणद्वये ॥३७
नासागण्डौष्ठदन्तेषु द्वे द्वे मूर्धास्ययो क्रमात् ।
वर्णान्पिचमु वर्गाणां बाहुचरणसन्धिषु ॥३८
पार्श्वयो पृष्ठतो नाभौ हृदये च क्रमान्न्यसेत् ।
यार्द्यंश्च हृदये न्यस्येदेषा स्यु सप्त धातव ॥३९
त्वगसृङ् मासमेदोस्थिमज्जाशुक्राणि धातव ।
रसाद्यंश्च पयान्तेश्च लिख्यन्ते च लिपीश्वरै ॥४०
श्रीकण्ठोऽनन्तसूक्ष्मौ च त्रिमूर्तिरमरेश्वर ।
अग्नीशो भारभूतिश्च तिथीश स्थाणुकौ हर. ॥४१
दण्डीशो भौतिक सद्योजातश्चानुग्रहेश्वर ।
अक्रूरश्च महासेन. शरण्या देवता अमू ॥४२
ततः सूचीशश्चण्डो च पचान्तकशिवोत्तमौ ।
तथैव रुद्रकूर्मौ च त्रिनेत्रश्चतुराननः ॥४३

उपान्त्यन अग्नि, हस्त, नाग, चन्द्र, दिवाकर, मयूर दुर्गा, दिशाओ के स्वामी, कृष्ण, वैवस्वत, शिव, पञ्चदशी का धाम इ, पितर, तिथियो के देवता हर, दुर्गा, गुरु, विष्णु, ब्रह्मा, लक्ष्मी, धनेश्वर ये सूर्य आदि वारो के स्वामी हैं । इसके अनन्तर लिपि न्यास कहा जाता है । केशान्तो में, वृत्तो मे दोनो नेत्रो मे दोनों कानो मे, नाक, गण्ड, ओष्ठ और दांतो मे, मूर्धा और मुख मे क्रम से दो दो वर्णों के वर्गों को पाँच बाहु चरण और सन्धियो मे, दोनो पस वाडों मे, पृष्ठ मे, नाभि में और हृदय मे क्रम म न्यास करना चाहिए । यकारादि का हृदय मे न्यास करे । इनकी सात धातु होती हैं ॥३५ से ३६ तक॥ त्वक् रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात शरीरस्थ धातुऐं हैं । रसादि और पयोन्त लिपीश्वरो के द्वारा लिखी जाती हैं ॥४० । श्री कण्ठ, अनन्त, सूक्ष्म,

त्रिमूर्ति, अमरेश्वर, अर्घीश, भारभूति, तिथीश, स्थाणुक, हर, दण्डीश, भौतिक सद्योजात, अनुग्रहेश्वर, अक्रूर, महासेन ये देवता शरण्य हैं ॥४१॥४२॥

अजेश शमसोमेशौ तथा लाङ्गलिदारुकौ ।
अर्धनारीश्वरश्चोमाकान्तश्चाऽऽषाढिदण्डिनौ ॥४४
अत्रिर्मीनश्च मेषश्च लोहितश्च शिखी तथा ।
शूलगण्डद्विगण्डौ द्वौ समहाकालवालिनौ ॥४५
भुजङ्गश्च पिनाकी च खड्गीशश्च बक पुन. ।
श्वेतो भृगुर्लकुटाकाक्ष क्षय संवर्तक स्मृत ॥४६
रुद्रान्सशक्तान्विन्यसेत्क्रमान्विन्यसेत्क्रमात् ।
अङ्गानि विन्यसेत्सर्वं मन्त्रा मागास्तु सिद्धिदा ॥४७
हृल्लेखाव्योमसपूर्णान्येतान्यङ्गानि विन्यसेत् ।
हृदादीन्यङ्गमन्त्रान्तैर्योजयद्धृदये नम ॥४८
स्वाहा शिरस्यथ वषट् शिखाया कवचे च हूम् ।
वौषण्नेत्रमस्त्राय फट्स्यात्पञ्चाङ्ग नेत्रवर्जितम् ॥४९
निरङ्गस्यात्मना चाग न्यस्य न नियुत जपेत् ।
क्रमेण देवी वागीशा यथोक्तांस्तु तिलान्हुनेत् ॥५०
लिपिदेवी साक्षसूत्रकुम्भपुस्तकपद्मधृक् ।
कवित्वादि प्रयच्छेत् कर्मादौ सिद्धय न्यसेत् ॥
निष्कत्रिनिर्मल सर्वे मन्त्रा सिध्यन्ति मातृभि ॥५१

निष्कल त्रिनिर्मल सर्वं मन्त्रा सिध्यन्ति मातृभि ॥ इसके अनन्तर सूर्यान चण्ड, पञ्चान्तक, शिवोत्तम, रुद्र, कूर्म, त्रिनेत्र चतुरानन, अजेश शम सोमेश लाङ्गलि दारुक, अर्धनारीश्वर, उमाकान्त, आषाढि, दण्डी, अत्रि, मीन, मेष लोहित शिखी, शूलगण्ड, द्विगण्ड महाकाल, वाली, भुजङ्ग, पिनाकी, खड्गीश, बक, श्वेत, भृगु, लकुटाक्ष, क्षयी, संवर्तक इन शक्ति के सहित रुद्रो ११ त्रिंसे और नम" यह अन्त मे लगाकर क्रम से विन्यास करना चाहिए। समस्त मातृ मन्त्र सिद्धि देने वाले होते हैं अत सबको मन्त्रो पर न्यास करना चाहिए ॥४३ से ४७ तक॥ हृल्लेखा व्योम से सम्पूर्ण इन मन्त्रों का न्यास करना चाहिए। हृदादि को मन्त्र मन्त्रान्तो के द्वारा

योजित करना चाहिए। हृदय में नम–शिर मे स्वाहा, शिखा मे वषट्, कवच मे हुम्, नेत्रों में वौषट् और अस्त्र के लिये फट् होना चाहिए। नेत्र वर्जित पञ्चाङ्ग है ॥४८॥४६॥ जो निरंग हो उसका आत्मा से अङ्ग का न्यास करके उसका नियुत संख्या में जप करे। क्रम से वागीशा की दधोत्तो को तिलों द्वारा हवन करना चाहिए ॥५०॥ लिपि देवी अक्ष सूत्र, कुम्भ, पुस्तक और पद्म को धारण करने वाली है। वह कवित्व आदि को देनी है अत मर्म के आदि मे सिद्धि के लिये न्यास करना चाहिए। निष्क विनिर्मल समस्त मन्त्र मातृ द्वारा सिद्ध होते हैं ॥५१॥

१२१--नागलक्षणानि

नागादयोऽथ भावादि दश स्थानानि कर्म च।
सूतकं दष्टचेष्टेति सप्त लक्षणसयुता (?) ॥१
शेषवासुकितक्षाख्या कर्कजाब्जौ महाम्बुज.।
शङ्खपालश्च कुलिक इत्यष्टौ नागवर्यका: ॥२
दशाष्टपञ्चत्रिगुणशतमूर्धान्वितौ क्रमात्।
विप्रौ नृपौ विशौ शूद्रौ द्वौ द्वौ मार्गेषु कीर्तितौ ॥३
तदन्वया: पञ्चशत तेभ्यो जाता असख्यका।
फणिमण्डलिराजीलवातपित्तकफात्मका ॥४
व्यन्तरा दोषमिश्रास्ते सर्पा दर्वीकरा स्मृता.।
रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वास्तिकाङ्कुशधारिण ॥५
गोनसा मन्दगा दीर्घा मण्डलैर्विविधैश्चिता।
राजीलाश्चित्रिता स्निग्धास्तिर्यगूर्ध्वविराजिभि ॥६
व्यन्तरा मिश्रचिन्हाश्च भूवर्पाग्नेयवायव।
चतुर्विधास्ते षड्विंशभेदा षोडश गोनसा ॥७
त्रयोदश च राजीला व्यन्तरा एकविंशति।
येऽनुक्तकाले जायन्ते सर्पास्ते व्यन्तरा स्मृता. ॥८

इस अध्याय मे नागो (सर्पो) के लक्षण बताए जाते हैं। श्री अग्निदेव ने कहा—नाग आदि मायादि दस स्थान और कर्म, सूतक, दृष्ट और वेश यह सात लक्षणो से युक्त होते हैं ॥१॥ शेष, वासुकि, तक्षक, कर्कोट, अब्ज, महाम्बुज, शङ्खपाल और कुलिक ये आठ श्रेष्ठ नाग हैं ॥२॥ दस, आठ, पाँच, त्रिगुण, शतमूर्धा से अन्वित क्रम से विप्र, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र दो-दो नागों में बताए गए हैं ॥३॥ उनके वंश वाले पाँच सौ हैं और उनसे असंख्य उत्पन्न हुए हैं। फणी, मण्डली, राजील और वात पित्त कफात्मक हैं। व्यन्तर और दोष में मिश्रण जो सर्प हैं वे सर्प दर्वीकर कहे गये हैं। रथाङ्ग (चक्र), लाङ्गल (हल), छत्र स्वास्तिक (साथिया) और अङ्कुश के चिह्नों को धारण करने वाले गोनस, मन्द गमनकारी, दीर्घ और अनेक प्रकार के मण्डलो से चित्ते हुए हैं। राजील जो होते हैं वे चित्रित स्निग्ध और तिर्यक् (तिरछी) और ऊर्ध्व विराजिया से युक्त होते हैं ॥४॥५॥६॥ व्यन्तर जो सर्प होते हैं वे मिले-जुले चिह्नों वाले हैं भू वर्षा, आग्नेय और वायव होते हैं। ये चार प्रकार के भेद वाले छब्बीस प्रकार के भेदो से युक्त होते हैं। गोनस सोलह प्रकार के हैं। राजील तरह तरह के होते हैं। व्यन्तर इक्कीस प्रकार के हैं। जो अनुकूल काल में पैदा होते हैं वे व्यन्तर नाम वाले सर्प कहे गये हैं ॥७॥८॥

आषाढादित्रिमास स्याद् गर्भो मास चतुष्टये ।
अण्डकाना शते द्वे च चत्वारिंशत्प्रसूयते । ९

सर्पा ग्रसन्ति सूतौघाग्विना स्त्रीपुनपुंसकान् ।
उन्मीलितेऽक्षि सप्ताहात्कृष्णो मासाद्भवेद्बहिः ॥१०

द्वादशाहात्सुबोध स्याद्दन्ताः स्युः सूर्यदर्शनात् ।
द्वात्रिंशद्दिनविंशत्या चतस्रस्तेषु दंष्ट्रिका ॥११

कराली मकरी कालरात्रिश्च यमदूतिका ।
एतास्ता सविषा दंष्ट्रा वामदक्षिणपार्श्वगा ॥१२

षण्मासान्मुच्यते कृत्ति जीवेत्षष्टिसमाद्वयम् ।
नागा सूर्यादिवारेशा. सप्त उक्ता दिवा निशि ॥१३

स्वेषां पट्प्रतिवारेषु कुलिक सर्वमधिषु ।
पाञ्चेन वा महाब्जेन सह तस्योदयोऽथ वा ॥१४
द्वयोर्वा नाडिकामात्रमन्तरं कुलिकोदय. ।
दुष्टः स कालः सवस्व सर्पदंशे विशेषत ॥१५
कृत्तिका भरणी स्वाती मूलं पूर्वत्रयाश्विनी ।
विशाखाऽऽर्द्रा मघाऽऽश्लेषा चित्रा श्रवणरोहिणी ॥१६
हस्तौ मन्दकुजौ वारौ पञ्चमी चाष्टमी तिथि ।
षष्ठी रिक्ता शिवा निन्द्या पञ्चमी च चतुर्दशी ॥१७

आषाढ आदि तीन मासों में वेग से चार मासों में गर्भ होता है। दो सौ अण्डो से चालीस का प्रसव होता है ॥९॥ सुबोध के बिना स्त्री-पुरुष और नपुंसकों को सर्प ग्रास कर लेते हैं। नेत्रों के खोलने पर सप्ताह में कृष्ण मास से बाहर होता है ॥१०॥ बारह दिन में सुबोध (अच्छे ज्ञान वाला) होता है और सूर्य के दर्शन से दाँत होते हैं। बत्तीस दिन या बीस में चार दाढ होती हैं। कराली, मकरी, कालरात्रि और यमदूतिका इन नामों वाली, विष से युक्त वाम, दक्षिण और पार्श्व में होने वाली दंष्ट्रा (दाढें) होती हैं ॥११॥१२॥ छ मास में सर्प कृत्ति (कांचली) को छोड देते हैं। बासठ वर्ष तक सर्प जीवित रहते हैं। सूर्यादि वारों के ईश नाग दिन-रात में सात कहे गये हैं। अपने छ प्रतिवारों में सर्व सन्धियों में कुलिक होता है। शङ्ख अथवा महाब्ज के साथ उसका उदय होता है। अथवा दोनों का नाडिकामात्र अन्तर होता है। वह दुष्ट काल है और विशेष करके सर्पदंश में सबत्र होता है ॥१३॥१४॥१५॥ कृत्तिका, भरणी, स्वाती, मूल तीनों पूर्वा, अश्विनी विशाखा आर्द्रा मघा, आश्लेषा, चित्रा, श्रवण, रोहिणी, हस्त य नक्षत्र, शनि और मङ्गलवार तथा पञ्चमी, अष्टमी, षष्ठी और रिक्ता तिथि शिव अर्थात् शुभ है। पञ्चमी और चतुर्दशी निन्दनीय अर्थात् अशुभ है ॥१६॥१७॥

सन्ध्याचतुष्टयं दुष्टं दु (द)ग्धयोगाश्च राशयः ।
एकद्विबहवो दंशा दष्टं विद्धं च खण्डितम् ॥१८

अदशमरगुर्त स्याद् दशमेव चतुर्विधम् ।
त्रयो द्वे वक्षता दंशा वेदना रुधिरोत्वणा ॥१९
नक्तं त्वेकाङ्घ्रिकूर्माभा दंशाश्च यमचोदिता ।
दाही पिपीलिकास्पर्शी कण्ठशोथरुजान्वितः ॥२०
सतोदो ग्रन्थितो दंशः सविषोऽन्यस्तु निर्विषः ।
देवालये शून्यगृहे वल्मीकोद्यानकोटरे ॥२१
रथ्यासन्धौ श्मशाने च नद्यां च सिंधुसङ्गमे ।
द्वीपे चतुष्पथे सौधे गृहेऽब्जे पर्वताग्रतः ॥२२
विलद्वारे जीर्णकूपे जीर्णवेश्मनि कुड्यके ।
शिग्रुश्लेष्मातकाक्षेषु जम्बूदुम्बरवेणुषु ॥२३
वटे च जीर्णप्राकारे खास्यहृत्कक्षजत्रुणि ।
तालौ शङ्खे गले मूर्ध्नि चिबुके नाभिपादयोः ॥२४
दंशोऽशुभः शुभो दूतः पुष्पहस्तः सुवाक्सुधीः ।
लिङ्गवर्णसमानश्च शुक्लवस्त्रोऽमलः शुचिः ॥२५

संख्या चतुष्टय दुष्ट हैं और दग्धयोग और रन्निर्दी दुष्ट हैं एवं दो बहुत दश हैं, दष्ट, विद्ध और खण्डित तथा अदश एव अवगुप्त तम चार प्रकार के दश होते हैं। तीन तो दो एक क्षत वाले दश होते हैं जिनमें वेदना रुधिरसे उत्पन्न हुआ करती है ॥१८।१९। रात्रि में एकाङ्घ्रि कूर्म की आभा वाले दश यम से प्रेरित हुआ करते हैं। दाह करने वाला चींटी के स्पर्श करने वाला, कण्ठ में शोथ करने वाला रुजान्वित तोद युक्त ग्रन्थित जो दश होता है वह विष से पूर्ण होता है। इसके अतिरिक्त दश विष रहित ही होता है। देवालय में, सूने घर में, बाँबी, उद्यान और कोटर (वृक्षादि का खोखर) में, गली की सन्धि में, श्मशान में, नदी में, सिन्धु के सङ्गम में, द्वीप में, चतुष्पथ (चौराहे) में, सौध (महल) में, गृह में, कमल में, पर्वत के शिखर में, बिल के द्वार में, पुराने टूटे हुए कूप में, सहिजन मकान में, कुड्यक में, शिग्रु श्लेष्मातक अक्ष में, जामुन, गूलर और बाँस में, वट में, जीर्ण प्राकार में, मुख, हृदय, जत्रु कक्ष में, तालु में, शङ्ख में, गले में,

माथे में, चिबुक में, नाभि और पैर में जो दश होता है वह अशुभ होता है। पुरुष, हस्त, सुबाहु, सुधी शुभ होता है ॥२५॥

अपद्वारगत शस्त्री प्रमादी भूगतेक्षण
विवर्णवासा पाशादिहस्तो गद्गदवर्णभाक् ॥२६
शुष्कवाष्ठाश्रित. खिन्नस्तिलालक्तकरामुक ।
आर्द्रवासा कृष्णरक्तपुष्पयुक्तशिरोरुह ॥२७
कुचमर्दी नखच्छेदी गुदस्पृक्पादलेखक ।
केशालुञ्ची तृणच्छेदी दुष्टा दूतास्तथाकृता ॥२८॥
इडाऽन्या वा वहेद्वद्धा यदि दूतस्य चाऽऽत्मन ।
आभ्यां द्वाभ्यां पुष्ट्यारमान्निवक्तास्त्रीपुनपुंसकान् ॥२९
दूत स्पृशति यद्गात्र तस्मिन्द अमुदाहरेत् ।
तनाङ्घ्रिचलन दुष्टमुत्थितिनिश्चला शुभा ॥३०
जीवपार्श्वे शुभो दूता दुष्टोऽन्यत्र समागत ।
जीवो गतागतैर्दुष्ट शुभो दूत निवेदने ॥३१
दूतस्य वामप्रदष्टा सा पूर्वामजाधनिन्दिता ।
विभक्तिस्तस्य वाक्यान्ते विपनिर्विपरालसा ॥३२

लिङ्ग वर्ण समान, शुक्ल वस्त्र वाला अमल, शुचि, अपद्वार पर गया हुआ, शस्त्र वाला, प्रमादी, पृथ्वी की ओर देखने वाला, विवर्ण वस्त्र वाला, पाश आदि हाथ में लेने वाला, गद्गद् वर्णों में बोलने वाला, शुष्क काष्ठ का आश्रय लिए हुए, खिन्न, तिल-अलक्त हाथ में लिए हुए गीले वस्त्र वाला लाल लाल पुष्पों से बालों वाला, कुचों (स्तनों) का मर्दन करने वाला, तृण को छेदन करने वाला दूत दुष्ट होता है ॥२५।२६।२७।२८॥ यदि अपनी और दूत की इडा अथवा अन्य दो प्रकार से वहन करे। इन दोनों में इन स्त्रियों, स्त्री, पुरुष और नपुंसकों की पुष्टि करे ॥२९॥ दूत जिस अङ्ग का स्पर्श करता है और उसमें दश बताये। दूत के पैरों का चालन दुष्ट होता है और उत्थान करना या निश्चल रखना शुभ होता है ॥३०॥ जीव के पार्श्व में दूत शुभ और अन्य स्थान में समागत दूत दुष्ट होता है। गत और आगत के द्वारा जो दुष्ट है और दू-

निवेदन मे शुभ होना है ॥३१॥ दूत की वाणी पूर्वमजार्ध निन्दित प्रचुर होती है। उसके विभक्त वाक्य के अन्तों से विष निर्विषका लना होती है ॥३२॥

आद्यै. स्वरैश्च कार्द्यैश्च वर्णैभिन्नलिपिद्विधा ।
स्वरजो वसुमा-वर्गी इति ज्ञेया च मातृका ॥३३
वाताग्न्न्द्रजलात्मानो वर्गेषु च चतुष्टयम् ।
नपुंसका पञ्चमाः स्यु स्वरा शकाम्बुयोनय ॥३४
दुष्टौ दूतस्य वाक्पादौ वाताग्नी मध्यमो हरि ।
प्रशस्ता वारुणा वर्णा अतिदुष्टा नपुंसका. ॥३५
प्रस्थाने मङ्गल वाक्य गर्जित मेघहस्तिनो ।
प्रदिक्षण फले वृक्षे वामस्य च रत जितम् ॥३६
शुभा गीतादिशब्दा स्युरीदृश स्याद्धि सिद्धये ।
अनर्थगी रथाक्रन्दो दक्षिणे विरुत क्षुतम् ॥३७
वेश्या विप्रो नृप कन्या गौर्दन्ती मुरजध्वजौ ।
क्षीराज्यदधिदा साम्बुच्छत्र भेरी फल सुराः ॥३८
तण्डुला हेम रूप्य च सिद्धयेऽभिमुखा अमी ।
सकाष्ठ सानल वाह्यर्मलिनाम्बरवासभृत् ॥३६
गलस्थटङ्को गोमायुगृध्रोलूककपर्दिका ।
तैल कपालकार्पासे निषिद्धे भस्म नष्टये ॥४०
विषरोगाश्च सन्त स्युर्धातार्घा वन्तरामिन ।
विषदग्धो ललाट यात्रतो नेश तनो मुखम् ॥
आस्याच्च वचनानाडभी (?) धातुःप्राप्नोति हि क्रमात् ॥४१

आदि म होने वाले स्वरों म और कादि वर्णों से दो प्रकार से भिन्न लिपि, स्वरज, वसु, मातृ, वर्गों वह मातृका जाननी चाहिये ॥३३॥ वात, अग्नि, इन्द्र और जल के स्वरूप वाले वर्गों म चार होते है। शक और अम्बु की योनि वाले स्वर पञ्चम नपुंसक होते हैं ॥३४॥ दूत के वचन और पाद, दुष्ट, वात तथा अग्नि हैं। मध्यम जो है वह हरि है। वारुण जो वर्ण होते हैं वे प्रशस्त होते हैं। नपुंसक जो है वे अत्यन्त ही दुष्ट हैं ॥३५॥ मेघ और हाथी का गर्जित

होना प्रस्थान में मङ्गल वाचक होता है। फल, वृक्ष के प्रदक्षिण में होना और वाम भाग में रुत जिन शुभ है। गीतादि के शब्द भी शुभ होते हैं। इस प्रकार का होना सिद्धि के लिए होता है। निरर्थक या अनर्थक वाणी, रथ का आक्रन्द दक्षिण में विरत सुत, वेश्या, विप्र, नृप, कन्या गौ, हाथी, मुरज (वाद्य), क्षीर, घृत, दही, शङ्ख जल, छत्र, भेरी फल, देव, तण्डुल, सुवर्ण, रूप्य ये सम्मुख में हो तो सिद्धि के लिये होते हैं। कोई कारु (कारीगर) काष्ठ के सहित या अग्नि के सहित तथा मलिन वस्त्र धारण किये हो, गलस्थ टक, गोमायु, गिद्ध उल्लू कर्पास तेल कपाल कार्पास, भस्म य निषिद्ध होते हैं। धातु से, अन्य धातु की प्राप्ति से मान विपरीत होते हैं। विपदा ललाट को प्राप्त होना है फिर नेत्र और फिर मुख को प्राप्त होता है। मुख से वचनीनाडी और क्रम से धातुओं को प्राप्त होता है ॥३६ से ४१॥

१३२— वासुदेवादिमन्त्रलक्षणम्

वासुदेवादिमन्त्राणां पूज्यानां लक्षणं वदे ।
वासुदेवः सङ्कर्षणः प्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः ॥१
नमो भगवते चाऽऽदौ अ आ अं अः सबीजकाः ।
ओंकाराद्या नमोन्ताश्च नमोनारायणस्ततः ॥२
ॐ तत्सद्ब्रह्मणे चैव हूं नमो विष्णवे नमः ।
ॐ क्षौं ॐ नमो भगवन् नारसिंहाय वै नमः ॥३
ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय नराधिपाः ।
जपाक्णहरिद्राभा नीलश्यामललोहिताः ॥४
मेघाग्निमधुपिङ्गाभा वल्लभा नवनायकाः ।
अङ्गानि स्वरबीजानां स्वनामान्तैर्यथाक्रमम् ॥५
हृदयादीनि कल्पेत विभक्तैः स्वन्त्रवेदिभिः ।
व्यञ्जनादीनि बीजानि तेषां लक्षणमन्यथा ॥६
दीर्घस्वरैस्तु भिन्नानि नमोन्तान्तस्थितानि तु ।
अङ्गानि ह्रस्वयुक्तानि उपाङ्गानीति वर्ण्यते ॥७
विभक्तं नामवर्णान्तस्थितबीजात्मयुक्तमम् ।
दीर्घस्वरैश्च संयुक्तमङ्गोपाङ्गं स्वरैरथ क्रमात् ॥८

व्यञ्जनानां क्रमो ह्येष हृदयादिप्रकल्पने ।
स्वरबीजेषु नामान्तैर्विभक्तान्यङ्गनामभिः ॥८
युक्तानि हृदयादीनि द्वादशान्तानि पञ्चशः ।
आरभ्य कल्पयित्वा तु जपेत्सिद्ध्यनुरूपतः ॥१०

अब वासुदेव आदि पुरुष मन्त्रों के लक्षण बताये जाते हैं। यहाँ आदि पद से वासुदेव के साथ संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध के मन्त्र भी गृहीत होते हैं ॥१॥ आदि में "नमो भगवते" है फिर "अ, आ, अ, अ" इन बीजों के सहित "ओंकार" आदि में और "नमः" अन्त में होता है। इसके अनन्तर "नमो नारायण" होता है ॥२॥ मन्त्र निम्न रूप वाले होते हैं—"ॐ तत्सद्ब्रह्मणे हुं नमः", विष्णवे नमः ॐ क्षौं ॐ भगवते नारसिंहाय वै नमः ॐ भूर्नमो भगवते वराहाय नमः। जपा के पुष्प के सदृश अरुण, हरिद्रा के समान कान्ति वाले, नील, श्यामल और लोहित वर्ण वाले मेघ अग्नि और मधु के तुल्य पिङ्ग दीप्ति से युक्त जो नायक नराधिप वल्लभ हैं। स्वर बीजों के अपने नामों के अन्तों से समानुसार इनके अङ्ग होते हैं ॥३।४॥ विभक्त तत्त्वों के भेदों के द्वारा इनके हृदय आदि की कल्पना कर लेनी चाहिए। व्यञ्जन आदि जो बीज होते हैं उनके अन्य प्रकार से लक्षण होते हैं ॥६। दीर्घ स्वरों से भिन्न लक्षण होते हैं जिनके अन्त में नमः स्थित होता है। ह्रस्व युक्त अङ्ग हैं और उपाङ्गों का वर्णन किया जाता है। नाम, वर्ण और अन्त में स्थित उत्तम बीज का स्वरूप विभक्त होता है तथा क्रम दीर्घ स्वरों तक अङ्ग उपाङ्ग स्वरों से संयुक्त हैं ॥६।७।८॥ हृदय आदि की प्रकल्पना (निर्माण) के लिये व्यञ्जनों का यह ही क्रम होता है। स्वर जो बीज हैं उनके नाम के अन्त वाले अङ्गों के नामों से विभक्त हुआ करते हैं ॥९॥ पाँच से द्वादशान्त (बारह के अन्त तक) हृदय आदि युक्त होते हैं। कल्पना करके इनका आरम्भ करें और सिद्धि करनी चाहिए ॥१०॥

हृदयं च शिरश्चूडा कवचं नेत्रमस्त्रकम् ।
षडङ्गानि तु बीजानां मूलस्य द्वादशाङ्गकम् ॥११

हृच्छिरश्च शिखा चैव हस्तौ नेत्रे १
पृष्ठवाहूरजानू श्च जङ्घे पादौ क्रमात्
क ठ प श वैनतेय ख ठ फ ष गदा
ग ड व स पुष्टिमन्त्रो घ ट भ ह श्रियै १
च ण म क्ष पाञ्चजन्य छ त प कौस्तुभा
ज ख वं सुदर्शनाय श्रीवत्साय स व द च् ॥१४
ॐ व प वनमालायै पद्मनाभाय वै नमः ।
निर्जीवपदमन्त्राणां पदैरङ्गानि कल्पयेत ॥१५
जात्यन्तैर्नामसयुक्तैर्हृदयादीनि पञ्चधा ।
प्रणव हृदयादीनि तत प्रोक्तानि पञ्चधा ॥१६
प्रणव हृदय पूर्वं परायेति शिर शिखा ।
नाम्नाऽऽत्मना तु कवचमस्त्रं नामान्तकं भवेत् ॥१७
ओ परास्त्रादिश्च नामात्मा चतुर्थ्यन्ता नमोन्तक
एकव्यूहादिपद्वविंशव्यूहान्त स्यात्समो मनु ॥१८
वनिष्ठादिकराग्रेषु प्रकृति देहकेऽर्चयेत् ।
पराय पुरुषात्मा स्यात्प्रकृत्यात्मा द्विरूपक ॥१९
ॐ परायाग्न्यात्मने च वस्वर्कौ वह्निरूपक ।
अग्नि त्रिमूर्तौ विन्यस्य व्यापक करदेहयो ॥२०

हृदय, सिर, चूडा, कवच, नेत्र और अस्त्र ये छ प्रसग हैं जो कि बीजो के होते हैं। मून क बारह म ग होत है ॥११॥ हृदय, सिर, शिखा, दो हाथ, दो नेत्र, उदर, पृष्ठ, बाहु, उरु जनु और दो पाद इ। पर क्रम म न्यास करना चाहिए ॥१२॥ न्यास बताया जाता है—क ठ प, श वैनतय है। ख, ड, फ, प गदनुज हैं। ग, ड ब, स पुष्टिमन्त्र है। घ, ट भ, ह श्रियै नम। च, ण, म, क्ष पाञ्चजन्य और छ, त प कौस्तुभ क लिए है। ज, ग, व सुदर्शन के लिए हैं और श्रीवत्स क लिए स, व, ह और नम् है। मन्त्र का 'स्वरूप ॐ ब प मालायै पद्मनाभ य वै नम'। जो मन्त्र बिना बीजों वाले

अतिरात्रोऽप्तोर्यामश्च यज्ञात्मा सप्तरूपक ।
धीरह मनः शब्दश्च स्पर्शरूपरसास्तत ॥२९
गन्धो बुद्धिर्व्यापक च करे देहे न्यसेत्क्रमात् ।
न्यसेदङ्घ्री च तलयो के ललाटे मुखे हृदि ॥३०
नाभौ गुह्ये च पादे च अष्टव्यूह पुमान्स्मृत
जीवो बुद्धिरहङ्कारो मन. शब्दो गुणोऽनिल ।३१
रूप रसो नवात्माऽय जीव अङ्गुष्ठकद्वये ।
तर्जन्यादिकमाच्छेप यावद्वामप्रदेशिनीम् ॥३२

दाहिने-बाँये दोनो हाथो के कर शाखाओ मे वायु और अर्क का विन्यास करे। हृदय मे, मूर्ति मे और तनू मे इस तरह तुर्य रूप वाले त्रिव्यूह मे न्यास कर। हस्त मे व्यापक ऋग्वेद का न्यास करे तथा अगुलियो में यजु का न्यास करना चाहिए। दोनो तलो में अथर्ववेद के रूप को सिर, हृदय और चरण के पन्त तक न्यस्त करे। व्यापक आकाश का न्यास करे जो पूर्व की भाँति कर और देह दानो मे होना है। अगुलियो मे ओर सिर, हृदय, गुह्य तथा पाद म वायु आदि का न्यास करना चाहिए ॥२३॥ वायु, ज्योति, जल पृथ्वी यह पञ्च व्यूह कहा गया है। मन, श्रोत्र, त्वग्, जिह्वा और घ्राण यह षड् व्यूह बताया गया है। व्यापक मानस का न्यास करके इसके अनन्तर क्रम से अगुष्ठ से आदि करे। मूर्धा, मुख, हृदय, गुह्य और पदो म कारणात्मक कहा गया है ॥२५॥ सर्वत्र आदि मूर्ति व्यापक जीव की सज्ञा वाला है। भू,भुव,स्व,मह:, जन, तप और सत्य सात प्रकार का है ॥२६॥ आद्य को अगुष्ठादि क्रम स कर मे तथा देह मे न्यास करे और तल मे गल्पित सप्तम लोकात्मा को क्रम स देह मे न्यस्त करना चाहिए। दव सिर, ललाट, मुख हृदय गुह्य और चरणो मे सस्थित रहता है। अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र आप्त और याम इस प्रकार से यज्ञात्मा सात स्वरूपो वाला है। धी, अह, मन, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, बुद्धि और व्यापक को क्रम से कर मे तथा देह मे न्यास करना चाहिए। अङ्घ्रि (चरण) मे, दोनो तलो मे कर मे, ललाट मे, मुख मे, हृदय मे, नाभि मे, गुह्य मे और पाद मे इस तरह से अष्ट व्यूह पुमान् बत या

गया है। जीव, बुद्धि, अहङ्कार, मन, शब्द, गुण, अनिल, रूप, रस यह तो आत्मा वाला जीव दोनों षड्गुणों में है। शेष तर्जनी आदि के क्रम से वाम प्रदेशिनी पर्यन्त होना है ॥३२॥

देहे शिरोललाटास्यहृन्नाभिगुह्यजानुषु ।
पादयोश्च दशात्मानमिन्द्रा व्यापी समाश्रित ॥३३
अ गुष्ठकद्वये वन्हौ तर्जन्यादौ परेषु च ।
शिरोललाटवक्त्रेषु हृन्नाभिगुह्यजानुषु ॥३४
पादयारेकादशात्मा मन श्रोत्र त्वगेव च ।
चक्षुर्जिह्वा तथा घ्राण वाक्पाण्यङ्घ्री च पायु च ॥३५
उपस्थ मनसा व्यापकाङ्गुष्ठकद्वयम् ।
तर्जन्यादि क्रमादशावतिरिक्त तलद्वये ॥३६
उत्तमाङ्गललाटास्यहृन्नाभ्यङ्घ्रिषु गुह्यके ।
ऊरुयुग्मे तथा जङ्घागुल्फपादेषु च क्रमात् ॥३७
विष्णुर्मधुहरश्चैव त्रिविक्रमकवामनौ ।
श्रीधरोऽथ हृषीकेश पद्मनाभस्तथैव च ॥३८
दामोदर केशवश्च नारायण इत पर ।
माधवश्चाथ गोविन्दो विष्णुर्वै व्यापक न्यसेत् ॥३९
अ गुष्ठादौ तले चैव पादे जानुनि वै कटौ ।
शिर शिखार पृष्ठाम्यजानुपादादिषु न्यसेत् ॥४०
द्वादशात्मा पञ्चविंशपड्विंशव्यूहकस्तथा ।
पुरुषो धीरहङ्कारो मनश्चित्त च शब्दक ॥४१
तथा स्पर्शो रसो रूप गन्ध श्रोत्र त्वचस्तथा ।
चक्षुर्जिह्वा नासिका च वाक्पाण्यङ्घ्री च पायव ॥४२
उपस्थो भूर्जल तजो वायुराकाशमेव च ।
पुरुष व्यापक न्यस्य अ गुष्ठादौ दश न्यसेत् ॥४३
शेषान्द्वस्ततले न्यस्य शिरस्यथ ललाटके ।
मुखहृन्नाभिगुह्योरुजान्वङ्घ्रिकरणोद्गते ॥४४

देह में, शिर, ललाट, मुख हृदय, नाभि, गुह्य, जानु और दोनो पादों मे यह व्यापक इन्द्र दशात्मा समास्थित रहता है ॥४३॥ दोनो अंगूठों में, वह्नि मे, तर्जनी आदि पदों में शिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, जानु और दोनो पादों मे एकादशात्मा संस्थित है। मन, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, अङ्घ्रि (चरण), पायु (गुदा) और उपस्थ (जननेन्द्रिय) का मन से ध्यान करते हुए अंगुष्ठ द्वय, तर्जनी आदि क्रम से आठ अतिरिक्त दोनो तलों मे, उत्तमाङ्ग (मस्तक), ललाट, मुख, हृदय, नाभि, चरण, गुह्य, दोनो ऊरु तथा जांघ गुल्फ और पादों में क्रम से विष्णु, मधु, हर, त्रिविक्रम, वामन श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, केशव, नारायण और इनसे आगे माधव गोविन्द, विष्णु इन सबका व्यापक न्यास करना चाहिए ॥४३॥ अंगुष्ठ आदि मे, तल में पाद में, जानु, कटि शिर, शिखा, उर स्थल, कमर, आस्य (मुख), जानु और पाद आदि मे न्यास करे ॥४४॥

पादे जान्वोरुपस्थे च हृदये मूर्ध्नि च क्रमाद् ।
परञ्च पुरुषात्माऽऽदौ पङ्विंशे पूर्ववत्परम् ॥४५
सञ्चिन्त्य मण्डलेऽब्जे तु प्रकृतिं पूजयेद्बुधः ।
पूर्वयाम्याप्यसौमीषु हृदयादीनि विन्यसेत् ॥४६
अस्त्रमग्न्यादिपत्रेषु वैनतेयादि पूर्ववत् ।
दिक्पालाश्च निधिस्तुल्यस्त्रिव्यूहेऽग्निश्च मध्यत. ॥४७
पूर्वादिदिग्दलावासं पाद्यादिभिरलङ्कृत ।
कर्णिकाया नाभसस्थ मानम कर्णिकास्थित ॥४८
विश्वरूप सर्वसिद्ध्यै यजद्राज्यजयाय च ।
सर्वव्यूहैः समायुक्तमङ्गैरपि च पञ्चभि ॥४९
गरुडाद्यैस्तथेन्द्राद्यैः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥
विष्वक्सेन यजेन्नाम्ना रौंबीज नामसंयुतम् ॥५०

द्वादशात्मा (बारह स्वरूप वाला), पचीस और छब्बीस व्यूह वाला पुरुष है। धी, अहङ्कार, मन, चित्त, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, श्रोत्र, त्वक् चक्षु जिह्वा, नासिका, वाक् पाणि (हाथ), अङ्घ्रि (चरण), पायु (मनो

स्पर्श करने वाली कर्मेन्द्रिय) उपस्थ, भू, जल, तेज, वायु और आकाश इस प्रकार व्यापक पुरुष का न्यास करके फिर अंगुष्ठ आदि में देव न्यास करना चाहिए ।४३॥ शेषों को हाथ के तले में न्यास करे । इसके अनन्तर शिर, ललाट, मुख, हृदय, नाभि, गुह्य, ऊरु जानु, पदि्‌ध करपोद्गत में न्यास करे । पाद, दोनों जानु, उपस्थ, हृदय मूर्धा में क्रम से पर पुरुषात्मा का न्यास करे । आदि में षडङ्गिका में न्यास करे और करको पूर्व की भाँति ही व्यस्त करना चाहिए ॥४५॥ विद्वान् पुरुष को मण्डल के कमल में भली-भाँति चिन्तन करके प्रकृति का अर्चन करना चाहिए । पूर्व, याम्य, आप्य और सौमी दिशाओं में हृदय आदि का विन्यास करना चाहिए ॥४६॥ आवर्त आदि पत्रों में अस्त्र का तथा पूर्व की तरह वैनतेय आदि का न्यास करे । और दिक्‌पालों का विन्यास करना चाहिए । विधि समान ही है । त्रियुग में मध्यभाग में अग्नि का विन्यास करे ॥४७॥ पूर्व आदि दिशाओं में रहने वाले दलों में पाद्य आदि की आवाहित कर अलङ्कृत करे । कर्णिका में तामस तथा मानस स्थित होवे । इस प्रकार से विश्व के स्वरूप वाले का समस्त सिद्धि की प्राप्ति के लिये तथा राज्य के अग्र लाभ करने के लिए यजन करना चाहिए जो कि सम्पूर्ण व्यूहों से समायुक्त हो और पाँचों अङ्गों से भी युक्त हो ॥४९॥ गरुड आदि तथा इन्द्र आदि के द्वारा सब कामनाओं की प्राप्ति होती है । विष्वक्सेन का नाम से और नाम से संयुत ...ो —इस बीज का यजन करना चाहिए ॥५०॥

१३३ मुद्राणां लक्षणानि

मुद्राणां लक्षणं वक्ष्ये सान्निध्यादिप्रकारकम् ।
अञ्जलिः प्रथमा मुद्रा वन्दनी हृदयानुगा ॥१
ऊर्ध्वाङ्गुष्ठो वाममुष्टिर्दक्षिणाङ्गुष्ठबन्धन ।
सव्यस्य तस्य चाङ्गुष्ठो यस्य चोर्ध्वं प्रकीर्तित ॥२
तिस्र. साधारणा व्यूहे असाधारणा इमा. ।
कनिष्ठादिविमोकेन अष्टौ मुद्रा यथाक्रमम् ॥३

अष्टानां पूर्वबीजानां क्रमशस्त्ववधारयेत् ।
अंगुष्ठेन कनिष्ठान्त नामयित्वाऽङ्गुलित्रयम् ।।४
ऊर्ध्वं कृत्वा सम्मुख च बीजायं नवमाय वं ।
वामहस्तमथोत्तानं कृत्वोर्ध्वं नामयेच्छनैः ।।५
वराहस्य स्मृता मुद्रा अङ्गानां च क्रमादिमाः ।
एकैकां मोचयेन्मुद्रा वाममुष्टौ तथाऽगुलीम् ।।६
आकुञ्चयेत्पूर्वमुक्तां दक्षिणेऽप्येवमेव च ।
ऊर्ध्वांगुष्ठो वाममुष्टिर्मुद्रासिद्धिस्ततो भवेत् ।।७

नारद देवर्षि ने कहा—सान्निध्य आदि के प्रकार वाली मुद्राओं के अब लक्षण बतलाये जाते हैं। अञ्जलि प्रथम मुद्रा है। वन्दनी, हृदयानुगा, ऊर्ध्वांगुष्ठ वाममुष्टि, दक्षिणागुष्ठ बन्धन ये मुद्र ऐं हैं। उस हृदय का अंगुष्ठ है जिसका ऊर्ध्व की ओर बताया गया है ।। १ ।। २ ।। व्यूह में तीन मुद्राऐं साधारण हैं। इसके अनन्तर ये असाधारण होती हैं। जो कनिष्ठादि के विमोचन से यथाक्रम आठ मुद्राऐं हैं ।। ३ ।। आठ बीजों का क्रम से अब धारण करना चाहिए जो कि अंगुष्ठ से कनिष्ठा के अन्त तक तीन अंगुलियों का नामक करके करे। ऊर्ध्व की ओर करके सम्मुख करे। नवम बीज के लिये वाम हस्त को उत्तान (ऊँचा) करके ऊर्ध्व की ओर शनैः-शनैः नामन करना चाहिए। ।।४।।५।। और क्रम से अङ्गों की ये मुद्रा वाराह की कही गई है। एक-एक मुद्रा को मोचन करना चाहिए तथा वाम मुष्टि में अंगुलि को जो पूर्व में बताई गई है आकुञ्चित करना चाहिए। इसी प्रकार से दाहिने में भी करना चाहिए। इस प्रकार से फिर ऊर्ध्वांगुष्ठ और वाममुष्टि मुद्रा की सिद्धि होती है ।।७।।

१३४—शिष्येभ्यो दीक्षादानविधिः

वक्ष्ये दीक्षां सर्वदा च मण्डलेऽब्जे हरिं यजेत् ।
दशम्यामुपसंहृत्य यागद्रव्यं समस्तकम् ।।१
विन्यस्य नारसिंहेन संमन्त्र्य शतवारकम् ।
सर्षपांस्तु फडन्तेन रक्षोघ्नान्सर्वत क्षिपेत् ।।२

शक्तिं सर्वात्मिकां तत्र न्यसेत्प्रासादरूपिणीम् ।
सर्वौषधीं समाहृत्य विकिरानभिमन्त्रयेत् ॥३
शतवारं शुभे पात्रे वासुदेवेन साधकः ।
संसाध्य पंचगव्यं तु पंचभिर्मूलमूर्तिभिः ॥४
नारायणान्तैः सप्रोक्ष्य कुशाग्रैस्तेन तां भुवम् ।
विकिरान्वासुदेवेन क्षिपेदुत्तानपाणिना ॥५
त्रिधा पूर्वामुखस्तिष्ठन्ध्यायन्विष्णुं तदा हृदि ।
वर्धन्या सहिते कुम्भे साङ्गं विष्णुं प्रपूजयेत् ॥६
शतवारं मन्त्रयित्वा त्वस्त्रेणैव च वर्धनीम् ।
अच्छिन्नधारया सिंचन्नैशान्यन्तं नयेत्तताम् ॥७
कलशं पृष्ठतो नीत्वा स्थापयेद्विकिरोपरि ।
संहृत्य विकिरान्दर्भैः कुम्भेशं कर्करीं यजेत् ॥८

श्री नारद जी ने कहा—अब हम शिष्यों के लिये सभी कुछ प्रदान करने वाली दीक्षा प्रदान करने की विधि बतलाते हैं। मण्डल स्थित कमल में भगवान् श्री हरि का यजन करना चाहिए दशमी में सम्पूर्ण याग द्रव्यों को उपसहृत करे ॥१॥ विन्यास करके नारसिंह मन्त्र के द्वारा एक सौ बार आमन्त्रित करे। 'फट्'—यह मन्त्र में लगाकर राक्षसों के हनन करने वाले सर्षपों (सरसों के दानों) को सभी ओर प्रक्षिप्त कर देना चाहिए ॥२॥ प्रासाद रूप वाली सर्वात्मिका शक्ति का वहाँ पर न्यास करे फिर सर्वौषधि को समाहृत करके विकरों को अभिमन्त्रित करना चाहिए ॥ ३ ॥ साधक वासुदेव मन्त्र से एक सौ बार शुभ पात्र में पञ्चगव्य को संसाधित करे जो कि पाँच मूल मूर्तियों के द्वारा होना चाहिए ॥४॥ उसमे नारायणान्त कुशा के अग्रभागों से उस भूमि का सम्प्रोक्षण करे। ऊँचे किए हुए हाथ से वासुदेव मन्त्र के द्वारा विकिरों का रोपण करना चाहिए ॥५॥ उस समय में पूर्व की ओर मुख करके, खड़ा होते हुए हृदय में भगवान् विष्णु का तीन प्रकार से ध्यान करे और वर्धनी के सहित कुम्भ में अङ्गों के सहित विष्णु भगवान् का पूजन करना चाहिए ॥६॥ वर्धनी को अस्त्र के ही द्वारा सौ बार अभिमन्त्रित करके अच्छिन्न धारा से सिञ्चन

करता हुआ उसे नैद्यान्यन्त तक प्राप्त करावे ।।७।। पृष्ठ भाग से कलश को लेकर विकरों के ऊपर स्थापित करे फिर विकरों को संहृत करके दर्भों के द्वारा कुम्भेश कर्करी का यजन करना चाहिए ।।८।।

सवस्त्रे पचरत्नाढ्ये स्थण्डिले पूजयेद्धरिम् ।
अग्नावपि समभ्यर्च्य मन्त्रैः सतर्प्य पूर्ववत् ।।६
प्रक्षाल्य पुण्डरीकेण विलिप्यान्त-सुगन्धिना ।
उखामाज्येन सपूर्य गोक्षीरेण तु साधक ।।१०
आलोडच वासुदेवेन ततः सकर्षणेन च ।
तण्डुलानाज्यससृष्टान्क्षिपेत्क्षीरे सुसस्कृते ।।११
प्रद्युम्नेन समालोडय दर्व्या सघट्टयेच्छनैः ।
पक्वमुत्तारयेत्पश्चादनिरुद्धेन देशिकः ।।१२
प्रक्षाल्याऽलिप्य तत्कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं तु भस्मना ।
नारायणेन पार्श्वेषु चरुमेव सुसस्कृतम् ।।१३
भागमेकं तु देवाय कलशाय द्वितीयकम् ।
तृतीयेन तु भागेन प्रदद्यादाहुतित्रयम् ।।१४
शिष्यैः सह चतुर्थं तु गुरुरद्याद्विशुद्धये ।
नारायणेन समन्त्र्य सप्तधा क्षीरवृक्षजम् ।।१५
दन्तकाष्ठं भक्षयित्वा त्यक्त्वा ज्ञात्वा स्वपातकम् ।
ऐन्द्राग्न्युत्तरकैशानीमुख स्नातो ह्यनुत्तमम् ।।१६

वस्त्र युक्त पञ्चरत्नों से सयुत स्थण्डिल मे भगवान् हरि का पूजन करे। मन्त्रों से पूर्व की भाँति भली भाँति तृप्त करके अग्नि मे भी अच्छी तरह अर्चन करना चाहिए। पुण्डरीक के द्वारा प्रक्षालन करे और अन्त. सुगन्धि से विलेपन करे। घृत से उखा को भरकर साधक को गौ का क्षीर भी भर देना चाहिए फिर वासुदेव तथा सकर्षण मन्त्र से आलोडन करे। घृत से ससृष्ट तण्डुलों को भली-भाँति सस्कृत क्षीर मे क्षिप्त करना चाहिए ।।९।।१०।।११।। प्रद्युम्न मन्त्र से समालोडन करके धीरे से दर्वी के द्वारा सघटन करे। आचार्य को जब वह भली-भाँति परिपक्व हो जावे तो पीछे अनिरुद्ध मन्त्र के द्वारा

उसको उतार लेना चाहिए ॥१२॥ प्रक्षालन करके और आलेपन करके इसके अनन्तर नारायण मन्त्र के द्वारा पात्रों मे भस्म से ऊर्ध्व पुण्ड्र करना चाहिए। इस प्रकार से चरु सुसम्भृत होता है अर्थात् संस्कार से सम्पन्न हुआ करता है। ॥१३॥ उस सुसंस्कृत चारु मे से एक भाग तो देवता के लिये समर्पित करना चाहिए और दूसरा भाग कलश के लिये देवे। तृतीय भाग जो शेष रहे उसमे तीन आहुतियाँ देवे। उस चरु के चार भाग करे। चतुर्थ भाग को अपने गुरु शिष्यों के साथ विशुद्धि के लिये भक्षण करे। नारायण मन्त्र के द्वारा क्षीर वाले वृक्ष से समुत्पन्न दांतुन को सात बार अभिमन्त्रित करना चाहिए। फिर इस दन्त काष्ठ का भक्षण करे और अपने सम्पूर्ण पातक को त्यक्त जान लेवे। ऐन्द्री अग्नि, उत्तर और ऐशानी दिशा की ओर मुख करके स्नान करे ॥१६॥

शुभं सिद्धमिति ज्ञात्वाऽऽचम्य प्राणान्नियम्य च।
पूजागारं विशेन्मन्त्री प्रार्थ्य विष्णुं प्रदक्षिणम् ॥१७
संसारार्णवमग्नानां पशूनां पाशमुक्तये।
त्वमेव शरणं देव सदा त्वं भक्तवत्सल ॥१८
देवदेवानुजानीहि प्राकृतैः पाशबन्धनैः।
पाशितान्मोचयिष्यामि त्वत्प्रसादात्पशूनिमान् ॥१९
इति विज्ञाप्य देवेशं संप्रविश्य पशूंस्ततः।
धारणाभिस्तु संशोध्य पूर्ववज्ज्वलनादिना ॥२०
संस्कृत्य, मूर्त्या स योज्य नेत्रे बद्ध्वा प्रदर्शयेत्।
पुष्पपूर्णाञ्जलीस्तत्र क्षिपेत्तन्नाम योजयेत् ॥२१
अमन्त्रमर्चनं तत्र पूर्ववत्कारयेत्क्रमात्।
यस्या मूर्तौ पतेत्पुष्पं तस्य तन्नाम निर्दिशेत् ॥२२
शिखान्तसमितं सूत्रं पादाङ्गुष्ठादि षड्गुणम्।
कन्यया कर्तितं रक्तं पुनस्तत्त्रिगुणीकृतम् ॥२३

इसके अनन्तर यह समझकर कि परम उत्तम शुभ सिद्ध हो गया है आचमन करे तथा इसके उपरान्त प्राणायाम करे। मन्त्रों के ज्ञाता विद्वान् पुरुष को फिर पूजा के स्थान मे प्रवेश करना चाहिए। भगवान् विष्णु की

प्रार्थना करके उनकी प्रदक्षिणा करे ।।१७।। हे देव ! इस संसार रूपी महासागर में निमग्न होने वाले पशुओं के पाश (बन्धन) से छुटकारा पाने के लिए आप ही शरण अर्थात् रक्षक हैं। आप सर्वदा अपने भक्तों पर प्यार करने वाले हैं।।१८।। हे देवों के भी देव! आप इन प्राकृत पाशों के बन्धनों से बद्धों को आज्ञा प्रदान करें। मैं आपकी कृपा एवं प्रसाद से ही इन पाशों से सुबद्ध पशुओं को मुक्त करूँगा।।१९।। इस उक्त विधि से भगवान् विष्णु की प्रार्थना कर उन्हें विज्ञापित करे और उसके अनन्तर उन पशुओं को वहाँ प्रवेशित कराकर पूर्व की भाँति धारणाओं से ज्वलनादि के द्वारा संशोधित करे। संस्कार करके मूर्त्ति के साथ नेत्रों को संयुक्त करके बाँधकर प्रदर्शित करना चाहिए। वहाँ पर पुष्पों से परिपूर्ण अपनी अञ्जलि करके उनके नाम से प्रक्षिप्त करनी चाहिए।।२०।। उस समय में पूर्व की भाँति मन्त्रों से रहित ही क्रम से अर्चना करनी चाहिए। जिस मूर्त्ति पर पुष्पों का पतन होवे उसका वह नाम निर्दिष्ट करे ।।२१।२२।। पादाङ्गुष्ठ आदि से षड्गुण शिखान्त संमित सूत्र लेवे जोकि किसी कन्या के द्वारा काता हुआ हो, रक्तवर्ण का हो उसे त्रिगुणित करे।।२३।।

यस्या संलीयते विश्वं यतो विश्वं प्रसूयते ।
प्रकृतिं प्रक्रियाभेदैः संस्थिता तत्र चिन्तयेत् ।।२४

तेन प्राकृतिकान्पाशान्ग्रथित्वा तत्त्वसंख्यया ।
कृत्वा शरावे तत्सूत्रं कुण्डपार्श्वे निधाय तु ।।२५

ततस्तत्त्वानि सर्वाणि ध्यात्वा शिष्यतनौ न्यसेत् ।
सृष्टिक्रमात्प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तानि देशिकः ।।२६

त्रेधा वं पञ्चधा वा स्याद्दशद्वादशधाऽपि च ।
दातव्यः सर्वभेदेन ग्रथितस्तत्त्वचिन्तकैः ।।२७

अङ्गैः पञ्चभिरव्याप्तं निखिलं प्रकृतिक्रमात् ।
तन्मात्रात्मनि संहृत्य मायासूत्रे पशोस्तनौ ।।२८

प्रकृतिर्लिङ्गशक्तिश्च कर्ता बुद्धिस्तथा मनः ।
पञ्चतन्मात्रबुद्ध्याख्यं कर्माख्यं भूतपञ्चकम् ।।२९

ध्यायेच्च द्वादशात्मानं सूत्रे देहे तथेच्छया ।
हुत्वा सम्पातविधिना सृष्टे सृष्टिक्रमेण तु ॥३०

जिसमें यह सम्पूर्ण विश्व संलीन होता है और जिससे ही समस्त विश्व की समुत्पत्ति हुआ करती है । उसमें इस प्रकृति को प्रक्रिया के भेदों के द्वारा संस्थित रहने वाली चिन्तन करे ॥२४॥ उसके द्वारा प्राकृतिक पाशों को तत्त्व-संख्या से ग्रथित करके एक शराव (सकोरा) में उस सूत्र को करके कुण्ड के पास में रक्खे । उसके अनन्तर समस्त तत्वों का ध्यान करके शिष्य के शरीर में न्यास करना चाहिए । देशिक (आचार्य) का कर्त्तव्य है कि सृष्टि के क्रम से प्रकृति से आदि लेकर पृथ्वी के पर्यन्त तत्वों का चिन्तन करे । तत्वों के चिन्तक विद्वानों को चाहिए कि तीन प्रकार से अथवा पाँच प्रकार से तथा दस और बारह प्रकार से सब भेद से पर्वित देवे । पाँच अङ्गों से प्रकृति के क्रम से अन्तान्त सबको तन्मात्रात्मा में पशु के पाशा सूत्र में संहृत करे ॥२८॥ प्रकृति, लिङ्ग शक्ति, कर्त्ता, बुद्धि, मन, बुद्धयाहर पञ्चतन्मात्र और कर्म नामक पाँच भूत द्वादश आत्मा वाले को इस प्रकार की इच्छा से सूत्र देह में ध्यान करना करना चाहिए । सृष्टि का सृष्टि के क्रम से सम्पात विधि से हवन करो ॥३०॥

एकैकं शतहोमेन दत्वा पूर्णाहुतिं ततः ।
शरावे सपुटीकृत्य कुम्भेशाय निवेदयेत् ॥३१
अधिवास्य यथान्यायं भक्तं शिष्यं तु दीक्षयेत् ।
करणीं कर्तरीं चापि रजांसि खटिकामपि ॥३२
अन्यदप्युपयोगि स्यात्सर्वं तद्वामगोचरे ।
संस्थाप्य मूलमन्त्रेण परामृश्याधिवासयेत् ॥३३
नमो भूतेभ्यश्च बलिं कुशे देयः स्मरन्हरिम् ।
मण्डपं भूषयित्वाऽथ वितानघटलड्डुकैः ॥३४
मण्डलेऽथ यजेद्विष्णुं ततः सन्तर्प्य पावकम् ।
आहूय दीक्षयेच्छिष्यान्बद्धपद्मासनस्थितान् ॥३५
संप्रोक्ष्य विष्णुहस्तेन मूर्धानं स्पृश्य वै क्रमात् ।
प्रकृत्यादिविकृत्यन्तां साधिभूताधिदैवताम् ॥३६

सृष्टिमाध्यात्मिकीं कृत्वा हृदि तां संहरेत्क्रमात् ।
तन्मात्रभूतां सकलां जीवेन समतां गताम् ॥३७
ततः संप्रार्च्य कुम्भेशं सूत्रं संस्कृत्य देशिकः ।
अग्ने समीपमागत्य पार्श्वे तं संनिवेश्य तु ॥३८
मूलमन्त्रेण सृष्टीशमाहुतीनां शतेन तम् ।
उदासीनमथाऽऽसाद्य पूर्णाहुत्या च देशिकः ॥३९
धुवलं रजः समादाय मूलेन शतमन्त्रितम् ।
संताडय हृदयं तेन हुंफटकारान्तसंयुतं ॥४०
वियोगपदसंयुक्तैर्बीजैः पादादिभिः क्रमात् ।
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि विश्लिष्य जुहुयात्ततः ॥४१

एक एक का सौ बार होम देकर इसके अनन्तर पूर्णाहुति देनी चाहिए। शराव में सम्पुटीकरण करके कुम्भ के स्वामी के लिये निवेदन कर देवे ॥३१॥ यथानुसार अधिवास करके अपने भक्त शिष्य को दीक्षा देनी चाहिए। करणी, कर्त्तरी, रज, खटिका और जो भी अन्य कुछ उपयोगी हो वह सभी उसके वाम भाग में प्रत्यक्ष संस्थापित करके मूल मन्त्र से परामृष्ट करे और फिर अधिवासित करना चाहिए ॥३३॥ 'नमो भूतेभ्यः' इस मन्त्र से भगवान् हरि का स्मरण करते हुए कुश में बलि देना चाहिए। इसके अनन्तर वितान घट और लड्डुओं से मनुष्य को विभूषित करे। उस मण्डल में भगवान् विष्णु का यजन करे और पावक (अग्नि) का भली भाँति तर्पण करना चाहिए। फिर समस्त शिष्यों को बुलाकर बिठा ले वे जो कि सब पद्मासन बाँधकर संस्थित हों उन्हें फिर दीक्षा देनी चाहिए ॥३५॥ विष्णु हस्त से सम्प्रोक्षण करके क्रम से मूर्धा का स्पर्श करे। प्रकृति से आरम्भ करके विकृति के अन्तपर्यन्त साधिभूताधिदैवत सृष्टि को आध्यात्मिकी करके फिर क्रम से उसे हृदय में संहृत करे जो कि तन्मात्र भूत सम्पूर्ण जीव के साथ समता को प्राप्त हो गई है ॥३७॥ इसके पश्चात् देशिक (आचार्य) को कुम्भ के ईश (अधीश्वर) की भली भाँति प्रार्थना करनी चाहिए तथा उस सूत्र का संस्कार करे और अग्नि के समीप में आकर पार्श्व में उसे सन्निवेशित करे। मूल मन्त्र के द्वारा समस्त सृष्टि के स्वामी के

लिए एक सौ आहुतियाँ देवे । इसके अनन्तर आचार्य को पूर्णाहुति द्वारा उदासीन का आमादन करना चाहिए ।।३६।। शुक्ल रज लाकर फिर मूलमन्त्र से सौ बार अभिमन्त्रित करे और उससे हृदय को ताडित कर फिर उससे हुं फट्कारान्त से संयुक्त वियोग पद संयुत बीजों एवं पादादि से क्रम से पृथिवी आदि तत्वों का विश्लेषण कर हवन करे ।।४०।४१।।

वह्नाखिलतत्त्वानामालये व्याहृते हरौ ।
नीयमान क्रमात्सर्वं तत्त्वाधार स्मरेद्बुध ।।४२
ताडनेन वियोज्यैवमादायाऽऽपाद्य साम्यताम् ।
प्रकृत्याऽऽहृत्य जुहुयाद्यथोक्तं जातवेदसि ।।४३
गर्भाधान जातकर्म भोग चैव लय तथा ।
कृत्वाऽष्टौ तत्र तत्रैव तत शुद्धं तु होमयेत् ।।४४
शुद्धं तत्त्व समुद्धृत्य पूर्णाहुत्या त देशिक ।
सधयेद्धि परेतत्वे यावदव्याकृत क्रमात् ।।४५
तत्पर ज्ञानयोगेन विलाप्य परमात्मनि ।
विमुक्तबन्धन जीव परस्मिन्नव्यये पदे ।।४६
निवृत्त परमानन्दे शुद्धे बुद्धे स्मरेद्बुध ।
दद्यात्पूर्णाहुति पश्चादेवं दीक्षा समाप्यते ।।४७
प्रयोगमन्त्रान्वक्ष्यामि यैर्दीक्षाहोमस लय ।
ॐ य भूतानि विशुद्धं हु फट् ।।४८
अनेन ताडनं कुर्याद्वियोजनमिह्र द्वयम् ।
ॐ य भूतान्यापातयेऽहम् ।।४६
आदान कृत्वा चानेन प्रकृत्या योजनं शृणु ।
ॐ य भूतानि पु श्र ।।५०

विद्वान् पुरुषों को समस्त तत्त्वों के आलय वह्नि में हरि के व्याहृत रूप में क्रम से सबको प्राप्त कर तत्त्वों के आधार का स्मरण करना चाहिए ।।४३।। इस प्रकार से ताडन के द्वारा नियोजित करे और लाकर साम्यता का

आपादन करे। प्रकृति से आहरण कर यथोक्त अग्नि मे हवन करना चाहिए। गर्भाधान, जातकर्म, भोग और लय वहीं पर आठ करके इसके पश्चात् फिर वहीं पर शुद्ध का होम करे ॥४३।४४॥ देशिक को शुद्ध तत्त्व को समुद्धरण कर पूर्णाहुति देनी चाहिए और जितना अव्याकृत है उसे क्रम से परतत्त्व मे स्थित करे। इसके उपरान्त ध्यान के योग से परमात्मा में विलीन करके उस परम अव्यय स्थान में जीव को बन्धनो से विमुक्त करे। शुद्ध बुद्ध परमानन्द मे निवृत्त कर बुध को स्मरण करना चाहिए। इसके अनन्तर इस प्रकार से पूर्णाहुति देनी चाहिए। इस रीति से दीक्षा की समाप्ति की जाया करती है ॥ २४ ॥ अब प्रयोग मे लाये जाने वाले मन्त्रों को बताया जाता है जिनके द्वारा दीक्षा के होम का सम्यक् प्रकार से लय होता है। मन्त्रो के स्वरूप ये हैं—ॐ य भूतानि', विशुद्ध हुं फट्' इससे ताडन करे। यहाँ दोनो वियोजन हैं। फिर 'ॐ यं भूतान्या पातयेऽहम्' इस मन्त्र से आदान करे। अब प्रकृति से योजन करने का श्रवण करो। उसका मन्त्र है—'ॐ थ भूतानि पुम्' ॥५०॥

होममन्त्र प्रवक्ष्यामि तत पूर्णाहुतेर्मनुम्।
ॐ भूतानि संहर स्वाहा ॥५१
अं अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय अं वौषट्।
पूर्णाहुत्यनन्तर तु तत्त्वे शिष्य तु संधयेत् ॥५२
एव तत्त्वानि सर्वाणि क्रमात्संशोधयेद् बुधः।
नमोन्तेन स्वबीजेन ताडनादिपुरःसरम् ॥५३
ॐ रां कर्मेन्द्रियाणि, ॐ च बुद्धीन्द्रियाणिदं।
यबीजेन समान तु ताडनादिप्रयोगकम् ॥५४
ॐ सुं सं गन्धतन्मात्रे विम्ब शुद्ध्स्व हुँ फट्।
ॐ स पाहि हां ॐ रव स्वयुड्क्ष्व प्रकृत्या अं ज हु गन्धतन्मात्रं संहर स्वाहा ॥५५
तत पूर्णाहुतिश्चैवमुत्तरेषु प्रयुज्यते।
ॐ रां रसतन्मात्रे। ॐ तें रूपतन्मात्रे ॥५६

ॐ ध स्पर्शतन्मात्रे । ॐ य शब्दतन्मात्रे । ॐ भ नमः ।
ॐ मो अहङ्कार । ॐ म बुद्धौ । ॐ ॐ ॐ प्रकृतौ ॥५७

इसके उपरान्त होम करने के मन्त्र को बताकर फिर पूर्णाहुति देने के मन्त्र को बतलाया जाता है । मन्त्रों का स्वरूप यह है—"ॐ भूतानि संहर स्वाहा" 'ॐ अं म ॐ नमः भगवते वासुदेवाय म वौषट्" । पूर्णाहुति के अनन्तर तत्त्व मे शिष्य को संचित करना चाहिए । इस प्रकार से बुध पुरुष को क्रम से समस्त तत्त्वों का संशोधन ताडन आदि के सहित अपने बीज से करे जिसके अन्त मे 'नम'—यह होना चाहिए ॥५३॥ 'ॐ रां'—इससे कर्मेन्द्रियों को और ॐ दें'—इससे ज्ञानेन्द्रियों को संशोधित करे । 'य'—यह बीज समान होता है जो ताडन आदि के प्रयोग मे आता है ॥५४॥ ॐ सुं ल इससे गन्ध तन्मात्र मे विघ्न को योजित करो फिर हुं फट् —यह कहो । ॐ स पाहि हां ॐ स्व स्व को योजित करो प्रकृति से अ ज हुं को गन्ध तन्मात्र मे संहर करो सदा । अन्त मे कहे ॥५५॥ इसके अनन्तर इस प्रकार से उत्तरो मे पूर्णाहुति का प्रयोग किया जाता है । ॐ रा का रस तन्मात्र मे—ॐ तें को रूप तन्मात्र में—ॐ ध को स्पर्श तन्मात्र में—ॐ य को शब्द तन्मात्र में—ॐ भ नम — इस महङ्कार में—ॐ म इसको प्रकृति में प्रयुक्त करे ॥५७॥

एकमूर्तावय प्रोक्तो दीक्षायोग समासत ।
एवमेव प्रयोगस्तु नवव्यूहादिके स्मृत ॥५८
दग्ध्वा परस्मिन्सदध्यान्निर्वाणे प्रकृति नर ।
शोधयित्वाऽथ भूतानि कर्माक्षाणि विशोधयेत् ॥५६
बुद्धयक्षाण्यथ तन्मात्र मनो ज्ञानमहङ्कृतिम् ।
लिङ्गात्मान विशोध्यान्ते प्रकृति शोधयेत्पुन ॥६०
पुरुष प्राकृत शुद्धमेश्वरे धाम्नि संस्थितम् ।
स्वगोचरीकृताशेषभोग मुक्तौ कृतास्पदम् ॥६१
ध्यायेत्पूर्णाहुति दद्याद्दीक्षेय त्वधिकारदा ।
अ गैराराध्य मन्त्रस्य नीत्वा तत्त्वगण समम् ।.६२

क्रमादेवं विशोध्यान्ते सर्वसिद्धिसमन्वितम् ।
ध्यायन्पुर्णाहुतिं दद्याद्दीक्षेयं साधके स्मृता ॥६३
द्रव्यस्य वा न सपत्तिरशक्तिर्वाऽऽत्मनो यदि ।
इष्ट्वा देवं यथापूर्वं सर्वोपकरणान्वितः ॥६४

यह दीक्षा का योग संक्षेप से एक मूर्ति में बताया गया है । इसी प्रकार से प्रयोग नव व्यूह आदि में कहा गया है ॥५८॥ परमें दग्ध करके मनुष्य को प्रकृति का निर्वाण में सन्धान करना चाहिए । इसके अनन्तर भूतों का शोधन करके फिर कर्माक्षो का विशेष रूप से शोधन करना चाहिए ॥५६॥ इसके उपरान्त बुद्धयक्षो का, तन्मात्र, मन, ज्ञान, अहङ्कृति और लिङ्गात्मा का विशोधन करके फिर अन्त में प्रकृति का शोधन करना चाहिए ॥६०॥ शुद्ध प्राकृत पुरुष को ईश्वरीय धाम में संस्थित तथा अशेष भोग को अपने में योजनी कृत करके मुक्ति में स्थित हुए आस्पद वाला है—ऐसा ध्यान करे । फिर पूर्णाहुति देवे । यह अधिकार देने वाली दीक्षा है । मन्त्र के अङ्गों के द्वारा आराधन करके समस्त तत्वों के गण को समरूप से लेकर इस प्रकार से क्रमशः विशोधन करे और अन्त में समस्त सिद्धियों से समन्वित का ध्यान करना चाहिए । फिर पूर्णाहुति देनी चाहिए । यह दीक्षा साधना करने वाले पुरुष साधक के विषय में कही गई है ॥६३॥ द्रव्य की सम्पत्ति न हो अथवा आत्मा की शक्ति का अभाव हो तो यथ पूर्व देव का यजन करके समस्त उपकरणों से समन्वित होता हुआ तुरन्त अधिवास करके द्वादशी में देशिकोत्तम (उत्तम आचार्य) को दीक्षा देनी चाहिए । भक्त विनीत अर्थात् विनय वाला और सम्पूर्ण शरीर में रहने वाले गुणों से संयुत होना चाहिए ॥६४॥

सद्योऽधिवास्य द्वादश्यां दीक्षयेद्देशिकोत्तमः ।
भक्तो विनीतः शारीरैर्गुणैः सर्वैः समन्वितः ॥६५
शिष्यो नातिधनी यस्तु स्थण्डिलेऽभ्यर्च्य दीक्षयेत् ।
अध्वानं निखिलं दैवं भौतं वाऽध्यात्मिकीकृतम् ॥६६
सृष्टिक्रमेण शिष्यस्य देहे ध्यात्वा तु देशिकः ।
अष्टाष्टाहुतिभिः पूर्वं क्रमात्सतर्प्य सृष्टिमान् ॥६७

स्वमन्त्रैर्वासुदेवादीञ्ज्वलनादीन्विसर्जयेत् ।
होमेन शोधयेत्पश्चात्संहारक्रमयोगतः ॥६८
यानि सूत्राणि बद्धानि मुक्त्वा कर्माणि देशिकः ।
शिष्यदेहात्समाहृत्य क्रमात्तत्वानि शोधयेत् ॥६९
अग्नौ प्राकृतिके विष्णोलयं नीत्वाऽधिदैविके ।
शुद्धं तत्त्वमशुद्धेन पूर्णाहुत्या तु सधयेत् ॥७०

जो कोई शिष्य ऐसा हो कि जिसके पाप अति भारी न हों उसे स्थण्डिल में ही अभ्यर्चना करके दीक्षित कर देवे । सम्पूर्ण दैव मार्ग अथवा भक्तिमार्ग को आध्यात्मिकीकृत करके देशिक को सृष्टि के क्रम से शिष्य के देह में स्थान करके पहिले क्रम से आठ आठ आहुतियों से भली-भाँति अर्पण करके सृष्टिमान् अपने मन्त्रों के द्वारा वासुदेव आदि को और ज्वलन आदि को विसर्जित करे। पीछे होम से संहार के क्रम-योग से शोधन करना चाहिए ॥६८॥ जो सूत्रबद्ध हों उन कर्मों का आचार्य को मुक्त करके शिष्य के देह से समाहृत करके क्रम से तत्त्वों का शोधन करना चाहिए ॥६९॥ प्राकृतिक अग्नि में और आधिदैविक विष्णु में लय को प्राप्त करके अशुद्ध से शुद्ध तत्त्व को पूर्णाहुति के द्वारा साधित करे। शिष्य के आपन्न होने पर प्राकृतिक गुणों को दग्ध करे और अधिकार में मोचन करे अथवा आचार्य के द्वारा शिशुओं को नियोजित करना चाहिए। ॥७०॥

शिष्ये प्रकृतिमापन्ने दग्ध्वा प्राकृतिकान्गुणान् ।
मोचयेदधिकारे वा नियुञ्ज्याद्देशिकः शिशून् ॥७१
अथान्यां शक्तिदीक्षां वा कुर्याद् भावे स्थितो गुरुः ।
भक्त्या सम्प्रतिपन्नानां यतीनां निर्धनस्य च ॥७२
संपूज्य स्थण्डिले विष्णुं पार्श्वस्थं स्थाप्य पुत्रकम् ।
देवताभिमुखः शिष्यस्तिर्यगास्यः स्वयं स्थितः ॥७३
अध्वानं निखिलं ध्यात्वा पर्वभिः स्वैर्विकल्पितम् ।
शिष्यदेहे तथा देवमाधिदैविकयाजनम् ॥७४

ध्यानयोगेन सञ्चिन्त्य पूर्ववत्ताडनादिना ।
क्रमात्तत्वानि सर्वाणि शोधयेत्स्थण्डिले हरौ ॥७५
ताडनेन वियोज्याथ गृहीत्वाऽऽत्मनि तत्पुन. ।
देवे सयोज्य सशोध्य गृहीत्वा तत्स्वभावत. ॥७६
आनीय शुद्धतत्वेन सधयित्वा क्रमेण तु ।
शोधयेद्धयानयोगेन सर्वत्रोत्तानमुद्रया ॥७७
शुद्धेषु सर्वतत्वेषु प्रधाने चेश्वरे स्थिते ।
दग्ध्वा निर्वापयेच्छिष्यान्पदे चैशे नियोजयेत् ॥७८

अथवा इसके अनन्तर भाव में स्थित होकर गुरु को अनन्य शक्ति दीक्षा विधि विधान पूर्वक करनी चाहिए। यह दीक्षा उन्ही की करनी चाहिए जो या तो अत्यन्त धनहीन हो या भक्ति भाव से भली भाँति प्रतिपन्न यतीगण हो ॥७१॥७२॥ स्थण्डिल मे विष्णु देव का भली भाँति पूजन करके और पुत्र को पार्श्व मे स्थापित करे। देवता के सम्मुख रहने वाला शिष्य तिरछा मुख वाला होकर स्वयं स्थित हो। सम्पूर्ण अध्वा का ध्यान करके जो कि अपने पत्रों से विकल्पित हो फिर शिष्य के देह मे देव का उस प्रकार से आधि दैविक याजन पूर्व की भाँति ताडन आदि से ध्यान योग के द्वारा सचिन्तन करे। फिर क्रम से स्थण्डिल में हरि मे सम्पूर्ण तत्वो को शोधित करना चाहिए ॥७५॥ ताडन के द्वारा वियुक्त करके इसके उपरान्त पुन आत्मा मे ग्रहण करे और देव में सयोजित एव सशोधित करके उसके स्वभाव से ग्रहण करे। शुद्ध तत्त्व से लाकर क्रम से सधित करके सर्वत्र उत्तान मुद्रा के द्वारा ध्यान के योग से शोधन करना चाहिए ॥७७॥ समस्त तत्वो के शुद्ध हो जाने पर और प्रधान के ईश्वर मे स्थित होने पर शिष्यो को दग्ध करके निर्वापित करे और ऐश अर्थात् ईश सम्बन्धी पद पर नियोजित करना चाहिए ॥७८॥

निनयेत्सिद्धिमार्गेण साधक देशिकोत्तमः ।
इवमेवाधिकारस्थो गृही कर्मण्यतन्द्रित. ॥७९
आत्मान शोधयंस्तिष्ठेद्यावद्रागक्षयो भवेत् ।
क्षीणरागमथाऽऽत्मान ज्ञात्वा सशुद्धकिल्विष ॥८०

आरोप्य पुत्रे शिष्ये वा ह्यधिकारं तु संयमी ।
दग्ध्वा मायामयं पाशं प्रव्रज्य स्वात्मनि स्थितः ।
शरीरपातमाकाङ्क्षन्नासीताव्यक्तलिंगवान् ॥८१

उत्तम देशिक (आचार्यवर) को चाहिए कि साधना में समाहित साधक को सिद्धि के मार्ग से वहीं प्राप्त करावे । इस प्रकार से अधिकार में रहने वाला गृही (गृहस्थाश्रमी) तन्द्रा शून्य होता हुआ कर्मों को और आत्मा को अर्थात् अपने आप को शोधित करता हुआ रहे जब तक पूर्ण रूप से राग का क्षय न हो जावे । जब यह अच्छी तरह से समझ लेवे कि मेरा सब राग क्षीण हो गया और सम्पूर्ण विलिप्त (पाप या बुरे कर्म) अच्छी तरह शुद्ध हो चुके हैं तथा आत्मा परम विशुद्ध हो गया है तो संयमशील वाला पुरुष अपने पुत्र में अथवा शिष्य में अपना सब अधिकार समर्पित करके मायामय पाश को दग्ध करके प्रव्रजित हो जावे और अपनी ही आत्मा में स्थित रहे । शरीर के पात की आकाङ्क्षा करके अव्यक्त लिङ्ग वाला न होवे ॥८१॥

१२५—आचार्याभिषेकविधानम्

अभिषेकं प्रवक्ष्यामि यथा कुर्यात्तु पुत्रकः ।
सिद्धिभाक्साधको येन रोगी रोगात्प्रमुच्यते ॥१
राज्यं राजा सुतं स्त्री च प्राप्नुयान्मलनाशनम् ।
मृत्माकुम्भान्सुरत्नाढ्यान्मध्यपूर्वादितो न्यसेत् ॥२
सहस्रावर्तितान्कुर्यादथवा शतवर्तितान् ।
मण्डपे मण्डले विष्णु प्राच्यैशान्योश्च पीठके ॥३
निवेश्य सकलीकृत्य पुत्रकं साधकादिकम् ।
अभिषेकं समभ्यर्च्य कुर्याद्गीतादिपूर्वकम् ॥४
दद्याच्च योगपीठादीस्त्वनुग्राह्यास्त्वया नरा ।
गुरुश्च समयान्ब्रूयाद्गुरुः शिष्योऽस्य सर्वभाक् ॥५

अब आचार्य के अभिषेक का विधान इसमें वर्णित किया जाता है। नारदजी ने कहा—अब हम अभिषेक के विषय मे बतलाते हैं जो कि पुत्र को जिस विधि-विधान के द्वारा करना चाहिए। इसके करने से साधक परम सिद्धि के प्राप्त करने वाला होता है और इसके द्वारा कोई रोगयुक्त हो तो वह अपने रोग से छुटकारा पा जाता है ॥१॥ राजा को इससे राज्य की प्राप्ति होती है यथा स्त्री मलों के नाश करने वाला पुत्र प्राप्त किया करती है। मिट्टी के कलशों को जो कि सुन्दर रत्नों से समन्वित हो मध्य और पूर्व आदि मे न्यस्त करे। मे कुम्भ एक सहस्र हों अथवा शतवर्ती हो मण्डप में जो मण्डल है उसमें भगवान् विष्णु को पीठ पर प्राची तथा ऐशानी दिशाओं मे निवेशित करे। साधकादि पुत्र को सङ्कलित करके गीत आदि के सहित अभिषेक अभ्यर्चन करे। योगपीठ आदि देवे। आपको मनुष्यों पर अनुग्रह करना चाहिए। इससे गुरु और शिष्य समस्त कामनाओं को प्राप्त होते हैं ॥५॥

१३६—मन्त्रसाधनविधिः सर्वतोभद्रादिमण्डललक्षणानि च

साधकः साधयेन्मन्त्रं देवतायतनादिके।
शुद्धभूमौ गृहे प्राच्यं मण्डले हरिमीश्वरम् ॥१
चतुरस्रीकृते क्षेत्र मण्डलादीनि वै लिखेत्।
रसबाणाक्षिकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत् ॥२
षट्त्रिंशत्कोष्ठकैः पद्म पीठे पङ्क्त्या बहिर्भवेत्।
द्वाभ्यां तु वीथिका तस्मात् द्वाभ्यां द्वाराणि दिक्षु च ॥३
वर्तुलं भ्रामयित्वा तु पद्मक्षेत्रं पुरोदितम्।
पद्मार्धं भ्रामयित्वा तु भाग द्वादशमं (कं) बहि. ॥४
विभज्य भ्रामयेच्छेषं चतुष्क्षेत्रं तु वर्तुलम्।
प्रथमं कर्णिकाक्षेत्रं केसराणां द्वितीयकम् ॥५
तृतीयं दलसन्धीनां दलाग्राणां चतुर्थकम्।
प्रसार्यकोणसूत्राणि कोणदिङ्मध्यमं तत ॥६
निधाय केसराग्रे दलसंधीस्तु लाञ्छयेत्।
पातयित्वाथ सूत्राणि तत्र पत्राष्टकं लिखेत् ॥७

इस अध्याय में मन्त्रों के साधन की विधि और सर्वतोभद्र आदि मण्डलों के लक्षण बताये जाते हैं। नारदजी ने कहा—साधना करने वाले साधक को किसी देवता के आयतन आदि स्थान में मन्त्र की साधना करनी चाहिए। गृह में जो शुद्ध भूमि हो उसी में मण्डल लिखित कर ईश्वर श्री हरि की अर्चना करे। पहिले क्षेत्र अर्थात् अर्चना तथा साधना के स्थल को चतुरस्र (चौकोर) अर्थात् सभी ओर से समान कर लेवे। फिर उसमें मण्डल आदि का लेखन करना चाहिए। रस (छः), बाण और अग्नि (तेज अर्थात् तीन) कोष्ठों में सर्वतोभद्र नामक मण्डल का आलेखन करना चाहिए ॥१॥२॥ छत्तीस कोष्ठों के द्वारा पीठ पर पंक्ति से बाहर होना चाहिए। द्वन्द्व अर्थात् दो से वीथिका और दिशाओं में दो से द्वारों की रचना करे ॥३॥ पुरः उदित पद्म के क्षेत्र को वृत्त (गोलाकार वाला) भ्रामित करे। पद्म के मध्य से बाहिर भ्रमण करके द्वादश भाग करे। उस चतुष्कोण को जो कि गोलाकार वाला है विभाग करके भ्रामित करना चाहिए। प्रथम जो क्षेत्र है वह कर्णिका का क्षेत्र है और दूसरा क्षेत्र केसरों का होता है ॥४॥५॥ तृतीय क्षेत्र दलों की सन्धियों का होता है तथा चतुर्थ क्षेत्र दलों के अग्र भागों का होता है। कोणसूत्र को प्रसारित कर फिर कोण दिक् मध्य में रहने वाला करे ॥६॥ केसरों के अग्रभाग में निधापित कर दलों की सन्धियों के चिह्न बनावे। सूत्रों का पातन करके वहाँ पर आठ पत्रों का लेखन करना चाहिए ॥७॥

दलमध्यान्तरात् तु मानं मध्ये निधाय तु।
दलाग्रं भ्रामयेत्तत्र तदग्रं तदनन्तरम् ॥८
तदन्तरगतं तत्पार्श्वं कृत्वा वाह्यक्रमेण च।
केसरो व निमद् द्वौ द्वौ दलमध्ये ततः पुनः ॥९
पद्मलक्ष्मतत्सामान्यं तद्द्विपट्दलमुच्यते।
कर्णिकार्धेन मानेन प्राक्पत्र भ्रामयेत्क्रमात् ॥१०
तत्पार्श्वे भ्रमयोगेन कुण्डल्यः षड् भवन्ति हि।
एवं द्वादश मत्स्याः स्युर्द्विषट्कदलकं पत्रैः ॥११

पञ्चपद्मादिसिद्धयर्थं मत्स्यै कुर्वेवमब्जकम् ।
व्योमरेखावहिः पीठं तत्र कोष्ठानि मार्जयेत् ॥१२
त्रीणि कोणेपु पादार्थं द्विद्विकान्यपराणि तु ।
चतुर्दिक्षु विलिमानि पत्रकाणि भवन्त्युत ॥१३
तत पङ्क्तिद्वयं दिक्षु वीथ्यर्थं तु विलोपयेत् ।
द्वाराण्याशासु कुर्वीत चत्वारि चतसृष्वपि ॥१४

दलों के मध्य भाग का जो अन्तराल है उसके मान को मध्य में रखे। उसी से दलो के अग्र भाग को भ्रामित करे। उसका अग्रभाग और उसके अनन्तर उसका अन्तराल उसके पार्श्व मे करके बाह्यक्रम से दो केसरो को लिखना चाहिए। फिर इसके अनन्तर दलो के मध्य में दो-दो का लेखन करे ॥८॥९॥ यह सामान्य पद्म का लक्षण होता है जो कि बारह दल वाला कहा जाता है। जो मध्य मे उस पद्म की कर्णिका है उसके आधे मान से क्रमश आवसस्थ को भ्रामित करना चाहिए ॥१०॥ उसके पार्श्व भाग मे उसी प्रकार से घुमाने के योग के द्वारा छ कुण्डलियाँ होती हैं। उनमे दीपद् अर्थात् बारह दलो वाला जो पद्म है उनसे इसी प्रकार से द्वादश मत्स्य होते हैं ॥११॥ पद्म पत्र आदि की सिद्धि के लिये मत्स्यो के द्वारा इस तरह से कमल की रचना करे। व्योम रेखा के बाहर पीठ करे और वहाँ कोष्ठों का मार्जन करना चाहिए ॥१२॥ कोणो मे तीन को पादो के लिये ऊपर द्विद्विको को और चारो दिशाओं मे पत्रक विलिप्त होते हैं ॥१३॥ इसके उपरान्त वीथी के लिये दिशाओं में दो पङ्क्तियो को विलोपित करे और चारो दिशाओं मे चार द्वार करने चाहिए ॥१४॥

द्वाराणां पार्श्वत शोभा अष्टौ कुर्याद्विचक्षण. ।
तत्पार्श्वं उपशोभास्तु तावत्य परिकीर्तिता ॥१५
तमीप उपशोभानां कोणास्तु परिकीर्तिता. ।
चतुर्दिक्षु ततो द्वे द्वे चिन्तयेन्मध्यकोष्ठकं ॥१६
चत्वारि बाह्यतो मृज्यादेकैकं पार्श्वयोरपि ।
शोभार्थं पार्श्वयोस्त्रीणि त्रीणि लुम्पेद्दलस्य तु ॥१७

तद्वद्विपर्यये कुर्यादुपशोभा ततः परम् ।
कोणस्यान्तर्बहिस्त्रीणि चिन्तयेन्निर्विभेदतः ॥१८
एवं षोडशकोष्ठं स्यादेवमन्यत्तु मण्डलम् ।
द्विषट्कभागे षड् विंशत्पदं पद्मं तु वीथिका ॥१६
एका पङ्क्तिः परास्या तु द्वारशोभादि पूर्ववत् ।
द्वादशांगुलिभिः पद्ममेकहस्ते तु मण्डले ॥२०
द्विहस्ते हस्तमात्रं स्याद्वृद्ध्या द्वारेण चाऽऽचरेत् ।
अपीठं चतुरस्रं स्याद् द्विकरं चक्रपङ्कजम् ॥२१

विद्वान् पुरुष को द्वारों के पार्श्व में आठ शोभा करनी चाहिए। उसके पार्श्व में उतनी ही उपशोभा कीर्तित की गई हैं अर्थात् बताई गई हैं ॥१४॥ उपशोभाओं के समीप में कोण कहे गये हैं। चारों दिशाओं में मध्य कोठरी से दो दो का चिन्तन करे ॥१६॥ बाह्य भाग में चार को मुद्रित करे पार्श्वों में भी एक-एक करे। शोभा के लिए दोनों पार्श्वों में दल के तीन-तीन लुप्त करे ॥१७॥ उसके विपर्यय में इसके पश्चात् उपशोभा करनी चाहिए। कोण के अन्दर और बाहर बिना भेद से तीन का चिन्तन करे ॥१८॥ इस प्रकार से षोडश कोष्ठ होवें। इसी प्रकार अन्य मण्डल करे। द्विषट्क भाग में षड् विंशत्पद पद्म और वीथिका करे ॥१९॥ एक पंक्ति परों से द्वारशोभा आदि पूर्व की भाँति रखे। एक हाथ मण्डल में बारह अंगुल पद्म बनावे ॥२०॥ यदि दो हाथ के परिमाण वाला मण्डल हो तो एक हाथ परिमाण वाला ही पद्म रखना चाहिए और द्वार से वृद्धि के अनुसार ही करे। अपीठ चतुरस्र होवे और दो हाथ चक्र पङ्कज करना चाहिए ॥२१॥

पद्मार्धं नवभिः प्रोक्तं नाभिस्तु तिसृभिः स्मृता ।
अष्टाभिरयारकान्कुर्यान्नेमिं तु चतुरंगुले ॥२२
त्रिधा विभज्य च क्षेत्रमन्तर्द्वाभ्यामथारयेत् ।
पद्मान्तस्त्वारमिद्धयर्थं तेष्वारपाल्य लिखेदरान् ॥२३
इन्दीवरदलाकारानथ वा मातुलुङ्गवत् ।
पद्मपत्रायतान्वाऽपि लिखेदिच्छानुरूपतः ॥२४

भ्रामयित्वा बहिर्नेमावरसन्ध्यन्तरे स्थित ।
भ्रामयेदरमूल तु सन्धिमध्ये व्यवस्थित ॥२५
अरमध्ये स्थितो मध्यमराणा भ्रामयेत्समम् ।
एव सिध्यन्त्यरा सम्यङ् मातुलिङ्गनिभा समा ॥२६
विभज्य सप्तधा क्षेत्र चतुर्दशकर समम् ।
त्रिधा कृते शत द्वात्र षण्णवत्याधिकानि तु ॥२७
कोष्ठकानि चतुर्भिस्तैर्मध्ये भद्र समालिखेत् ।
परितो विसृजेद्वीथ्यै तथा दिक्षु समालिखेत् ॥२८

पद्मार्ध अर्थात् पद्म का आधा भाग नौ अ गुल का कहा गया है तथा उसकी नाभि तीन अ गुल वाली बताई गई है । अ गुल उसके आरक हों और नेमि चार अ गुल वाली होनी चाहिए । क्षेत्र को तीन भागों म विभाजित करे और अन्दर के दो भागो से उसे अङ्कित करना चाहिए । अन्दर के पाँच भागों की सिद्धि के लिये उनमे आरफाल्य अरों को लिखे । इन्दीवर के दलों के आकार वाले अथवा मातुलुङ्ग से समान बिम्बा पद्म पत्र के सदृश आयत अपनी इच्छा के अनुरूप ही लिखना चाहिए ॥२४॥ अरों की सन्धि के अन्तर मे स्थित होते हुए बाहिर नेमि में घुमावे और सन्धियो के मध्य मे व्यवस्थित रहते हुए अरो के मूल भ्रमित करना चाहिए ॥२५॥ अरो के मध्य म स्थित होते हुए अरो के सम मध्य को घुमावे । इसी प्रकार से भली भाँति मातुलुङ्ग के सदृश सम अरों की सिद्धि होती है ॥२६॥ क्षेत्र को सात भागो म विभाजित करके चौदह हाथ सम करे । तीन भागो म करने पर यहाँ छियानवे अधिक होते हैं ॥२७। ऐसे कोष्ठक होते हैं उन चारों के द्वारा मध्यभाग म भद्र का लेखन करना चाहिए । सब ओर वीथी के लिय छ ड देवे तथा दिशाओ म समालेखन करे । ॥२८॥

कमलानि पुनर्वीथ्यै परित परिमृज्य तु ।
द्वे द्वे मध्यमकोष्ठे तु ग्रीवार्थ दिक्षु लोपयेत् ॥२६
चत्वारि बाह्यत पश्चात्त्रीणि त्रीणि तु लोपयेत् ।
ग्रीवापार्श्वे बहिस्त्वेक शोभा सा परिकीर्तिता ॥३०

विसृज्य बाह्यकोणेषु सप्तान्तस्त्रीणि मार्जयेत् ।
मण्डलं नवनाभं स्यान्नवव्यूहं हरिं यजेत् ॥३१
पञ्चविंशतिकव्यूहं मण्डलं विश्वरूपगम् ।
द्वात्रिंशद्धस्तकं क्षेत्रं भक्तं द्वात्रिंशता समम् ।३२
एवं कृते चतुर्विंशत्यधिकं तु सहस्रकम् ।
कोष्ठकानां समुद्दिष्टं मध्ये षोडशकोष्ठकैः ॥३३
भद्रकं परिलिख्याथ पार्श्वे पङ्क्तिं विसृज्य तु ।
ततः षोडशभिः कोष्ठैर्दिक्षु भद्राष्टकं लिखेत् ॥३४
ततोऽपि पङ्क्तिं संमृज्य तद्वत्षोडशभद्रकम् ।
लिखित्वा परितः पङ्क्तिं विसृज्याथ प्रकल्पयेत् ॥३५

इस प्रकार के फिर कमलों की रचना कर वीथी के लिये सब ओर परिमृष्ट करे। मध्यम कोष्ठ में दो-दो दिशाओं से ग्रीवा के लिये छोड़ देवे। बाहिर के भाग में चार और पीछे तीन-तीन लोपित कर देवे। ग्रीवा के पार्श्व में बाहिर एक करे। यह ऐसी शोभा बताई गई है ॥२६॥३०॥ बाह्य कोणों में सात का त्याग कर अन्दर तीन का मार्जन करना चाहिये। इस तरह से नव नाभवाला मण्डल होवे और नव व्यूह हरि का यजन करना चाहिये ।३१। पञ्चविंशतिक व्यूह वाला मण्डल विश्व रूपग होता है। बत्तीस हाथ वाला क्षेत्र बत्तीस के सम विभक्त कर ॥३२॥ ऐसा करने पर एक हजार चौबीस कोष्ठकों से मध्य में कोष्ठक समुद्दिष्ट होते हैं ॥३३॥ इसके अनन्तर भद्रक का परिलेखन करके पार्श्व में पंक्ति को छोड़ देवे और इसके अनन्तर सोलह कोष्ठों के द्वारा दिशाओं में भद्राष्टक का लेखन करना चाहिए। फिर पङ्क्ति को छोड़कर उसी को षोडश भद्रक लिखे। सब ओर पङ्क्ति का त्याग कर उसे प्रकल्पित करना चाहिए ॥३५॥

द्वारद्वादशकं दिक्षु त्रीणि त्रीणि यथाक्रमम् ।
षड् बहिः परिलुप्यान्तर्मध्ये चत्वारि पार्श्वयोः ॥३६
चत्वार्यन्तर्बहिर्द्वे तु शोभार्थं परिमृज्य तु ।
उपद्वारप्रसिद्धयर्थं त्रीण्यन्तः पञ्च बाह्यतः ॥३७

परिमृज्य तथा शोभा पूर्ववत्परिकल्पयेत् ।
बहि. कोणेपु सप्तान्तर्त्रीणि कोष्ठानि मार्जयेत् ।।३८
पंचविंशतिकव्यूहे पर ब्रह्म यजेत्त्वजे ।
मध्ये पूर्वादित पद्मे वासुदेवादयः क्रमात् ।।३६
वाराह पूजयित्वा तु पूर्वपद्मे ततः क्रमात् ।
व्यूहान्सपूजयेत्तावद्यावत्पट् विंशगो भवेत् ।।४०
यथोक्त व्यूहमखिलमेकस्मिन्मण्डले क्रमात् ।
यष्टव्यमिति मन्त्रेण प्रचेता मन्यतेऽध्वरम् ।।४१
सत्यस्तु मूर्त्तिभेदेन विभक्तं मन्यतेऽच्युतम् ।
चत्वारिंशत्कर क्षेत्रं ह्यु त्तर विभजेत्क्रमात् ।।४२

चारो दिशाओ मे तीन-तीन के क्रम से बारह द्वारो की रचना करनी चाहिए। बाहिर छ अन्तमध्य मे परिवार लुप्तकर प.र्श्वो में चार बनावे। चार अन्दर वाहिर ही शोभा के लिय परिमृजित करे। उपद्वारो की प्रतिद्धि के लिये अन्दर तीन और पाँच बाह्य भाग मे करे। उसको परिमृजित (विशुद्ध) करके तथा पूर्व की भाँति शोभा को परिकल्पित करना चाहिए। वाहिर कोणों म सात और अन्दर तीन कोष्ठों का मार्जन करना चाहिए ।।३८।। पञ्च विंशतिक व्यूह में कमल मे परब्रह्म का यजन करे। मध्य मे पूर्वादि से क्रमश पद्म मे वासुदेव आदि को पूजित करना चाहिए ।।३६।। पूर्व पद्म मे वाराह का पूजन करके फिर क्रम से व्यूहो का भली-भाँति समर्चन करे और तब तक करे जब तक पट् विंशग होवे ।। ४० ।। एक मण्डल मे क्रम से यथोक्त समस्त व्यूह का यजन करना चाहिए। और 'यष्टव्य प्रचेता मन्यतेऽध्वरम्" इस मन्त्र से यजन करे ।।४१।। मूर्त्ति भेद से सत्य का यजन करे जो विभक्त अच्युत माने जाते हैं। उत्तर क्षेत्र को चत्वारिंशत्कर (चालीस) क्रम से विभाजित करे ।।४२।।

एकैक सप्तधा भूयस्तथैकैक द्विधा पुन ।
चतुःषष्ट्यु त्तर सप्त शतान्येक सहस्रकम् ।।४३
कोष्ठकाना समुद्दिष्ट मध्ये षोडशकोष्ठकं ।
पार्श्वे वीथी ततश्चाष्टभद्राण्यथ च वीथिका ।।४४

षोडशाब्जान्वयो वीथी चतुर्विंशतिपङ्कजम् ।
वीथीपद्मानि द्वात्रिंशल्लङ्किवोमोवजान्यथ ॥४५
चत्वारिंशत्ततो वीथी शेषपङ्क्तित्रयेण च ।
द्वारशोभोपशोभाः स्युर्दिक्षु मध्ये विलोप्य च ॥४६
द्विचतुष्षड्द्वारसिद्ध्यै चतुर्दिक्षु विलोपयेत् ।
पञ्च शीर्ष्णेवंक बाह्ये शोभोपद्वारसिद्धये ॥४७
द्वाराणां पार्श्वयोरन्तः षट् चत्वारि च मध्यतः ।
द्वे द्वे तुर्म्यदेवमेव षड् भवन्त्युपशोभिकाः ॥४८
एकस्यां दिशि सङ्ख्याः स्युश्चतस्रः परिसङ्ख्यया ।
एकैकस्यां दिशि त्रीणि द्वाराण्यपि भवन्त्यतः ॥४९
पञ्च पञ्च तु कोणेषु पङ्क्तौ पङ्क्तौ क्रमात्त्यजेत् ।
कोष्ठकानि भवेदेवं सर्वोष्ठ मण्डलं शुभम् ॥५०

एक-एक को सात प्रकार से करे फिर उसी भाँति एक एक को दो प्रकार का करे। इस तरह से एक सहस्र सातसौ चौंसठ करे ॥४३॥ कोष्ठकों के मध्य में षोडश कोष्ठकों से बनाया गया है। पार्श्व में वीथी बनावे और फिर इसके अनन्तर अष्ट दलों की रचना करे और पुन वीथी निर्मित करनी चाहिए। ॥४४॥ सोलह दल इसके पश्चात् वीथी और चौबीस पङ्कज होते हैं। वीथी पद्म बत्तीस हैं ॥४५॥ इसके उपरान्त चालीस वीथी और शेष पङ्क्तित्रय से द्वार शोभा तथा उपशोभा होनी चाहिए। दिशाओं के मध्य में विलुप्त करे। दो चार और छ द्वारों की सिद्धि के लिये चारों दिशाओं में विलोपित करे। पाँच-तीन और एक-एक बहिर्भाग में शोभा के उपद्वार की सिद्धि के लिये करे ॥४६॥४७॥ द्वारों के पार्श्व भागों में अन्दर चालीस और मध्य में दो-दो को लुप्त करे। इसी प्रकार से उपशोभिका छै होती हैं ॥४८॥ एक दिशा में परिसंख्या से चार संख्या होती हैं। एक-एक दिशा में तीन द्वार होते हैं। अतः कोणों में पाँच-पाँच पङ्क्ति-पंक्ति में क्रम से लुप्त करे। इस प्रकार से कोष्ठ होते हैं और सर्वोष्ठ शुभ मण्डल होता है ॥४९॥५०॥

१३७—सर्वतोभद्रमंडलादिविधिकथनम्

मध्ये पद्मे यजेद् ब्रह्म साङ्गं पूर्वेऽब्जनाभकम् ।
आग्नेयेऽब्जे च प्रकृतिं याम्येऽब्जे पुरुषं यजेत् ॥१
पुरुषाद्दक्षिणे वह्निं नैरृते वारुणेऽनिलम् ।
आदित्यमैन्दवे पद्मे ऋग्यजुश्चैशपद्मके ॥२
इन्द्रादींश्च द्वितीयायां पद्मे षोडशके तथा ।
सामाथर्वाणमाकाशं वायुं तेजस्तथा जलम् ।३
पृथिवीं च मनश्चैव श्रोत्रं त्वक्चक्षुरर्चयेत् ।
रसनां च तथा घ्राणं भूर्भुवश्चैव षोडशम् ॥४
महर्जनस्तपः सत्यं तथाऽग्निष्टोममेव च ।
अत्यग्निष्टोमकं चोक्थं षोडशी वाजपेयकम् ॥५
अतिरात्रं च सपूज्य तथाऽप्तोर्याममर्चयेत् ।
मनो बुद्धिमहंकारं शब्दं स्पर्शं च रूपकम् ॥६
रसं गन्धं च पद्मेषु चतुर्विंशतिषु क्रमात् ।
जीवं मनो धियं चाहं प्रकृतिं शब्दमात्रकम् ॥७

अब इस अध्याय में सर्वतो भद्र मण्डल आदि की विधि का वर्णन किया जाता है । नारद मुनि ने कहा—पद्म के मध्य में ब्रह्म का यजन कर और पूर्व में अङ्गों के सहित अब्ज नाभ (ब्रह्मा) का यजन करना चाहिए । आग्नेय दिशा में जो अब्ज है उसमें प्रकृति का यजन करे और याम्य दिशा में जो कमल है उस अब्ज में पुरुष का यजन करना चाहिए ॥१॥ पुरुष से दक्षिण दिशा में वह्नि का अर्चन करे अर्थात् नैरृत दिशा मे करे और वारुण दिशा भाग में अनिल देव का यजन करना चाहिए । ऐन्दव दिशा में स्थित जो पद्म है उसमें भगवान् आदित्य का अर्चन करे तथा ऐश दिशा वाले पद्म मे ऋग् और यजु का यजन करे ॥२॥ और द्वितीया में इन्द्र प्रभृति देवगणों का यजन करे तथा पद्म में सामवेद और अथर्ववेद का यजन करना चाहिए । आकाश, वायु, तेज जल, पृथिवी, मन, श्रोत्र, त्वक् और चक्षु का यजनार्चन करे । रसना, घ्राण,

भू, भुवः षोडश, महः, जन, तप, सत्य तथा अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोमक, षोडश षोडशी, वाजपेयक और अतिरात्र का भली भांति विधि-विधान से पूजन कर आप्तोर्याम की अर्चना करनी चाहिए। मन, बुद्धि, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का चौबीस पद्मों में क्रम से अर्चन करना चाहिए। जीव मन, धी, अहङ्कार, प्रकृति और शब्द मात्र का भी अर्चन करना चाहिए ॥७॥

वासुदेवादिमूर्तीश्च तथा चैव दशात्मकम् ।
मन श्रोत्र त्वच प्राच्यं चक्षुश्च रसने तथा ॥८
घ्राण वाक्पाणिपाद च द्वात्रिंशद्वारिजेष्विमान् ।
चतुर्थावरणे पूज्या साङ्गा सपरिवारका ॥९
पायूपस्थौ च सपूज्य मासाना द्वादशाधिपान् ।
पुरुषोत्तमादिषड्विंशान्बाह्यावरणके यजेत् ॥१०
चक्राब्जे तेषु सपूज्या मासाना पतय क्रमात् ।
अष्टौ प्रकृतय षड् वा पञ्च वा चतुरोऽपरे ॥११
रज पात तत कुर्याल्लिखिते मण्डले शृणु ।
कर्णिका पीतवर्णा स्याद्रेखा सर्वा सिता समा ॥१२
द्विहस्तेऽङ्गुष्ठमात्रा स्युर्हस्ते चाङ्गुलसमा सिता ।
पद्म शुक्लेन सपूर्णं कृष्णेन श्यामतोऽथवा ॥१३
केसरा रक्तपीता स्यु कोणान्रक्तेन पूरयेत् ।
भूषयेद्योगपीठ तु यथेष्ट सार्ववर्णिकै ॥१४

वासुदेव आदि मूर्तियों का तथा दश स्वरूपों का अर्थात् दशावतार रूपों का मन, श्रोत्र, त्वचा का अर्चन करके उसी प्रकार से चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, पाणि, पाद इन सबका बत्तीस पद्मों में अर्चन करे। फिर चतुर्थ आवरण में अङ्गों के सहित तथा परिवारों से युक्त सबका यजन करे ॥८।९॥ पायु और उपस्थ (जननेन्द्रिय) का भली-भांति यजन करके मासों के जो बारह स्वामी हैं उनका पुरुषोत्तम आदि छब्बीसों का बाह्य आवरण में यजन करना चाहिए ॥१०॥ उनमें चक्राब्ज में मासों के स्वामियों का क्रम से यजन करे। आठ, छः, पाँच अथवा अपर चार प्रकृतियों का अर्चन करना चाहिए ॥११॥

अब यह श्रवण करो कि इससे अनन्तर उस लिखित मण्डल में रज पात करना चाहिए अर्थात् तत्तद् वर्णों वाली रज डालना चाहिए। जो कर्णिका है उसमे पीले रंग की रज का पातन करके उसे पीत वर्ण वाली बनानी चाहिए। जो उसकी रेखाऐं हैं वे सब समान रूप से सित वर्ण वाली होनी चाहिए। दो हाथों में अंगुष्ठ मात्र होवें और हस्त में बाहु के समान सित होना चाहिए पद्म को शुक्ल वर्ण से युक्त करे तथा सन्धियों को कृष्ण अथवा श्याम वर्ण से संयुत करना चाहिए। जो उसके सर हैं उन्हे रक्त-पीत वर्ण वाल करे तथा कोणों का रक्त वर्ण से पूरित करे। इस प्रकार से जो योगपीठ है उसको यथेष्ट रूप से सभी वर्णों के द्वारा पूरित करके भलीभाँति सुभूषित कर देना चहिए ॥१४॥

लताविताननपत्राद्यै र्वीथिकामुपशोभयेत् ।
पीठद्वारे तु शुक्लेन शोभा रक्तेन पूरिताः ॥१५
उपशोभाश्च नीलेन कोणशङ्खाश्च वै सितान् ।
भद्रके पूरण प्रोक्तमेवमन्येषु पूरणम् ॥१६
त्रिकोण सितरक्तेन कृष्णेन च विभूषयेत् ।
द्विकोण रक्तपीताभ्या नाभि कृष्णेन चक्रके ॥१७
अरकान्पीतरक्ताभि श्यामान्नेमिस्तु रक्तत ।
सितश्यामारुणाः कृष्णा पीता रेखास्तु वाह्यत ॥१८
शालिपिष्टादि शुक्ल स्याद्रक्त कौसुम्भकादिकम् ।
हरिद्रया च हारिद्र कृष्ण स्याद्दग्धधान्यत ॥१६
शमीपत्रादिकै श्याम बीजाना लक्षजाप्यत ।
चतुर्लक्षस्तु मन्त्राणा विद्याना लक्षसाधनम् ॥२०
अयुत बुद्धविद्याना स्तोत्राणा च सहस्रकम् ।
पूर्वमेवाथ लक्षेण मन्त्रशुद्धिस्तथाऽऽत्मन ॥२१

विभिन्न प्रकार की लता, वितान और पत्र आदि के द्वारा वीथिका को उपशोभित कर देवे। पीठ के द्वार देश मे शुक्ल वर्ण से और शोभा को रक्त वर्ण से पूरित करे ॥१५॥ उपशोभाओं को नील वर्ण से पूरित कर बनावे

तथा कोणों के खण्डों को सित वर्ण वाले निर्मित करे। इस रीति से भद्रक में जो पूरण होना चाहिए वह बतला दिया गया है। इसी प्रकार से अन्य मण्डलों के भी पूरक करना चाहिए ॥१६॥ त्रिकोण को सित-रक्त वर्ण से बनावे और कृष्ण वर्ण से पूरित करे तथा जो द्विकोण हैं उन्हें रक्त-पीत दोनों वर्णों से निर्मित करे और नाभि को कृष्ण वर्ण के द्वारा प्रपूरित करना चाहिए। चक्र में अरकों को पीले और लाल वर्णों से रचित करे, श्याम से नेमि को तो रक्त वर्ण से पूरित करे। बाह्य भाग में जो रेखाऐं होती हैं उनका प्रपूरण सित श्याम अरुण, कृष्ण और पीत वर्णों से करना चाहिए। अब यह बतलाया जाता है कि ये सब उपर्युक्त वर्णों का निर्माण किन-किन द्रव्यों से करना चाहिए। शालियों का पेषण करके उनके पिष्ट से शुक्ल वर्ण की रचना करे। जहाँ रक्त वर्ण का पूरण करना हो वहाँ कौसुम्भ प्रभृति को काम में लेना चाहिए। पीत तथा हारिद्र वर्ण की जहाँ आवश्यकता हो वहाँ हरिद्रा (हल्दी) का चूर्ण को ले लेवे और कृष्ण वर्ण की रचना के लिये धान्य को जला कर उसके पिष्ट से रचना करनी चाहिए। शमी के पत्र आदि के द्वारा श्याम वर्ण का पूरण करे। बीजों के एक लक्ष जाप करे। मन्त्रों और विद्याओं का चार लक्ष जप से मन्त्र का साधन होता है। जो बुद्ध विद्याऐं हैं उनका दश सहस्र जाप करे। स्तोत्रों का एक सहस्र करना चाहिए। पहिले तो एक लक्ष जाप से मन्त्र की तथा आत्मा की शुद्धि होती है ॥२१॥

तथाऽपरेण लक्षेण मन्त्रः क्षेत्रवृतो भवेत् ।
पूर्वसेवासमो होमो बीजानां सम्प्रकीर्तितः ॥२२
पूर्वसेवा दशांशेन मन्त्रादीनां प्रकीर्तिता ।
पुरश्चर्या तु मन्त्रेण मासिकं व्रतमाचरेत् ॥२३
भुवि न्यसेद्वामपादं न गृह्णीयात्प्रतिग्रहम् ।
एवं द्वित्रिगुणेनैव मध्यमोत्तमसिद्धयः ॥२४
मन्त्रध्यानं प्रवक्ष्यामि येन स्यान्मन्त्रजं फलम् ।
स्थूलं शब्दमयं रूपं विग्रहं बाह्यमिष्यते ॥२५

सूक्ष्म ज्योतिर्मय रूपं हार्दं चिन्तामयं भवेत् ।
चिन्तया रहित यत्तु तत्पर परिकीर्तितम् ॥२६
वाराहसिंह शक्तीनां स्थूल रूपं प्रधानत ।
चिन्तया रहित रूपं वासुदेवस्य कीर्तितम् ॥२७
इतरेषां स्मृत रूप हार्दं चिन्तामय सदा ।
स्थूल वैराजमाख्यात सूक्ष्म वै लिङ्गित भवेत् ॥२८

इसके अनन्तर द्वितीय लक्ष के जप करने पर मन्त्र क्षेत्रीकृत होता है । पूर्व होम सेवासम बीजो का बताया गया है ॥२२॥ पूर्व सेवा के दशाश मे मन्त्रादि की पुरश्चर्या प्रकीर्तित की गई है । मन्त्र से मासिक व्रत करना चाहिए । ॥२३॥ अवाम पाद को भूमि मे रक्खे और किसी का भी प्रतिग्रह अर्थात् दान दक्षिणा आदि का ग्रहण कभी भी नही करना चाहिए । इस प्रकार से द्विगुणित एव त्रिगुणित करने पर मध्यम तथा उत्तम सिद्धियाँ हुआ करती हैं ॥२४॥ अब मन्त्र के ध्यान के विषय मे बतलाया जाता है जिसके करने से मन्त्र के द्वारा समुत्पन्न फल का लाभ होता है । मन्त्र का शब्दमय जो रूप है वह स्थूल एव बाहिरी विग्रह ही कहा जाता है ॥२५॥ मन्त्रो का जो सूक्ष्म स्वरूप है वह ज्योतिर्मय होता है तथा हृदय का एव चिन्तन पूर्ण हुआ करता है । जो मन्त्र चिन्तन से रहित होता है वह पर बताया गया है ॥२६॥ वाराह सिंह शक्तियो का प्रधानतया स्थूल रूप होता है । वासुदेव का रूप चिन्तन से रहित कहा गया है ॥२७॥ इतर मन्त्रो का रूप सदा हार्द और चिन्ता से पूर्ण होता है । जो स्थूल रूप है वह वैराज कहा गया है तथा जो सूक्ष्म स्वरूप है वह लिङ्गित होता है ॥२८॥

चिन्तया रहित रूपमैश्वर परिकीर्तितम् ।
हृत्पुण्डरीकनिलयं चैतन्य ज्योतिरव्ययम् ॥२९
बीज जीवात्मक ध्यायेत्कदम्बकुसुमाकृतिम् ।
कुम्भान्तरगतो दीपो निरुद्धप्रसरो यथा ॥३०
सहतं केवलस्तिष्ठेदेव मन्त्रेश्वरो हृदि ।
अनेकसुषिरे कुम्भे तावन्मात्रा गभस्तयः ॥३१

प्रसरन्ति वहिस्तद्वन्नाडीभिर्बीजरश्मय ।
अन्यावभासका देवीमात्मीकृत्य तनुं स्थिताः ॥३२
हृदयात्प्रस्थिता नाड्यो दर्शनेन्द्रियगोचरा ।
द्व अग्नीषोमात्मिके तासा नाड्यो नासाग्रसंस्थिते ॥३३
सम्यगुद्घातयोगेन जित्वा देहसमीरणम् ।
जपध्यानरतो मन्त्री मन्त्रजं फलमश्नुते ॥३४
सशुद्धभूततन्मात्र- सकामो योगमभ्यसन् ।
अणिमादिमवाप्नोति विरक्त प्रविलङ्घ्य च ॥३५
चिदात्मको भूतमात्रान्मुच्यते चेन्द्रियग्रहात् ॥३६

चिन्ता से जो रहित रूप होना है वह ऐश्वर बताया गया है । हृदय स्थल में निलय वाला, चैतन्य और अव्यय ज्योति है ॥३१॥ बीज का जीवात्मक अर्थात् जीव स्वरूप वाला ध्यान करना चाहिए जो कि कदम्ब के कुसुम के समान आकृति वाला होता है जैसे कुम्भ के अन्दर रहने वाला होता है । इसी प्रकार से मन्त्रेश्वर हृदय म केवल महत्न होता हुआ स्थित रहा करता है । बहुत से छिद्रो वाले कुम्भ मे उतनी ही जितने उसमें छिद्र होते हैं उस दीप म किरणें प्रकाशित हुआ करती हैं । उसी प्रकार से बीजो की रश्मियाँ भी नाड़ियों के द्वारा बाहिर प्रसृत हुआ करती हैं । देवी तनु का आत्मीयकरण के अन्याव भासक होती हुई स्थित रहा करती हैं ॥३२॥ हृदय से प्रस्थित नाड़ियाँ दर्शनेन्द्रिय के गोचर होती हैं । उन नाड़ियों मे अग्नी षोमात्मिका दो नाड़ियाँ नासिका के अग्र भाग मे संस्थित रहा करती हैं ॥३३॥ अच्छी भाँति उद्घात योग के द्वारा देह की वायु को जीतकर मन्त्रों के जाप करने वाला साधक मन्त्री मन्त्र जाप व ध्यान इन दोनों में रत होता हुआ ही मन्त्रों के द्वारा समुत्पन्न होने वाले फल का लाभ प्राप्त किया करता है ॥३४॥ जिसके भूत तथा तन्मात्रायें भली भाँति शुद्ध हो गए हैं ऐसा सकाम अर्थात् कामनाओं से युक्त उपर्युक्त विधि से योग का अभ्यास करता रहे तो अणिमा आदि सिद्धियों को प्राप्त किया करता है । जो विरक्त अर्थात् जिसको कोई कामना नहीं होती है

और पूर्णतया निष्काम है वह तो सबका अविलङ्घन करके विदात्मक इन्द्रियों के निग्रह से भूनमात्रा से मुक्त हो जाता है ॥२५।२६॥

१३८—अपामार्जनविधानम्

रक्षा स्वस्य परेषा च वक्ष्येऽपामार्जनाह्वयाम् ।
यया विमुच्यते दु खं सुख च प्राप्नुयान्नर ॥१
ॐ नम परमार्थाय पुरुषाय महात्मने ।
अरूपबहुरूपाय व्यापिने परमात्मने ॥२
निष्कल्मषाय शुद्धाय ध्यानयोगरताय च ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिध्यतु मे वच । ३
वराहाय नृसिंहाय वामनाय महात्मने ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिध्यतु मे वच ॥४
त्रिविक्रमाय रामाय वैकुण्ठाय नराय च ।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिध्यतु मे वच ॥५
वराह नरसिंहेश वामनेश त्रिविक्रम ।
हयग्रीवेश सर्वेश हृषीकेश हराशुभम् ॥६
अपराजित चक्राद्यैश्चतुर्भि परमायुधै ।
अखण्डितानुभावैस्त्व सर्वदुष्टहरो भव ॥७

अब इस अध्याय में अपामार्जन का विधान बताया जाता हैं। अग्निदेव ने कहा—जो अपने आपके स्वरूप की रक्षा है और दूसरों की रक्षा है वह ही अपामार्जन नाम वाली होती है उसे हम बतायेंगे जिस अपार्जन की क्रिया के द्वारा मानव अनेक दु खों से छुटकारा पा जाता है और सुख की प्राप्ति किया करता है ॥१॥ उसके मन्त्र का स्वरूप यह है—'ॐ नम परमार्थाय पुरुषाय महात्मने । अरूपबहु रूपाय व्यापिने परमात्मने । निष्कलमषाय शुद्धाय ध्यान योग रताय च ॥' इसका सक्षिप्त अर्थ यह होता है—परमार्थ के स्वरूप से युक्त महान् आत्मा वाले, बिना रूप वाले तथा बहुविध रूपों से युक्त सर्वत्र व्यापक

रहने वाले, कल्मषों से रहित, परम शुद्ध, ध्यान-योग में रति रखने वाले पर मात्मा पुरुष के लिये नमस्कार है। इस प्रकार से नमस्कार करके बताऊँगा जिससे मैं जो भी कहूँ वह वचन सिद्ध हो जावे ॥२॥३॥ वराह भगवान् नृसिंह भगवान् तथा महान् आत्मा वाले वामन भगवान् को नमस्कार करके ही मैं कहूँगा जिससे कि जो भी मेरा वह वचन हो वह सिद्धि को प्राप्त हो जावे ॥४॥ त्रिविक्रम, राम, वैकुण्ठ और नर के लिये प्रणाम करके बताऊँगा जिससे वह मेरा वचन सुसिद्ध हो जावे ॥५॥ हे वराह ! हे नरसिंहेश ! हे वामनेश ! हे हयग्रीवेश ! हे सर्वेश ! और हे हृषीकेश ! आप मेरे सम्पूर्ण अशुभों का हरण कर देवें ॥६॥ हे अपराजित ! आप अखण्डित अनुभवों वाले शस्त्र, चक्र आदि जो चार आपके परम प्रशान्त आयुध हैं उनके द्वारा समस्त दुष्ट जनों का हरण करें ॥७॥

हरामुकस्य दुरित सर्वं च कुशल कुरु ।
मृत्युबन्धार्तिभयद दुरिष्टस्य च यत्फलम् ॥८
पराभिध्यानसहितं प्रयुक्त चाऽभिचारिकम् ।
गरस्पर्शमहारोगप्रयोग जरया जर ॥९
ॐ नमो वासुदेवाय नम कृष्णाय खड्गिने ।
नम पुष्करनेत्राय केशवायाऽऽदिचक्रिणे ॥१०
नम कमलकिञ्जल्कपीतनिर्मलवाससे ।
महाहवरिपुस्कन्धघृष्टचक्राय चक्रिण ॥११
दंष्ट्रोद्धृतक्षितिभृते त्रयीमूर्तिमते नम ।
महायज्ञवराहाय शेषभोगाङ्कशायिने ॥१२
तप्तहाटककेशान्त ज्वलत्पावकलोचन ।
वज्राधिकनखस्पर्श दिव्यसिंह नमोऽस्तु ते ॥१३
काश्यपायातिह्रस्वाय ऋग्यजु सामभूषिणे ।
तुभ्य वामनरूपायाऽऽक्रमते गा नमो नम ॥१४

किसी विशेष व्यक्ति के विषय मे अभीष्ट हो तो उसका (अमुक) नाम बोलकर कहना चाहिए कि उसका दुरित (पाप) दूर करो और सब भाँति का

कुशल करो। मृत्यु, बन्धन, आर्ति (पीड़ा) और भय के देने वाला जो दुरिष्ट का फल होता है उससे रक्षा करो। दूसरों के द्वारा अभिध्यान के सहित जो भी कोई आभिचारिक प्रयोग किया हो उससे करो। गरल स्पर्श या महारोग का कोई प्रभाव हो उससे तथा जरा से सुरक्षा करो ॥९॥ खड्ग के धारण करने वाले वासुदेव भगवान् कृष्ण के लिए नमस्कार है। आदि चक्री अर्थात् आदि से ही चक्र के धारण करने वाले पुष्कर (पद्म) के सदृश अति सुन्दर नेत्रों वाले वाले केशव भगवान् के लिए नमस्कार है ॥१०॥ कमल पुष्प के किंजल्क अर्थात् पराग के समान पीत वर्ण वाले तथा निर्मल वस्त्र धारण करने वाले महाहव के रिपु एवं स्कन्ध पर चक्र को धारण करने वाले चक्री के लिए नमस्कार है ॥११॥ अपनी दाढ़ पर इस भूमण्डल के समस्त भार को धारण करने वाले त्रयीमूर्तियों वाले भगवान् को नमस्कार है अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन तीनों की स्वयं ही मूर्तियों को धारण करने वाले हैं। महायज्ञ वराह के लिए तथा शेष भगवान् के भोग की गोद में शयन करने वाले भगवान् के लिए नमस्कार है ॥१२॥ तपे हुए सुवर्ण के तुल्य देदीप्यमान स्वर्णिम केशों के छोरों से युक्त और जलती हुई प्रदीप्त अग्नि के सदृश नेत्रों वाले वज्र की तीखी धार से भी अधिक तीक्ष्ण नखों के स्पर्श वाले परम दिव्य स्वरूप सिंह अर्थात् नृसिंह भगवान् आपके लिये नमस्कार है ॥१४॥

वराहाशेषदुष्टानि सर्वपापफलानि वै।
मर्द मर्द महादंष्ट्र मर्द मर्द च तत्फलम् ॥१५
नारसिंह करालास्य दन्तप्रान्तानलोज्ज्वल।
भञ्ज भञ्ज निनादेन दुष्टान्यस्याऽऽर्तिनाशन ॥१६
ऋग्यजुःसामगर्भाभिर्वाग्भिर्वामनरूपधृक्।
प्रशमं सर्वदुःखानि नयत्वस्य जनार्दनः ॥१७
ऐकाहिकं द्व्याहिकं च तथा त्रिदिवसं ज्वरम्।
चातुर्थिकं तथाऽत्युग्रं तथैव सततं ज्वरम् ॥१८
दोषोत्थं सन्निपातोत्थं तथैवाऽऽगन्तुकं ज्वरम्।
शमं नयाऽऽशु गोविन्द छिन्धि छिन्ध्यस्य वेदनाम् ॥१९

कश्यप ऋषि से समुत्पन्न, अत्यन्त छोटे वामन अंगुलों के शरीर को धारण करने वाले ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद इन वेदत्रयी से सुभूषित इस सम्पूर्ण भूमण्डल का आक्रमण करने वाले वामन के स्वरूप वाले आपके लिए हमारा नमस्कार है और बारम्बार नमस्कार समर्पित है। वराह के अशेष दुष्टों और सब प्रकार के पापों के फलों का मर्दन करो, मर्दन कर दो। हे महान् दंष्ट्रा वाले प्रभो! इनका मर्दन अच्छी तरह से आप कर देवें यह इनका दंष्ट्राओं के द्वारा मर्दन कर देना ही फल है ॥१८॥ हे नारसिंह! हे अत्यन्त कराल (भयानक) मुखाकृति वाले! हे दाँतों के अग्रभाग में अग्नि के तुल्य समुज्ज्वल! आप अपनी घोर गर्जना के द्वारा इन समस्त दुष्टों का भञ्जन कर दो। हे आर्ति (मानव भक्तों की पीड़ा) के नाश कर देने वाले स्वामिन्! आप इन दुष्टों को देखने की कृपा करें। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से भावित पूर्ण वाणियों के द्वारा परम सुशोभित स्वरूप वाले वामन का रूप धारण करने वाले जनार्दन इनके सम्पूर्ण दुःखों का प्रशमन कर देवें। एकाहिक अर्थात् एक दिन का अन्तर देकर आने वाला, दो दिन के अन्तर से पुनः आने वाला, तीन दिन के अन्तर से आने वाला तथा चातुर्थिक (चौथइया) एवं निरन्तर रहने वाला अत्यन्त उग्र (तेज) ज्वर, दोषों से समुत्पन्न और सन्निपात से अर्थात् वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों की विकृति से आने वाला महा भयानक मारक ज्वर तथा आगन्तुक ज्वर इन सभी प्रकार के ज्वरों का हे गोविन्द! शीघ्रातिशीघ्र मर्दन कर देवें और इस ज्वर पीड़ित मानव की वेदना का छेदन कर देवें ॥१९॥

नेत्रदुःखं शिरोदुःखं दुःखं चोदरसम्भवम्।
अनिश्वासमतिश्वासं परितापं सवेपथुम् ॥२०

गुदघ्राणाङ्घ्रिरोगांश्च कुष्ठरोगांस्तथा क्षयम्।
कामलादींस्तथा रोगान्प्रमेहांश्चातिदारुणान् ॥२१

भगन्दरातिसारांश्च मुखरोगांश्च वल्गुलीम्।
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रांश्च रोगानन्यांश्च दारुणान् ॥२२

ये वातप्रभवा रोगा ये च पित्तसमुद्भवाः ।
कफोद्भवाश्च ये केचिद्ये चान्ये सान्निपातिकाः ॥२३

आगन्तुकाश्च ये रोगा लूताविस्फोटकादयः ।
ते सर्वे प्रशमं यान्तु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥२४

विलयं यान्तु ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन च ।
क्षयं गच्छन्तु चाशेषास्ते चक्राभिहता हरेः ॥२५

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥२६

नेत्रों में होने वाली पीडा, सिर में समुत्पन्न वेदना और उदर में होने वाला दुःख श्वासों का न लिया जाना अर्थात् श्वास लेने में अवरोध का होना, अत्यधिक तेजी से श्वास चलना, परिताप (शारीरिक दाह) जिसमें कि कम्पन भी होता है, गुदा, घ्राण और पैरों के रोग, कुष्ठ रोग, क्षयरोग, कामला रोग तथा अत्यन्त दारुण प्रमेह रोग, भगन्दर रोग, अतिसार, मुख में हो जाने वाले रोग, वल्गुली रोग, अश्मरी (पथरी), मूत्रकृच्छ्र तथा इसी प्रकार के अन्य अति दारुण रोग वात (वायु) के कुपित हो जाने वाले रोग जो कि बहुत प्रकार के होते हैं। पित्त के विकृत होने पर समुत्पन्न रोग और कफ के दूषित हो जाने पर उत्पन्न होने वाले रोग जो भी कुछ हो और इन उक्त तीनों दोषों को मिल कर विकार होने से सान्निपातिक रोग, आगन्तुक रोग और लूता एवं विस्फोटक आदि रोग जो भी हैं वे सम्पूर्ण भगवान् के नाम सङ्कीर्तन से प्रशम को प्राप्त हो जावें। वे समस्त व्याधियाँ जो कि मानव को अत्यन्त वेदना उत्पन्न किया करती हैं भगवान् विष्णु के शुभ नाम के उच्चारण से विलय को प्राप्त हो जावें। भगवान् हरि के चक्र (सुदर्शन) से अभिहत होकर वे सम्पूर्ण रोग क्षय को प्राप्त होकर नष्ट हो जावें ॥२५॥ भगवान् अच्युत, अनन्त, गोविन्द के परम शुभ और कल्याणकारी नामों के उच्चारण अर्थात् प्रेम भक्ति के भाव से पुकारने की औषधि से समस्त रोग नष्ट हो जाया करते हैं यह मैं बिलकुल सत्य-सत्य बतलाता हूँ ॥२६॥

स्थावर जङ्गमं वाऽपि कृत्रिमं चापि यद्विषम् ।
दन्तोद्भव नखभवमाकाशप्रभवं विषम् ॥२७
लूतादिप्रभवं यच्च विषमन्यत्तु दुःखदम् ।
शमं नयतु तत्सर्वं वासुदेवस्य कीर्तनम् ॥२८
ग्रहान्प्रेतग्रहाश्चापि तथा वै डाकिनीग्रहान् ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च गन्धर्वान्यक्षराक्षसान् ॥२९
शकुनीपूतनाद्याश्च तथा वैनायकान्ग्रहान् ।
मुखमण्डी वरूराच रेवती वृद्धरेवतीम् ॥३०
वृद्धिकाख्यान्ग्रहाश्चोग्रास्तथा मातृग्रहानपि ।
बालस्य विष्णोश्चरितं हन्तु बालग्रहानिमान् ॥३१
वृद्धाश्च ये ग्रहा केचिद्ये च बालग्रहा क्वचित् ।
नरसिंहस्य ते दृष्ट्या दग्धा ये चापि यौवने ॥३२
सटाकरालवदनो नारसिंहो महाबल ।
ग्रहानशेषान्निःशेषान्करोतु जगतां हितं ।३३

स्थावर अथवा जङ्गम (चलने फिरने वाला) जो कृत्रिम विष होता है, दाँतो से उत्पन्न होने वाला विष, नाखूनों से समुत्पन्न विष, आकाश से प्रभूत विष तथा लूता प्रभृति से समुत्पन्न विष और जो अन्य किसी भी प्रकार का विष है जिससे दुःख की उत्पत्ति होती है वे सभी प्रकार के विष एवम् विषोद्भूत वेदनाये भगवान् वासुदेव का प्रेमपूर्वक, श्रद्धापूर्वक कीर्तन करने से शमन को प्राप्त हो जाया करती हैं। ग्रह प्रेतग्रह (प्रेतो के द्वारा उत्पन्न बाधा) डाकिनी, ग्रह, वेताल, पिशाच, गन्धर्व यक्ष राक्षस शकुनी, पूतना प्रभृति, वैनायक ग्रह, मुखमण्डी, वरूरा, रेवती वृद्ध रेवती, वृद्धिका नाम वाले, मातृग्रह तथा अन्य सारे उग्र ग्रह जो कि बालग्रह होते हैं वे सब बालक को पीडा दिया करते हैं। भगवान् विष्णु का चरित उन सबका नाश कर देवे ॥३१॥ जो कोई भी वृद्ध ग्रह हैं और जो कही भी बालग्रह हो तथा जो भी यौवन मे होने वाले ग्रह हो वे सब भगवान नरसिंह की दृष्टि से ही दग्ध हो जाते हैं ॥३२॥ सटाओ

से विशेष कराल (भयानक) मुखाकृति वाले, महान् बलशाली नरसिंह भगवान् जो समस्त जगत् के हितकारी हैं, समस्त इन उपर्युक्त ग्रहों का निःशेष (सर्वनाश) कर देवें ॥३३॥

नरसिंह महासिंह ज्वालामालोज्ज्वलानन ।
ग्रहानशेषान्सर्वेश खाद खादाग्निलोचन ॥३४
ये रोगा ये महोत्पाता यद्विष ये महाग्रहाः ।
यानि च क्रूरभूतानि ग्रहपीडाश्च दारुणाः ॥३५
शस्त्रक्षतेषु ये दोषा ज्वालागर्दभकादयः ।
तानि सर्वाणि सर्वात्मा परमात्मा जनार्दनः ॥३६
किंचिद्रूपं समास्थाय वासुदेवास्य नाशय ।
क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् । ३७
सर्वदुष्टोपशमनं कुरु देववराच्युत ।
सुदर्शन महाज्वाल च्छिन्धि च्छिन्धि महारव ॥३८
सर्वदुष्टानि रक्षांसि क्षयं यान्तु विभीषण ।
प्राच्यां प्रतीच्यां च दिशि दक्षिणोत्तरतस्तथा ॥३९
रक्षां करोतु सर्वात्मा नरसिंहः स्वगर्जितैः ।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च पृष्ठतः पार्श्वतोऽग्रतः ॥४०
रक्षां करोतु भगवान्बहुरूपी जनार्दनः ।
यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥४१

हे महान् सिंह श्री नृसिंह देव ! हे तेज की ज्वालाओं की मालाओं से परमोज्ज्वल आनन वाले ! हे सबके स्वामिन् ! हे अग्नि के समान नेत्रों वाले ! इन समस्त ग्रहों को आप खा जाइये, भक्षण कर जावें ॥३४॥ जो भी कोई किसी भी तरह का रोग है, जो महान् उत्पात हैं, जो कोई विष हैं, जो य महान् ग्रह हैं, जो भी कुछ कोई क्रूर स्वरूप वाले हैं, जो परम दारुण ग्रहों की पीडायें हैं, शस्त्राघात के द्वारा हो जाने वाले क्षतय में जो ज्वाला, गदभक आदि दोष होते हैं उन सबका भक्तजनों की पीडा का अर्दन करने वाले सबके अन्दर अन्तर्यामी स्वरूप से विराजमान परमात्मा नष्ट कर देवें ॥३६॥ हे वासुदेव ! आप

कुछ भी स्वरूप धारण करके अर्थात् किसी भी रूप में समास्थित होकर इस प्रपीडित मानव के दुःख का नाश कर देवे । तेज की परम तीक्ष्ण ज्वालाओं की माला से अत्यन्त भीषण अपने सुदर्शन चक्र का उत्क्षेपण करके इन सबका नितान्त नाश कर देवे । हे देवगण में परमोत्तम भगवान् अच्युत देव ! आप समस्त दुष्टों का उपशमन कर देवे । हे भगवान् के परम श्रेष्ठ आयुध सुदर्शन ! आपकी बड़ी महान् ज्वालायें हैं। हे महान् रव करने वाले ! इन सबका आप छेदन भली भाँति कर देवे ॥३८॥ हे विभीषण अर्थात् विशेष रूप से भय देने वाले ! समस्त दुष्ट लोग और राक्षसगण क्षय को प्राप्त होवे । पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओं में नरसिंह भगवान् जो कि सबकी आत्मा है अपनी गजनाओं के द्वारा सबकी रक्षा करें। देवलोक, भूमण्डल, अन्तरिक्ष, पृष्ठ भाग, पार्श्व भाग और अग्र भाग मे बहुत से स्वरूपों के धारण करने वाले जनार्दन भगवान् सबकी रक्षा करें जिस प्रकार से भगवान् विष्णु देव, असुर और मनुष्यों के सहित सम्पूर्ण जगत् की रक्षा किया करते हैं ॥४१॥

तेन सत्येन दुष्टानि सममस्य व्रजन्तु वै ।
यथा विष्णौ स्मृते सद्यः सक्षय यान्ति पातका ॥४२
सत्यन तेन सकल दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ।
यथा यज्ञेश्वरो विष्णुर्देवेष्वपि हि गीयत ॥४३
सत्येन तेन सकल यन्मयोक्त तथाऽस्तु तद् ।
शान्तिरस्तु शिव चास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ॥४४
वासुदेवशरीरोत्थै कुशनिर्णाशित मया ।
अपमार्जति गोविन्दो नरो नारायणस्तथा ॥४५
तथाऽस्तु सर्वदुःखाना प्रशमो वचनाद्धरे ।
अपमार्जनक शस्त सर्वरोगादिवारणम् ॥४६
अह हरि कुशा विष्णुर्हता रोगा मया तव ॥४७

उस सत्य से दुष्ट लोग इसकी क्षमता को प्राप्त होवे जिस प्रकार से भगवान् विष्णुदेव का स्मरण करने पर समस्त पातकों का समूह शीघ्र ही

ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं। उस सत्य से इस मानव के समस्त दोष (दुष्) प्रशमित हो जावें जिस तरह से यज्ञों के ईश्वर भगवान् विष्णु देवगणों में भी गात किये जाया करते हैं ॥४३॥ उस सत्य से वह सम्पूर्ण जो मैंने कहा है उसी प्रकार का हो जावे। सर्वत्र शान्ति हो जावे—शुभ हो और इसके दोष प्रशान्त हो जावें। मैंने भगवान् वासुदेव के शरीर से समुत्थित कुशाओं से निर्णाशित कर दिया है। गोविन्द नर तथा नारायण अप मार्जन करते हैं। ॥४४॥ भगवान् श्री हरि के वचन से समस्त प्रकार के दुःखों का उसी भाँति प्रशम हो जावे। अपमार्जन सभी रोगों आदि का निवारण करने वाला शस्त्र है। मैं हरि हूँ, कृष्ण विष्णु है, मैंने तर सभी रोगों का हनन कर दिया है। ॥४५॥

१३६—निर्वाणदीक्षासिद्ध्यर्थानां संस्काराणां वर्णनम्

निर्वाणादिषु दीक्षासु चत्वारिंशत्तथाऽष्ट च ।
संस्कारान्कारयेद्धीमाञ्छृणु तान्यैः सुरो भवेत् ॥१
गर्भाधानं तु योन्यां वै ततः पुंसवनं चरेत् ।
सीमन्तोन्नयनं चैव जातकर्म च नाम च ॥२
अन्नाशनं ततश्चूडा ब्रह्मचर्यं व्रतानि च ।
चत्वारि वैष्णवी पार्थी भौतिकी श्रौतिकी तथा ॥३
गोदानं स्नातकत्वं च पाकयज्ञाश्च सप्त ते ।
अष्टका पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रायणीति च ॥४
चैत्री चाऽऽश्वयुजी सप्त हविर्यज्ञांश्च ताञ्छृणु ।
आधानं चाग्निहोत्रं च दर्शो वै पौर्णमासकः ॥५
चातुर्मास्यं पशुबन्धः सौत्रामणिरथापरः ।
सोमसंस्थाः सप्त शृणु अग्निष्टोमः क्रतूत्तमः ॥६

अब इस अध्याय में निर्वाण की दीक्षा-सिद्धि करने वाले संस्कारों का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—निर्वाण आदि दीक्षाओं में अड़तालीस संस्कारों को कराना चाहिए। यह एक धीमान् पुरुष का कर्त्तव्य

होना है। अब उन गंस्कारो के विषय मे श्रवण करो। इनके कराने से ऐसा इनका प्रभाव होता है कि मनुष्य देव के तुल्य हो जाता है ॥१॥ सब प्रथम सस्कार योनि में गर्भ का आधान करना होता है। इसके अनन्तर फिर द्वितीय सस्कार 'पु सवन' नाम वाला करना चाहिए। इसके पश्चात् 'सीमन्तोन्नयन' नामक सस्कार होता है। फिर चौथा सस्कार जातकर्म' नाम वाला है जिस समय मे बालक उत्पन्न होता है उसी समय का यह सस्कार है। इसके बाद 'नामकरण'—सस्कार होना है ॥२॥ जब शिशु छै मास का होता है उसे पायस आदि अन्न खिलाने का आरम्भ किया जाता है। इसी सस्कार का नाम 'अन्न-प्राशन' है। इस सस्कार के अनन्तर चूडाकर्म सस्कार होता है जिसमे शिशु के केशो का मुण्डन किया जाता है। इसके उपरान्त ब्रह्मचर्य और उसके समस्त व्रतो का नियम धारण करने वाला सस्कार होना है। वैष्णवी, पार्थी भौमिकी तथा श्रौतिकी ये चार होते हैं। गोदान स्नातकत्व और ये पाक यज्ञ सात होते हैं। अष्टका पार्वण श्राद्ध श्रावणी और आग्रायणी ये होते हैं ॥४॥ चैत्री और आश्वयुजी हैं। सात हविर्यज्ञ होते हैं। अब उनके विषय मे श्रवण करो। आधान, अग्निहोत्र दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुबन्धन और एक सौत्रामणि ये सात उनके नाम हैं। अब सोमसस्थ सात होते हैं उनके नामो का श्रवण करो। अग्निष्टोम क्रतूत्तम होता है ॥६॥

अत्यग्निष्टोम उक्थश्च षोडशी वाजपेयक ।
अतिरात्राऽप्तोर्यामश्च सहस्र शा सवा इमे ॥७
हिरण्याङ्घ्रिर्हिरण्याक्षो हिरण्यमित्र इत्यत ।
हिरण्यपाणिर्हेमाक्षो हेमाङ्गो हेमसूत्रक ॥८
हिरण्यास्यो हिरण्याङ्गो हेमजिह्वो हिरण्यवान् ।
अश्वमेधो हि सर्वेशा गुणाश्चाष्टाथ ताञ्छृणु ॥९
दया च सर्वभूतेषु क्षान्तिश्चैव तथाऽऽर्जवम् ।
शौच चैवमनायासो मङ्गल चापरो गुण ॥१०
अकार्पण्य चास्पृहा च, मूलेन जुहुयाच्छतम् ।
सौरशाक्तेयविष्णवीशदीक्षास्वेत समा स्मृता ॥११

संस्कारं संस्कृतश्चैतं भुक्तिमुक्तिवाप्नुयात् ।
सर्वरोगादिनिर्मुक्तो देववद्वर्तते नरः ॥१२
जप्याद्धोमात्पूजनाच्च ध्यानाद्देवस्य चेष्टभाक् ॥१३

अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेयक, अतिरात्र, आप्त और याम ये इनके नाम हैं। ये सब सहस्रेश होते हैं। हिरण्याङ्घ्रि, हिरण्याक्ष, हिरण्यमित्र हिरण्यपाणि, हेमाक्ष, हेमाङ्ग, हेमसूत्रक, हिरण्यास्य, हिरण्याङ्ग हेम जिह्व और हिरण्यवान् ये नाम हैं किन्तु इन सब में अश्वमेध सबका ईश होता है। आठ गुण होते हैं उनके विषय में अब श्रवण करो। समस्त प्राणियों पर दया का भाव रखना, क्षान्ति अर्थात् क्षमाशीलता (दूसरों के अपराधों को क्षमा कर देना), आर्जव अर्थात् सरल एवं सीधा कपट रहित भाव रखना, शौच अर्थात् मन, कर्म और वचनों में सब भाँति से शुद्धता का भाव रखना, अनायास अर्थात् अत्यधिक श्रान्तिजनक श्रम का न करना, मङ्गल, (सब प्रकार से कल्याणकारी भद्र भावना), अकार्पण्य अर्थात् उचित एवं उपयुक्त अवसर पर कंजूसी का भाव न रखना, अस्पृहा अर्थात् यथालाभ से संतुष्टि कर किसी भी विशेष एवं अधिक द्रव्य वस्तु और पद आदि के पाने की इच्छा का अभाव रखना। मूल मन्त्र के द्वारा सौ आहूतियाँ देनी चाहिए। दीक्षा कितनी ही प्रकार की होती हैं किन्तु ये उपर्युक्त विधि-विधान सभी में समान ही होता है चाहे वह दीक्षा सौर, शाक्तेय, विष्णु और ईश की इनमें कोई भी होवे। इन उक्त संस्कारों से संस्कृत होने वाला पुरुष इनके प्रभाव से लौकिक सुख-सामग्री का भोग तथा परलोक प्रवास के अवसर में संसार में बारम्बार जन्म-मरण के बन्धन स्वरूप से मोक्ष दोनों की ही प्राप्ति कर लिया करता है। सब प्रकार के रोगों से छुटकारा पाकर मनुष्य देवता की भाँति वृद्धिशील हो जाता है। मूल मन्त्र का जाप, मन्त्र के ही द्वारा होम देव अर्थात् अपने इष्टदेव का यजनार्चन तथा उपास्य एवं आराध्य देव का चाहे उक्त देवों में से कोई भी एक हो, निरन्तर ध्यान के करने से मनुष्य स्वाभीष्ट वस्तु की प्राप्ति करने वाला हो जाता है ॥१३॥

१४०—पवित्रकारोपणविधिकथनम्

पवित्रारोपणं वक्ष्ये वर्षपूजाफलं हरे. ।
आषाढादौ कार्तिकान्ते प्रतिपत्त्यज्यते तिथि. ॥१
श्रिया गौर्या गणेशस्य सरस्वत्या गुहस्य च ।
मार्तण्डमातृदुर्गाणा नागविट्हरिमन्मथं ॥२
शिवस्य ब्रह्मणस्तद्वद्द्वितीयादितिथिक्रमात ।
यस्य देवस्य यो भक्त पवित्रा तस्य सा तिथिः ॥३
आरोहणे तुल्यविधि पृथङ् मन्त्रादिक यदि ।
सौवर्णं राजत ताम्र नेत्रकार्पासिकादिकम् ॥४
ब्राह्मण्या कातित सूत्र तदलाभे तु सस्कृतम् ।
द्विगुण त्रिगुणीकृत्य तेन कुर्यात्पवित्रकम् ॥५
अष्टोत्तरशतादूर्ध्वं तदर्धं चोत्तमादिकम् ।
क्रियालोपविघातार्थं यत्त्वयाऽभिहित प्रभो ॥६
मया तत्क्रियते देव यथा यत्र पवित्रकम् ।
अविघ्न तु भवेदेतत्कुरु नाथ तथाऽव्यय ॥७

इस अध्याय मे पवित्रकारोपण की विधि के विषय मे बताया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—अब हम पवित्रारोपण को बतलाते हैं जो कि हरि भगवान् की वर्ष पूजा का फल होता है। आषाढ मास के आदि मे और कात्तिक मास के अन्त मे प्रतिपदा तिथि का त्याग कर दिया जाता है ॥१॥ श्री, गौरी, गणेश, सरस्वती, गुह, मार्त्तण्ड, मातृदुर्गा नागपि हरि और मन्मथ शिव तथा ब्रह्मा के पवित्रारोपण की द्वितीया प्रभृति उसी की भाँति तिथियो का क्रम होता है। जिस देवता का जो उपासक भक्त होता है उसकी वह तिथि ही पवित्र हुआ करती है ॥२॥३॥ समस्त उपर्युक्त देवो के आरोहण मे समान ही विधि-विधान होता है। यद्यपि मन्त्रादिक सब देवो के पृथक् पृथक् हुआ करते हैं। आदि से ध्यान एव अर्चन ये चारो का भेद भी सम्मिलित है। सौवर्ण अर्थात् सुवर्ण से निर्मित किया गया—राजत अर्थात् रजत (चाँदी) से रचित ताम्र, नेत्र और कपास से निर्मित पवित्रा होता है ॥४॥ कपास की रुई से किसी ब्राह्मणी के द्वारा सूत कता हुआ होना चाहिए। यदि ऐसा सम्भव न

हो सके तो उसकी अप्राप्ति में सस्कार किया हुआ होना चाहिए। उस सूत्र को दुगुना तथा तिगुना करके उससे पवित्रा की रचना करनी चाहिए। अष्टोत्तर पान अर्थात् एक सौ आठ से ऊपर उसका अर्धभाग उत्तम आदि कहे गये हैं। अर्थात् एक सौ आठ से ऊपर उत्तम और उसका अर्धभाग मध्यम तथा इससे भी कम अधम श्रेणी का पवित्रा होता है। फिर प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना इस प्रकार से करे—हे प्रभो ! क्रिया के लाभ के विधान करने के लिये आपने जो भी कहा है मैंने वैसा ही किया है अर्थात् उसी भाँति किया जाता है। हे देव ! जैसा भी जहाँ पवित्रक है। हे नाथ ! आप तो अव्यय पुरुष है ऐसी कृपा कीजिए कि यह कृत्य विघ्न रहित होता हुआ सम्पन्न हो जावे ॥७॥

प्रार्थ्य तन्मण्डलादौ तु गायत्र्या बन्धयेत्तर ।
ॐ नमो नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि ॥८
तन्नो विष्णु प्रचोदयात् ।
एपा प्रयोज्या सर्वत्र देवनामानुरूपत ॥६
जानूरुनाभिपादान्त प्रतिमासु पवित्रकम् ।
पादान्ता वनमाला स्यादष्टोत्तरसहस्रत ॥१०
माला तु कल्पसाध्या वा द्विगुणा पोडशागुलात् ।
कर्णिकाकेसरं पत्रं मन्त्राद्य मण्डलान्तकम् ॥११
मडलागुलमात्रं कचकाङ्गादौ पवित्रकम् ।
स्थण्डिलेऽङ्गुलमानेन आत्मन सप्तविंशति ॥१२
आचार्याणा च सूत्राणि पितृमात्रादिकं स्वकं ।
नाभ्यन्त द्वादशग्रन्थि तथा गन्धपवित्रके ॥१३
अ गुलात्कल्पनादौ द्विर्माला चाष्टोत्तर शतम् ।
अथवार्कचतुर्विंशषट्त्रिंशन्मालिका द्विज ॥१४

इस प्रकार से उस देव के मण्डल आदि में प्रार्थना करके मनुष्य को गायत्री मन्त्र से उसका बन्धन करना चाहिए। वह गायत्री मन्त्र निम्न प्रकार का है—"ॐ नमो नारायणाय विद्म हे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णु प्रचो-

दयात्" । यह गायत्री देवो के अनुरूप सर्वत्र प्रयुक्त करनी चाहिए अर्थात् जो भी देवता हो उसी उसी का नाम उक्त प्रकार की गायत्री मे बोलना चाहिए ।।८।। ।।६।। देवता भी जो भी प्रतिमा हो चाहे वह किसी भी उक्त उपास्य देवो मे कोई एक हो उस प्रतिमा मे जानु ऊरु, नाभि और चरणो के अन्त तक पवित्रा का आरोहण कराना चाहिए। पादान्त अर्थात् चरणो के अन्त तक रहने वाली वनमाला होनी चाहिए। अब अष्टोत्तर सहस्र से माला हो अथवा स्वल्प संख्या होवे जो कि षोडश अंगुल स दुगनी होनी चाहिए। कर्णिका, केसर और पत्रो से मन्त्र से आदि लेकर मण्डल के अन्त तक परिमाण करे। मण्डलागुल मात्र एव चक्राब्जादि मे पवित्रा होता चाहिए। अपने सत्ताईस अंगुल के मान से स्थण्डिल मे पवित्रा करे।।२।। आचार्यों के सूत्रक अपने माता पिता के सहित नाभि के अन्त तक बारह ग्रन्थियो वाले रक्खे। तथा गन्ध पवित्रा मे करे।१३। अंगुल से कनर।त आदि म अष्टोत्तरशत की दो मालाएँ रक्खे। अथवा हे द्विज! अर्क चतुर्विंश षटत्रिंशत् मालाएँ करे।।१४।।

अनामामध्यमागुष्टैर्मन्दाद्यैर्मालिकार्थिभि ।
कनिष्ठादौ द्वादश वा ग्रन्थय स्यु पवित्रके ।।१५
रवे कुम्भहुताशादे सभवे विष्णुवन्मतम् ।
पीठस्य पीठमान स्यान्मेखलान्त च कुण्डके ।।१६
यथाशक्ति सूत्रग्रन्थि परिचारेऽथ वंष्णवे ।
सूत्राणि वा सप्तदश सूत्रेण त्रिविभक्तके ।।१७
रोचनागरुकर्पूरहरिद्राकुकुमादिभिः ।
रञ्जयेच्चन्दनाद्यैर्वा स्नानसन्ध्यादिकृन्नर ।।१८
एकादश्या यागगृहे भगवन्त हरि यजेत् ।
समस्तपरिवाराय वलि दद्यात्समर्चयेत् ।।१६
क्षौं क्षेत्रपालाय द्वारान्ते द्वारोपरि तथा श्रियम् ।
धात्रे दक्षविधात्रे च गङ्गा च यमुना तथा ।।२०
शङ्खपद्मनिधी पूज्य मध्ये वस्त्रप्रसारणम् ।
सारङ्गायेति भूताना भूतशुद्धि स्थितश्चरेत् ।।२१

अनामिका, मध्यमा, अगुष्ठ और कालिकार्धो मन्दाशों से कनिष्ठादि में पवित्रा में द्वादश ग्रन्थियाँ होनी चाहिए ॥१५॥ रवि कुम्भ हुताशादि के सम्भव में विष्णु के समान ही माना गया है। पीठ का पीठ के मान के बराबर ही रहे और कुण्ड मे मेखला के अन्त तक होवे ॥१६॥ वैष्णव परिवार से सूत्र की ग्रन्थि शक्ति के अनुसार ही होनी चाहिए। अथवा तीन बार विभक्त किये हुए सूत्र मे सहस्र सूत्र होवें ॥१७॥ स्नान और सन्ध्योपासन आदि करने वाले उपासक मानव को चाहिए कि वह उसे रोचना, अगरु, कर्पूर, हरिद्रा (हल्दी) और कुंकुम आदि परम रञ्जक एव अति सुगन्धित द्रव्यो स अथवा चन्दनादि के द्वारा उन पवित्राओ को सुगन्धित समर्पित एव रञ्जित बनावे ॥१८॥ योग होने वाले गृह मे एकदशी तिथि के दिन भगवान् हरि का यजनार्चन करना चाहिए। उनके समस्त अङ्गोपाङ्गादि परिवार के लिये बलि देवे और भली-भाँति अर्चना करे ।१९। *'क्षौं क्षेत्रपालाय'* इस मन्त्र से द्वार के अन्त मे क्षेत्रपाल को बलि देवे तथा द्वार के ऊपर श्री को बलि समर्पित करनी चाहिए। धाता—दक्ष विधाता के लिये बलि अर्पित करे। एव परम पावनी गङ्गा तथा यमुना को भी बलि देवे ।२०। शङ्ख पद्मनिधि का पूजन करके मध्य मे वस्त्र का प्रसारण 'मारङ्गाय' इसके द्वारा करे। फिर वहाँ पर ही स्थित होकर समस्त भूतो की भूत-सिद्धि करनी चाहिए ॥२१॥

ॐ हू रू ह फट् हू रू गन्धतन्मात्र सहरामि नम ।
ॐ हू रू ह फट् हू रू रसतन्मात्र सहरामि नम ॥२२
ॐ हू रू ह फट् हू रू रूपतन्मात्र सहरामि नम ।
ॐ हू रू ह फट् हू रू स्पर्शतन्मात्र सहरामि नम ॥२३
ॐ हू रू ह फट् हू रू शब्दतन्मात्र सहरामि नम ।
पश्चोद्घातैर्गन्धतन्मात्रस्वरूप भूमिमण्डलम् ॥२४
चतुरस्र च पीठ च काञ्चन वज्रलाञ्छितम् ।
इन्द्रादिदैवत पादपुष्पप्रपन्नत स्मरेत् ॥२५
शुद्ध च रसतन्मात्र प्रविलाप्यथ सहरेत् ।
रसमात्र रूपमात्रे क्रमेणानेन पूजक ॥२६

ॐ हरु ह फट् हरु रसतन्मात्र संहरामि नम ।
ॐ हरु ह फट् हरु रूपतन्मात्र संहरामि नम ॥२७
ॐ हू ह फट् हू स्पर्शतन्मात्र संहरामि नम ।
ॐ हू हं फट् हू शब्दतन्मात्र संहरामि नम ॥२८
जानुनाभिमध्यगत श्वेत वै पद्मलाञ्छितम् ।
शुक्लवर्णा चार्धचन्द्र ध्यायेद्वरुणदैवतम् ॥२९
चतुर्भिश्च तदुद्घातै शुद्ध तद्रसमात्रकम् ।
संहृद्रसतन्मात्र रूपमात्र च योजयेत् ॥३०

भूत शुद्धि करने के निम्न मन्त्रों का स्वरूप बतलाया जाता है—"ॐ हू ह फट् हू रस तन्मात्र संहरामि नम"—"ॐ हू ह गन्ध तन्मात्र संहरामि नम"—"ॐ हू ह फट् हू रूप तन्मात्र संहरामि नम"—"ॐ हू ह फट् हू शब्द संहरामि नम"—"ॐ हू ह फट् हू स्पर्श तन्मात्र संहरामि नम"—"ओ हू ह फट् हू स्पर्श तन्मात्र संहरामि नम"—ये गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द तन्मात्राओं की भूत, शुद्धि के मन्त्र दिये गये हैं। इन्हीं के द्वारा भूतों की शुद्धि करे। फिर पञ्चोद्घातों से गन्धतन्मात्रा के स्वरूप वाले इस भूमि मण्डल का तथा चतुरस्र (चौकोर) पीठ का जो काञ्चन एवं वज्र से लाञ्छित है एवं इन्द्र आदि देवगण की पादयुग्म के मध्यगत स्मरण करना चाहिए ॥३५॥ शुद्ध किये हुए रस तन्मात्र का प्रविलापन संहार कर। पूजा करने वाले उपासक को इसी क्रम में रस तन्मात्र को रूप तन्मात्र में संहृत करना चाहिए। इनके संहार करने के वे ही पूर्वोक्त मन्त्र हैं जिनका निर्देश मूल ग्रन्थ में यहाँ पर पुन किया गया है। द्विरावृत्ति न होने के लिए उनका उल्लेख नहीं किया जाता है ॥२८॥ जानु (घुटना) और नाभि के मध्य में गत श्वेत वर्ण से युक्त एवं पद्म से लाञ्छित तथा शुक्लवर्ण वाले अर्ध चन्द्र का और वरुण का ध्यान करना चाहिए। इस तरह से उन चार उद्घातों के द्वारा शुद्ध किये हुए रस तन्मात्रा का संहार करे और रस तन्मात्रा में योजित करना चाहिए ॥३०॥

ॐ हरु ह फट् हरु रूपतन्मात्र संहरामि नम ।
ॐ हरु ह फट् हरु स्पर्शतन्मात्र संहरामि नम ॥३१

ॐ हूं रूं हः फट् हूं रूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ।
इति त्रिभिस्तदुद्घातैस्त्रिकोणं वह्निमण्डलम् ॥३२
नाभिकण्ठमध्यगतं रक्तं स्वस्तिकलाञ्छितम् ।
ध्यात्वाऽनलाधिदैवं तच्छुद्धं स्पर्शे लयं नयेत् ॥३३
ॐ हूं रूं हः फट् हूं रूं स्पर्शतन्मात्रं संहरामि नमः ।
ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ॥३४
कण्ठनासामध्यगतं वृत्तं वै वायुमण्डलम् ।
द्विरुद्घातैर्धूम्रवर्णं ध्यायेच्छुद्धेन्दुलाञ्छितम् ॥३५
स्पर्शमात्रं शब्दमात्रैः संहरेद्ध्यानयोगतः ।
ॐ हूं हः फट् हूं शब्दतन्मात्रं संहरामि नमः ॥३६
एकोद्घातेन चाऽऽकाशं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
नासापुटशिखान्तस्थमाकाशमुपसंहरेत् ॥३७
शोषणाद्यं देहशुद्धिं कुर्यादेवं क्रमात्ततः ।
शुष्कं कलेवरं ध्यायेत्पादाद्यं च शिखान्तकम् ॥३८

"ॐ हूं हः फट् हूं रूप तन्मात्र" इत्यादि पूर्वोदित मन्त्र से लेकर "ॐ हूं हः फट् हूं शब्द तन्मात्र"—इत्यादि को जो कि नाभि-कण्ठ के मध्यगत है, रक्त एवं स्वस्तिक के चिह्न से समन्वित है उस अनल के अधिदेव का ध्यान करके उस शुद्ध स्वरूप वाले का स्पर्श मे लीन करना चाहिए । फिर उक्त दो मन्त्रों के द्वारा जिनका कि मूल ग्रन्थ मे उल्लेख किया गया है यथा—ॐ हूं हः फट् हूं तन्मात्र संहरामि नम" तथा "ॐ हूं हः फट् हूं, शब्द तन्मात्र संहरामि नम" । इनसे कण्ठ और नासा के मध्य मे संस्थित वृत्त स्वरूप वायु मण्डल का दो उद्घातों से धूम्र वर्ण मे संयुत एवं शुद्ध इन्दु से लाञ्छित का ध्यान करना चाहिए ॥३५॥ स्पर्श तन्मात्रा को शब्द तन्मात्रा के द्वारा ध्यान के योग से संहार करना चाहिए । इसके संहार करने का मन्त्र यह है जिसको उच्चारित करते हुए संहार करे—"ॐ हूं हः फट् हूं शब्द तन्मात्र संहरामि नमः" ॥३६॥ एकोद्घात से शुद्धि स्फटिक मणि के तुल्य आकाश का, जो कि नासापुट का शिखा के अन्तस्थ है, उपसंहार करना चाहिए । ३७॥

इस प्रकार से इसके अनन्तर क्रम से शोषण आदि के द्वारा देह की शुद्धि करे। शुष्क कलेवर (देह) का पादाद्य (पाद से आरम्भ करके) शिखा के अन्त तक अर्थात् चोटी पर्यन्त ध्यान करना चाहिए। ध्यान का क्रम सर्वदा चरण से आरम्भ करके शिर की शिखा तक ही हुआ करता है ॥३८॥

य बीजेन व बीजेन ज्वालामालासमायुतम्।
देह रमित्यनेनैव ब्रह्मरन्ध्राद्विनिर्गतम् ॥३९
बिन्दु ध्यात्वा चामृतस्य तेन भस्मकलेवरम्।
स प्लावयेल्लमित्यस्माद् ह स पाद्य दिव्यकम् ॥४०
न्यास कृत्वा करे देहे मानस यागमाचरेत्।
विष्णु साङ्ग हृदि पद्मे मानस कुसुमादिभि ॥४१
मूलमन्त्रेण देवेश प्रार्चयेद्भुक्तिमुक्तिदम्।
स्वागत देव देवेश सन्निधो भव केशव ॥४१
गृहाण मानसी पूजा यथार्थं परिभाविताम्।
आधारशक्ति कूर्मोऽथ पूज्योऽनन्तो मही तत ।४३
मध्येऽग्न्यादी च धर्माद्या अधर्माद्याश्च मुख्यगा।
सत्त्वादिमध्ये पद्म च मायाविद्याख्यतत्त्वके ॥४४
कालतत्त्व सूर्यादिमण्डल पक्षिराजक।
मध्ये ततश्च वायव्यादीशान्ता गुरुपङ्क्तिका ॥४५

'य' बीज से 'व' इस बीज के ज्वालाओं की माला से समायुत देह को 'र' इसी बीज से ब्रह्मरन्ध्र से विनिर्गत बिन्दु का ध्यान करे और अमृत का उससे भस्म कलेवर को सम्प्लावित करना चाहिए। फिर 'ल' इस बीज से देह को दिव्य सम्पादित करके कर में तथा देह में न्यास करे अर्थात् करन्यास और अङ्गन्यास करे फिर मानस याग करे। हृदय कमल में अङ्गों से समन्वित भगवान् विष्णु को मानस कुसुम आदि के द्वारा मूलमन्त्र से भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाले देवेशेश्वर का समर्चन करे। इस अर्चना के पश्चात् उनसे प्रार्थना करे—हे देवों के भी देवेश ! हे केशव ! आप मेरी सन्निधि में विराज

मान हो ॥४२॥ यथार्थ परिभावित की हुई मेरी इस पूजा को जो कि मानसी की गई है आप कृपा करके स्वीकार कीजिए। भूमि के आधार पर शक्ति स्वरूप जो कूर्म है उसका और अनन्त देव की एवं मही की अर्चना करे ॥४३॥ मध्य में अग्नि और आदि मे धर्मादि तथा मुख्यत अधर्मादि का यजन करे। सत्वादि के मध्य मे जो माया, विद्या नामक तत्व मे पद्म का पूजन करे। काल तत्व, सूर्यादि मण्डल और पक्षिराज का यजन करना चाहिए। फिर इसके अनन्तर मध्य मे वायु आदि ईशान्त गुरु पक्ति का यजन करे ॥४५॥

गण सरस्वती पूज्या नारदो नलकूवर ।
गुरुर्गुरो पादुका च परो गुरुश्च पादुका ॥४६
पूर्वसिद्धा परसिद्धा केसरेषु च शक्तय ।
लक्ष्मी सरस्वती प्रीति कीर्ति शान्तिश्च कान्तिका ॥४७
पुष्टिस्तुष्टिमहेन्द्राद्या मध्ये चाऽऽवाहितो हरि ।
धृति श्रीरतिकान्त्याद्या मूलेन स्थाप्यतऽच्युत. ॥४८
ॐ अभिमुखो भवेति प्रार्थ्य प्राच्या सन्निहिता भव ।
विन्यस्यार्घ्यादिक दत्वा गन्धार्घ्यं मूलतो यजेत् ॥४९
ॐ भीषय भीषय हृच्छिरस्त्रासय वं नम ।
मर्दय मर्दय शिखामन्यादौ क्रमतोऽष्टकम् ॥५०
रक्ष रक्ष प्रध्व सय प्रध्वसय कवचाय नम ।
हू फट् अस्त्राय नमो मूलबीजेन चाङ्गजम् ॥५१

गण, सरस्वती देवी, देवर्षि नारद, नल-कूवर, गुरुदव, गुरुचरण की पादुका का यजन करना चाहिए। गुरु परम तत्व हैं तथा गुरुदेव की पादुका ही सर्वोपरि तत्व होता है। केसरों से पूर्व सिद्ध तथा पर सिद्ध शक्तियाँ हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, प्रीति कीर्ति, शान्ति, कान्तिका, पुष्टि तुष्टि और महेन्द्राद्य हैं और मध्य में भगवान् श्री हरि आवाहित होते हैं। धृति, श्री रति, कान्ति आदि भी होती हैं। मूल मन्त्र के द्वारा भगवान् अच्युत की स्थापना की जाती है ॥४८॥ स्थापना करने के पश्चात् प्रार्थना करे कि 'ॐ अभिमुखो भव" अर्थात्

आप हमारे सामने आइये तथा प्राची (पूर्व दिशा) मे सन्निहित होने का अनुग्रह करें । इस तरह से विन्यास करके अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय आदि सब समर्पित करके जो कि मूलमन्त्र के द्वारा ही करना चाहिए फिर गन्धाक्षत पुष्प, दीप, नैवेद्य आदि के द्वारा मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए यजन करना चाहिए ।।४६।। मन्त्र ये होते हैं—"ॐ भीषय भीषय हुच्छिद्र त्रासय वं नमः मर्दय मर्दय" । फिर अग्नि आदि मे क्रम से अस्त्र का करे । "ॐ रक्ष रक्ष प्रध्वसय प्रध्वासय ववधाय नम हूं फट् अस्त्राय नम" यह अस्त्र का मन्त्र है । मूल बीज से अङ्गो का यजन करना चाहिए ।।५१।।

पूर्वदक्षाप्यसौम्येषु मूर्त्यावरणमर्चयेत् ।
वासुदेव सकर्पण प्रद्युम्नश्चानिरुद्धक ।।५२
अग्न्यादौ श्रीरतिधृतिकान्तयो मूर्तयो हरे ।
शङ्ख चक्र गदा पद्ममग्न्यादौ पूर्वकादिकम् ।।५३
शार्ङ्ग च मुसल खड्ग वनमाला च तद्बहि ।
इन्द्राद्याश्च तथाऽनन्त नैर्ऋत्या वरुण तत ।।५४
ब्रह्मेन्द्रेशानयोर्मध्ये अस्त्रावरणक बहि ।
ऐरावतस्ततश्छागा महिषोऽथ नगेश्वर ।।५५
मृग शशोऽथ वृषभ कूर्मो हसस्ततो बहि ।
पृश्निगर्भ कुमुदाद्या द्वारपाला द्वय द्वयम् ।।५६
पूर्वाद्युत्तरद्वारान्त हरि नत्वा बलि बहि ।
विष्णुपार्षदेभ्यो नमो बलिपीठे बलि ददेत् ।।५७

इनके उपरान्त पूर्व, दक्षिण, आप्य और सौम्य दिशाओ मे मूर्ति के आवरणों की अर्चना करे जो वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध होते है ।।५२।। अग्नि आदि मे श्री, रति, धृति और कान्ति य श्री हरि की मूर्तियाँ हैं इनका यजन करना चाहिए । शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म इन भगवान् के नित्यायुधो का पूर्वादि दिशाओ मे अग्नि आदि मे अर्चन करे । इनके बाहिर शार्ङ्ग धनुष, मुसल, खड्ग और वनमाला का यजन करे । इन्द्र आदि दिशा

मे उसी प्रकार से अनन्त का एवं इसके पश्चात् नैऋर्त्य दिशा मे वरुण का अर्चन करे। इन्द्र और ईशान के मध्य मे ब्रह्मा का तथा उसके बाहिर अस्त्रों के आवरण का यजन करना चाहिए। ऐरावत, छाग, महिष और नरेश्वर, मृग, शश, वृषभ, कूर्म और हय इनकी अर्चना करे। इसके अनन्तर पुष्पगर्भ तथा कुमुद आदि दो-दो द्वारपालों का यजन करे ॥५६॥ पूर्व मे आदि से लेकर उत्तर द्वार के अन्त तक हरि को नमस्कार करके बाहिर बलि देवे। "विष्णु पार्षदेभ्यो नम" अर्थात् भगवान् विष्णु के पार्षदों के लिये नमस्कार है। इस उक्त मन्त्र से बलिपीठ मे बलि देनी चाहिए ॥५७॥

विश्वाय विश्वक्सेनात्मने ईशानके यजेत् ।
देवस्य दक्षिणे हस्ते रक्षासूत्रं च बन्धयेत् ॥५८
सवत्सरकृतार्चायाः सम्पूर्णफलदायिने ।
पवित्रारोहणायेद कौतुक धारय ॐ नम ॥५६
उपवासादिनियम कुर्याद्दे देव स निधौ ।
उपवासेन नियतो देवं सन्तोपयाम्यहम् ॥६०
कामक्रोधादयः सर्वे मा मे तिष्ठन्तु सर्वथा ।
अद्यप्रभृति देवेश यावद्वै शेषिक दिनम् ॥६१
यजमानो ह्यशक्तश्च त्कुर्यान्नक्तादिक व्रती ।
हुत्वा विसर्जयेत्स्तुत्वा श्रीकर नित्यपूजनम् ॥६२
ॐ ह्री श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नम ॥६३

ईशान दिशा मे विश्वक्सेन स्वरूप विश्व के अर्थ यजन करना चाहिए। फिर देव के दक्षिण हस्त मे रक्षा सूत्र का बन्धन करे ॥५८॥ रक्षा सूत्र के बन्धन करने का मन्त्र यह है जिसका बन्धन करने के समय मे उच्चारण करना चाहिए—"सुंवत्सर कृतार्चाया सम्पूर्ण फल दायिने। पवित्रारोहणायेदं कौतुक धारय ॐ नम": अर्थात् संवत्सर की की हुई अर्चना के समस्त फल के प्रदान करने वाले पवित्रारोहण के लिए हे भगवन्! इस कौतुक को आप धारण कीजिए, आपको नमस्कार है ॥५६॥ इसके अनन्तर अपने उपास्य देवता को

सन्निधि मे उपवास आदि के नियम को धारण करे और यह कहे कि मैं उपवास आदि के नियम मे नियत होकर अपने उपास्य देव को सन्तुष्ट करता हूँ ॥६०॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य य छः मन मे ही निवास करने वाले सब शत्रु मेरे अन्दर न रहें। हे देवेश ! आज से ही लेकर फिर जब तक ऐसा ही नैमित्तिक अर्थात् अन्य विशिष्ट दिन हो तब तक मैं उक्त समस्त शत्रुओ से निर्मुक्त रहूँ ॥६१॥ यदि यजन न शक्तिहीन हो तो व्रती को नक्त दिक करना चाहिए। जितना भी बन सके वह अवश्य ही करना आवश्यक है। इसके उपरान्त हवन करे और देवेश की स्तुति करे और फिर श्रीकर नित्य का विसर्जन करना चाहिए। और अन्त म "ॐ ह्रीं श्रीधराय त्रैलोक्य मोहनाय नमः" इसका उच्चारण करना चाहिए ॥६२॥

१४१--पवित्रारोपणे पूजाहोमादिविधिः

विशोदनेन मन्त्रेण यागस्थानं च भूपयेत्।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय श्रीधरायाव्ययात्मने ॥१
ऋग्यजुःसामरूपाय शब्ददेहाय विष्णवे।
विलिख्य मण्डलं सायं यागद्रव्यादि चाऽऽहरेत् ॥२
प्रक्षालितकराङ्घ्रिः सन्विन्यस्तार्घ्यकरो नरः।
अर्घ्याद्भिस्तु शिरः प्रोक्ष्य द्वारदेशादिकं तथा ॥३
ग्रारभेद्द्वारयागं च तोरणेशान्प्रपूजयेत्।
अश्वत्थोदुम्बरवटप्लक्षाः पूर्वादिगा नगाः ॥४
ऋगिन्द्रशोभनं प्राच्यां यजुर्यमसुभद्रकम्।
सामापश्च सुधन्वाख्यं सोमाथर्वसुहोत्रकम् ॥५
तोरणान्ताः पताकाश्च कुमुदाद्या घटद्वयम्।
द्वारि द्वारि स्वनाम्नाऽर्च्याः पूर्वे पूर्णश्च पुष्करः ॥६
आनन्दनन्दनौ दक्षो वीरसेनः सुषेणकः।
सम्भवप्रभवौ सौम्ये द्वारपाश्चैव पूजयेत् ॥७

अब इस चौतीसवें अध्याय में पवित्रारोपण में पूजा के होम की विधि का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—'नमो ब्रह्मण्य देवाय श्रीधरायाव्ययात्मने। ऋग्यजु सामरूपाय शब्द देहाय विष्णवे"इस मन्त्रसे यागस्थानम प्रवेश करे अर्थात् इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्रवेश करना चाहिए और फिर याग स्थान को भली भाँति विभूषित करे। मन्त्रार्थ यह है—ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले, अव्यय अर्थात् नित्य नाश रहित स्वरूप वाले, ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम वेद के रूप वाले, शब्द के ही देह स युक्त श्रीधर भगवान् विष्णु के लिये बारम्बार नमस्कार है। फिर मण्डल का विलेपन करे और सायंकाल ही में जितने भी लाने योग्य याग के द्रव्य हैं उन सबका आहरण कर लेना चाहिए ॥१॥२॥ अपने हाथों और पैरों को अच्छी तरह प्रक्षालित करने वाला उपासक मनुष्य विन्यास करके हाथ में अर्घ्य लेवे और अर्घ्यादि से प्रथम अपने शिर का प्रोक्षण करे फिर द्वार देश आदि समस्त स्थलों का प्रोक्षण उसे करना चाहिए ॥३॥ आरम्भ में द्वार याग में श्रीगणेश करे और तोरण (प्रधान द्वार) के देशों का पूजन करना चाहिए। अश्वत्थ (पीपल), उदुम्बर (गूलर), वट (बड़) और प्लक्ष (पाखर) जो पूर्वादि दिशाओं में स्थित वृक्ष हैं उनका यजन करे। प्राची में अर्थात् पूर्व दिशा में इन्द्रशोभन ऋग्वेद यम सुभद्रक यजुर्वेद, वारुण में सामवेद जो सुधन्वाख्य है तथा सोमाथर्व सुहोत्रक का यजन करे ॥४॥ तोरणान्त कुमुदादि पताका और घट द्वय अर्थात् दोनों घटों का द्वार द्वार पर अपने नाम का उच्चारण करके अर्चना करनी चाहिए। पूर्व दिशा में पूर्ण पुष्कर का यजन करे। आनन्द, नन्दन, दक्ष, वीरसेन, सुपर्णक का तथा सौम्य दिशा में सम्भव, प्रभव इन द्वारपालों का पूजन करना चाहिए ॥८॥

अस्त्रजप्तपुष्पक्षेपाद्विघ्नानुत्सार्य स विशेत् ।
भूतशुद्धिं विधायाथ विन्यस्य कृतमुद्रक ॥८
फट्कारान्तं शिखां जप्त्वा सर्षपान्दिक्षु विक्षिपेत् ।
वासुदेवेन गोमूत्रं संकर्षणेन गोमयम् । ६
प्रद्युम्नेन पयस्तज्जद्दधि नारायणाद्घृतम् ।
एकद्वित्र्यादिवारेण घृताद्वै भागतोऽधिकम् ॥१०

घृतपात्रे तदेकत्र पञ्चगव्यमुदाहृतम् ।
मण्डपप्रोक्षणायैकं चापरं प्राशनाय च ॥११
स्नानाय दशकुम्भेषु इन्द्राद्याल्लोकपान्यजेत् ।
पूज्याज्ञा श्रावयेत्तांश्च स्थातव्य चाऽऽज्ञया हरे. ॥१२
यागद्रव्यादि संरक्ष्य विकिरान्विकिरेत्तत. ।
मूलाष्टशतसजप्ता‧कुशकूर्चान्हरेच्च तान् ॥१३
ऐशान्या दिशितत्रस्य स्थाप्य कुम्भं च वर्धनीम् ।
कुम्भे साङ्गं हरिं प्रार्च्य वर्धन्यामस्त्रमर्चयेत् ॥१४

मन्त्र का जाप और पुष्प आदि के प्रक्षेपण के द्वारा पहिले समस्त विघ्नों का समुत्सारण करके फिर अन्दर प्रवेश करके वहाँ नियत स्थान पर स्थित होवे । इसके उपरान्त भू ो की शुद्धि करे और विन्यास करके मुद्रा करे जो नियत है । मन्त्र म फट्कार लगाकर शिखा का जाप करे और समस्त दिशाओ मे सर्षपों (सरसों के दानो) का विक्षेपण करना चाहिए । वासुदेव मन्त्र से गोमूत्र ग्रहण करे, सङ्कर्षण मन्त्र से गोमय (गोबर) ग्रहण करना चाहिए, प्रद्युम्न मन्त्र से पय (दूध) लेव और तद्रा अर्थात् अनिरुद्ध मन्त्र से दधि ग्रहण करे तथा नारायण से घृत लेवे । एक, दो और तीन आदि बार से अधिक भाग म ग्रहण करना चाहिए ॥१०॥ घृतपात्र में यह सब एकत्र करे, इसको पञ्चगव्य कहा गया है । एक को मण्डप के प्रोक्षण करने के लिए काम मे लावे और दूसरे को प्राशन के लिये रखे । ये पञ्चगव्य तथा पञ्चामृत के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥११॥ दस कुम्भो म स्नान के लिये इन्द्र आदि लोकपालो को जो कि सख्या मे दस होते हैं पूजित करे । उनको पूज्याज्ञा का श्रवण करावे और भगवान् हरि की आज्ञा से अवस्थित रहना चाहिए ॥१२॥ जो भी याग के सम्भार करने के लिए द्रव्य एकत्रित किये गए हैं उन सबका भली भाँति रक्षण करे और इसके अनन्तर फिर विकिरो का विकरण करना चाहिए । अष्टोत्तर शत मूलमन्त्र का जाप करके अभिमन्त्रित उन कुशा के कूर्चों का हरण करना चाहिए ॥१३॥ ऐशानी दिशा मे वहाँ पर सस्थित कुम्भ तथा वर्धन की

स्थापना करे। उस कुम्भ में अङ्गों के सहित भगवान् श्री हरि की समर्चना करके वर्धनी के द्वारा अस्त्र का अर्चन करना चाहिए ॥१४॥

प्रदक्षिणं यागगृहं वर्धनीछिन्नधारया।
सिञ्चन्नयेत्ततः कुम्भं पूजयेच्च स्थिरासने ॥१५

सपञ्चरत्नवस्त्राढ्यं कुम्भे गन्धादिभिर्हरिम्।
वर्धन्यां हेमगर्भायां यजेदस्त्रं च वामतः ॥१६
तत्समीपे वास्तुलक्ष्मीभूविनायकमर्चयेत्।
स्नपनं कल्पयेद्विष्णोः संक्रान्त्यादौ तथैव च ॥१७
पूर्णकुम्भानवस्थाप्य नवकोणेषु निर्व्रणान्।
पाद्यमर्घ्यं चाऽऽचमनं पञ्चगव्यं च निक्षिपेत् ॥१८
पूर्वादिकलशेऽग्न्यादौ पञ्चामृतजलाधिकम्।
दधि क्षीरं मधूष्णोदं पाद्यं स्याच्चतुरङ्गकम् ॥१९
पद्मश्यामाकदूर्वाश्च विष्णुपत्नी च पाद्यकम्।
तथाष्टाङ्गार्घ्यमाख्यातं यवगन्धफलाक्षतम् ॥२०
कुशासिद्धार्थपुष्पाणि तिला द्रव्याणि चाऽऽहरेत्।
लवङ्गकक्कोलयुतं दद्यादाचमनीयकम् ॥२१

वर्धनी की छिन्न धारा से याग गृह की प्रदक्षिणा करते हुए सिञ्चन करे फिर कुम्भ को लेवे और स्थिरासन पर पूजन करना चाहिए ॥१५॥ पाँचों प्रकार के रत्नों से तथा वस्त्र से समन्वित कुम्भ में भगवान् श्री हरि का गन्धाक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य आदि अर्चनोपचारों के द्वारा हेमगर्भा अर्थात् सुवर्ण जिसके गर्भ में हो ऐसी वर्धनी में वाम भाग से अस्त्र का यजन करना चाहिए। ॥१६॥ उन्हीं के समीप में वास्तु लक्ष्मी, भू, विनायक की अर्चना करनी चाहिए। भगवान् विष्णु के स्नपन की कल्पना करे। इसी भाँति संक्रान्ति आदि पर्व में भी करे ॥१७॥ नव कोणों में जो पूर्ण कुम्भ हैं उनको स्थापित करे किन्तु वे सभी व्रण रहित होने चाहिए। फिर उनमें पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय और पञ्च गव्य का निक्षेप करना चाहिए ॥१८॥ पूर्वादि कलश में अग्नि

आदि में पञ्चामृत जलाधिक दधि क्षीर, मधु, और उष्णोदक इन सब का अनु-रञ्जक पाद्य होता है जिसमें श्यामाक, दूर्वा और विष्णु पत्नी हैं। उसी भाँति से अर्घ्य अष्टाङ्ग कहा गया है। उसमें यव, गन्ध, फल अक्षत कुश, सिद्धार्थ पुष्प और तिल ये द्रव्य हैं जिनका कि आहरण करना चाहिए। लवङ्ग, कङ्कोल आचमनीय में देवे ॥२१॥

स्नापयेन्मूलमन्त्रेण देव पञ्चामृतैरपि ।
शुद्धोद मध्यकुम्भेन देवमूर्ध्नि विनिक्षिपेत् ॥२२
कलशान्नि सृत तोय दूर्वाग्र सस्पृशेन्नर. ।
शुद्धोदकेन पाद्य च अर्घ्यमाचमन ददेत् ॥२३
परिमृज्य पटेनाङ्ग सवस्त्र मण्डलं नयेत् ।
तत्राभ्यर्च्याऽऽचरेद्धोम कुण्डादौ प्राणसयमी ॥२४
प्रक्षाल्य हस्तौ रेखाश्च तिस्र पूर्वाग्रगामिनी ।
दक्षिणादुत्तरान्ताश्च तिस्रश्चैवोत्तराग्रगा ॥२५
अर्घ्योदकेन सप्रोक्ष्य योनिमुद्रा प्रदर्शयत् ।
ध्यात्वाऽऽत्मरूप चाग्नि तु योन्या कुण्डे क्षिपेन्नर ॥२६
प्राणायामादयेत्पश्चाद्दर्भैस्तु कुस्तु वक्रादिभि ।
बाहुमात्रा परिधय इध्मव्रश्चनमेव च ॥२७
प्रणीता प्रोक्षणीपात्रमाज्यस्थालीघृतादिकम् ।
प्रस्थद्वय तण्डुलानां युग्म युग्ममधोमुखम् ॥२८
प्रणीताप्रोक्षणीपात्रे न्यसेत्प्रागग्र कुशम् ।
अद्भि पूर्य प्रणीता तु ध्यात्वा देव प्रपूज्य च ॥२९
प्रणीता स्थापयेदग्नेर्द्रव्याणा चैव मध्यत ।
प्रोक्षणीमद्भि सम्पूर्य प्रार्च्य दक्षे तु विन्यसेत् ॥३०
चरु च श्रपयेदग्नौ ब्रह्माण दक्षिणे न्यसेत् ।
कुशानास्तीर्य पूर्वादौ परिधीन्स्थापयेत्तत ॥३१
वैष्णवीकरण कुर्याद्गर्भाधानादिना तत ।
गर्भाधान पु सवन सीमन्तोन्नयन जनि ॥३२

नामादिसमावर्तनान्तं जुहुयादष्ट चाऽऽहुतीः ।
पूर्णाहुतिं प्रतिकर्म स्रुचा स्रुवसुयुक्तया ॥३३

साधक का कर्त्तव्य है कि अपने उपास्य देव का मूल मन्त्र से स्नपन पञ्चामृतों के द्वारा भी करावे। पञ्चामृत स्नान के पश्चात् मध्य कुम्भ से शुद्ध जल लेकर उसे देवता के मस्तक पर विशेष रूप से निक्षिप्त करना चाहिए।२२। कलश से निकले हुए जल को जो दूर्वा के अग्रभाग से स्पर्श वाला हो,ऐसा मनुष्य को करना चाहिए। फिर शुद्ध जल से पाद्य अर्घ्य तथा आचमन समर्पित करे इसके अनन्तर किसी विशुद्ध स्वच्छ वस्त्र से देवता के अङ्गों का परिमार्जन करे और वस्त्र के सहित मण्डल मे लेजा कर सस्थापित करे वहाँ पर अभ्यर्चन करके होम करे जो कि प्राण सयमी पुरुष को कुण्डादि मे करना चाहिए। ॥२४॥ हाथो का प्रक्षालन करके पूर्वाग्रगामिनी तीन रेखाएँ और दक्षिण से उत्तरान्त तीन तथा उत्तराग्र मे गमन करने वाली को अर्घ्य के उदक से सम्प्रोक्षण करके फिर योनि मुद्रा को प्रदर्शित करना चाहिए। आत्मरूप का ध्यान करके फिर मनुष्य को चाहिए कि अग्नि को योनि के कुण्ड मे क्षिप्त करे ॥२६॥ फिर पात्रो का आसादन करना चाहिए। दर्भ, स्रुक् और स्रुवादि को बाहु मात्र जितनी परिधियाँ हैं, समासादित करे। इध्म वश्चन, प्रणीता, प्रोक्षणी पात्र, आज्य स्थाली और घृत आदि का आसादन करे। दो प्रस्थ परिमाण वाले तण्डुल ही युग्म युग्म अधोमुख हो। प्रणीता पात्र तथा प्रोक्षणी पात्र इन दोनों का वहाँ न्यास करे। प्राक् अग्र मे गमन करने वाला कुश हो। प्रणीता पात्र को जल से प्रपूरित करके फिर देव का ध्यान करे और प्रकृष्ट रूप से उनका पूजन करना चाहिए ॥२६॥ अग्नि से द्रव्यों के मध्य भाग मे प्रणीत पात्र को स्थापित करे। प्रोक्षणी पात्र को जल से पूरित करके उसकी अर्चना करे और दक्षिण भाग मे विन्यस्त करना चाहिए ॥३०॥ अग्नि में चरु का श्रपण करे और ब्रह्मा का दक्षिण में न्यास करे। कुशाग्रो का आस्तरण करके (फैलाकर) पूर्व आदि मे फिर परिधियो की स्थापना करनी चाहिए ॥३१॥ इसके अनन्तर गर्भाधान आदि से वैष्णवीकरण करे। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जन्म,

नामकरण से लेकर समावर्तन के अनन्तर आठ आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए। प्रत्येक कर्म म ध्रुव सयुत स्रुक से पूर्णाहुति करनी चाहिए ॥३३॥

कुण्डमध्ये ऋतुमती लक्ष्मी सचिन्त्य होमयेत् ।
कुण्डलक्ष्मी समाख्याता प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका ॥३४
सा योनि सर्वभूताना विद्यामन्त्रगणस्य च ।
विमुक्तं कारण वह्नि परमात्मा च मुक्तिद: ॥३५
प्राच्या शिर. समाख्यात बाहू कोणे व्यवस्थितौ ।
ईशानाग्नेयकोणे तु जघे वायव्यनैर्ऋते ॥३६
उदर कुण्डमित्युक्त योनिर्योनिर्विधीयते ।
गुणत्रय मेखला स्युर्ध्यात्वैव समिधो दश ॥३७
पश्चाधिकास्तु जुहुयात्प्रणवान्मुष्टिमुद्रया ।
पुनराघारौ जुहुयाद्वायव्यग्यन्त तत श्रयेत् ॥३८
ईशान्त मूलमन्त्रेण आज्यभागौ तु होमयेत् ।
उत्तरे द्वादशान्तेन दक्षिणे तेन मध्यत ॥३९
व्याहृत्या पद्ममध्यस्थ ध्यायेद्वह्नि तु सस्कृतम् ।
वैष्णव सप्तजिह्व च सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥४०
चन्द्रवक्त्र च सूर्याक्षि जुहुयाच्छतमष्ट च ।
तदर्ध चाष्ट मूलेन अङ्गाना च दशाशत. ॥४१

कुण्ड के मध्य भाग मे ऋतुमती लक्ष्मी का सचिन्तन करके होम करना चाहिए। सत्व, रज और तम इन तीन गुणो के स्वरूप वाली प्रकृति कुण्ड लक्ष्मी कही गई है ॥३४॥ वह समस्त भूतो की और विद्या मन्त्रगण की योनि अर्थात् उद्भव स्थान है। विमुक्तिका कारण वह्नि है और मुक्ति के प्रदान करने वाले परमात्मा हैं। प्राची अर्थात् पूर्व दिशा म शिर कहा गया है, कोण में दोनो बाहू व्यवस्थित हैं जो कि ईशान और आग्नेय नाम वाले कोण हैं। वायव्य तथा नैर्ऋत्य कोण म दोनो जघे हैं। कुण्ड उदर है—ऐसा बताया गया है, और जो योनि है वह योनि विधीयमान होती है। तीनो गुण ही मेखलायें हैं—इस विधि से ध्यान करके दश समिधएं ग्रहण करें। पश्चाधिक

समिधाम्रो को मुष्टि मुद्रा से प्रणवों को आहुतियाँ देवे। पुन आधारो की आहुतियाँ देवे। इसके अनन्तर वायु और अग्नि के अन्त तक का आश्रय लेवे ॥३८॥ मूल मन्त्रों के द्वारा ईशान पर्यन्त आज्य (घृत) भोगों का हवन करना चाहिए। उत्तर म द्वादशान्त स, दक्षिण मे उसस मध्य भाग तथा ध्य हृति से पद क मध्य भाग का ध्यान करे। वह्नि देव का सस्कार स सम्पन्न का ध्यान करे जो वैष्णव एव सात जिह्वाम्रो वाला तथा करोड सूर्य के सदृश प्रभा वाला है, जिसका चन्द्रमा मुख है और सूर्य नेत्र हैं, उसके लिये एक माला अर्थात् अष्टोत्तरशत (एकसौ आठ) बार आहुतियाँ देकर हवन करे। उसका आधा भाग और आठ वार मूल मन्त्र से आहुतियाँ देवे तथा अङ्गों की दशाश से आहुतियाँ देकर हवन करना चाहिए ॥४१॥ —

१४२—पवित्राधिवासनविधिः

सहाताहुतिनाऽऽसिच्य पवित्राण्याधिवासयेत् ।
नृसिंहमन्त्रजप्तानि गुप्तान्यस्त्रेण तानि तु ॥१

वस्त्रसवेष्टितान्येव पात्रस्थान्यभिमन्त्रयेत् ।
विल्वाद्यद्भि प्रोक्षितानि मन्त्रेण चैकधा द्विधा ॥२

कुम्भपात्रे तु सस्थाप्य रक्षा विज्ञाप्य देशिक ।
दन्तकाष्ठं चाऽऽमलक पूर्वे सकर्षणेन तु ॥३

प्रद्युम्नेन भस्म तिलान्दक्ष गोमयमृत्तिकाम् ।
वारुणे चानिरुद्धेन सौम्ये नारायणेन च ॥४

दध्योदक चाथ हृदा अग्नौ कुकुमरोचनम् ।
ऐशान्या शिरसा धूप शिखया नैरृते ऽप्यथ ॥५

मूलपुष्पाणि दिव्यानि कवचेनाथ वायवे ।
चन्दनाम्बवक्षतदधिदूर्वाश्च पुटिकास्थिता ॥६

गृह त्रिसूत्रेणाऽऽवेष्ट्य पुन सिद्धार्थकान्क्षिपेत् ।
दद्यात्पूजाक्रमेणाथ सर्वे सर्वैर्गन्धपवित्रकम् ॥७

इस अध्याय में पवित्रारोपों के अधिवासन की विधि का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—सम्पात की आहुति से आसेचन करके पवित्रारोपों का अधिवासन करना चाहिए। नृसिंह मन्त्र का जाप किये हुए सूत्रों का भस्म के द्वारा करे। वस्त्र से संवेष्टित किये हुए ही पात्र में स्थित करे और उन्हें अभिमन्त्रित करना चाहिए। बिल्वादि जलों के द्वारा मन्त्र से एक और दो बार प्रोक्षित करे ॥१॥२॥ फिर कुम्भ पात्र में सस्थापित करके देशिक को रक्षा का निवेदन करना चाहिए। इसके उपरान्त सङ्कर्षण मन्त्र से पूर्वादि भाग में आमलक (आँवला) दन्तकाष्ठ (दातुन) समर्पित करे। प्रद्युम्न मन्त्र के द्वारा भस्म, तिल और दक्ष भाग में गोमय मृत्तिका देवे। वारुण दिशा में अनिरुद्ध मन्त्र से तथा सौम्यदिग् भाग में नारायण मन्त्र के द्वारा देवे। दर्भोदक और इसके उपरान्त हृदय से अग्नि में कुङ्कुम रोचन अर्पित करे। ऐशान्य दिशा में शिर से धूप और नैर्ऋत दिशा में शिखा से दिव्य मूल पुष्प समर्पित करे। वायव्य में कवच के द्वारा पुटिका स्थित चन्दन, अम्बु, अक्षत, दधि, दूर्वा का समर्पण करना चाहिए ।६। गृह को तीन सूत्रों से आवेष्टित कर फिर सिद्धार्थकों का क्षेपण करे। पूजा का जो क्रम है उसी के द्वारा अपने-अपने मन्त्रों द्वारा गन्ध पवित्रक को देवे ॥७॥

मन्त्रैर्वै द्वारपादिभ्यो विष्णु कुम्भे स्वनेन च ।
विष्णुतेजोद्भवं रम्यं सर्वपातकनाशनम् ॥८
सर्वकामप्रदं देव तवाङ्गे धारयाम्यहम् ।
सपूज्य धूपदीपाद्यैर्व्रजेद्द्वारसमीपतः ॥९
गन्धपुष्पाक्षतोपेतं पवित्रं चाऽऽत्मनोऽर्पयेत् ।
पवित्रं वैष्णवं तेजो महापातकनाशनम् ॥१०
धर्मकामार्थसिद्धयर्थं स्वकेऽङ्गे धारयाम्यहम् ।
आसने परिवारादौ गुरौ दद्यात्पवित्रकम् ॥११
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
विष्णुतेजोद्भवेत्यर्घ्यमूलेन हरयेऽर्पयेत् ॥१२

मन्त्रो से द्वारपाल आदि के लिये देवे और कुम्भ मे निम्नलिखित मन्त्र से विष्णु भगवान् को अर्पित करे। मन्त्र का स्वरूप यह है—"विष्णु तेजोद्भव रम्य सर्व पातक नाशनम्। सर्व कामप्रद देव तवाङ्गे धारयाम्यहम्" अर्थात् हे देव ! विष्णु के तेज से उत्पन्न, परम सुन्दर, समस्त पातकों का नाश करने वाला तथा सम्पूर्ण कामनाओ के प्रदान करने वाला यह मैं आपके अङ्ग मे धारण कराता हू। फिर धूप, दीप आदि उपचारो के द्वारा भली-भाँति पूजन करके द्वार के समीप से गमन करना चाहिए ।।८।।९।। फिर गन्ध पुष्प और अक्षतो से उपेत उस पवित्रा को अपने अङ्ग मे अर्पित करना चाहिए। उस पवित्रा के धारण करने के समय मे इस आगे लिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए। मन्त्र—"पवित्र वैष्णव तेजो महापातक नाशनम्। धर्म कामार्थ सिद्ध्यर्थं स्वकेऽङ्गे धारयाम्यहम्" अर्थात् यह पवित्रा विष्णु भगवान् का तेज स्वरूप है जो कि बडे-बडे महान् पातको का नाश कर देने वाला है। धर्म, काम और अर्थ की सिद्धि के प्राप्त करने के लिये मैं इसको अपने अङ्ग मे धारण करता हूं। आसन पर और परिवार आदि मे तथा गुरु को इस पवित्रा को देवे। इसके उपरान्त गन्धाक्षत पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि पूजन के अत्यावश्यक उपचारो के द्वारा भली-भाँति अर्चना करके "विष्णु तेजोद्भव" इत्यादि उपर्युक्त मूल मन्त्र के द्वारा फिर उसे भगवान् हरि के लिये समर्पित करना चाहिए ।।१२।।

वह्निस्थाय ततो दत्त्वा देव सप्रार्थयेत्तत ।
क्षीरदधिमहानागशय्यावस्थितविग्रह ।।१३

प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि सन्निधो भव केशव ।
इन्द्रादिभ्यस्ततो दत्त्वा विष्णुपार्षदके बलिम् ।।१४

ततो देवाग्रत. कुम्भ वासोयुगसमन्वितम् ।
रोचनाचन्द्रकाश्मीरगन्धाद्युदकसयुतम् ।।१५

गन्धपुष्पादिनाऽभ्यर्च्य मूलमन्त्रेण पूजयेत ।
मण्डपाद्बहिरागत्य विलिप्ते मण्डलत्रये ।।१६

पञ्चगव्यं चरुं दन्तकाष्ठं चैव क्रमाद् भजेत् ।
पुराणश्रवणं स्तोत्रं पठञ्जागरणं निशि ॥१७
परप्रेषकबालानां स्त्रीणां भोगभुजां तथा ।
सद्योऽधिवासनं कुर्याद्विना गन्धपवित्रकम् ॥१८

वह्नि में सञ्चित को देकर फिर इसके पश्चात् देवता की प्रार्थना करनी चाहिए। प्रार्थना इस प्रकार से करे—हे देव! आप क्षीर सागर में महान् शेष नाग की शय्या पर अपना विग्रह सन्स्थापित करके शयन करने वाले हैं। मैं आपकी नित्य प्रातःकाल में पूजा करूँगा। हे केशव! आप मेरी सन्निधि में विराजमान होवें। इसके अनन्तर इन्द्र आदि देवों के लिये तथा भगवान् विष्णु के पार्षदों के लिये बलि समर्पित करे। इसके उपरान्त देव के आगे दो वस्त्रों से युक्त रोचना चन्द्र काश्मीर गन्ध आदि से समन्वित कुम्भ का गन्ध तथा पुष्पादि से अच्छी तरह विभूषित करके मूल मन्त्र के द्वारा उसका पूजन करना चाहिए। फिर मण्डप से बाहिर आकर विलिप्त मण्डलत्रय में अर्थात् तीन मण्डपों में क्रम से पञ्चगव्य, चरु और दन्तकाष्ठ का भजन (सेवन) करे। पुराणों का श्रवण तथा स्तोत्रों का पठन करते हुए रात्रि में जागरण करना चाहिए। दूसरों के द्वारा प्रेषित बालकों का, स्त्रियों का जो भोग लेने वाले हैं इन सबका तुरन्त ही बिना गन्ध और पवित्र के अधिवासन कर देना चाहिए ॥१८॥

१४३—विष्णुपवित्रारोपणविधिः

प्रातः स्नानादिकं कृत्वा द्वारपालान्प्रपूज्य च ।
प्रविश्य गुप्ते देशे च समाकृष्याथ धारयेत् ॥१
पूर्वाधिवासितं द्रव्यं वस्त्राभरणगन्धकम् ।
निरस्य सर्वं निर्माल्यं देवं सन्स्नाप्य पूजयेत् ॥२
पञ्चामृतैः कषायैश्च शुद्धगन्धोदकैस्ततः ।
पूर्वाधिवासितं दद्याद्वस्त्रं गन्धं च पुष्पकम् ॥३
अग्नौ हुत्वा नित्यवच्च देवं सम्प्रार्थयेन्नमेत् ।
समर्प्य कर्म देवाय पूजां नैमित्तिकीं चरेत् ॥४

द्वारपालविष्णुकुम्भवर्धनीः प्रार्थयेद्धरिम् ।
अतो देवेति मन्त्रेण मूलमन्त्रेण कुम्भके ।।५
कृष्ण कृष्ण नमस्तुभ्य गृह्णीष्वेद पवित्रकम् ।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।।५
पवित्रक कुरुष्वाद्य यन्मया दुष्कृत कृतम् ।
शुद्धो भवाम्यहं देव त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ।।७

अब इस अध्याय में भगवान् विष्णुदेव के लिये पवित्राओं के आरोपण की विधि को बतलाया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा—प्रातःकाल के समय में स्नान, शौच आदि सम्पूर्ण दैनिक आवश्यकताओं से निवृत्त होकर द्वारपालों का सर्वप्रथम पूजन करे और फिर गुप्त देश में प्रवेश करके समाकर्षण करे और धारण करे ।।१।। पूर्व निशारम्भ में जो भी वस्त्र, आभरण, गन्ध आदि अधिवासित द्रव्य हों उन सबको निरसित करके अर्थात् अलग हटाकर सब प्रकार से देव का निर्माल्य अपसारित कर फिर देव का संस्नपन करावे और अभ्यर्चना करे ।।२।। दुग्ध, दधि, मधु के द्वारा सुनिर्मित पञ्चामृतों से तथा कषायों से और फिर अन्त में शुद्ध गन्धपूर्ण उदकों से स्नान कराना चाहिए । पूर्वाधिवासित वस्त्र, गन्ध और पुष्प समर्पित करे ।।३।। अग्नि में हवन करके नित्य की भाँति अपने उपास्य देव की भली भाँति प्रार्थना करे और फिर अन्त में नमस्कार करनी चाहिए । आगे समस्त किए हुए कर्म को श्री कृष्णार्पण करके अर्थात् उपास्य देव की ही सेवा में अर्पण करके फिर नैमित्तिकी पूजा का समाचरण करे । द्वारपाल, विष्णु कुम्भ, वर्धनी की प्रार्थना 'अतोदेव' इस मन्त्र से और मूलमन्त्र से कुम्भ में करनी चाहिए । प्रार्थना इस भाँति करे—हे भगवान् श्री कृष्णदेव ! आपके चरणारविन्द में मेरा प्रणाम है । आप मुझ पर अनुग्रह करके इस पवित्रा को स्वीकार कीजिये जो कि वर्ष भर की हुई पूजा के फलों का प्रदान करने वाला है । इसे पवित्रीकरण के लिये ही आप ग्रहण करें । जो भी मैंने अब तक दुष्कृत्य किये हों आज आप उन सबको पवित्र कर देवें अर्थात् उन सबसे मेरी शुद्धि करने की कृपा कर देवें । हे देव ! आप समस्त देवों के भी स्वामी हैं, मैं आपके ही प्रसाद से शुद्ध होता हूँ ।।७।।

पवित्र हृदाद्यं स्तु आत्मानमभिषिच्य च ।
दिध्णुकुम्भ च सम्प्रोक्ष्य व्रजेद्देवसमीपत ॥८
पवित्रमात्मने दद्याद्रक्षावन्ध विसृज्य च ।
गृहाण ब्रह्मसूत्र च यन्मया कल्पित प्रभो ॥६
कर्मणा पूरणार्थाय यथा दोषो न मे भवेत् ।
द्वारपालासनगुरुमुख्याणा च पवित्रकम् ॥१०
कनिष्ठादि च देवाय वनमाला च मूलत ।
हृदादिविष्वक्सेनान्ते पविगाणि समर्पयेत् ॥११
वन्हौ हुत्वा वह् निगेभ्यो विश्वादिभ्य. पवित्रकम् ।
प्राच्य पूर्णाहुति दद्यात्प्रायश्चित्ताय मूलत ॥१२
अष्टोत्तरशत वाऽपि पञ्चोपनिषदैस्तत ।
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभि ॥१३
इय सावत्सरी पूजा तवास्तु गरुड्ध्वज ।
वनमाला यथा देव कौस्तुभ सतत हृदि ॥१४
तद्वत्पवित्रतन्तू श्च पूजा च हृदये वह ।
कामतोऽकामतो वाऽपि यत्कृत नियमार्चने ॥१५
विधिना विघ्नलोपेन परिपूर्णा तदस्तु मे ।
प्रार्थ्य नत्वा क्षमाप्याय पवित्र मस्तकेऽर्पयेत् ॥१६

हृद् आदि के द्वारा पवित्रका और अपने आत्मका अभिषेक करके फिर भगवान् विष्णु के कुम्भ का सम्प्रोक्षण करे और देवता के समीप मे गमन करना चाहिए ।८। पवित्रा को आत्मा के लिये देवे और रक्षा बन्धन का विसर्जन करे। फिर भगवान् के समक्ष मे प्रार्थना करे कि हे प्रभो ! जो मैंने कल्पित किया है उस ब्रह्म सूत्र को आप ग्रहण कीजिये जिससे मेरे कृत कर्मों की परिपूर्णता होवे और मेरा कोई भी दोष न होवे। द्वारपाल, आसन, गुरु एव मुख्य पुरुषो को पवित्रा और कनिष्ठादि को मूल मन्त्र से देव के लिये वनमाला एव हृदादि विष्वक्सेनान्त में पवित्राओ का समर्पण करना चाहिए ॥११॥ वह्नि मे हवन करके वह्निगो के लिये अर्थात् अग्नि में जो गमन करके सस्थित हैं उनके लिये

जो विश्वादि है उनके लिये पवित्रक का अर्चन करके फिर मूल मन्त्र से प्रायश्चित्त के लिये अर्थात् विहित दोषों की शुद्धि के लिये पूर्णाहुति देनी चाहिए। अथवा अष्टोत्तरशत (एक सौ आठ) पाँच उपनिषदों से मणि-विद्रुमों की मालाओं मे तथा मन्दार के कुसुम आदि से करे फिर देव के समक्ष मे स्थित होकर प्रार्थना करें—हे गरुड ध्वज देव ! यह संवत्सर मे होने वाली आपकी अर्चना होवे। हे देव ! आपके हृदय पर जिस प्रकार सदा वनमाला विराजमान रहा करती है और निरन्तर आपके वक्ष स्थल पर कौस्तुभ मणि शोभित रहती है उसी भाँति पवित्रा के तन्तुओं को तथा मेरी की हुई पूजा को आप अपने हृदय मे वहन कीजिये। कामना से अर्थात् इच्छा से जानबूझ कर अथवा अकामना से अर्थात् बिना जानकारी के अनिच्छा से मैंने आपके नियमार्चन मे जो भी कुछ किया है अर्थात् जैसा भी कुछ मुझ से बन पड़ा है और विघ्नों के लोप की विधि मे किया है वह सब मेरा परिपूर्ण हो जावे—ऐसी रीति से देव की प्रार्थना करके क्षमापन करावे नमस्कार करे फिर पवित्रक को मस्तक में समर्पित करना चाहिए ॥१६॥

दत्वा बलिं दक्षिणाभिर्वैष्णव तोषयेद्गुरुम् ।
विप्रान्भोजनवस्त्राद्यैर्दिवस पक्षमेव वा ॥१७
पवित्रं स्नानकाले वा अवतार्य समर्चयेत् ।
अनिवारितमन्नाद्य दद्यादभुक्तोऽथ च स्वयम् ॥१८
विसर्जनेऽन्हि सपूज्य पवित्राणि विसर्जयेत् ।
सावत्सरीमिमा पूजा सपाद्य विधिवन्मम ॥१९
व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोक विसर्जित ।
मध्ये सोमेशयो प्राच्यं विष्वक्सेन हि तस्य च ॥२०
पवित्राणि समभ्यर्च्य ब्राह्मणाय समर्पयेत् ।
यावन्तस्तन्तवस्तस्मिन्पवित्रे परिकल्पिता ॥२१
तावद्युगसहस्राणि विष्णुलोके महीयते ।
कुलाना शतमुद्धृत्य दश पूर्वान्दशापरान् ॥२२
विष्णुलोके तु सस्थाप्य स्वय मुक्तिमवाप्नुयात् ॥२३

फिर बलि देकर दक्षिणाओं से वैष्णव गुरु को तोषण करे तथा विप्रगणों को सुरुचिकर भोजन, वस्त्रादि के द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए। एक दिन अथवा एक पक्ष तक ऐसा करे। स्नान करने के समय पर पवित्रा को उतार कर समर्चना करनी चाहिए। अनिवारित अन्न आदि को मभुक्त को दान में देवे इसके अनन्तर स्वयं भोजन करे ॥१८॥ जो विसर्जन करने का दिन हो उस दिन में भली-भाँति पूजन करने के पश्चात् ही पवित्रामों का विसर्जन करना चाहिए। जब इनका विसर्जन करे उस अवसर पर प्रार्थना निम्न रीति से करे— हे पवित्रक! विधि विधान के सहित मेरी इस सांवत्सरी पूजा का सम्पादन करके अब आपका मैं विष्णुलोक जाने के लिये विसर्जन करता हूँ सो आप विष्णु लोक को गमन करें। मध्य में सोम (चन्द्र) और ईश को तथा विष्वक्सेन की और उसकी समर्चना करके एवं पवित्रामों का पूजन करके ब्राह्मण के लिये समर्पित कर देवे। इस पवित्रकों के पूजन तथा आरोपण की विधि करने का यह फल होता है कि उस पवित्रा से जितने भी तन्तु होते हैं जिनके द्वारा उनकी रचना की गई है उतने ही युगों के सहस्र वर्षों तक वह विष्णुलोक में प्राप्त होकर प्रतिष्ठा की प्राप्ति किया करता है। दश पहिले दश आगे होने वाले कुलों के तारक का उद्धार कर अर्थात् सबको सद्गति दिलाकर उनको विष्णुलोक में सस्थापित करके स्वयं भी मुक्ति करने का लाभ प्राप्त किया करता है। तात्पर्य यह है कि स्वयं सर्वदा के लिये संसार में पुन पुन आवागमन रूपी जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पा जाया करता है ॥२३॥

१४४—अथ संक्षेपतः सर्वदेवसाधारणः पवित्रारोपणविधिः

संक्षेपात्सर्वदेवानां पवित्रारोहणं शृणु।
पवित्रं पूर्वलक्ष्म स्यात्स्वरसानलगं त्वपि ॥१
जगद्योने समागच्छ परिवारगणैः सह।
निमन्त्रयाम्यहं प्रातर्दद्यां तुभ्यं पवित्रकम् ॥२
जगत्सृजे नमस्तुभ्यं गृहीत्वेदं पवित्रकम्।
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ॥३

शिव देव नमस्तुभ्य गृह्णीष्वेद पवित्रकम् ।
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभि ॥४
इयं साम्वत्सरी पूजा तवास्तु वेदवित्पते ।
सावत्सरीमिमा पूजा सपाद्य विधिवन्मम ॥५
व्रज पवित्रकेदानी स्वर्गलोक विसर्जित ।
सूर्यादेव नमस्तुभ्य गृह्णीष्वेद पवित्रकम् ॥६
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।
शिव देव नमस्तुभ्य गृह्णीष्वेद पवित्रकम् ॥७

इस अध्याय मे सक्षेप से समस्त देवगण की सर्वसाधारण पवित्राओं के आरोपण करने की विधि का वर्णन किया जाता है। श्री अग्नि देव ने कहा—अब अत्यन्त सक्षेप से सब देवताओ के लिये पवित्रको के आरोपण कराने की विधि के विधान का आप लोग सब मुझसे श्रवण करें। यह पवित्रक पूर्व लक्ष्म अर्थात् पहिला लक्षण है और स्वर सानलग भी है ॥१॥ हे इस सम्पूर्ण जगत् के समुत्पन्न करने के कारण स्वरूप देव ! अर्थात् इस जगत् की आप ही योनि हैं आपसे ही यह समस्त जगत् निकला है। आप अपने सम्पूर्ण परिवार के समुदायो के सहित यहाँ पधारिये मैं आपको निमन्त्रण देता हूँ। अब जब यहाँ पधार आवेंगे तो मैं प्रात काल में प्रविज्ञा समर्पित करूँगा ॥२॥ आप इस सम्पूर्ण विश्व जगत् के सृजन करने वाले देव हैं। आपके चरणों मे मेरा सादर नमस्कार है। अब आप इस पवित्रक को ग्रहण कीजियेगा। हे वेदज्ञान के विज्ञाता पुरुषो के स्वामिन् ! यह सावत्सरी अर्थात् वष में होने वाली पूजा के फल को प्रदान करे जिससे पवित्रीकरण की निष्पत्ति हो जावे ॥३॥ हे शिव देव ! आपके लिये मेरा नमस्कार है। आप अब इस पवित्रक का ग्रहण करिये जो कि मणि (रत्न) विद्रुमो की मालाओ से तथा मन्दार देवदारु आदि से समन्वित एव सुनिर्मित किया गया है ॥४॥ यह साम्वत्सरी पूजा हे वेद वित्पते! आपकी है। अब इस साम्वत्सरी अर्चना को जिसे कि मैं इस समय कर रहा हूँ आप विधि-विधान पूर्वक सम्पादित करा देने की कृपा करें। जब यह सम्पन्न

हो जावे तब हे पवित्रक ! उस समय आप विसर्जित हुए होकर स्वर्ग लोक को गमन करें । इसी भाँति से सूर्यदेव से प्रार्थना करे—हे सूर्यदेव ! आपके लिये मेरा नमस्कार समर्पित है । आप इस मेरे द्वारा सुसमर्पित पवित्रक को स्वीकार करें ॥६॥ यह पवित्रक मेरे पवित्रीकरण के करने के लिये है और वर्ष भर की पूजा के सम्पूर्ण फल को प्रदान कराने वाला है । हे शिव देव ! आपके लिये मेरा नमस्कार है । आप इस अर्पित पवित्रक को ग्रहण करें ॥७॥

पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।
गणेश्वर नमस्तुभ्य गृह्णीष्वेद पवित्रकम् ॥८
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।
शक्तिदेवि नमस्तुभ्य गृह्णीष्वेद पवित्रकम् ॥६
पवित्रीकरणार्थाय वर्षपूजाफलप्रदम् ।
नारायणमय सूत्रमनिरुद्धमय परम् ॥१०
धनधान्यायुरारोग्यप्रद सप्रददामि ते ।
कामदेवमय सूत्र सकर्षणमय वरम् ॥११
विद्यासततिसौभाग्यप्रद सप्रददामि ते ।
वासुदेवमय सूत्र धर्मकामार्थमोक्षदम् ॥१२
ससारसागरोत्तारकारण प्रददामि ते ।
विश्वरूपमय सूत्र सर्वद पापनाशनम् ॥१३
अतीतानागतकुलसमुद्धार ददामि ते ।
कनिष्ठादीनि चत्वारि मनुभिस्तु क्रमाद्ददे ॥१४

विघ्न विघातक श्रीगणपति को जब पवित्रा का समर्पण करना हो तो उनका नाम लेकर इसी भाँति पवित्रारोपण करे । यथा—हे गणेश्वर ! मेरा आपके चरणों में सादर पूर्वक नमस्कार है । आप मेरे द्वारा सुसमर्पित एवं समारोपित पवित्रक को ग्रहण कीजिये । यह पवित्रारोपण कर्म अपने आपका पवित्रीकरण करने के लिये ही होता है । यह वर्ष भर में की हुई पूजा के फल को प्रदान करने वाला है । जब जगदम्बा भगवती के लिये पवित्रकों का समर्पण करना अभीष्ट हो तो उस समय में देवी से भी यह आरम्भ में प्रार्थना करे— हे

शक्ति देवी ! आपके पवित्र चरणकमल में मेरा प्रणाम निवेदित है। मा जगदम्बे ! आप इस पवित्रक को अङ्गीकार करें। यह पवित्रक का समर्पण मेरे पवित्रीकरण के लिये ही किया जाता है। इसके करने से पूरे वर्ष में की हुई मेरी पूजा का फल मुझे प्राप्त होता है। यह सूत्र नारायणमय अर्थात् नारायण के स्वरूप वाला है। यह पवित्रक सङ्कर्षणमय है और परम श्रेष्ठ है। यह पवित्रक धन, धान्य, आयु और आरोग्य अर्थात् स्वस्थता को प्रदान करने वाला है। मैं इसे आपकी सेवा में सम्प्रदत्त करता हूँ अर्थात् आपको समर्पित कर रहा हूँ। यह पवित्रक का सूत्र भगवान् वासुदेव के स्वरूप से परिपूर्ण है जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों परम पुरुषार्थों के प्रदान करने वाला है। यह इस संसार रूपी सागर से पार करने के कर्म में कारण होता है अर्थात् इसके देव-समर्पण से सांसारिक समस्त बाधाओं से मानव छुटकारा पा जाता है। इस ऐसे पवित्रक को मैं आपको समर्पित करता हूँ। यह साधारण सूत्र नहीं है प्रत्युत यह विश्व के स्वरूप से परिपूर्ण है। यह सभी कुछ प्रदान करने वाला है। इससे सभी तरह के किये हुए पापों का नाश हो जाता है। यह पवित्रक पहिले हो जाने वाले और आगे भविष्य में होने वाले कुलों का भलीभाँति उद्धार करने वाला है। तात्पर्य यह है कि समर्पण कर्ता के उद्धार के अतिरिक्त उसके भूत-भविष्य के कुलों का भी इससे उद्धार हो जाता है। मैं ऐसे इस पवित्रक को आपकी सेवा में अर्पित करता हूँ। कनिष्ठ आदि चारों को क्रम से मन्त्रों के द्वारा देता हूँ ॥१४॥

१४५—शिवप्रतिष्ठाविधिः

प्रातर्नित्यविधिं कृत्वा द्वारपालप्रपूजनम् ।
प्रविश्य प्राग्विधानेन देहशुद्ध्यादिमाचरेत् ॥१
दिक्पतींश्च समभ्यर्च्य शिवकुम्भं च वर्धनीम् ।
अष्टमुष्टिकया लिङ्गं वन्हिं संतर्प्य च क्रमात् ॥२
शिवाज्ञातस्ततो गच्छेत्प्रासादं शस्त्रमुच्चरन् ।
तद्गतान्प्रक्षिपेद्विघ्नान्हुँफडन्तशराणुना ॥३

तन्मध्ये स्थापयेल्लिङ्गं वेधदोषविशङ्कया ।
तस्मान्मध्यं परित्यज्य यवार्धेन यवेन वा ॥४
किंचिदीशानमाश्रित्य शिलामध्ये निवेशयेत् ।
मूलेन तामनन्ताख्यां सर्वाधारस्वरूपिणीम् ॥५
सर्वगां सृष्टियोगेन विन्यसेदचलां शिलाम् ।
अथ वाऽनेन मन्त्रेण शिवस्याऽऽसनरूपिणीम् ॥६
ॐ नमो व्यापिनि भगवति स्थिरेऽचले ध्रुवे ।
ह्रीं ल ह्रीं स्वाहा ॥७
त्वया शिवाज्ञया शक्ते स्थातव्यमिह सततम् ।
इत्युक्त्वा च समभ्यर्च्य निरुध्याद्रोधमुद्रया ॥८

अब इस अध्याय में भगवान् शङ्कर की प्रतिष्ठा का विधि-विधान वर्णित किया जाता है। प्रातःकाल के समय में नित्य किये जाने वाला आह्निक समाप्त करके सर्व प्रथम द्वारपालों का प्रपूजन करे और फिर प्रागुक्त विधान से मण्डल में प्रवेश करके अपने देह की शुद्धि आदि कृत्य को सविधि करना चाहिए ॥१॥ इसके अनन्तर देश दिक्पालों का अर्चन करे तथा शिव कुम्भ और वर्धनी का अर्चन करे। क्रम से अष्टमुष्टिका से लिङ्ग और वह्नि का भली-भाँति तर्पण करे। ॥२॥ फिर शिव की आज्ञा प्राप्त कर शास्त्र का उच्चारण करता हुआ शालाद में गमन करना चाहिए। 'हुँफट्'—यह अन्त में लगाकर शर मन्त्र के द्वारा उसमें रहने वाले विघ्नों को प्रक्षिप्त करे ॥३॥ उसमें मध्य में लिङ्ग की स्थापना करनी चाहिए। वेधदोष की विशङ्का से उसके मध्य को यव अथवा यव का आधा भाग परित्याग कर देना चाहिए ॥४॥ कुछ ईशान दिशा का आश्रय ग्रहण करके शिला के मध्य में निवेशित करे। मूल के द्वारा समस्त आधारों के स्वरूप वाली उस अनन्त नाम वाली को सृष्टि के योग से सर्वत्र गमन करने वाली अचल शिला को विन्यस्त करना चाहिए। अथवा भगवान् शिव के आसन के स्वरूप धारण करने वाली उस शिला को निम्नाङ्कित मन्त्र के द्वारा विन्यस्त करना चाहिए। मन्त्र यह है—"ॐ नमो व्यापिनि भगवति स्थिरेऽचले ध्रुवे। ह्रीं ल ह्रीं स्वाहा"। इससे शिला प्रार्थना करे—हे शक्ते! आपको

भगवान् शिव की आज्ञा को मानकर यहाँ पर निरन्तर स्थित रहना चाहिए। इतना कहकर अर्थात् इस प्रकार से उस शिला से प्रार्थना करके भली-भाँति उसका अर्चन करे और रोध मुद्रा के द्वारा निरोध करे ॥८॥

वज्रादीनि च रत्नानि तथोशीरादिकौषधी ।
लोहान्हेमादिकास्यान्तान्हरितालादिकास्तथा ॥६
धान्यप्रभृतिसस्यांश्च पूर्वमुक्तानन्नुक्रमात् ।
प्रभारागत्वदेहत्ववीर्यशक्तिमयानिमान् ॥१०
भावयन्नेकचित्तस्तु लोकपालेशसंवरैः ।
पूर्वादिषु च गर्तेषु न्यसेदेकैकशः क्रमात् ॥११
हैमजं तारजं कूर्मं वृषं वा द्वारसंमुखम् ।
सरित्तटमृदा युक्तं पर्वताग्रमृदाऽथ वा ॥१२
प्रक्षिपेन्मध्यगर्तादौ यदा मेरुं सुवर्णजम् ।
मधूकाक्षतसंयुक्तमञ्जनेन समन्वितम् । १३
पृथिवीं राजतीं यद्वा यद्वा हेमसमुद्भवाम् ।
सर्वबीजसुवर्णाभ्यां समायुक्तां विनिक्षिपेत् ॥१४
स्वर्णजं राजतं वाऽपि सर्वलोहसमुद्भवम् ।
सुवर्णं कृशरायुक्तं पद्मनालं ततो न्यसेत् ॥१५
देवदेवस्य शक्त्यादिमूर्तिपर्यन्तमासनम् ।
प्रकल्प्य पायसेनाथ लिप्त्वा गुग्गुलुनाऽथ वा ॥१६
आच्छाद्य वस्त्रेण तनुत्रेणास्त्ररक्षितम् ।
दिक्पतिभ्यो बलिं दत्त्वा समाचान्तोऽथ देशिकः ॥१७

इस कृत्य को सम्पन्न करने के अनन्तर वज्र (हीरा) आदि माणिक्य नीलम, पन्ना प्रभृति समस्त रत्न, उशीर (खस) आदि सम्पूर्ण औषधियाँ लोह, सुवर्ण, कांस्य (काँसा) आदि धातुएं हरिताल आदि तथा धान्य प्रभृति सब शस्यों को जो कि पहिले अभी बताये जा चुके हैं और प्रभा, राग, त्वक् देह, वीर्य एवं शक्ति से परिपूर्ण हैं इन सब को क्रमानुसार एकत्रित होने

हुए भावना करे और लोक पालेशों के सहित पूर्व आदि दिशाओं में गर्त हैं उनमें क्रम से एक एक का न्यास करना चाहिए ॥६॥१०॥११॥ सुवर्ण के द्वारा निर्मित कराया हुआ अथवा चाँदी से बनवाया हुआ कूर्म या वृष द्वार के समुख किसी नदी के तट पर स्थित मिट्टी से या किसी पर्वत की चोटी पर स्थित मिट्टी के साथ मध्य गर्तादि में प्रक्षिप्त करे। अथवा सुवर्ण रचित मए जो मधुक, अक्षनों से संयुक्त हो और अञ्जन से भी समन्वित हो किम्वा पृथिवी को जो रजत (चाँदी) के द्वारा निर्मित कराई गई हो या सुवर्ण से बनवाई गई हो, सब बीजों और सुवर्ण से युक्त करके वहाँ उसका विनिक्षेप करे। १२॥ ॥१३॥१४॥ इसके उपरान्त सुवर्ण रचित अथवा चाँदी से निर्मित या सम्पूर्ण धातुओं के द्वारा विरचित कुशारा से युक्त सुवर्ण और पद्म नाल का न्यास करना चाहिए ॥१५॥ फिर देव देवत्य शक्ति आदि के मूर्ति पर्यन्त आसन की कल्पना करके पायस से लेपन करे अथवा गुग्गलु से लेपन करे। फिर शुभ्र वस्त्र से समाच्छादित करके तनुत्रास्त्र से उसे सुरक्षित करना चाहिए। इस के अनन्तर आचार्य वर को दिक्पालों के लिये बलि देनी चाहिए और आचान्त होकर अर्थात् आचमन करके वहाँ समास्थित रहना चाहिए ॥१६॥१७॥

शिवेन वा शिलाश्वभ्रसङ्गदोषनिवृत्तये ।
शस्त्रेण या शत सम्यग्जुहुयात्पूर्णया सह ॥१८
एककाहुतिदानेन सतर्प्य वास्तुदेवता ।
समुत्थाप्य हृदा देवमासन मङ्गलादिभि ॥१६
गुरुर्देवाग्रतो गच्छे मूर्तिपश्च दिशि स्थितै ।
चतुर्भि सह वर्ता च देवयानस्य पृष्ठत ॥२०
प्रासादादि परिभ्रम्य भद्राख्यद्वारसमुखम् ।
लिङ्ग सस्थाप्य दत्वाऽर्घ्यं प्रासाद सनिवेशयेत् ॥२१
द्वारेण द्वारबन्धेन द्वारदेशेन तद्विच्छि ला ।
द्वारबन्धे शिखाशून्ये तदर्धनाथ तद्दते । २२
वर्णायन्द्वारसस्पर्शा द्वारेणैव महेश्वरम् ।
देवगृहसमारम्भे कोणेनापि प्रवेशयेत् ॥२३

अथमेव विधिर्ज्ञेयोऽव्यक्तलिंगेऽपि सर्वतः ।
गृहे प्रवेशनं द्वारे लोकैरपि समीरितम् ॥२४

फिर शिला के भग्न भङ्ग दोषों की निवृत्ति के लिये शिव मन्त्र के द्वारा या अस्त्र मन्त्र के द्वारा भली-भाँति सौ आहुतियाँ देनी चाहिए और साथ ही पूर्णाहुति भी देवे ॥१८॥ एक-एक आहूति देकर उनके द्वारा वास्तु देवताओं का अच्छी तरह से तर्पण करना चाहिए। हृत् से मङ्गलादि के द्वारा देवासन का समुत्पादन करे फिर गुरु को देवता के आगे हो जाना चाहिए। अन्य जो मूर्ति-पूजक हों वे चारों दिशाओं में स्थित रहें। जो कर्त्ता हो उसे देवता के पास के पृष्ठ भाग में रहना चाहिए ॥१९॥२०॥ प्रासाद आदि स्थानों का परिभ्रमण करके भद्राश्रय अर्थात् 'भद्र'—इस नाम वाला जो द्वार है उसके सम्मुख में लिंग की स्थापना करे और अध्य दान करके फिर प्रासाद में सन्निवेशित कराना चाहिए ॥२१॥ द्वार द्वारबन्ध और द्वार देश से उस शिला को शिखा से शून्य द्वारबन्ध में उसके अर्धभाग से अथवा उसके बिना द्वार—संस्पर्श का वर्णन करते हुए द्वार के द्वारा ही भगवान् महेश्वर का देवगृह के समारम्भ में कोण के द्वारा भी प्रवेश करावे ॥२३॥ अव्यक्त लिंग में भी सभी प्रकार से यह ही विधि विधान जान लेना चाहिए। लोकों के द्वारा भी गृह में प्रथम द्वार में ही बताया गया है ॥२४॥

अपद्वारप्रवेशेन विदुर्गोत्रक्षयं गृहम् ।
अथ पीठे च संस्थाप्य लिंगं द्वारस्य सम्मुखम् ॥२५
तूर्यमङ्गलनिर्घोषैर्द्विक्षितसमन्वितम् ।
समुत्तिष्ठ हृदेत्युक्त्वा महापाशुपतं पठेत् ॥२६
अपनीय घटं श्वभ्राद् शिको मूर्तिपैः सह ।
मन्त्रं स धारयित्वा तु विलिप्तं कुंकुमादिभिः ॥२७
शक्तिशक्तिमतोरैक्यं ध्यात्वा चैव तु रक्षितम् ।
तयान्तं मूलमुच्चार्य स्पृष्ट्वा श्वभ्रे निवेशयेत् ॥२८
अर्धेन ब्रह्मभागस्य यद्वा अंशद्वयेन च ।
अर्धेन वाऽष्टमांशेन सर्वस्याथ प्रवेशनम् ॥२९

पिबाय सीसक नाभिदीर्घाभिः सुसमाहित ।
श्वभ्र वालुकयाऽऽपूर्य ब्रूयात्स्थिरो भवेत् च ॥३०
ततो लिङ्गे स्थिरीभूते ध्यात्वा सकलरूपिणम् ।
मूलमुच्चार्य शवत्यन्त स्पृष्ट्वा च निष्कल न्यसेत् ॥३१
स्थाप्यमानं यदा लिङ्ग याम्यां दिशमथाऽऽश्रयेत् ।
तत्तद्दिगीशमन्त्रेण पूर्णान्ति दक्षिणान्वितम् ॥३२
सव्यस्थाने च वक्रे च चलिते स्फुटितेऽथ वा ।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण बहुरूपेण वा शतम् ॥३३
किं चान्येष्वपि दोषेषु शिवशान्ति समाश्रयेत् ।
उक्तन्यासविधि लिंगे कुर्यादेव न दोषभाक् ॥३४
पीठबन्धमत कृत्वा लक्षणस्याशलक्षणम् ।
गौरीमन्त्र लय नीत्वा सृष्ट्या पिण्डी च विन्यसेत् ॥३५

अपद्वार के द्वारा प्रवेशन कराने से यह गृह गोत्र के क्षय करने वाला होता है—ऐसा कहा गया है। इसके अनन्तर अर्घा प्रवेशन कृत्य कराने के पश्चात् द्वार के सामने जो पीठ है उस पर लिंग को सस्थापित करे ॥२५॥ फिर तूर्य वाद्य की ध्वनियों के साथ दूर्वा (दूब) और अक्षतों से समन्वित करे। हृद् मन्त्र के द्वारा 'समुत्तिष्ठ"—अर्थात् आप उठिए—यह कर फिर महा पाशुपत का पाठ करना चाहिए ॥२७॥ देशिक (आचार्य) को मूर्तियों के साथ श्वभ्र से घट को हटा कर मन्त्र का मधारण करना चाहिए और कुकुम आदि से विलेपन करे ॥२७॥ फिर शक्ति और शक्तिमान् की एकता का ध्यान कर रक्षित करे और लयपर्यंन्त मूल का उच्चारण कर स्पर्श करे तथा श्वभ्र में निवेशित कर देना चाहिए ॥२८॥ ब्रह्म भाग का एक म श, दो अ श, अर्धांश अथवा अष्टमाश से सबका प्रवेशन करे ॥२९॥ फिर भली-भाँति समाहित होकर दीर्घ नाभि को सीसे से ढककर श्वभ्र को वालुका से आपूरित कर "स्थिरो भव"—अर्थात् आप यहाँ सुस्थिर होकर विराजमान होवें—ऐसा मुख से बोलना चाहिए ॥३०॥ इसके उपरान्त लिंग के स्थिरीभूत हो जाने पर सकल रूप वाले

को ध्यान करे और मूल मन्त्र का उच्चारण करके शान्ति के अन्त तक सृष्टि मे विन्यास का न्यास करना चाहिए ॥२१॥ जब स्थाप्यमान लिंग यामी दिशा का आश्रय लेवे तब उस उस दिशा के स्वामी के मन्त्र से दक्षिणा से युक्त पूर्णाग्नि मध्य स्थान मे, वक्र मे, चलित में अथवा स्फुटित मे मूल मन्त्र से लिङ्गा बहुरूप से सौ आहुतियाँ देवे । और अन्य दोषों मे भी शिव शान्ति का समाश्रय लेवे । लिङ्ग म कथित न्यास के विधान को करे। इस प्रकार से करने पर मनुष्य दोषी नही होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ अतएव परिवन्धन करके जो कि लक्षण का प्रद लक्षण होता है फिर गौरी के मन्त्र को लय प्राप्त करा कर सृष्टि से पिण्डी को विन्यस्त करे ॥ ३५ ॥

सपूर्य पार्श्व सधि च बालुकावज्रलेपत ।
ततो मूर्तिधरै साधं गुरु. शान्तिपटोऽवत ॥३६
सस्नाप्य कलशैरन्यस्तद्वत्पञ्चामृतादिभि ।
विलिप्य चन्दनाद्यैश्च सम्पूज्य जगदीश्वरम् ॥३७
उमामहेशमन्त्राभ्या तो स्पृशेल्लिङ्गमुद्रया ।
ततस्त्रितत्त्वविन्यास षडध्वादिपुर सरम् ॥३८
कृत्वा मूर्ति मदीशानामङ्गाना ब्रह्मणामथ ।
ज्ञानलिंगे क्रियापीठे विन्यस्य स्नापयेत्तत ॥३९
गन्धैर्विलिप्य सम्पूज्य व्यापित्वेन शिवे न्यसेत् ।
स्रग्धूपदीपनैवेद्यं हृदयेन फलानि च ॥४०
विनिवेद्य यथाशक्ति समाचम्य महेश्वरम् ।
दत्वाऽर्घ्यं च जप कृत्वा निवेद्य वरदे करे ॥४१
चन्द्रार्कतारक यावन्मन्त्रेण शैवमूर्तिपे ।
स्वेच्छयैव त्वया नाथ स्यातव्यमिह मन्दिरे ॥४२
प्रणम्यैव बहिर्गत्वा हृदा वा प्रणवेन वा ।
सस्थाप्य वृषभ पश्चात्पूर्ववद्बलिमाचरेत् ॥४३

इसके अनन्तर बालु का और वज्रलेप से पार्श्व सधि को सम्पूजित करे और इसके पश्चात् गुरु को चाहिए कि मूर्तिधरो के साथ शान्ति पट म ऊपर

अन्य कलशों से संस्नपन करावे तथा पञ्च मृत आदि से स्नान कराना चाहिए। स्नानोत्तर चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से देव-विग्रह का विलेपन करे और जगदीश्वर प्रभु का भली-भाँति अर्चन करे ।। ३७ ।। उमा और महेश के मन्त्रों का उच्चारण करते हुए उन दोनों का लिङ्ग मुद्रा से स्पर्श करना चाहिए। इसके उपरान्त षडङ्गादि पूर्वक मिन्त्रों का विन्यास करे । ३८ ।। फिर उनके ईशो की मूर्ति बनवाकर तथा उनके अङ्गों और ब्रह्मों की मूर्ति विनिर्मित करा कर ज्ञान लिंग मे, क्रिया पीठ मे उनका विन्यास करे और फिर स्नपन क्रिया सम्पन्न करनी चाहिए। गन्धादि से विलेपन करके अच्छी तरह अर्चन करे और ध्यानपिस्व रूप में शिव में न्यास करे। हृदय मन्त्र के द्वारा सुगन्धित माला, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और ऋतुफल इन सम्पूर्ण पूजन के अत्यावश्यक उपचारों को यथाशक्ति विनिवेदित करना चाहिए। आचमन करके भगवान् महेश्वर को सेवा में अर्घ्य को समर्पित करे। इसके उपरान्त मन्त्र का जाप करके उनके वरदान प्रदान करने वाले करकमलों में उसको अर्पित कर देना चाहिए। जब तक संसार में चन्द्र सूर्य और तारों की स्थिति रहे मन्त्र के द्वारा सर्व मूर्तियों के सहित आप हे नाथ ! इस मन्दिर में स्वेच्छा से समावस्थित रहें ऐसी प्रार्थना करे ।। ४३ ।।

न्यूनादिदोषमोक्षाय ततो मृत्युजिता दाशम् ।
शिवेन सशिवो हुत्वा शान्त्यर्थं पायसेन च ।।४४

ज्ञानाज्ञानकृतं यच्च तत्पूरय महाविभो ।
हिरण्यपशुभूम्यादिगीतवाद्यादिहेतवे ।।४५

अम्बिकेशाय तद्भक्त्या शक्त्या सर्वं निवेदयेत् ।
दानं महोत्सवं पश्चात्कुर्याद्दिनचतुष्टयम् ।।४६

त्रिसन्ध्यं त्रिदिनं मन्त्री होमयेन्मूर्तिपैः सह ।
चतुर्थेऽहनि पूर्णां च चरुकं बहुरूपिणा ।।४७

निवेद्य सर्वकुण्डेषु स पाताहुतिशोधितम् ।
दिनचतुष्टयं यावन्न निर्माल्यं तदुर्व्वतः ।।४८

निर्माल्यापनयं कृत्वा स्नापयित्वा तु पूजयेत् ।
... ... ।।४६

असाधारणलिंगेषु क्षमस्वेति विसर्जनम् ।।५०

इस प्रकार से प्रणाम करके फिर बाहिर गमन करे और प्रणव तथा रुद्र मन्त्र से वृषभ को सम्थापित कर पीछे पूर्व की भाँति बलि देनी चाहिए। इस प्रतिष्ठा विधि में जो भी कुछ न्यूनता आदि के दोष हो गये हों उन दोषों से छुटकारा पाने के लिये मृत्युजित् मन्त्र के द्वारा एक सौ आठ आहूतियाँ देवे तथा शान्ति के लिये शिव मन्त्र से पायस के द्वारा सशिव आहूतियाँ देवे और प्रार्थना करे—हे महाविभो ! हिरण्य, पशु भूमि आदि गीत, वाद्य प्रभृति हेतु के लिये ज्ञानपूर्वक तथा अज्ञान पुरस्सर जो कुछ भी मैंने किया है उसकी आप पृथक् पूर्ति कर देवें ।। ४५ ।। उन सबको भक्ति और शक्ति से भगवान् अभिषेक के लिये विनिवेदित कर देवे। इसके उपरान्त फिर चार दिन पर्यन्त दान एवं महोत्सव करता रहे ।। ४६ ।। तीनों सन्ध्याओं में तीन दिन तक मन्त्रधारी साधनोपासक को मूर्तियों के साथ होम करना चाहिए। जब तीन दिन समाप्त हो जावें तो चौथे दिन में बहुरूपी के द्वारा पूर्णाहुति और चरुक का निवेदन करे और यह सम्पाताहुति यथोचित समस्त कुण्डों में करना चाहिए। चार दिन तक उनके ऊपर जो भी निर्माल्य आदि हो उन सम्पूर्ण निर्माल्य को चौथे दिन में अपनयन करे अर्थात् देव विग्रह से अलग हटा लेवे, फिर स्नान करावे और पूजन करना चाहिए। यह पूजा साधारण मन्त्रों के द्वारा सामान्य लिंगों में करनी चाहिए ।। ४९ ।। लिंग चालन का त्याग करके स्थाणु का विसर्जन कर देवे। जो असाधारण लिंग हैं उनका 'क्षमस्व' अर्थात् क्षमा करिये—इससे विसर्जन करना चाहिए ।। ५० ।।

आवाहनमभिव्यक्तिर्विसर्गः शक्तिरूपता ।
प्रतिष्ठान्ते क्वचित्प्रोक्तं स्थिराद्याहुतिसप्तकम् ।।५१
स्थिरस्तथाऽप्रमेयश्चानादिबोधस्तथैव च ।
नित्योऽथ सर्वगश्चैवाविनाशी दृष्ट एव च ।।५२

एते गुणा महेशस्य सन्निधानाय कीर्तिताः ।
ॐ नमः शिवाय स्थिरो भवेत्याहुतीनां क्रमः ॥५३
एवमेतत्र सपाद विधाय शिवकुम्भवत् ।
कुम्भद्वय च तन्मध्यादेककुम्भाम्भसा भवम् ॥५४
सस्नाप्य तद्द्वितीयं च कर्त्तुं स्नानाय धारयेत् ।
दत्त्वा बलिं समाचम्य बहिर्गच्छेच्छिवाज्ञया ॥५५
जगतीबाह्यतश्चण्डमैशान्यां दिशि मन्दिरे ।
धामगर्भप्रमाणे च सुपीठे कल्पितासने ॥५६
पूर्ववन्न्यासहोमादि विधाय ध्यानपूर्वकम् ।
संस्थाप्य विधिवत्तत्र ब्रह्माङ्गं पूजयेत्ततः ॥५७
अङ्गानि पूर्वमुक्तानि ब्रह्माणि त्वगुना यथा ॥५८

यहाँ पर प्रतिष्ठा के मन्त्र में भगवान् के अभिव्यक्ति विशद और शक्ति स्वरूपता तथा स्थिर दिखाने में स्तुतियाँ कही गई हैं ॥५१॥ स्थिर, अक्षय अर्थात् वह जो मानव की प्रज्ञा का विषय न हो, अनादि अर्थात् वह जिसका कोई आदि काल हीन हो ऐसे बाध वाला, नित्य, सर्वग अर्थात् सभी जगह पर गमन करने वाला, अविनाशी अर्थात् विनाश से रहित (ऐसा जिसका कभी भी विनाश ही नहीं होता है) और इस प्रकार भगवान् महेश के गुण सन्निधान के लिए बताए गये हैं। आहुतियों के मन्त्र के क्रम इस भाँति हैं— ॐ नमः शिवाय स्थिरो भव' अर्थात् भगवान् शिव के लिए नमस्कार है। आप स्थिर होइए ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ इस प्रकार से सम्पादन करके शिव कुम्भवत् विधान को और उन दो कुम्भों में से एक कलश के जल से भगवान् भव (शिव) का स्नपन कराये तथा दूसरे कुम्भ को कर्ता के स्नान के लिए धारण करना चाहिए। बलि देकर आचमन करके भगवान् शिव की आज्ञा से बाहिर गमन करना चाहिए ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ जगत् से बाहिर ऐशानी दिशा के मन्दिर में चण्ड का धाम गर्भ प्रमाण में सुन्दर रीति से कल्पना किये हुए पीठ पर पूर्व की भाँति न्यास एवं होम आदि करके ध्यान करे और ध्यान पूर्वक विधि के सहित वहाँ पर संस्थापन करके

फिर ब्राह्मणों से पूजन करना चाहिए ।। ५७ ।। अग पहिले ही बताये जा चुके हैं। बाह्य जो हैं उनके मन्त्र इस भाँति हैं ।। ५८ ।।

ए वं सद्योजाताय हू रूं फट्, नम. ।
ॐ वि वामदेवाय हू रूं फट्, नम. ।
ॐ वुम्, अघोराय हू रूं फट्, नम. ।
ओम्, एव चे तत्पुरुषाय, वोमीशानाय च हू रूं फट्, नम ।५९
जप निवेद्य संतर्प्य विज्ञाप्य नतिपूर्वकम् ।
देवः सन्निहितो यावत्तावत्त्व सन्निधो भव ।।६०
न्यूनाधिकं च यत्किंचित्कृतमज्ञानतो मया ।
त्वत्प्रसादेन चण्डेश तत्सर्वं परिपूरय ।।६१
बाणुलिंगे वाणरोहे सिद्धलिंगे स्वयंभुवि ।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ।।६२
अद्वैतभावनायुक्ते स्थण्डिलेशाविधावपि ।
अभ्यर्च्य चण्ड समुत यजमान हि भार्यया । ६३
पूर्वस्थापितकुम्भेन स्नापयेत्स्नापक स्वयम् ।
स्थापक यजमानोऽपि सपूज्य च महेशवत् ।।६४
वित्तशाठ्यं विना दद्याद्भूहिरण्यादिदक्षिणाम् ।
मूर्तिपान्निधिवत्पश्चाज्जापकान्ब्राह्मणास्तथा ।।६५
दैवज्ञ शिल्पिन प्राच्यं दीनानाथादि भोजयेत् ।
यदत्र समुखीभावे खेदितो भगवन्मया ।।६६
क्षमस्व नाथ तत्सर्वं कारुण्याम्बुनिधे मम ।
इति विज्ञप्तियुक्ताय यजमानाय सद्गुरु ।।६७
प्रतिष्ठापुण्यसद्भाव स्फुरत्तारकसप्रभम् ।
कुशपुष्पाक्षतोपेतं स्वकरेण समर्पयेत् ।।६८

"ॐ वं सद्योजाताय हू फट् नम."—"ॐ वि वाम देवाय हू फट्, नम."—"ॐ वुम्, अघोराय हू फट्, नम." "आम्, एव (एव ॐ) चें (वें) तत्पुरुषाय, वोमीशानाय च हू फट्, नम" ।। ५९ ।। इन उक्त मन्त्रों से यज-

मानादि को और किये हुए जप को निवेदित कर देवे। भली-भाँति तर्पण करके तथा विनति पूर्वक विज्ञापन करके यथा, जब तक देव सन्निहित हैं तब तक आप भी सन्निधान में विराजमान होवे यही विज्ञापन होता है ॥ ६० ॥ फिर देवता के समक्ष में क्षमापन की याचना करे — हे देव ! मैंने अपने अज्ञान के वश जो कुछ भी इस यजनादि विधि में न्यूनता या अधिकता की है। हे चण्डेश्वर वह आपके प्रसाद (प्रसन्नता) में सब पूर्ण कर दीजिये अर्थात् आपकी कृपा से ही वह पूर्ण हो सकती है ॥ ६१ ॥ बाण लिंग में, बाण रोह में, सिद्ध लिंग में, स्वयम् में और समस्त प्रतिमाओं में चण्ड अधिकृत न होवे। अद्वैत की भावना से युक्त स्थण्डिलेश विधि में भी चण्ड को और सुत को युक्त एवं भार्या के सहित यजमान को स्नापक को चाहिए कि इसे पूर्व में स्थापित कुम्भ से स्वयं स्नापन करावे। यजमान को भी चाहिए कि महेश की ही भाँति स्थापक का भली-भाँति पूजन करे ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ वित्त की शठता से रहित होकर अर्थात् धन रहते हुए भी कृपणता न करके दक्षिणा में भूमि सुवर्ण आदि मूल्यवान् वस्तुऐं देनी चाहिए। इसके अनन्तर मूर्तिरगण, जप करने वाले ब्राह्मण, दैवज्ञ (ज्योतिषी, शिल्पी) जिन्होंने वहाँ शिल्प का कार्य किया हो, इन सबका अर्चन करे और जो दीन एवं अनाथ हो उन्हें भोजन कराना चाहिए। फिर प्रार्थना करे कि जो यहाँ पर मैंने सम्मुखीकरण की भावना में हे भगवन् ! आपको खेद पहुँचाया है, हे नाथ ! उस सबको आप क्षमा कर दीजिये आप तो करुणा के सागर हैं। इस प्रकार से विज्ञापन करने वाले यजमान के लिये सद्गुरु को चाहिए कि अपने हाथ से स्फुरित होते हुए तारक के समान प्रभा वाले प्रतिष्ठ के पुण्य सद्भाव को कुशा, पुष्प और अक्षतो से युक्त समर्पित कर देवे ॥ ६८ ॥

ततः पाशुपतं जप्त्वा प्रणम्य परमेश्वरम् ।
ततोऽपि बलिभिर्भूतान्सन्निधाय निबोधयेत् ॥६९
स्थातव्यं भवता तावद्यावत्सन्निहितो हरः ।
गुरुवस्त्रादिसंयुक्तं गृह्णीयाद्यागमण्डपम् ॥७०

सर्वोपकरण शिल्पी तथा स्नापनमण्डपम् ।
अन्ये देवादय स्थाप्या मन्त्रै रागमसभवै ॥७१
आदिवर्णस्य भेदाद्वा सुतत्वव्याप्तिभाविता ।
साध्यप्रमुखदेवाश्च सरिदोषधयस्तथा ॥७२
क्षेत्रपा किनराद्याश्च पृथिवीतत्त्वमाश्रिता ।
स्थान सरस्वतीलक्ष्मीनदीनामम्भसि क्वचित् ॥७३
भुवनाधिपतीना च स्थान यत्र व्यवस्थिति ।
अण्डवृद्धिप्रधानान्त त्रितत्त्व ब्रह्मण पदम् ॥७४
तन्मात्रादिप्रधानान्त पदमेतत्त्रिक हरे ।
नाख्येशगणमातृणा यक्षेशशरजन्मनाम् ॥७५
अण्डजा शुद्धविद्यान्त पद गणपतेस्तथा ।
मायागदेशशक्त्यन्त शिवाशिवोग्ररोचिषाम् ॥७६
पदमीश्वरपर्यन्त व्यक्तार्चासु च कीर्तितम् ।
कूर्माद्य कीर्तित यच्च यच्च रत्नादिपञ्चकम् ॥७७
प्रक्षिपेत्पीठगर्ताया पञ्चब्रह्मशिला विना ।
षड्भिर्विभाजिते गर्ते त्यक्त्वा भाग च पृष्ठत ॥७८
स्थापन पञ्चमाशे च यदि वा वसुभाजित ।
स्थापन सप्तमे भागे प्रतिमासु सुखावहम् ॥७९

इसके उपरान्त पाशुपत मन्त्र का जप करे और परमेश्वर का प्रणाम करना चाहिए। इसके उपरान्त भी बलियो के द्वारा भूता का सन्निधान करके निवेदन करे कि आपको यहाँ पर उस समय तक स्थित रहना चाहिए जब तक भगवान् हर यहाँ पर सन्निहित रहते हैं। गुरु को चाहिए कि वस्त्रादि से युक्त याग के मण्डप को ग्रहण करे अन्य सम्पूर्ण उपकरणो को शिल्पी ग्रहण कर और स्नापन का जो मण्डप है उसे भी लेवे। अन्य देव आदि सबको आगम के मन्त्रों के द्वारा स्थापना करनी चाहिए ॥ ७१ ॥ अथवा आदि वर्ण के भेद से सुतत्व की व्याप्ति से भावित साध्य प्रधान देव तथा सरित् औषधियाँ, क्षेत्रपाल और किन्नर आदि के तत्त्व मे आश्रित होते हैं। सरस्वती, लक्ष्मी और नदियों

का यहाँ पर जल में स्थान होता है ॥ ७३ ॥ जो भुवनों के अधिपति हैं उनका स्थान वही है जहाँ उनकी व्यवस्थिति होती है। ब्रह्मा का पद (स्थान) बुद्धि प्रधानान्त भिन्न होता है ॥ ७४ ॥ भगवान् हरि का स्थान तन्मात्राओं से आदि लेकर प्रधान के अन्त पर्यन्त यह तीन तत्त्वों का मिश्र ही होता है। नाट्येश गण मातृदग का, यक्षेश धनञ्जय का तथा गणपति का स्थान अण्डज शुद्ध विद्या के अन्त तक होता है। शिवा और शिव स उस रोचि वाले का ईश्वर पर्यन्त पद होता है जो मर्यादा देश से शक्ति के अन्त तक है। यही स्थान व्यक्त अर्चाओं में बताया गया है। जो कूर्म आदि के विषय में कहा जा चुका है और जो रत्नादि पञ्चक के बावत बताया गया है उनको पाँच ब्रह्म शिला के बिना पीठ के गर्त्त में प्रक्षिप्त कर देवे। उस गर्भ के छट (छे) भाग करे और उसका त्रिभाजित पृष्ठ भाग जो हो उसे त्याग देवे ॥ ७८ ॥ जो पञ्चम अंश है उसमें स्थापन करे। अथवा इसका विभाजन आठ भागों में करना चाहिए, और सातवें भाग में प्रतिमाओं में स्थापना करना सुखावह होती है ॥ ७९ ॥

धारणाभिर्विशुद्धिः स्यात्स्थापने लेपचित्रयो ।
रत्नादि मानस तत्र शिलारत्नादिवेशनम् ॥८०

नेत्रोद्घाटनमन्त्रं स्मामनादिस्नपनम् ।
पूजा निरम्बुभिः पुष्पैर्यथा चित्रं न दुष्यति ॥८१

विधिस्तु चललिंगेषु सम्प्रत्येव निगद्यते ।
पञ्चभिर्वा त्रिभिर्वाऽपि पृथक्कुर्याद्विभाजिते ॥८२

भागत्रयेण मायांशो भवेद्भागद्वयेन वा ।
स्वपीठेष्वपि तद्वत्स्याल्लिंगेषु तत्त्वभेदतः ॥८३

सृष्टिमन्त्रेण संस्कारो विधिवत्स्फाटिकादिषु ।
किं च ब्रह्मशिलारत्नप्रभूतेश्चानिवेदनम् ॥८४

योजनं पिण्डिकायाश्च मनसा परिकल्पयेत् ।
स्वयम्भूबाणलिंगादौ संस्कृतौ नियमो न हि ॥८५

लेप और चित्र की स्थापना मे धारणाओ से विशुद्धि होती है। वहाँ पर तो जो स्नान आदि की क्रिया की जाती है वह केवल मानसिक भावना से ही सम्पन्न होती है। इसी प्रकार से शिला रत्नादि का वेशन भी होता है। नेत्रो का उद्घाटन, मन्त्रेष्ट और आसन आदि की कल्पना करनी चाहिए। बिना जल के पुष्पाक्षतादि से चित्रमयी मूर्त्ति की अर्चना की जाती है जिससे कि चित्र दूषित न हो सके ।। ८१ ।। जो चल लिंग होते हैं उनके विषय मे जो भी कुछ विधि है उसे अभी बतलाया जाता है पाँच या तीन भागो में विभाजित कर पृथक् कर लेना चाहिए। मायाँश तीन भागो मे अथवा दो भागो में होता है। अपने पीठों में भी उसी भाँति लिंगो में तत्वो के भेद से हुआ करता है ।।८३।। स्फटिक मणि द्वारा निर्मितों में तथा इसी प्रकार की मणियो से विरचितो में सृष्टि मन्त्र के द्वारा विधि के सहित सस्कार होता है किन्तु ब्रह्म शिला रत्न का निवेदन नहीं किया जाता है ।। ८४ ।। पिण्डिका का योजन जो किया जाता है उसकी कल्पना मानसिक ही की जाती है अर्थात् केवल मन मे ही उसका ध्यान किया जाता है। क्रियात्मक नही होता है। स्वयम्भू वाण लिङ्ग आदि मे सस्कृति की क्रिया करने का कोई भी नियम नही है ।। ८५ ।।

स्नापन सहितामन्त्रैर्न्यास होम च कारयेत् ।
नदीसमुद्ररोहाणां स्थापन पूर्ववन्मतम् ।।८६
ऐहिक मृन्मयं लिङ्ग पिष्टिकादि च तत्क्षणात् ।
कृत्वा सपूजयेच्छुद्ध दीक्षणादिविधानतः ।।८७
समादाय ततो मन्त्रानात्मान सनिधाय च ।
तज्जले प्रक्षिपेल्लिङ्ग वत्सरात्कामद भवेत् ।।८८
विष्एवादिस्थापनं चैव पृथङ्मन्त्रै - समाचरेत् ।।८९

संहिता के मन्त्रो के द्वारा उनका स्नपन कराके तथा न्यास और होम भी उन्हीं से करवाना चाहिए। नदी, समुद्र और रोहो की स्थापना जिस प्रकार से पहिले बताई गई है उसी भाँति करनी चाहिए ।। ८६ ।। ऐहिक लिङ्ग मृत्तिका का निर्मित करे और उसी क्षण मे पिष्टक आदि के द्वारा उसका निर्माण

कर लेवे । लिङ्ग को बनाकर फिर उस शुद्ध लिङ्ग का दक्षिणादि विधि विध से भली-भाँति पूजन करना चाहिए ॥ ८७ ॥ इसके उपरान्त उसे लाकर म का आत्मा में सन्निधान करे और उस जल को लिङ्ग पर प्रक्षिप्त करना चाहिए । इस प्रकार से पूरे एक वर्ष पर्यन्त करे तो वह कामनाओं की पूर्ति करने वाला होता है ॥ ८८ ॥ भगवान् विष्णु आदि देवेश्वरों की स्थापना उनके जो पृथक् मन्त्र हैं उन्हीं के द्वारा करनी चाहिए ॥ ८९ ॥

१४६ —गौरीप्रतिष्ठाविधिः

वक्ष्ये गौरीप्रतिष्ठां च पूजया सहितां शृणु ।
मण्डपाद्यं पुरो यच्च संस्थाप्य चाधिरोपयेत् ॥१
शय्यायां तां च विन्यस्य मन्त्रान्मूर्त्यादिकान्गुह ।
आत्मविद्याशिवान्तं च कुर्यादीशनिवेशनम् ॥२
शक्तिं परां ततो न्यस्य हुत्वा जप्त्वा च पूर्ववत् ।
सधाय च तथा पिण्डीं क्रियाशक्तिस्वरूपिणीम् ॥३
सदेशव्यापिकां ध्यात्वा न्यसेद्रत्नादिकां तथा ।
एवं संस्थाप्य तां पश्चाद्देवीं तस्यां नियोजयेत् ॥४
परशक्तिस्वरूपां तां स्वाणुना शक्तियोगतः ।
ततो न्यसेत्क्रियाशक्तिं पीठे ज्ञानं च विग्रहे ॥५
ततोऽपि व्यापिनीं शक्तिं समावाह्य नियोजयेत् ।
अम्बिकां शिवनाम्नीं च समालभ्य प्रपूजयेत् ॥६

इस अध्याय में गौरी की प्रतिष्ठा करने की विधि का वर्णन किया जाता है । ईश्वर बोले—अब हम गौरी की प्रतिष्ठा जिस रीति से की जाती है वह पूजा के सहित बतलाते हैं उसका तुम श्रवण करो । जो मण्डप आदि हैं उसको आगे संस्थापित करके फिर अधिरोपण करना चाहिए ॥ १ ॥ उसको शय्या में विन्यस्त करके हे गुह ! मूर्त्यादिक मन्त्रों को आत्मविद्या शिव के अन्त तक ईश का निवेशन करे ॥ २ ॥ इसके अनन्तर पराशक्ति का न्यास करके पूर्व की ही भाँति हवन करे, और जप करना चाहिए । उसी प्रकार से क्रिया

शक्ति के स्वरूप वाली पिण्डी का सधान करे । ३ । रत्न आदि जिसमें विन्यस्त हों ऐसी मदेश में व्यापक रहने वाली का ध्यान करना चाहिए । इस प्रकार से उसको सस्थापित करके फिर उसमे देवी को नियोजित करना चाहिए ॥ ४ ॥ अपने मन्त्र के द्वारा शक्ति के योग से पर शक्ति के स्वरूप वाली का न्यास करे और इसके अनन्तर पीठ में क्रियाशक्ति को तथा विग्रह मे ज्ञान को नियोजित करे । इसके भी पश्चात् व्यापिनी शक्ति का भली-भाँति आवाहन करके उसे नियोजित करे । शिवा नाम वाली अम्बिका को प्राप्त करके अच्छी तरह पूजा करे ॥ ५ ॥ ६ ॥

ओम्, आधारशक्तये नमः । ॐ कूर्माय नमः ।
ॐ स्कन्दाय च तथा नमः । ॐ ह्रीं नारायणाय नमः ।
ओम्, ऐश्वर्याय नमः । ओम्, अधच्छदनाय नमः ॥७
ॐ पद्मासनाय नमोऽथ सपूज्या. केशवास्तथा ॥८
ॐ ह्रीं कर्णिकार्यं नमः ।
ॐ क्षं पुष्कराक्षेभ्य इहार्चयेत् ॥९
ॐ ह्रां पुष्टयं ह्रीं च ज्ञानायै ह् रूं क्रियायै ततो नमः ॥१०
ॐ नालाय नमः । ॐ रं धर्माय नमः ।
रं ज्ञानाय वै नमः । ॐ वैराग्याय नम ।
ॐ वं, अधर्माय नम. ।
ॐ रम् अज्ञानाय वै नमः । ओम्, अवैराग्याय वै नम. ।
ओम् अनैश्वर्याय नमः ॥११

पूजा के मन्त्र निम्नलिखित हैं—"ओम् आधार शक्तये नम —ॐ कूर्माय नम —ॐ स्कन्दाय च तथा नम —ॐ ह्रीं नारायणाय नमः—ॐ ऐश्वर्याय नम —ॐ अधच्छदनाय नम"—अर्थात् आधार की शक्ति के लिये नमस्कार है —कूर्म के लिये नमस्कार है—कूर्म के लिये नमस्कार है—उसी भाँति स्कन्द के लिये नमस्कार है—नारायण के लिये नमस्कार है—ऐश्वर्य के लिये नमस्कार है—अधच्छदन के लिये नमस्कार है । इन उक्त मन्त्रों का उच्चारण करते

हुए यजन करे ॥ ७ ॥ इसके अनन्तर उसी भाँति "ॐ पद्मासनाय नमः" इस मन्त्र से केशरों का भली भाँति पूजन करना चाहिए ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त कर्णिका आदि का नीचे दिये हुए मन्त्रों से यजन करे—'ॐ ह्रीं कर्णिकायैं नमः—'ॐ क्ष पुष्कराक्षेभ्यो नमः"—इससे यहाँ अर्चन करे। 'ॐ ह्रा पुष्टयै नमः—ॐ ह्री ज्ञानायै नमः—इसके पश्चात् "ॐ क्रियायै नमः"—ॐ नालाय नमः—ॐ रु धर्माय नमः— ॐ रु ज्ञानाय वै नमः—ॐ वैराग्याय नमः—ॐ वै अधर्माय नमः—ॐ रु अज्ञानाय वै नमः—ॐ, अवैराग्याय नमः—ॐ अनैश्वर्याय नमः—इन उपर्युक्त मन्त्रों से ज्ञान, क्रिया पुष्टि, नाल, धर्म, वैराग्य, अधर्म, अज्ञान अवैराग्य और अनैश्वर्य का यजन मन्त्रों को पढ़ते हुए करना चाहिए। ॥८ से ११ तक॥

> हू रू वाचे हू रू च रागिण्यै हू रू ज्वालिन्यै ततो नमः ।
> ॐ ह्रौं शमायै च नमो हू रू ज्येष्ठायै ततो नमः ॥१२
> ॐ ह्रौं रौं क्रौं नवशक्त्यै गौं च गौर्यासनाय च ।
> गौं गौरीमूर्तये नमो गौर्या मूलमथोच्यते ॥१३
> ह्रां स, महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः ॥१४
> ॐ गा हू रू ह्री शिवो गू स्याच्छिखायै कवचाय च ।
> गो नेत्राय च गोम्, अस्त्राय ॐ गो विज्ञानशक्तये ॥१५
> ॐ गू क्रियाशक्तये नमः पूर्वादौ शाकादिकान् ।
> ॐ सु सुभगाय नमो ह्री बीजललिता ततः ॥१६
> ॐ ह्री कामिन्यै च नमः ॐ हू रू स्यात्कामशालिनी ।
> मन्त्रं गौरी प्रतिष्ठाप्य प्राच्यं जप्त्वाऽथ सर्वभाक् ॥१७

इसके अनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रों से यजन करे—"ॐ हू वाचे नमः—ॐ हू रागिण्यै नमः—ॐ हू ज्वालिन्यै नमः—ॐ ह्रौं शमायै नमः—ॐ हू ज्येष्ठायै नमः—ॐ ह्रौं रौं क्रौं नव शक्त्यै नमः—ॐ गौं गौर्यासनाय नमः—ॐ गौं गौरी मूर्त्तये नमः"। इन उपर्युक्त मन्त्रों के द्वारा वाक्-रागिणी आदि का यजन करे। अब गौरी के मूल को बताया जाता है। इसके मन्त्र निम्नलिखित हैं—"ॐ ह्रा स, महागौरि रुद्रदयिते स्वाहा गौर्यै नमः"। ओङ्कार

लगा कर 'गा ह्रूं, ह्रीं'—ये बीज शिव के लिये हैं। 'गूं'—यह बीज शिखा और कवच के लिये होता है। नेत्र मन्त्र और विज्ञान शक्ति के लिये 'गौं'—यह बीज आता है। मन्त्रों के आकार 'ॐ यूं शिखायै नमः'—इसी भाँति हो जायेंगे। 'ॐ गूं क्रिया शक्तये नमः "पूर्वादि दिशाओं में दिशाओं के स्वामी शक्र आदि का यजन करना चाहिए। इसके पश्चात् ॐ सुं सुभगायै नमः—ॐ ह्रीं बीज लतायै नमः—ॐ ह्रौं कामिन्यै नमः—ॐ ह्रूं कामशालिन्यै नमः—इन उक्त मन्त्रों के द्वारा यजन करना चाहिए। मन्त्रों से गौरी की प्रतिष्ठा करके अर्चन करे और जप करे। इस सब विधान के करने का यह फल होता है कि मनुष्य को सभी पदार्थों की प्राप्ति हो जाया करती है ॥ १७ ॥

१४७—सूर्यप्रतिष्ठाविधिः

वक्ष्ये सूर्यप्रतिष्ठां च पूर्ववन्मण्डपादिकम् ।
स्नानादिकं च सपाद्य पूर्वोक्तविधिना ततः ॥१
विद्यामासनशय्यायां साङ्गं विन्यस्य भास्करम्
शितत्त्वं विन्यसेत्तत्र स स्वरं खादिपञ्चकम् ॥२
शुद्धयादि पूर्ववत्कृत्वा पिण्डीं सशोध्य पूर्ववत् ।
सदेशपदपर्यन्तं विन्यस्य तत्वपञ्चकम् ॥३
शक्त्या च सर्वतोमुख्या सस्थाप्य विधिवत्ततः ।
स्वाणुना विधिवत्सूर्यं शक्त्यन्तं स्थापयेद्गुरुः ॥४
स्वाम्यन्तमथ वाऽऽदित्यं पादान्तं नाम धारयेत् ।
सूर्यमन्त्रास्तु पूर्वोक्ता द्रष्टव्याः स्थापनेऽपि च ॥५

इस अध्याय में सूर्य की प्रतिष्ठा करने का विधान बतलाया जाता है। श्री ईश्वर बोले—अब हम भगवान् भास्कर देव की प्रतिष्ठा को बतलाते हैं। पहिले अन्य देवों की प्रतिष्ठा में जो मण्डप आदि का क्रम बतलाया जा चुका है वैसे मण्डप आदि इसमें भी बनाने चाहिए। कि पहिले विधि बताई जा चुकी है उसी से यहाँ भी करना चाहिए ॥ १ ॥ इसके पश्चात् विद्या को और आसन शय्या में अङ्गों के सहित भगवान् भास्कर का विन्यास करे। वहाँ पर स्वर

सहित आदि पञ्चक विन्यास का विन्यास करना चाहिए ॥ २ ॥ पहिले के ही शुद्धि आदि सम्पूर्ण क्रिया कलाप करे और पूर्ववत् पिण्डी का नशोधन करे। सहेश से पद पर्यन्त पाँचों तत्त्वों का विन्यास करे ॥ ३ ॥ फिर शक्ति के द्वारा विधि पूर्वक सर्वतोमुख्य महापाशित करने चाहिए। गुरु को चाहिए कि हृदीय मन्त्र से विधि विधान के साथ शक्ति के अन्त तक भगवान् सूर्य की स्थापना करे ॥ ४ ॥ अथवा स्थाम्बन्त आदित्य को स्थापित करे और पाद के अन्त तक नाम धारण करना चाहिए। भगवान् सूर्य देव के जो मन्त्र हैं वे पहिले कह दिये गये हैं उन्हें ही देख लेना चाहिए और स्थापना करने में भी उनका ही प्रयोग करे ॥ ५ ॥

१४८—द्वारप्रतिष्ठाविधिः

द्वाराश्रितप्रतिष्ठाया वक्ष्यामि विधिमध्यय ।
द्वाराङ्गाणि कषायाद्यैः संस्कृत्य शयने न्यसेत् ॥१
मूलमध्याग्रभागेषु ब्रयमात्मादिसेश्वरम् ।
विन्यस्य स निवेश्याग हुत्वा जप्त्वाऽस्त्र स्पृशेत् ॥२
द्वारादयो यजेद्वास्तु तत्रैवानन्तमन्त्रत ।
रत्नादिप चक न्यस्य शान्तिहोम विधाय च ॥३
यवमिद्धायकाक्रान्ता ऋद्धिवृद्धिमहातिला ।
गोमृत्सर्षपराभेन्द्रमोहनलक्ष्मणामृता ॥४
रोचनारुग्वचो दूर्वा प्रासादाघश्च पोटलीम् ।
प्रक्षाल्योदुम्बरे बद्ध्वा रक्षार्थं प्रणवेन तु ॥५
द्वारमुत्तरत किंचिदाश्रित सन्निवेशयेत् ।
आत्मतत्त्वमधो न्यस्य विद्यातत्त्व च शाखयो ॥६
शिवमाकाशदेशे च व्यापक सर्वमण्डले ।
ततो महेशनाथ च विन्यसेन्मूलमन्त्रत ॥७
द्वाराश्रितांश्च तन्त्रादीन्त्रदयुक्तं स्वनामभि ।
जुहुयाच्छतमर्ध वा द्विगुण शक्तितोपवा ॥८

न्यूनादिदोषमोक्षार्थं हेतितो जुहुयाच्छतम् ।
दिग्बलि पूर्ववद्दत्वा प्रदद्याद्दक्षिणादिकम् ॥६

इस अध्याय में द्वार की प्रतिष्ठा करने की विधि का वर्णन किया जाता है। श्री ईश्वर ने कहा—द्वार को भाश्रित प्रतिष्ठा की विधि को अब हम बतलाते हैं। द्वार के अङ्गों को कषाय आदि के द्वारा संस्कार करके फिर शयन (शय्या) में न्यास करना चाहिए ॥ १ ॥ मूल भाग मध्य भाग और अग्रभाग में ईश्वर के सहित आत्मादि त्रय का (तीनों) का विन्यास करे फिर सन्निवेश करके हवन करे और जप करना चाहिए। द्वार के पश्चात् वहाँ पर ही अनन्त मन्त्र से वास्तु का यजन करे। रत्नादि पाँचों का न्यास करके शान्ति होम करे। ॥ २ ॥ ३ ॥ यवों और सिद्धार्थकों से आक्रान्त ऋद्धि-वृद्धि, महातिल, गोमूत्र सर्षप, रागेन्द्र मोहनी, लक्ष्मणा, अमृता, रोचना रग्, वच, दूर्वा इनको प्रासाद के नीचे पोटली बनाकर उदुम्बर (गूलर) में प्रणव के द्वारा रक्षा करने के लिये बाँधे ॥ ४ ॥ ५ ॥ उत्तर की ओर द्वार को कुछ आश्रित बनाकर सन्निवेशित करें नीचे की ओर आत्म तत्त्व का न्यास करना चाहिए और दोनों शाखाओं में विद्या तत्त्व का विन्यास करे ॥ ६ ॥ सम्पूर्ण मण्डल में व्यापक रहने वाले शिव का आकाश देश में न्यास करे। इसके अनन्तर मूल मन्त्र के द्वारा भगवान् महेश नाथ का विन्यास करना चाहिए। द्वार पर आश्रित जो तल्प (शय्या) आदि हैं उनको घृत युक्त अपने नामों से एक सौ बार आहुतियाँ देवे अथवा अर्ध भाग की आहुतियाँ देवे किम्वा शक्ति के अनुसार दुगुनी आहुतियाँ देनी चाहिए। न्यूनता आदि जो दोष इस प्रतिष्ठापन कर्म के करने में बन गये हों उनसे छुटकारा पाने के लिये हेति से सौ बार आहुतियाँ देवे। इसके उपरान्त पूर्वोक्त क्रम के अनुसार दिशाओं को बलि देवे और दक्षिणा आदि को प्रदान करना चाहिए जिससे कर्म की पूर्ण सम्पन्नता हो जावे ।.६॥

१४६—प्रासादप्रतिष्ठा ।

प्रासादस्थापनं वक्ष्ये तच्चैतन्यसुयोगतः ।
शुकनाशासमाप्तौ तु पूर्ववेद्याश्च मध्यतः ॥१

आधारशक्तितः पद्मे विन्यस्ते प्रणवेन च ।
स्वर्णाद्येकतमोद्भूत पञ्चगव्येन सयुतम् ॥२
मधुक्षीरयुत कुम्भ न्यस्तरत्नादिपञ्चकम् ।
सवस्त्र गन्धलिप्त च गन्धवत्पुष्पधूपितम् ॥३
चूतादिपल्लवाना च कृतौ कृत्य च विन्यसेत् ।
पूरकेण समादाय सकलीकृतविग्रह ॥४
सर्वात्माभिन्नमात्मान स्वाणुना स्वान्तमारुत ।
आज्ञायाऽऽरोपयेच्छम्भौ रेचकेन ततो गुरु ॥५
द्वादशान्तात्समादाय स्फुरद्वन्हिकणोपमम् ।
निक्षिपेत्कुम्भगर्भे च न्यस्ततन्त्रातिवाहिकम् ॥६
विग्रह तद्गुणाना च बोधक च कलादिकम् ।
क्षान्त वागीश्वर तत्तु प्रात तत्र निवेशयेत् ॥७

इस अध्याय में अब प्रासाद की प्रतिष्ठा का वर्णन किया जाता है । श्री ईश्वर ने कहा—हम इस समय प्रासाद की स्थापना को बतलाते है और वह चैतन्य के सुयोग से शुकनास की समाप्ति मे पदवेदी के मध्य से आधार शक्ति द्वारा विन्यास किये गये पद्म मे प्रणव के द्वारा स्वर्ण आदि धातुओं में से किसी भी एक धातु से निर्मित हो और पञ्चगव्य से समन्वित होना चाहिए ॥१॥२॥ जो वहाँ पर कुम्भ (कलश) हो वह मधु और क्षीर (दूध) से युक्त होना चाहिए जिसमें रत्नादि पाँचो का विन्यास किया गया हो । वह वस्त्र से समाच्छादित, गन्ध से प्रलिप्त तथा गन्ध मे समन्वित एव पुष्प तथा धूप से युक्त करे ॥ ३ ॥ जो कुशल साधक हो उसको चाहिए कि आम्र आदि माङ्गलिक पल्लवों के कृत्य को वहाँ विन्यस्त करे । विग्रह का सकलीकरण करके पूरक के द्वारा समादान करे ॥ ४ ॥ अपने मन्त्र से सर्वात्मा मे अभिन्न अपनी आत्मा को समझे और स्वान्त वायु को गुरु का कर्त्तव्य है कि आज्ञा से आरोपित करे और फिर शम्भु मे रेचक करे ॥ ५ ॥ द्वादश के अन्त तक उसे लाकर स्फुरित अग्नि के कण के समान कुम्भ के मध्य में निक्षिप्त करना चाहिए । तन्त्रातिवाहिक का न्यास किया है ऐसे विग्रह को और उसके गुणों के ज्ञापक कलादिक को वहाँ

पर गात (सुरक्षित) परम क्षान्त वागीश्वर का निवेश करना चाहिए ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥

दश नाडीर्दश प्राणानिन्द्रियाणि त्रयोदश ।
तदधिपांश्च सयोज्य प्रणवाद्यैः स्वनामभि ॥८
स्वकार्यकारणत्वेन मायाकाशनियामिका ।
विद्येशान्प्रेरकाञ्छम्भु व्यापिन च सुस्वरैः ॥९
अङ्गानि च विनिक्षिप्य निरुन्ध्याद्रोधमुद्रया ।
सुवर्णाद्युद्भव यद्वा पुरुष पुरुषानुगम् ॥१०
पञ्चगव्यकषायाद्यैः पूर्ववत्संस्कृत तत ।
शय्याया कुम्भमारोप्य ध्यात्वा रुद्रमुमापतिम् ॥११
तस्मिंश्च शिवमन्त्रेण व्यापकत्वेन विन्यसेत् ।
सन्निधानाय होम च प्रोक्षण स्पर्शन जपम् ॥१२
सान्निध्यबोधन सर्व भागत्रयविभागत ।
विधायैव प्रकुर्यन्ते कुम्भे त विनिवेशयेत् ॥१३

दश ना ड्यों, दश प्राण, त्रयोदश इन्द्रियाँ और उनके अधिप (स्वामी) इन सबका प्रणवादि के द्वारा अपने नामों से सयोजन करे ॥ ८ ॥ अपने कार्य का कारण रूप होने से मायाकाश के नियामिकों को, विद्येश प्रेरकों को सवत्र व्यापक रहने वाले भगवान् शम्भु को और सुस्वरो से अङ्गों को विनिक्षिप्त कर रोध की मुद्रा से निरोध करना चाहिए। सुवर्ण आदि से समुत्पन्न यद्वा पुरुष के अनुगमन करने वाले पुरुष को जो कि पूर्व की भांति पञ्चगव्य और कषाय आदि के द्वारा सस्कार समाप्त किया गया हो शय्या मे कुम्भ को समारोपित कर उमा के स्वामी भगवान् रुद्र का ध्यान करना चाहिए ॥ ९॥१० ॥ ॥ ११ ॥ उसमें व्यापकत्व रूप से शिव मन्त्र के द्वारा विन्यास करे। सन्निधान करने के लिये होम प्रोक्षण, स्पर्शन, जप तथा सान्निध्य का बोधन इस सबका तीन भाग के विभाग से विधान करके प्रकुर्यन्त कुम्भ मे उसको विनिवेशित करना चाहिए ॥ १२ ॥ १३ ॥

१५०—दष्टचिकित्सा

मन्त्रध्यानौषधैर्दष्टचिकित्सां प्रवदामि ते ॥१
ॐ नमो भगवते नीलकण्ठायेति ॥२
जपनाद्विषहानिः स्यादौषधं जीवरक्षणम् ।
साज्यं सक्षुद्रसं पेयं द्विविधं विषमुच्यते ॥
जङ्गमं सर्पमूषादि शृङ्ग्यादि स्थावरं विषम् ।
शान्तस्वरान्वितो ब्रह्मा लोहितस्तारकः शिवः ॥३
वियतैर्नाममन्त्रोऽयं तार्क्ष्यः शब्दमयः स्मृतः ॥४
ॐ ज्वल महामते हृदयाय, गरुडविराल शिरसे, गरुड
विषभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन वित्रासय वित्रासय विमर्दय
विमर्दय कवचाय, अप्रतिहतशासन हूं फट्, अस्त्राय,
उग्ररूपधारक सर्वभयङ्कर भीषय भीषय सर्वं दह दह
भस्मी कुरु कुरु स्वाहा नेत्राय सप्तवर्गान्तियुग्माष्टदिग्दल-
स्वर केशरादिवर्णाढ्य वह्निराभूतकर्णिक मातृकाम्बुजम् ॥५
कृत्वा हृदिस्थं तन्मन्त्रो वामहस्ततले स्मरेत् ।
अंगुष्ठादौ न्यसेद्वर्णान्वियतैर्भेदिना कला ॥६
पीतं वज्रचतुष्कोणं पार्थिवं शक्रदैवतम् ।
वृत्तार्धमाप्यपद्मार्धं शुक्लं वरुणदैवतम् ॥७
त्र्यस्त्रं स्वस्तिकयुक्तं च तैजसं वह्निदैवतम् ।
वृत्तं बिन्दुवृत्तं वायुदैवतं कृष्णमालिनम् ॥८

इस अध्याय में दष्ट चिकित्सा का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—अब हम तुमको मन्त्र ध्यान और औषधों के द्वारा दष्ट की चिकित्सा बतलाते हैं। "ओं नमो भगवते नील कण्ठाय"—इस मन्त्र के जाप करने से विष की हानि हो जाती है। औषध जीव की रक्षा करने वाली होती है। घृत के साथ क्षुद्र रस पीना चाहिए। द्विविध विष कहा जाता है। सर्पमूषादि का विष जङ्गम और शृङ्ग्यादि का विष स्थावर विष कहलाता है। शान्त स्वरान्वित

ब्रह्मा लोहित तारक शिव, यह शब्दमय तार्क्ष्य वियति का मन्त्र है ॥१ से ४ तक॥ मन्त्र का स्वरूप—"ओं ज्वल महामते हृदयाय, गरुड विराल शिरसे, गरुड शिखायै, गरुड विषभञ्जन प्रभेदन प्रभेदन विद्रासय विद्रासय विमर्दय विमर्दय कवचाय, अप्रतिहत शासन हूं फट्, अस्त्राय, उग्ररूपधारक सर्वभयङ्कर भीषय भीषय सर्वं दह दह भस्मी कुरु कुरु स्वाहा नेत्राय" सात वर्ग (क्वर्ग से आरम्भ कर इकारान्त तक) के युग्म आठ दिशाओं के दलों में और केसरों में स्वर वर्णों से रुद्र वहिराभूत कर्णिका वाले मातृ का कमल का मन्त्र ज्ञाता अपने हृदयस्थ करे और वाम हस्त के दल में स्मरण करना चाहिए। अंगुष्ठ आदि में वर्णों का न्यास करे। ये वियति की भेदित कलाऐं हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ पीत वज्र चतुष्कोण वाला पार्थिव और शक्र देव वाला वृत्त का अर्ध भाग है और आप्य पद्म का अर्ध भाग वुरुन तथा वरुण देवता वाला है। त्रिकोण स्वस्तिक (सांथिया) से युक्त तैजस और वह्नि देवता वाला है। कृत बिन्दु से वृत कृष्णमाली तथा वायु के देवता वाला होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

अंगुष्ठाद्यंगुलीमध्यपर्वस्तेषु स्ववेश्मसु ।
सुवर्णानागवाहेन वेष्टितेषु न्यसेत्क्रमात् ॥९
वियतेश्चतुरो वर्णान्सुमण्डलसमत्विषः ।
अरूपे स्वतन्माने आकाशे शिवदैवते ॥१०
कनिष्ठामध्यपर्वस्थे न्यसेत्तस्याऽद्यमक्षरम् ।
नागानामादिवर्णांश्च स्वमण्डलगतान्न्यसेत् ॥११
भूतादिवर्णान्विन्यसेद गुष्ठाद्यन्तपर्वसु ।
तन्मात्रादिगुणान्वर्णानंगुलीषु न्यसेद् बुधः ॥१२
स्पर्शनादेव तार्क्ष्येण हस्ते हन्याद्विषद्वयम् ।
मण्डलादिषु तान्वर्णान्वियतेः कवयो जितान् ॥१३
अंगुष्ठाद्यंगुलिभिर्देहनाभिस्थानेषु पर्वसु ।
आ जानुतः सुवर्णाभमा नाभेस्तुहिनप्रभम् ॥१४
कुंकुमारुणमा कण्ठादाकेशान्तादिमतेतरम् ।
ब्रह्माण्डव्यापिन तार्क्ष्यं चन्द्राख्य नागभूषणम् ॥१५

नीलाभ्रनासमात्मान महापक्ष स्मरेद्बुध ।
एवं तार्क्ष्यात्मनो वाक्यान्मन्धः स्मान्मन्त्रिणो विषे ॥१६

अ गुष्ठ आदि अ गुली मध्य के पर्वस्त स्ववेदशो मे जो सुवर्ण नाम वाह से वेष्टित हो क्रम से न्यास करना चाहिए ॥ ६ ॥ भूमण्डल के समान कान्ति वाले विपर्यंत के चार वर्णों को बिना रूप वाले अपनी तन्मात्रा आकाश मे जिसका देवता शिव है कनिष्ठिका के मध्य पर्व मे स्थिति वाले उसके साथ अक्षर का न्यास करना चाहिए । नागो के आदि वर्णों को स्वमण्डलगतो का न्यास करे ॥ ६ ॥ १० ॥ ११ ॥ अ गुष्ठादि के अग्र के पर्वों में भूतादि वर्णों का न्यास करना चाहिए । तन्मात्रादि गुणास्पदों को अ गुलियों मे न्यास करे । ॥ १२ ॥ तार्क्ष्य मन्त्र के द्वारा हस्त में स्पर्श करने से ही दोनो प्रकार के विषो का हनन करना चाहिए । अब योजित विपति के मण्डलादि मे उन वर्णों का न्यास करे ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ दो अ गुलियो से देह न भि स्थानो में पर्वों मे जानु पर्यन्त सुवर्ण की आभा वाले को, नाभि पर्यन्त तुहिन की आभा से युक्त को कण्ठ पर्यन्त कुकुम की आभा वाले को और केशान्त पर्यन्त सित से अन्य की आभा वाले को, ब्रह्माण्ड व्यापी तार्क्ष्य चन्द्र नाम वाले नागभूषण,नीलाभ्र नासा वाले महा पक्ष आत्मा का बुध के द्वारा स्मरण करना चाहिए । इस प्रकार से तार्क्ष्या मा मन्त्र के वाक्य से विष मे अन्धा हो जाता है ॥१४॥१५॥१६॥

मुष्टिस्ताक्ष्यकरस्यान्त स्थिताङ्गुष्ठविषापहा ।
तार्क्ष्य हस्त समुद्यम्य तदग्राङ्गुलिचालनात् ॥१७
कुर्याद्विषस्य स्तम्भादीस्तदुक्तमदवीक्षया ।
आकाशादेव भूर्बीज पञ्चार्णाधिपतिर्मनु ॥१८
सस्तम्भयेऽतिविषतो भाषया स्तम्भयेद्विषम् ।
व्यत्यस्तभूषणो बीजमन्त्राद्य साधुसाधितः ॥१९
सप्लवप्लावयमशब्ददाद्य सहरेद्विषम् ।
दण्डमुत्थापयेदेष सुजलाम्भोभिषेकत ॥२०
सुजलशङ्खभेर्यादिनिस्वनश्रवणेन वा ।
सदहत्येव सयुक्तो भूतेजोव्यत्ययास्थित ॥२१

भूवायुव्यत्ययान्मन्त्रो विषं संक्रामयत्यसौ ।
अन्तस्थो निजवेदमस्थो बीजाग्नीन्दुजलाम्बुभिः ॥२२
एतत्कर्म नयेन्मन्त्री गरुडाकृतिविग्रहः ।
तार्क्ष्यवरुणगेहस्थस्तज्जपान्नशयेद्विषम् ॥२३
जानुदण्डीगुदितं स्वधाश्रीबीजलाञ्छितम् ।
स्नानपानात्सर्वविष ज्वरा रोगापमृत्युजित् ॥२४

तार्क्ष्य कर की अन्तःस्थिति मुष्टि अंगुष्ठ विष के अपहरण करने वाली होती है। तार्क्ष्य में हाथ को समुद्यत करके उसकी पाँचो अंगुलियों के चालन करने से विष का स्तम्भन आदि किया जाता है अद्बीक्षा से यह कहा गया है। आकाश से यह भू बीज वाला पाँच वर्णों का अधिपति मन्त्र होता है ॥१७॥ ॥१८। अति विष से संस्तम्भन करने के लिये भाषा से विष का स्तम्भन करना चाहिए। भली प्रकार की साधना से साधित यह व्यत्यस्त भूषण वाला बीज मन्त्र है ॥ १६ ॥ 'सप्लव प्लावम्'—यह आदि में जिसके शब्द हैं वह विष का संहरण करता है। 'दण्डमुत्थापयेत्'—यह भली-भाँति जाप करके जल के अभिषेक से सहार करता है ॥ २० ॥ भली-भाँति जप किया हुआ दाह्न भेरी आदि की ध्वनि के श्रवण द्वारा भूतेजो व्यत्य से स्थित एव सयुक्त अच्छी तरह दहन कर ही देता है ॥ २१ ॥ भू और वायु के व्यत्यय करने से यह मन्त्र विष का संक्रामण कर देता है। अन्तस्थ और निजवेश्म में स्थित बीज, अग्नि इन्दु, जल और अम्बु के द्वारा गरुड की आकृति विग्रह वाला मन्त्री यह कर्म करे। तार्क्ष्य, वरुणगेहस्थ उसके जप से विष का नाश करे ॥ २२ ॥ २३ ॥ जानु दण्डी गुदित और स्वधा श्री बीज से लाञ्छित समस्त प्रकार के विष का स्नान एव पान से नाश करे और स्वर रोग तथा अपमृत्यु का जीतने वाला होता है ॥२४॥

पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि वि वि स्वाहा ।
पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा ॥२५
द्वावेतौ पक्षिराण्मन्त्रौ विषघ्नावभिमन्त्रणात् ॥२६

पक्षिराजाय विद्महे पक्षिदेवाय धीमहि ।
तन्नो गरुड प्रचोदयात् ॥२७
वन्हिस्थौ पार्श्वपूर्वौ दन्तश्चैकौ च दण्डिनौ ।
सकान्ती लाङ्गली चेति नीलकण्ठाद्यमीरितम् ॥
वक्ष कण्ठाशाखावेत न्यसेत्स्तम्भे सुसस्कृतौ ॥२८
हर हर हृदयाय नम कपर्दिने च शिरसि ।
नीलकण्ठाय वै शिखा कालकूटविपभक्षणाय स्वाहा ॥२९
अथ वर्म च कण्ठे नेत्र कृत्तिवासास्त्रिनेत्रम् ।
पूर्वाद्यैरानर्मुक्त श्वेतपीतारुणासितै ॥३०
अभय वरद चाप वासुकि च दधद्भजै
यस्योपवीतपार्श्वस्था गौरी रुद्रोऽस्य देवता ॥३१
पादजानुगुह्यनाभिहृत्कण्ठाननमूर्धसु ।
मन्त्रार्णान्विन्यस्य करयोरंगुष्ठाद्यङ्गुलीषु च ॥३२
तर्जन्यादितदन्तासु सर्वमगुष्ठयोर्न्यसेत् ।
ध्यात्वैव सहरेत्क्षिप्र बद्धया शूलमुद्रया ॥३३
कनिष्ठा ज्येष्ठया बद्धा तिस्राऽन्या प्रसृतेर्जवा
विषनाशे वामहस्तमन्यस्मिन्दक्षिणे करम् ॥३४
ॐ नमो भगवते नीलकण्ठाय चि , अमलकण्ठाय चि. ।
सर्वज्ञकण्ठाय चि , क्षिप क्षिप, ॐ स्वाहा ।
अमलनीलकण्ठाय नैकसर्वविषापहाय ।
नमस्ते रुद्र मन्यव इति समार्जनाद्विष विनश्यति न सदेह ।
कर्णजाप्या उपानहा वा ॥३५
यजेद्रुद्रविधानेन नीलग्रीव महेश्वरम् ।
विषव्याधिविनाश स्यात्कृत्वा रुद्रविधानकं ॥३६

'पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि वि वि स्वाहा'—पक्षि पक्षि महापक्षि महापक्षि क्षि क्षि स्वाहा'—ये दो पक्षि राट् के मन्त्र हैं। इनके अभिमन्त्रण करने से विष का हनन होता है। 'पक्षिराजाय विद्महे पक्षि देवाय धीमहि।

तन्नो गरुड प्रचोदयात्" यह मन्त्र गरुड का है। वह्निस्थ, पार्श्वस्पूर्व, दन्तश्रोको दण्डी सकाली और लाङ्गली यह नील कण्ठादि उच्चारण करके पक्ष, कण्ठ, शिखा श्वेत को सुसस्कृत करके स्तम्भन मे न्यास करे। हर हर हृदयाय नम कपर्दिने शिरसि, नीलकण्ठाय शिखा, कालकूट विष भक्षणाय स्वाहा—इस विधि से न्यास करना चाहिए ।।२५ से २८ तक।। इसके अनन्तर कण्ठ में वर्म, नेत्र, व्याघ्र चर्म के वस्त्र वाले, त्रिनेत्र पूर्वादि आननों (मुखो) से युक्त जो कि श्वेत पीत और अरुण हैं। अभय, वरद (वरदान देने वाले) चाप और वासुकि को भुजाओं मे धारण करने वाले, जिसके उपवीत के पार्श्व में गौरी स्थित है, रुद्र जिसके देवता हैं। मन्त्र के वर्णों को पाद, जानु (घुटना), गुह्य नाभि, हृदय कण्ठ, मुख और मस्तक में विन्यास करे। इसके अनन्तर दोनो हाथो के अगुष्ठ आदि अँगुलियो मे न्यास करे ।।३०।।३१।।३२।। तर्जनी से आदि लेकर उसके आगे समस्त अँगुलियो मे और फिर सबका दोनों अगुष्ठो में न्यास करना चाहिए। इस प्रकार से ध्यान करके शीघ्र ही वद्ध शूल की मुद्रा से उसका सहार करे ।।३३।। कनिष्ठा को ज्येष्ठा के साथ वद्ध करे और अन्य तीन को प्रभृति से जोड दे। विष के नाश में बाँये हाथ को और अन्य कार्य में दाहिने हाथ को काम मे लावे। मन्त्र—ओं नमो भगवते नीलकण्ठाय चि, अमृतकण्ठाय चि, सर्वज्ञ कण्ठाय चि, क्षिप क्षिप, ॐ स्वाहा। अमल नील कण्ठाय नैक सर्व विषापहाय। नमस्ते रुद्र मन्यवे' इस मन्त्र से समार्जन करने से विष का निश्चय ही विनाश हो जाता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वर्ण जाप है अथवा उपानह के द्वारा जप के योग्य है। रुद्र के विधान से इस प्रकार से महेश्वर नीलग्रीव का यजन करे। रुद्र के विधान करने वाले का विष और व्याधि का विनाश होता है ।।३४।।३५।।३६

१५१—पंचाङ्गरुद्रविधानम्

वक्ष्ये रुद्रविधान तु पञ्चाङ्ग सर्वद परम्।
हृदय शिवसकल्प शिर सूक्त तु पौरुषम् ।।१

शिखाऽस्य सभृत सूक्तमायु कवचमेवच ।
शतरुद्रीयसजप्य रुद्रस्याङ्गानि पञ्च हि ॥२

पञ्चाङ्गान्यस्य त ध्यात्वा जपेद्रुद्रास्नत क्रमात् ।
यज्जाग्रत इति सूक्त षड्च मानस विदु ॥३

ऋषि स्याच्छिवसकल्पश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
शिर सहस्रशीर्षेति तस्य नारायणोऽप्यृषि ॥४

देवता पुरुषोऽनुष्टुप्छन्दो ज्ञेय च त्रैष्टुभम् ।
अद्भ्य सभृतसूक्तस्य ऋषिरुत्तरगो नरः ॥५

आद्याना तिसृणा त्रिष्टुप्छन्दोऽनुष्टुब्द्वयोरपि ।
छन्दस्त्रैष्टुभमन्त्याया पुरुषोऽस्यास्ति देवता ॥६

आशुरिन्द्रो द्वादशाना छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ।
ऋषि प्रोक्त प्रतिरथ सूक्ते सप्तदशात्मके ॥७

पृथक्पृथग्देवता स्यु पुरुविदङ्गादेवता ।
अवशिष्टे व्रतेषु च्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥८

इस अध्याय म पञ्चाङ्गरुद्र का विधान बतलाया जाता है । श्री अग्नि देव ने कहा—अब मैं पाँच अङ्गो वाला रुद्र का विधान बतलाता हूँ जो सब कुछ देने वाला और परम श्रेष्ठ है । हृदय शिव सङ्कल्प है शिर पुरुष सूक्त है आयु कवच है । इस प्रकार से शत रुद्रीय सज्ञा वाले रुद्र के ये पाँच अङ्ग होते हैं । ॥१॥२॥ इनके इन पाँचो अङ्गो का ध्यान करके इसके अनन्तर क्रम से रुद्रो का जाप करना चाहिए । यज्जाग्रत इत्यादि सूक्त है । यह छै ऋचाओं वाला मानस जानना चाहिए ॥३॥ इसके शिव सङ्कल्प ऋषि हैं और अनुष्टुप् छन्द कहा गया है । सहस्र शीर्षा —यह इनका शिर है और उसके नारायण भी ऋषि हैं ॥४॥ पुरुष देवता है और अनुष्टुप् तथा त्रैष्टुप् छन्द हैं । अद्भ्य अर्थात् जलो से सभृत सूक्त के ऋषि उत्तर मे गमन करने व ले नर हैं ॥५॥ आदि मे होने वाले तीनो त्रिष्टुप छन्द हैं और दोनो के अनुष्टुप् हैं । अन्तिम ऋचा का छन्द त्रैष्टुभ है । इसके देवता पुरुष हैं ॥६॥ बारहों के आशु इन्द्र हैं

और छन्द त्रिष्टुप् बताया गया है । प्रतिरथ इनके ऋषि कहे गये हैं । इस प्रकार से सत्रह ऋचाओं वाला सूक्त है । ॥ ७ ॥ पृथक् २ मन्त्र देवता हैं । अवशिष्ट देवतावालो मे अनुष्टुप् छन्द बताया गया है ॥८॥

असौ यस्ताम्रो भवति पुरुलिङ्गोक्तदेवता ।
पङ्क्तिश्छन्दोऽथ मर्माणि त्रिष्टुब्लिङ्गोक्तदेवता• ॥९
रौद्राध्याये च सर्वस्मिन्नृषि स्यात्परमेष्ठ्यथ ।
प्रजापतिर्वा देवाना कुत्सश्च तिसृणां पुन ॥१०
मनोर्द्वयो रुगेका स्याद्द्वौ रुद्राश्च देवता ।
आद्योऽनुवाकोऽथ पूर्वं एकरुद्राख्यदैवत ॥११
छन्दो गायत्रमाद्याया अनुष्टुप्तिसृणामृचाम् ।
तिसृणा च तथा पङ्क्तिरनुष्टुबथ सस्मृतम् ॥१२
द्वयोश्च जगतीछन्दो रुद्राणामप्यशीतय ।
हिरण्यबाहवस्तिस्रो नमो व किरिकाय च ॥१३
पञ्चर्चो रुद्रदेवा स्युर्मन्त्रे रुद्रानुवाकक ।
विशके रुद्रदेवास्ता प्रथमा बृहती स्मृता ॥१४
ऋग्द्वितीया त्रिजगती तृतीया त्रिष्टुबेव च ।
अनुष्टुभा यजुस्तिस्र आर्योऽभिज्ञ सुसिद्धिभाक् ॥१५
त्रैलोक्यमोहनेनापि विषव्याध्यादिमर्दनम् ॥१५

जो यह ताम्र होता है उसका पुरुलिङ्ग उक्त देवता होता है । पंक्ति छन्द और त्रिष्टुप् लिङ्ग उक्त देवता हैं ॥ ९ ॥ समस्त रौद्राध्याय मे परमेष्ठी ऋषि और तीन देवताओ मे प्रजापति तथा कुत्स हैं ॥ १० ॥ दो मन्त्रो की एक ही रक् है और रुद्र तथा बहुत से रुद्र देवता हैं । प्रथम अनुवाक और इसके अनन्तर एक रुद्र नाम वाला देवता है ॥ ११ ॥ आद्यऋचा का छन्द गायत्र है और तीन ऋचाओं का छन्द अनुष्टुप् होता है । तथा तीन का पंक्ति और अनन्तर मे अनुष्टुप् बताया गया है ॥ १२ ॥ दो का जगती छन्द है, रुद्रो के भी अशीति हैं । तीन हिरण्यबाहव हैं और नमो व किरिकाय ये पाँच ऋचाऐं

रुद्र देव वाली है। मन्त्र मे रुद्र का अनुवाक् है। विराक मे रुद्र देव है और प्रथम बृहती कही गई है ॥ १३ ॥ १४ ॥ दूसरी ऋचा त्रिजगती और तृतीया ऋचा त्रिष्टुप् है। तीन यजु अनुष्टुप् हैं और सुसिद्धि भाक् आयं अभिन्न है। त्रैलोक्य के मोहन से भी विष तथा व्याधि आदि का मर्दन करने वाला है ॥ १५ ॥

इ श्री ह्री ह् रु त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नम ।१६
अनुष्टुभनृसिंहेन विषव्याधिविनाशनम् ॥१७
ॐ हम्, इम्, उग्र वीर महाविष्णु ज्वलन्त सर्वतोमुखम् ।१८
नृसिंह भीषण भद्र मृत्युमृत्यु नमाम्यहम् ।
अयमेव तु पञ्चाङ्गो मन्त्र सर्वार्थसाधक ॥१९
द्वादशाष्टाक्षरौ मन्त्रौ विषव्याधिविमर्दनौ ।
कुब्जिका त्रिपुरा गौरी चन्द्रिका विषहारिणी ॥२०
प्रसादमन्त्रो विषहृदायुरारोग्यवर्धन ।
सौरो विनायकस्तद्वद्रुद्रमन्त्रा सदाऽखिला ॥२१

मन्त्र—"इ श्री ह्री ह् त्रैलोक्य मोहनाय विष्णवे नम" यह मन्त्र अनुष्टुप् नृसिंह के द्वारा विष व्याधि का नाशक होता है। "ॐ हम् इम्, उग्र वीर महा विष्णु ज्वलन्त सवतो मुखम् । नृसिंह भीषण भद्रम् मृत्यु मृत्यु नमाम्यहम्"—यह ही पचाङ्ग मन्त्र समस्त अर्थों का अर्थात् कामनाओ को सिद्ध करने वाला है। १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ द्वादश अक्षर वाला और आठ अक्षरो वाला ये दो मन्त्र विष तथा व्याधि के विमर्दन करने वाले होते हैं। कुब्जिका—त्रिपुरा—गौरी और चन्द्रिका विष का हरण करने वाली है ॥ २० ॥ प्रसाद मन्त्र विष हृद अर्थात् विष के हर्त्ता तथा आयु और आरोग्य का बढाने वाला है। सौर—विनायक और इसी भाँति समस्त रुद्र मन्त्र सर्वदा आयु एव आरोग्य के वर्धक होते हैं ॥२१॥

१५२ विषहृन्मन्त्रौषधम् ।

ॐ नमो भगवते रुद्राय च्छिन्द च्छिन्द विष ज्वलितपरशुपाणये ।
नमो भगवते पक्षि रुद्राय दष्टकमुत्थापयोत्थापय दष्टक कम्पय
कम्पय जल्पय जल्पय सर्पदष्टमुत्थापयोत्थापय लल लल बन्ध
बन्ध मोचय मोचय वररुद्र गच्छ गच्छ वध वध त्रुट त्रुट बुक
बुक भीषय भीषय मुष्टिना विष संहर संहर ठ ठ ॥१
पक्षिरुद्रेण ह विष नाशमायाति मन्त्रणात् ॥२
ॐ नमो भगवते रुद्र नाशय विष स्थावरजङ्गम कृत्रिमाकृत्रिम-
मुरविष नाशय नानाविष दष्टकविष नाशय धम धम दम दम
वम वम मेघान्धकारधारावर्ष निर्विषी भव संहर संहर गच्छ
गच्छाऽऽवेशयाऽऽवेशय विषोत्थापनरूप मन्त्राद्विषधारणम् ।
ॐक्षिप, ॐक्षिप, स्वाहा ॐ ह्रा ह्रौ खो स ठ द्रौ ह्री ठः ॥३
जपादिना साधितस्तु सर्पान्विघ्नाति नित्यश ।
एकद्वित्रिचतुर्बीज कृष्णचक्राङ्कपञ्चक ॥
गोपीजनवल्लभाय स्वाहा सर्वार्थसाधक ॥४
ॐ नमो भगवते रुद्राय प्रेताधिपतये शृणु शृणु गर्ज गर्ज भ्रामय
भ्रामय मुञ्च मुञ्च मुह्य मुह्य, कट्ट कट्ट, आविश आविश, सुवर्ण-
पतङ्ग रुद्रो ज्ञापयति ठठ ॥५
पातालक्षोभमन्त्रोऽय मन्त्रणाद्विषनाशन ।
दशकाहिदशे सर्व दष्ट काष्ठशिलादिना ॥६

इस अध्याय मे विष के हरण करने वाले मन्त्र तथा औषधो का वर्णन किया जाता है । अग्नि देव ने कहा—मन्त्र का स्वरूप—" ओ नमो भगवते रुद्राय छिन्द छिन्द विष ज्वलित परशु पाणये च । नमो भगवते पक्षि रुद्राय दष्टकमुत्थापय–उत्थापय, दष्टक कम्पय २, जल्पय-जल्पय, लल लल, बन्ध-बन्ध मोचय–मोचय, वररुद्र गच्छ–गच्छ, वध–वध, त्रुट–त्रुट, बुक-बुक, भीषण-भीषण मुष्टिना विष सहर सहर, ठठ' । पक्षि रुद्र के द्वारा ह विष

मन्त्रण करने से नाश को प्राप्त होता है ॥ १ ॥ मन्त्र—" ओ नमो भगवते रुद्र नाशय विष स्थावर जङ्गम कृत्रिमा कृतिम मुद्रिश नाशय नाना विषं दहक विषनाशय घम-घम, दम-दम, वम-वम मेघान्धकार धारा वर्ष निर्विषी भव संहर संहर गच्छ गन्च्छावेशयावेशय विषोत्थापन रूप मन्त्राद्रि धारणम् । ॐ क्षिप, ॐ क्षिप स्वाहा ॐ ह्रा ह्रीं क्षों स , ठ ह्रो ह्रीं ठः ॥ ३ ॥ जप आदि के द्वारा साधना किया हुआ मन्त्र नित्य ही सर्पों का बन्धन करता है । एक-दो-तीन और चार बीज वाला तथा कृष्ण चकाङ्क पञ्चक " गोपी जन वल्लभाय स्वाहा "—यह समस्त अर्थों का साधक है ॥ ४ ॥ " ओं नमो भगवते रुद्राय प्रेताधिपतये गृग्गु गृग्गु, गर्ज गर्ज, भ्रामय भ्रामय, मुञ्च मुञ्च, मुह्य मुह्य, कट्ट कट्ट, आविश आविश, सुवर्ण पतङ्ग रुद्रो ज्ञापयति ठ ठ " ॥ ५ ॥ यह पाताल क्षोभ मन्त्र है यह मन्त्रण करने स विष का नाश किया करता है । जो दशक अहि (सर्प) के दश मे काष्ठ शिला आदि के द्वारा सद्यः दष्ट हुआ हो

विषशान्त्यै दहेद् शज्वालकोकनदादिना ।
शिरीषबीजपुष्पार्कक्षीरबीजव टुत्रयम् ॥७
विष विनाशयेत्पानलेपनेनाञ्जनादिना ।
शिरीषपुष्पस्य रसभावित मरिच सितम् ॥८
पाननस्याञ्जनाद्यं श्च विष हन्यान्न सशयः ।
कोपातकीवचाहिङ्गु शिरीषार्कपयोयुतम् ॥९
कटुत्रय समेषाम्भो हरेन्नस्यादिना विषम् ।
रामठेक्ष्वाकुमवाङ्घ्रिचूर्णं नस्याद्विषापहम् ॥१०
इन्द्रवलाग्निक द्रोण तुलसी देविका सहा ।
तद्रसाक्त त्रिकटुक चूर्णं भक्ष्य विषापहम् ॥११
पञ्चाङ्ग कृष्णपञ्चम्या शिरीषस्य विषापहम् ॥१२

विष की शान्ति के लिये श शा ज्वाल कोक नद आदि से दाह कर देना चाहिए । सिरस के बीज पुष्प आक का दूध बीज और कटु त्रय इनके पान-लेपन और अञ्जन आदि से विष का विनाश कराना चाहिए । शिरीष के पुष्प

के रस से सफेद मिर्च को भावित करे। इसके पान और अंजन आदि से विष का हनन होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। कोषातकी-वच-हींग-शिरिष शाक के पत्र से युक्त कटुत्रय—मेष मृग—इनके बनाये हुए नस्य आदि से विष का नाश होता है। रामठ और इक्ष्वाकु का सर्वाङ्ग चूर्ण के द्वारा नस्य देने से विष का अपहरण होता है। इन्द्रवता-मंजिष्ठ-द्रोण-तुलसी—देविका—महा इनके रस से युक्त त्रिकटुक का चूर्ण खाने से विष का नाश होता है। शिरीष का पञ्चाङ्ग (फल—पत्र—पुष्प—छाल और मूल) को कृष्णपक्ष की पञ्चमी में ग्रहण करने से विष का अपहरण होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥ १२ ॥

१५३-गोनसादिचिकित्सा

गोनसादिचित्सा च वशिष्ठ शृणु वच्मि ते ॥१
ॐ ह्रा ह्रीम्, अमलपक्षि स्वाहा ॥२
ताम्बूलखादनान्मन्त्री हरेन्मण्डलिनो विषम्।
लशुन रामठफल कुष्ठोग्रा व्योपक विषे ॥३
स्नुहीक्षीर गव्यघृत पक्व पीत्वाऽहिजे विषे।
अथ राजिलदष्टे च पेया कृष्णा ससैन्धवा ॥४
आज्य क्षौद्रं शकृत्तोय पुरीतत्या विषापहम्।
सकृष्णाखण्डदुग्धाज्य पातव्य तेन माक्षिकम् ॥५
व्योष पिच्छ बिडालास्थिनकुलाङ्गरुहै समं।
चूर्णितैर्मेषदुग्धाक्तै धूप सर्वविषापह ॥६
रोमगिगुण्डिकाकोलवर्णैर्वा लशुन समम्।
मुनिपत्रं कृनरवेद दष्ट काञ्जिकपाचितैः ॥७
मूषिका षोडश प्रोक्ता रस कार्पासज पिबेत्।
सतैल मूषिकाविघ्न फलिनीकुसुम तथा ॥८

श्री अग्निदेव ने कहा—हे वशिष्ठ! अब मैं गोनसादि की चिकित्सा बतलाता हूं उसे तुम श्रवण करो। मन्त्र—'ॐ ह्रां ह्रीं, अमल पक्षि स्वाहा"

इस मन्त्र द्वारा मन्त्री ताम्बूल के भक्षण से मण्डली के विष का हरण करे। लहसुन-रामठ का फल-कुष्ठोषा-व्योषक-विष में देवे। स्नुही (थूहर) का दूध गौ का घृत पका हुआ पीकर सर्प से प्राप्त विष का नाश करे। राजिल के द्वारा दष्ट होने पर सैन्धव के साथ कृष्णा का पान करना चाहिए ॥१-२-३-४॥ घृत-क्षौद्र और शकृत् का जल पुरीषरया के विष का नाशक है। कृष्णा-खाँड-दूध और घृत-माक्षिक पीना चाहिए ॥५॥ श्वेत पिच्छ-बिडाल की हड्डी—ऱ्योले के रोम समभाग चूर्ण करके मेष के दूध में भक्त करे और धूप देवे तो समस्त विषों का अपहरण होता है ॥६॥ अथवा रोम-निर्गुण्डी-काकोल और इनके समभाग लहसुन को मुनि पत्रों के (अगस्त्य वृक्ष के पत्तों के) द्वारा स्वेदन करके काँजी से पाचित करे और दष्ट को देवे ॥ ७ ॥ मूषिका सोलह बताई गई हैं कपास का रस पिलाना चाहिए। तैल के सहित फलिनी के पुष्प मूषिका के दुःख के नाश करने वाले होते हैं ॥८॥

मनागरगुड भक्ष्यं तद्विषारोचकापहम् ।
चिकित्सा विशति प्रोक्ता लूता विषहरो गण ॥६
पद्मक पाटली कुष्ठ नतमुशीरचन्दनम् ।
निर्गुण्डी सारिवा शेलु लूतार्त सेचयेज्जलै ॥१०
गुञ्जानिर्गुण्डिकङ्कोलपर्णं शुण्ठी निशाद्वयम् ।
करञ्जास्थि च तत्पङ्कं वृश्चिकार्तिहरं शृणु ॥११
मञ्जिष्ठा चन्दन श्वेतपुष्पशिरीषकौमुदम् ।
सर्वेष्वाश्रनुगा योगा लेपादौ वृश्चिकापहा ॥१२
ॐ नमो भगवते रुद्राय चिवि चिवि च्छिन्द च्छिन्द किरि किरि भिन्द भिन्द खड्गेन च्छेदय च्छेदय शूलेन भेदय२ चक्रेण दारय दारय, ॐ ह्रूं फट् ॥१३
मन्त्रेण मन्त्रितो देयो गर्दभादीन्निकृन्तति ।
त्रिफलोशीरमस्ताम्बुमामीषधकचन्दनम् ॥१४
अजाक्षीरेण पानादौ गर्दभादेर्विष हरेत् ।
हरेच्छिरीषपञ्चाङ्गव्योष शतपदीविषम् ॥१५

सकन्धर शिरीषास्थि हरेदुन्दूरज विषम् ।
व्योष ससर्पि. पिण्डीतमूलमस्य विष हरेत् ॥१६

नागर के साथ गुड को खाने से उसके विषारोचक का अपहरण होता है। बीस चिकित्सा बताई गई हैं। लूता के विष का हरण करने वाला गण है ॥ ९ ॥ पद्मक–पटली–कुष्ठ–नत–उशीर–चन्दन–निर्गुण्डी–सारिवा–शेलु–से जल के द्वारा लूता के दुःख से पीडित को सेचन करना चाहिए ॥१०॥ गुंजा-निर्गुण्डी–अङ्कोलपत्र–सोंठ—दोनो प्रकार की हल्दी–करञ्ज–अरि—इनके पङ्क से वृश्चिक की आर्तिका नाश होता है ॥ ११ ॥ मंजीठ–चन्दन–शोष पुष्प–शिरीष कोगुह ये चारों योग सयोजित करे और लेपादि करने पर विष का अपहरण करने वाले होते हैं ॥-१२ ॥ मन्त्र—'ॐ नमो भगवते रुद्राय चिवि-चिवि, छिन्द-छिन्द, किरि-किरि, भिन्द भिन्द खड्गेन च्छेदय-च्छेदय, शूलेन भेदय भेदय, चक्रेण दारय दारय ॐ ह्रू फट् इस मन्त्र के द्वारा मन्त्रित कर देना चाहिए। इससे गर्दभ आदि के विष का छेदन होता है। त्रिफला–उशीर–मस्ताम्बु–जटामांसी–पद्मक–चन्दन इनका बकरी के दूध के साथ पान आदि करने पर गर्दभ आदि के विष का हरण होता है। शिरीष का पञ्चाग और व्योष शतपदी के विष का हरण कर देता है ॥१३,१४ १५॥ कन्धर के सहित शिरीष की अस्थि उन्दूर के विष का हरण करती है। घृत के सहित व्योष और पिण्डीत का मूल इसके विष का नाश किया करता है ॥१६॥

क्षारव्योषवचाहिङ्गु विडङ्ग सैन्धव नतम् ।
अम्बष्ठाऽतिबला कुष्ठ सर्वकीटविष हरेत् ॥
यष्टिव्योषगुडक्षीरयोग शुनो विषापह ॥१७
ॐ सुभद्रायै नम , ॐ सुप्रभायै नम ॥१८
यान्यौषधानि गृह्यन्ते विधानेन विना जनैः ।
तेषा बीज त्वया ग्राह्यमिति ब्रह्माऽब्रवीच्च ताम् ॥१९
ता प्रणम्यौषधी पश्चाद्यवान्प्रक्षिप्य मुष्टिना ।
दश जप्त्वा मन्त्रमिम नमस्कुर्यात्तदौषधम् ॥२०

त्वामुद्धराम्यूर्ध्वनेत्रामनेनैव च भक्षयेत् ।
नम पुरुषसिंहाय नमो गोपालकाय च ॥२१
आत्मनैवाभिजानाति रणे कृष्ण पराजयम् ।
अमन सत्यवाक्येन अगदो मेऽस्तु सिध्यतु ॥२२
नमो वैदूर्यमात्रे तत्र रक्ष रक्ष मा सर्वविषेभ्यो
गौरि गान्धारि चाण्डालि मातङ्गिनि स्वाहा हरिमाये ॥२३
औषधादौ प्रयोक्तव्यो मन्त्रोऽयं स्थावरे विषे ।
भुक्तमात्रे स्थिरे ज्वाले पद्मशीताम्बुसेवितम् ।
पाययेत्सघृत क्षौद्र विधिश्च तदनन्तरम् ॥२४

क्षार–व्योष–वच–हिंगु–वायविडङ्ग–सैन्धव–नत–अम्बष्ठा–अतिबला—कुष्ठ ये वस्तु समस्त कीटों के विष को हरण किया करती हैं। मष्टि–व्योष–गुड और क्षीर का योग कुत्ते का विष से अपहरण किया करता है ॥१७॥ मन्त्र–"ॐ सुभद्रायै नम । ॐ सुप्रभायै नम"। जो औषध हैं वे यदि बिना विधान के ग्रहण की जाती हैं तो उनका बीज तुमको ग्रहण कर लेना चाहिए—यह ब्रह्माजी ने उनसे कहा था ॥१८-१९॥ पूर्व प्रथम जिस औषध को लेना है उसे प्रणाम करे फिर मुट्ठी से जौओं को उस पर फेंके। इसके पश्चात् दश बार इस मन्त्र का जाप करे। फिर उस औषधि को प्रणाम करना चाहिए ॥२०॥ "ऊर्ध्वनेत्रा त्वामुद्धरामि" इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए भक्षण करना चाहिए। मन्त्र—'नम पुरुष सिंहाय नमो गोपाल काय च। आत्मनैवाभि जानाति रणे कृष्ण पराजयम्। अमन सत्य वाक्येन अगदो मेऽस्तु सिध्यतु। नमो वैदूर्यम त्रे तत्र रक्ष रक्ष मां सर्व विषेभ्यो गौरि गान्धारि चाण्डालि मातङ्गिनि स्वाहा हरिमाये'—स्थावर विष में जो औषध आदि हो उसमें इस मंत्र का प्रयोग करना चाहिए। भुक्त मात्र में ज्वाला के स्थिर होने पर पद्मशीताम्बु सेवित को पिलावे। घृत के सहित शहद का इसके अनन्तर अभिषेचन करना चाहिए ॥२१ से २४॥

१२४-बालादिग्रहहर-बालतन्त्रम्

बालतन्त्र प्रवक्ष्यामि बालादिग्रहमर्दनम् ।
अथ जातदिने वत्सं ग्रही गृह्णाति पापिनी ॥१
गात्रोद्वेगो निराहारो नानाग्रीवाविवर्तन ।
तच्चेष्टितमिद तस्यान्मातृणा च बल हरेत् ॥२
मत्स्यमाससुराभक्ष्यगन्धस्रग्धूपदीपकै. ।
लिम्पेच्च धातकीलोध्रमञ्जिष्ठातालचन्दनै ॥३
महिषाक्षेण धूपश्च द्विरात्रे भीषणी ग्रही ।
तच्चेष्टा कासनिःश्वासौ गात्रसकोचन मुहु. ॥४
अजामूत्रयुतैः कृष्णा सेव्याऽपामार्गचन्दनै. ।
गोशृङ्गदन्तकेशैश्च धूपयेत्पूर्ववद्वलिः ॥५
ग्रही त्रिरात्रे घण्टाली तच्चेष्टा क्रन्दन मुहुः ।
जृम्भण स्वनित त्रासो गात्रोद्वेगमरोचनम् ॥६
केशराञ्जनगोहस्तिदन्त साजपयो लिपेत् ।
नखराजीविल्वदलैर्धूपयेच्च बलि हरेत् ॥७
ग्रही चतुर्थी काकोली गात्रोद्वेग प्ररोचनम् ।
फेनोद्गारो दिशो दृष्टि. कुल्मापैं सासवैर्बलि. ॥८

इस अध्याय मे बालादि ग्रह वाला तन्त्र का वर्णन किया जाता है । अग्नि देव ने कहा—बालादि के ग्रह मर्दन करने वाला तन्त्र अब मैं बतलाता हूं । जात दिन मे अर्थात् जिस दिन बच्चा पैदा होता है उसी दिन मे पापिनी ग्रही बत्स को ग्रहण किया करती है । गात्र का उद्वेग आहार न करना और अनेक प्रकार से गरदन को तोडना—मोडना—यह चेष्टाऐ बालक की होती हैं और उनकी माताओ के बल का हरण कर लेती है । मत्स्य का मांस-सुरा भक्ष गन्ध-प्रसूण धूप और दीप करे तथा धातकी—लोध्र—मजीठ—ताल और चदन से लेप करे ॥१-२-३॥ भीषण ग्रही को दो रात्रि तक महिषाक्ष के द्वारा धूप देनी चाहिए । उसकी चेष्टाऐ ये होती हैं खांसी—श्वास चलना और बार—बार

शरीर का सङ्कोचन करना है ॥ ४ ॥ बकरी के मूत्र से युक्त अपामार्ग और चन्दन से कृष्णा का सवन करना चाहिए । गोशृङ्ग—दन्त और केशों से धूप देनी चाहिए और पूर्व की भाँति बलि देवे ॥५॥ पण्ठानी ग्रही तीन रात्रि तक रहती है । बार-बार रोना-चिल्लाना, जँभाई लेना, स्वनित, त्रास (भय), शरीर का उद्वेग और अरोचना ये उसकी चेष्टाएँ हुआ करती हैं ॥६॥ इसके निवारण के लिए वेशवाञ्जन गौ और हाथी के दाँत को बकरी के दूध के साथ लेप करना चाहिए । नख—राई और बिल्व के पत्तों की धूप देवे तथा बलि देवे । ७॥ चौथी ग्रही काकाली होती है । इससे गात्र (शरीर के अङ्ग) का उद्वेग—प्रगाचन—श्वासों का उद्गार—दिशाओं की ओर दृष्टि रखना ये चेष्टाएँ होती हैं । इसके लिए आसबक सहित कुल्माषों से बलि देवे ॥८॥

गजदन्ताहिनिर्मोकवाजिमूत्रप्रलेपनम् ।
सराजीनिम्बपत्रेण वृकवेशेन धूपयेत् ॥९
हसाधिका पञ्चमी स्याज्जृम्भाश्वासोर्ध्वधारिणी ।
मुष्टिबन्धश्च तच्चेष्टा बलिं मत्स्यादिना हरेत् ॥१०
मेषशृङ्गबलालोध्रशिलातालैः शिशुं लिपेत् ।
फटकारी तु ग्रही षष्ठी भयम् हुप्ररोदनम् ॥११
निराहारोऽङ्गविक्षेपो हरेन्मत्स्यादिना बलिम् ।
राजी गुग्गुलुकुष्ठ भद्रलाद्य धूपलेपनैः ॥१२
सप्तमे मुक्तकेश्याख्या पूतिगन्धो विजृम्भणम् ।
नाद प्ररोदन कासो धूपो व्याघ्रनखैर्लिपेत् ॥१३
वचागोमयगोमूत्रैः श्रीदण्डी च ग्रष्टमे ग्रही ।
दिशा निरीक्षणं जिह्वाचालनं कासरोदनम् ॥१४
बलिं पूर्वोश्च मत्स्याद्यं धूपलेपे च हिङ्गुना ।
वचासिद्धार्थलशुनैश्चोर्ध्वग्राही महाग्रही ॥१५
उद्वेजनोर्ध्वनिश्वासः स्वमुष्टिद्वयखादनम् ।
रक्तचन्दनकुष्ठाद्यैर्धूपयेल्लेपयेच्छिशुम् ॥१६

कपिरोमनखैर्धूपो दशमी रोदनी ग्रही ।
तच्चेष्टा रोदन शश्वत्सुगन्धो नीलवर्णता ॥१७

हाथी का दाँत, सर्प का निर्मोक और अश्व के केश व का प्रलेपन होना चाहिए। राई के साथ नीम के पत्तो तथा वृक (भेड़िया) के केश से धूप देनी चाहिए ॥ ९ ॥ पाँचवी ग्रही हंसाधिका नाम वाली होती है। जँभाई आना ऊर्ध्व धारिण श्वास का चलना तथा मुष्टि बन्ध का होना ये इसकी चेष्टाऐं होती हैं। मत्स्य आदि के द्वारा बलि देनी चाहिए ॥१०॥ शृङ्ग-बला-लोध-शिला-ताल से शिशु का लेपन करे तो इसका प्रभाव चला जाता है। छटी ग्रही फटकारी नाम वाली होती है। इसमें भय-मोह और प्ररोदन आदि चेष्टाऐं शिशु की हुआ करती हैं। कुछ भी आहार न लेना तथा अङ्गों को इधर-उधर चलाना भी होता है। इसके निवारण के लिये मछली आदि की बलि देनी चाहिए तथा राई-गूगल-कुष्ठ-हाथी दाँत से धूप देवे और लेपन करे।११ १२। सप्तम दिनमे मुक्त केशी ग्रही होती है। इसके प्रभाव से जो शिशु पीडित होता है उसमे दुर्गन्ध होती है और वह विजृम्भण किया करता है। आवाज करता है और अधिक रोदन किया करता है। खाँसी भी होती है। इसके निवारण के लिये व्याघ्र के नाखूनो से धूप देवे और वच-गोबर और गोमूत्र से लेपन करना चाहिये ॥ १३ ॥ अष्टम ग्रही श्री दण्डी होती है। इसके प्रभाव से दिशाओं को देखना—जीभ को चलाना—खाँसीहोना—रोना ये चेष्टाऐं बालक की होती हैं। इसके लिये पहिली बताई हुई बलि देवे जो मत्स्य आदि की हैं और हींग की धूप तथा वच-सिद्धार्थ और लहसुन का लेप करे। ऊर्ध्व-ग्राही महा ग्रही है। इसमे उद्वेजन-ऊर्ध्वश्वास—अपनी दोनो मुट्ठियो को चलाना ये चेष्टाऐ हुआ करती हैं। इसके लिये रक्त चन्दन-कुष्ठ आदि से लेपन देवे तथा शिशु को कपि (बन्दर) के रोम और नखो की धूप देनी चाहिए। दशमी ग्रही रोदनी नाम वाली होती है। इसके प्रभाव से बालक की चेष्टा में रोना—एकबार अच्छी गन्ध का आना तथा नीला रंग हो जाना होता है ॥ १४ से १७ ॥

धूपो निम्बेन भूतोग्रराजीसर्जरसैर्लिपेत् ।
वलिं बहिर्हरेल्लाजकुल्माषकरकोदनम् ॥१८
यावत्त्रयोदशाहं स्यादेवं धूपादिका क्रिया ।
गृह्णाति मासिकं वत्सं पूतना शकुनी ग्रही ॥१९
काकवद्रोदनं श्वासो मूत्रगन्धोऽक्षिमीलनम् ।
गोमूत्रस्नपनं तस्य गोदन्तेन च धूपनम् ॥२०
पीतवस्त्रं ददेद्रक्तस्रग्गन्धैस्तैलदीपकं ।
त्रिविधं पायसं मद्यं तिलं मासं चतुर्विधम् ॥२१
करञ्जाधो यमदिशि सप्ताहं तैर्वलिं हरेत् ।
द्विमासिकं च मुकुटा वपुः पीतं च शीतलम् ॥२२
छर्दिः स्यान्मुखशोषादि पुष्पगन्धानुकानि च ।
अपूपमोदनं दीपं कृष्णनीरादिधूपकम् ॥२३
तृतीये गामुखी निद्रा सविण्मूत्रप्ररोदनम् ।
यवाः प्रियंगु पललं कुल्माषं शाकमोदनम् ॥२४
क्षीरं पूर्वे ददेन्मध्येऽह्नि धूपश्च सर्पिषा ।
पञ्चभङ्गेन तत्स्नानं चतुर्थे पिङ्गलाऽऽतिकृत् ॥२५

इसके निवारणार्थ नीम की धूप देवे और भूतोग्र—राजी-सज रस से लेप करे। बाहिर आकर खील—कुल्माष कर कोदन से बलि देवे। जब तक बालक तेरह दिन का हो तब तक इसी प्रकार से धूप आदि की क्रिया करनी चाहिए। जब एक मास का बालक हो जाता है तो उसको पूतना शकुनी ग्रही ग्रहण किया करती है। इसका प्रभाव यह होता है कि बालक काक की भाँति रोता है—श्वास—मूत्र मे गन्ध—आवे मीलित करना ये चेष्टाऐं करता है। इसके निवारण के लिए गोमूत्र से शिशु को स्नान करावे और गोदन्त से ही धूपन करे ॥१८-१९ २०॥ पीला वस्त्र—लाल पुष्पों की माला—गन्ध—तैल का दीपक—तीन प्रकार का पायस—मद्य—तिल—चार प्रकार का मांस—करञ्जाध ये यम दिशा मे सात दिन तक बलि देनी चाहिए। दो मास के बालक को *मुकुटा वपु नामक ग्रही ग्रहण किया करती है। इसके प्रभाव से शरीर पीला*

एव शीतल होता है—छर्दि होती है तथा मुख शोषादि होता है। पुष्प–गन्ध–वस्त्र–अपूप मोदन–दीपक और कृष्ण नीरादि की धूप देवे ॥ २१-२२-२३ ॥ तृतीय मास मे गोमुखी ग्रहो होती है। इससे निद्रा सविट् मूत्र का होना—प्ररोदन ये चेष्टाऐं होती हैं। इसके लिए यवप्रियगु–पलल (मांस) कुल्माष–शाक मोदन और क्षीर पूर्व मे देवे मध्य दिन में घृत से धूप देनी चाहिए। पञ्च भग से उसको स्नान करावे तो इसका प्रभाव नष्ट हो जाता है। चौथे मास मे पिङ्गला नाम वाली पीडा करने वली होती है ॥ २४-२५॥

तनु. शीता पूतिगन्धः शोष. स म्रियते ध्रुवम् ।
पञ्चमी ललना गात्रसादः स्यान्मुखशोषणम् ॥२६
अपानः पीतवर्णश्च मत्स्याद्यं दक्षिणे बलि ।
षाण्मासे पङ्कजा चेष्टा रोदन विकृतस्वरः ॥२७
मत्स्यमाससुराभक्तपुष्पगन्धादिभिर्बलि. ।
सप्तमे तु निराहारी पूतिगन्धादिदन्तरुक् ॥२८
पिष्टमाससुरामासैर्बलि स्याद्यमनाऽष्टमे ।
विस्फोटशोषणाद्य स्यात्तच्चिकित्सा न कारयेत् ॥२९
नवमे कुम्भकर्ण्यार्तो ज्वरी छर्दति पालके ।
रोदन मासकुल्माषमद्याद्यं रैशके बलि ॥३०
दशमे तापसी चेष्टा निराहारोऽक्षिमीलनम् ।
घण्टा पताका पिष्टाक्ता सुरामासबलि समे ॥३१
राक्षस्येकादशी पीडा नेत्रादौ न चिकित्सितम् ।
चञ्चला द्वादशे श्वासस्त्रासादिकविचेष्टितम् ॥३२

इससे शरीर में शीत–दुर्गन्ध–शोष होता है। इस पीडा से वह निश्चय ही मर जाता है। पाँचवी ललना नामक होती है। इससे शरीर मे पीडा–मुख शोषण–अपान–पीला वर्ण ये चेष्टाऐं होती हैं। इसके प्रतीकार के लिये दक्षिण में मत्स्य आदि से बलि देनी चाहिए। छै मास मे पङ्कजा नामक होती है। इसके कारण रोदन–स्वर का विकृत हो जाना आदि बालक की चेष्टा होती है। इसके निवारण के लिये मत्स्य माँस–सुरा भक्त–पुष्प और गन्ध आदि से बलि

देवे। सप्तम मास मे निराहारी नाम की ग्रही होती है। इससे पूतिगन्ध आदि दाँतो की पीडा होती है। इसके निवारण के लिये पिष्ट मास–सुरा माँस से बलि देवे। अष्टम म विस्फोट और शोषण आदि होते हैं। इनकी कोई भी चिकित्सा नही करानी चाहिए ॥२६-२७-२८ २६॥ नवम मास में कुम्भकर्णी नामक ग्रही होती है और इसके कारण जो बालक आर्त्त होता है उसे ज्वर हो जाता है—छर्दि करना है तथा पातक मे रोता है। इसके प्रतिकार के लिये मास–कुल्माष और मद्य आदि से ऐशिक दिशा में बलि देनी चाहिए ॥ ३० ॥ दशम मास में तापसी नाम वाली ग्रही होती है। इसके द्वारा पीडा में बालक आहार नही करता है और आँखो को मूँदे रहता है। घण्टा–पताका पिष्टक्त तथा सुरा–मास की बलि देवे। एकादश मास मे राक्षसी नामक होती है जिससे नेत्र आदि में पीडा होती है और वह चिकित्सित नही होती है। द्वादश मास मे चञ्चला नाम वाली होती है जो श्वास-भय आदि विचेष्टित किया करती है ॥३१-३२॥

बलि पूर्वेऽथ मध्यान्हे कुल्माषाद्यं स्तिलादिभि. ।
यातना तु द्वितीयेऽब्दे यातन रोदनादिकम् ॥३३
तिलमासमद्यमासैर्बलिः स्नानादि पूर्ववत् ।
तृतीये रोदनी कम्पो रोदन रक्तमूत्रकम् ॥३४
गुडौदन तिलापूप प्रतिमा तिलपिष्टजा ।
तिलस्नान पञ्चपत्रैर्धूपो राजभलत्वचा ॥३५
चतुर्थे चटकाशोफो ज्वर सर्वाङ्गसादनम् ।
मत्स्यमासतिलाद्यैश्च बलि स्नान च धूपनम् ॥३६
चञ्चला पञ्चमेऽब्दे तु ज्वरस्त्रासोऽङ्गसादनम् ।
मासौदनाद्यैश्च बलिर्मेषशृङ्गेण धूपनम् ॥३७
पलाशोदुम्बराश्वत्थवटबिल्वदलाम्बुधृक् ।
षष्ठेऽब्दे धावनी शापा वैरस्य गात्रसादनम् ॥३८
सप्ताहोभिर्बलि पूर्वैर्धूप स्नान च भृगकै. ।
सप्तमे यमुना छर्दिरवचाहासरोदनम् ॥३९

मांसपायसमद्याद्यैर्बलिः स्नानं च धूपनम् ।
अष्टमे वा जातवेदा निराहारं प्ररोदनम् ॥४०
कृशरापूपदध्याद्यैर्बलि. स्नानं च धूपनम् ।
कालाब्दे नवमे वाह्वोरास्फोटो गर्जनं भयम् ॥४१

पूर्व में बलि देवे और दुपहर मे कुल्मापादि तथा तिलादि के द्वारा देनी चाहिए। बारह मास के पश्चात् बालक दूसरे वर्ष मे प्रवेश करता है तो दूसरे वर्ष मे यातना नाम वाली ग्रही होती है जिससे रोदन आदि की यातना होती है ॥३३॥ इसके प्रतिकार के लिए तिल–मांस–मद्य के द्वारा बलि देवे और पूर्व की भांति स्नान आदि करावे। तृतीय वर्ष मे रोदनी नाम वाली ग्रही होती है जिसके प्रभाव से बालक को कम्प होता है–वह रोता है और उसके मूत्र मे रक्त जाता है ॥३४॥ इसके निवारण के लिये गुड-ओदन, तिलापूप की बलि और तिल पिष्ट की प्रतिमा बनावे—तिल स्नान करावे तथा पञ्च पत्रों से राजफल की छाल से धूप देवे ॥३५॥ चौथे वर्ष मे चटका नामक होती है जिसके कारण शोफ–ज्वर और समस्त अगो मे दर्द होता है। इसके लिये मछली–मांस और तिल आदि से बलि देवे—स्नान और धूपन क्रिया करावे। पलाश (ढाक)—उदुम्बर (गूलर)—अश्वत्थ (पीपल)—वट (बड)—विल्व (बेल) इनके पत्ते धारण करे। छटे वर्ष मे धावनी नाम वाली ग्रही होती है। इसके कारण शोष–विरसता और गात्र सादन (शरीर में दर्द)हुआ करता है ॥३६-३७-३८॥ सातवें दिन पूर्व बलि देवे—धूप देवे और भृङ्गक से स्नान करावे। सातवें वर्ष मे यमुना ग्रही होती है। इससे छर्दि–प्रवच–हास और रोदन किया करता है। इसके निवारण लिये मांस–पायस और मद्य आदि से बलि देवे—स्नान और धूपन करावे। आठवें वर्ष मे जात वेदा नामक होती है जिससे निराहारता और प्ररोदन होता है। इसके लिये कृशर–अपूप–दधि आदि की बलि देवे और स्नान एव धूपन करे। नवम वर्ष मे वाह्वोरा नामक ग्रही होती है। जिसके कारण आस्फोट–गर्जन और भय होता है ॥३९-४०-४१॥

बलिः स्यात्कृशरापूपसक्तुकुल्मापपायसैः ।
दशमेऽब्दे कलहसी दाहोऽङ्गकृशता ज्वरः ॥४२

पोलिकापूपदध्यन्नं पञ्चरात्रं बलिं हरेत् ।
निम्बधूपकुष्ठलेपावेकादशमके ग्रही ॥४३
देवदूती निष्ठुरवाग्बलिर्लेपादि पूर्ववत् ।
बलिका द्वादशे श्वासो बलिलेपादि पूर्ववत् ॥४४
त्रयोदशे वायवी च मुखरोगोऽङ्गसादनम् ।
रक्तान्नगन्धमाल्याद्यं बलिं पञ्चदलं स्नपेत् ॥४५
राजीनिम्बदलैर्धूपो यक्षिणी च चतुर्दशी ।
चेष्टा शूलो ज्वरो दाहो मांसभक्ष्यादिकैर्बलिः ॥४६
स्नानादि पूर्ववच्छान्त्यै मुण्डिकातिस्त्रिपञ्चके ।
तच्चेष्टाऽसृक्स्रव शश्वत्कुर्यान्मातृचिकित्सनम् ॥४७
वानरी षोडशी भूमौ पतेन्निद्रा सदा ज्वरः ।
पायसाद्यं त्रिरात्रं च बलिं स्नानादि पूर्ववत् ॥४८

इसके निवारण के लिये कृसर–पूआ–सतुआ–कुल्माष और पायस (खीर) के द्वारा बलि हरण करावे। दशम वर्ष में कल हंसी नाम वाली होती है। इसके प्रभाव से बालक के शरीर में दाह–अंगों का दुबला होना—ज्वर रहना ये सब हुआ करते हैं। इसके हटाने के लिये पोलिका–अपूप–दही–अन्न के द्वारा पाँच रात्रि पर्यन्त बलि हरण करे। निम्ब के पत्तों की धूप देवे और कुष्ठ का लेपन करे। ग्यारहवें वर्ष में देवदूती ग्रही होती है। इससे निष्ठुर वाणी वाला बालक हो जाता है। इसके लिये भी पूर्व की भाँति ही बलि एवं लेप आदि करे। बारहवें वर्ष में बलिका नामक ग्रही होती है जिसके कारण श्वास हो जाया करता है। इसके लिए भी पूर्व की तरह ही बलि एवं लेप आदि करे ॥ ४२ ४३ ४४ ॥ तेरहवें वर्ष में वायवी ग्रही होती है। इससे मुख के रोग और अंगों की पीड़ा हो जाती है। रक्त–अन्न–गन्ध और माल्य आदि से बलि देवे तथा पञ्च दलों से स्नपन करावे ॥४५॥ राजी (राई) और नीम के पत्तों से धूप देवे। चौदहवें वर्ष में यक्षिणी नाम की ग्रही बालक को पीड़ा दिया करती है। इससे शूल–ज्वर–दाह—ये सब होते हैं। मांस भक्ष्य आदि के द्वारा बलि देनी चाहिए ॥४६॥ इसकी शान्ति के लिए पूर्व की भाँति स्ना-

नादि कराना चाहिए। पन्द्रहवें वर्ष में मुण्डिका नाम वाली ग्रही होती है जो बालक को पीड़ा दिया करती है। इससे रक्त का गिरना होता है। निरन्तर माता की चिकित्सा करनी चाहिए ॥४७॥ सोलहवें वर्ष में वानरी ग्रही होती है। इससे भूमि में पतन करता है—निद्रा होती है और सर्वदा ज्वर रहता है। इसके लिये पायस (खीर) आदि के द्वारा तीन रात्रि तक बलि का हरण करे और पहिले की भाँति ही स्नान-धूप और लेपन करना चाहिए ॥४८॥

गन्धवती सप्तदशे गात्रोद्वेगः प्ररोदनम्।
कुल्माषाद्यैर्बलिं स्नानधूपलेपादि पूर्ववत् ॥४६
दिनेशाः पूतना नाम वर्षेशा सुकुमारिकाः ॥५०
ॐ नमः सर्वमातृभ्यो बालपीडासयोग भञ्ज २ चुट चुट स्फोटय२ स्फुर स्फुर गृह्ण गृह्णाऽऽक्रन्दय,२ एव सिद्धरूपो ज्ञापयति ॥५१
हर हर निर्दोष कुरु कुरु बालिका बाल स्त्रिय पुरुष वा, सर्वग्रहाणामुपक्रमात् ।
चामुण्डे नमो देव्यै ह्रू ह्रू ह्लीमपसरापसर दुष्टग्रहान्ह्रू तद्यथा गच्छन्तु गृह्यका, अन्यत्र पन्थान रुद्रो ज्ञापयति ॥५२
सर्वबालग्रहेषु स्यान्मन्त्रोऽय सर्वकामद ॥५३
ॐ नमो भगवति चामुण्डे मुञ्च मुञ्च बाल बालिका वा
बलिं गृह्ण गृह्ण जय जय वस वस ॥५४
सर्वत्र बलिदानेऽय रक्षाकृत्पठ्यते मनु ।
ब्रह्मा विष्णु शिव स्कन्दो गौरी लक्ष्मीर्गणादय ॥
रक्षन्तु ज्वरदाहार्तं मुञ्चन्तु च कुमारकम् ॥५५

सत्रहवें वर्ष मे गन्धवती नाम की ग्रही होती है। इससे गात्रोद्वेग और प्ररोदन होता है। इसके लिये कुल्माष आदि क द्वारा बलि देवे और स्नान-धूप तथा लेप पूर्व की भाँति करावे ॥४६॥ पूतना नाम वाली दिनशा होती है और जो वर्षेशा हैं वे सुकुमारिका होती हैं। मन्त्र—"ॐ नमः सर्व मातृभ्यो सयोग भञ्ज भञ्ज-चुटचुट-स्फोटय स्फोटय, स्फुर स्फुर, गृह्ण गृह्ण, आक्रन्दया-क्रन्दय" इस प्रकार सिद्ध रूप ज्ञापन करता है ॥५०-५१॥ मन्त्र—"हर हर

निर्दोष कुक्कुर, बालिका बाल स्त्रिय पुरुषं वा, सर्वं ग्रहाणामुपक्रमात्। चामुण्डे नमो देव्यै हूं हूं ह्रीं अपसरापसर दुष्ट ग्रहान् हूं तद्यथा गच्छ तु गुह्यका, अन्यत्र पन्थानं रुद्रो ज्ञापयति।" समस्त बाल ग्रहों में यह मन्त्र समस्त काम के लिए होता है। मन्त्र—"ॐ नमो भगवति चामुण्डे मुञ्च मुञ्च बाल बालिका वा, बलिं गृह्ण गृह्ण जय जय, वस वस'॥ ५२-५३-५४॥ सब जगह जब बलि को दिया जावे तब यह मन्त्र पढ़ा जाता है। "ब्रह्मा विष्णु शिव स्कन्दो गौरी लक्ष्मी गणादय। रक्षन्तु ज्वर दाहार्त्तं मुञ्चन्तु च कुमारकम्'। अर्थात् ब्रह्मा विष्णु–महादव–स्वामी कार्तिकेय–पार्वती–लक्ष्मी और गण आदि सब रक्षा करें और ज्वर के दाह से पीड़ित बालक को छोड़ देवें ॥५५॥

१५५–ग्रहहृन्मन्त्रादिकथनम्

ग्रहोपहारमन्त्रादीन्वक्ष्ये ग्रहविमर्दनान्।
हर्षेच्छाभयशोकादिविरुद्धाशुचिभोजनात् ॥१
गुरुदेवादिकोपाच्च पञ्चोन्मादा भवन्त्यथ।
त्रिदोषजा सन्निपाता आगन्तव इति स्मृता ॥२
देवादयो ग्रहा जाता रुद्रक्रोधादनेकधा।
सरित्सरस्तडागादौ शैलोपवनसेतुषु ॥३
नदीसङ्गे शून्यगृहे बिलद्वारैकवृक्षके।
गृहा गृह्णन्ति सुप्तं स्त्रियं सुप्तां च गर्भिणीम् ॥४
आसन्नपुष्पां नग्नां च ऋतुस्नानं करोति या।
अवमानं नृणां वैरं विघ्नं भाग्यविपर्ययम् ॥५
देवतागुरुधर्मादिसदाचारादिलङ्घनम्।
पतनं शैलवृक्षादेर्विधुन्वन्मूर्धजान्मुहुः ॥६
रुदन्नृत्यति रक्ताक्षो हुं रूपाऽसुरग्रही नरः।
उद्विग्नं शूलदाहार्तं क्षुत्तृष्णार्तं शिरार्तिमान् ॥७
देहि देहीति याचेत बालिग्रामग्रही नरः।
स्त्रीमालाभोगस्नानेच्छु रतिकामग्रही नरः ॥८

इस अध्याय में ग्रहों के हरण करने वाले मन्त्रादि का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—ग्रहो के विमर्दन करने वाले ग्रहोपहार मन्त्र आदि का मैं वर्णन करूँगा। हर्ष—इच्छा अभय—शोक आदि के विरुद्ध अशुचि भोजन से तथा गुरु देव आदि के प्रकोप से पाँच उन्माद हुआ करते हैं। वे त्रिदोषो से उत्पन्न होने वाले—सन्निपात (समस्त तीनो कफ-वात और पित्त दोषों के एक साथ होने वाले) और आगन्तुक कहे गये हैं ॥१-२॥ रुद्र के क्रोध से अनेक प्रकार के देव आदि ग्रह उत्पन्न हुए हैं। नदी—सरोवर—तालाब आदि मे—शैल, उपवन और सेतुओ मे—नदी के सग में—शून्य गृह मे—बिल के द्वार पर—एक वृक्ष में ग्रह पुरुष की स्त्री को तथा सोती हुई गर्भिणी को ग्रहण किया करते हैं ॥३-४॥ जो स्त्री आसन्न पुष्पा है। अर्थात् सन्निकट रजो धर्म वाली हो—नग्न हो और जो ऋतु स्नान करने वाली हो उसको भी ग्रह ग्रहण किया करते हैं। मनुष्यो का अपमान—वैर—विघ्न और भाग्य का विपरीत होना देवता, गुरु और धर्म आदि तथा सदाचार आदि का लङ्घन करना—शैल तथा वृक्षादि का पतन तथा बालो का बार-बार विधूनन करता हुआ हर रूप वाला रक्ताक्ष रुदन करता हुआ नृत्य करता है। ऐसा असुरग्रही नर जो उद्विग्न—शूल-दाह से आर्त (पीड़ित)—भूख-प्यास से दुःखित—शिर की पीडा वाला है। बालिका का ग्रही नर 'दो दो'—इस प्रकार से याचना करे। रति काम का ग्रही नर स्त्री माला के भाग का इच्छुक है ॥५-६ ७-८॥

महासुदर्शनो व्योमव्यापी त्रिटपनासिक ।
पातालनारसिंहाद्या चण्डीमन्त्रा ग्रहार्दना. ॥६

पृश्नीह्रिङ्गुवचाचक्रशिरीषपदयित परम् ।
पाशाङ्कुशधर देवमक्षमालाकपालिनम् ॥१०

खट्वाङ्गाब्जादिशक्ति च दधान चतुराननम् ।
अन्तर्बाह्यादिखट्वागपद्मस्थ रविमण्डले ॥११

आदित्यादियुत प्राच्य उदितेऽर्केऽर्घ्य ददेत् ।
आमविषाग्निविप्रकुण्डी हृल्लेखामकलो भृगु ॥१२

अर्काय भूर्भुव स्वश्च जालिनी कुलमुद्गरम् ।
पद्मासनोऽरुणो रक्तवस्त्र सद्युतिविश्वक ॥१३
उदार पद्मधृग्दोर्भ्या सोम सर्वाङ्गभूषित ।
रव्यादयो ग्रहा सौम्याः वरदा पद्मधारिण ॥१४
विद्युत्पुञ्जनिभ वस्त्र श्वेत सामोऽरुण कुज ।
बुधस्तद्वद्गुरु पीत शुक्ल शुक्र शनैश्चर. ॥१५
कृष्णाङ्गारनिभो राहुर्धूम्र केतुरुदाहृत ।
वामाद्वामहस्तान्तदक्षहस्तोदजानुषु ॥१६

व्योम म व्यापक निरय की नासिका वाला महा सुदर्शन है। पाताल और नारसिंहादि वर्ण्डी के मन्त्र ग्रहो क प्रदम करन वाले है ॥ ६ ॥ पृथ्वी-हिंगु (हौम)—वचा—चक्र—निरीप मे परम दयित, पाश और अकुश को धारण करने वाले अस्त्रो की माला एव कराली वाले, खट्वाङ्ग—अज्ञ आदि शक्ति को धारण करने वाल, चार मुख वाले अन्तर्वाह्य आदि सटवाग पद्म पर स्थित, रवि मण्डल म आदित्य आदि म युक्त देव को पूजित करके उदित सूर्य मे भी अब दवे। भृगु (शुक्र) श्वास—विष—अग्नि और विप्र की कुण्डी तथा हृन की लता का खण्ड होता है ॥१० ११ १२॥ सूर्य के लिये 'भूर्भुव और स्व' यह मन्त्र है। जालिनी कुल मुद्गर है। अरुण पद्म के आसन वाला है तथा रक्त वस्त्र वाला है और द्युति विश्वक व सहित है ॥ १३ ॥ चन्द्र उदार और दानो हाथो म पद्म को धारण करने वाला तथा समस्त अगो म भूषण धारण करने वाले हैं। बुध आदि ग्रह सौम्य—वरदान देन वाले और पद्म को धारण करने वाल हैं ॥ १४ ॥ विद्युत् के समूह के तुल्य वस्त्र है। सोम श्वेत है। मगल अरुण वर्ण का है। बुध भी उसी क समान है। गुरु पीले वर्ण वाले हैं। शुक्र शुक्ल वर्ण के होते हैं। शनैश्चर कृष्ण अगार क तुल्य होता है। राहु धूमिल और केतु बताया गया है जो वाम उरु वाम हस्तान्त दक्ष हस्तोद जानु म होता है ॥१५॥१६॥

स्वनामाद्यं स्तु बीजाद्यैर्हृतो शरोऽस्य न्यस्य ।
अगुष्ठादौ तले नेत्रहृदयादय व्यापक न्यसेत् ॥१७

मूलबीजंम्शिमि प्राणाध्यायक न्यस्य सागकम् ।
प्रक्षाल्य पात्रमस्त्रेण मूलेनाऽऽपूर्य वारिणा ॥१८
गन्धपुष्पाक्षत न्यस्य दूर्वामिध्य च मन्त्रयेत् ।
आत्मान तेन सप्रोक्ष्य पूजाद्रव्य च वै ध्रुवम् ॥१९
अभूत विमल सारमाराध्य परम सुखम् ।
पीठाद्यान्कल्पयेदेतान्हृदा मध्ये विदिक्षु च ॥२०
पीठोपरि हृदो मध्ये दिक्षु चैव विदिक्षु च ।
पीठोपरि हृदाब्ज च केसरेष्वष्ट शक्तय ॥२१
वा दीप्ता वी तथा सूक्ष्मा वु जया वू च भद्रिकाम् ।
वे विभूति वै विमला योममिघातविद्युताम् ॥२२
वौ सर्वतोमुखी च पीठ व प्रार्च्य रवि यजेत् ।
आवाह्य दद्यात्पाद्यादि हृत्पडङ्गेन सुव्रत ॥२३
खकारो दण्डिनो चण्डो मज्जादशनसयुता ।
मासदीर्घा जरद्वायुहृदैनत्सर्वद रवे ॥२४

बीज जिनके अन्त म हो ऐसे स्वनाम आदि के द्वारा और अस्त्र से दोनो हाथो का सशोधन करे और फिर अगुष्ठ आदि तल म नेत्र हृदय आदि का व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ १७ ॥ तीन मूल बीजो द्वारा प्राणध्यायक का न्यास करके अग के सहित पात्र को अस्त्र स प्रक्षालन कर और मूल मन्त्र से जल से फिर उसे पूरित कर अर्थात् पानी स भर देवे ॥१८॥ गन्ध-अक्षत-पुष्प रखकर दूर्वा (दूभ) और अर्घ्य को मन्त्रित करना चाहिए । उसस अपने आपका सम्प्रोक्षण करे और पूजा क समस्त द्रव्य-समूह का प्रोक्षण करना चाहिए जो प्रभूत-विमल-सार-आराधना क योग्य और परमहित है । इसके अनन्तर हृदय से मध्य मे और विदिशाओ म इन पीठादि की कल्पना करनी चाहिए ॥१९-२०॥ पीठ के ऊपर हृदय क मध्य म दिशाओं और विदिशाओ मे पीठ के ऊपर हृदम्बुज और केसरो म आठ शक्तियाँ होनी चाहिए । दीप्ता 'वा'—सूक्ष्मा 'वी'—जया 'वु'—भद्रिका 'वू'—विभूति—'वे'—विमला 'वै'—योम-सिघात विद्युता 'वौ'—सर्व तो मुखी 'व' पीठ का अर्चन करके रवि का यजन

करना चाहिए ॥ २१-२२-२३ ॥ मकार दण्डी और चण्ड तथा मज्जा और दानों म सयुक्त मांस दीर्घा एव अर्द्धामृद्दा मह रवि का सब देने वाले है ॥२४॥

वन्हीगरक्षोमरुता दिक्षु पूज्या हृदादय ।
स्वमन्त्रैः वर्णिकान्तस्था दिक्ष्वन्त्र पुरत सदृङ् ॥२५
पूर्वादिदिक्षु नपूज्याश्चन्द्रज्ञगुरुभार्गवा ।
पृश्निहिङ् गुवचाचक्रशिरीषलशुनाभयैः ॥२६
नस्याञ्जनादि कुर्वीत ग्राजमूत्रैर्ग्रहापहै ।
पाठापथ्यावचाशिग्रुसिन्धुव्योषैः पृथक्पलैः ॥२७
अजाक्षीराढक पक्व नर्पि सर्वग्रहान्हरेत् ।
वृश्चिकाली फला कुष्ठ लवणानि च शार्ङ्गकम् ॥२८
अपस्मारविनाशाय तज्जल स्वनियोजयेत् ।
विदारिकुशकाशेक्षुक्वाथज पाययन्नच ॥२९
द्राणे सर्पष्टिककूष्माण्डरसे सर्पिश्च नस्कृतम् ।
पञ्चगव्य घृत तद्वद्यान ज्वरहर शृणु ॥३०

वह्नि राक्षस और मरुत क हृदादिक दिशाओ म पूजने के योग्य है। वर्णिका क अन्दर आ स्थित है उनका अपने मन्त्रो द्वारा पूजन करे और दिशाओ म तथा मान मन्त्र द्वारा करे ॥२५॥ पूर्व आदि दिशाओ में चन्द्रमा-बुध-गुरु और शुक्र की पूजा करनी चाहिए। पूजन के उपचार पृश्नि-हिङ्गु-चक्र-शिरीष-लहसुन और अभय है। इन्हीं क द्वारा समर्चना करे ॥ २६ ॥ ग्रहों के अपहरण करन वाल अञ्जन और नस्य आदि बनावे। बकरी के मूत्र के सहित पाठा-पथ्य-वचा-शिग्रु-सिन्धु-व्योष पृथक् पृथक् पल प्रमाण लेकर बकरी के एक आढक क्षीर स पकाया हुआ घृत समस्त ग्रहों का हरण किया करता है। वृश्चिकाली-फला-कुष्ठ-लवण-शार्ङ्ग क इनका अपस्मार का विनाश होता है। उसके जल को अभियोजित करना चाहिए। विदारीकन्द-कुश-काश ईख इनके क्वाथ का जल पिलाना चाहिए ॥२७-२८-२९॥ षष्टि और कूष्माण्ड

के रस के सहित द्रोण में घृत का सस्कार करे उसे और पञ्चगव्य को ज्वर का हरण करने वाला बतलाया है ॥३०॥

ॐ भस्मास्त्राय विद्महे ।
एकदंष्ट्राय धीमहि । तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् ॥३१
कृष्णोपणनिशारास्नाद्राक्षातैलं गुडं लिहेत् ।
श्वासवानथ वा भार्गी सयष्टिमधुसर्पिषा ॥३२
पाठातिक्ताकणाभार्गीमथ वा मधुना लिहेत् ।
धात्री विश्वा सिता कृष्णा मुस्ता खजूं मागधी ॥३३
पीवरा चेति हिक्काघ्न तत्त्रय मधुना लिहेत् ।
कामलीजीरमाण्डूकीनिशाधात्रीरस पिबेत् ॥३४
व्योषपद्मकत्रिफलाविडङ्गदेवदारव. ।
रास्नाचूर्णं सम खण्डैर्जग्ध्वा कासहर ध्रुवम् ॥३५

मन्त्र—"ॐ भस्मास्त्राय विद्महे । एक दंष्ट्राय धीमहि । तन्नो ज्वरः प्रचोदयात् ।" ज्वर के लिए इस मन्त्र से उक्त उपचार करना चाहिए । कृष्णा—उपण—हल्दी—रास्ना—द्राक्षा तैल और गुड—इनको चाटे तो श्वास नष्ट होजाता है । अथवा यष्टि—मधु—घृत के साथ भार्गी को चाटे । अथवा पाठा—तिक्ता—कणा और भार्गी को मधु के साथ चाटना चाहिए । धात्री—विश्वा—सिता (मिश्री) कृष्णा—मुस्ता—खजूर—मागधी और पीवरा ये वस्तुऐं हिचकी के नाश करने वाली हैं । मधु के साथ चाटना चाहिए । कामली—जीर—माण्डूकी हरिद्रा और धात्री का रस पीना चाहिए । व्योष—पद्मक—त्रिफला—विडङ्ग—देवदारु—रास्ना इनका चूर्ण बराबर की खांड के साथ खाने से निश्चय ही खांसी का हरण होता है ॥३१-३२-३३-३४-३५॥

१५६—सूर्यार्चनम्

शय्या तु दण्डी साजेशपावकश्चतुराननः ।
सर्वार्थसाधकमिदं बीजं पिण्डार्थमुच्यते ॥१

स्वय दीर्घस्वराद्य च बीजैश्चङ्गानि सर्वदा ।
खात साधु विष चैव सविन्द्रं सकल यथा ॥२
गणस्य पञ्च बीजानि पृथगष्टफल महत् ॥३
गणजयाय नम एकदष्ट्राय चलकर्णिने गजववत्राय महोदर-
हस्ताय ॥४
पञ्चाङ्ग सर्वसामाना सिद्धि स्याल्लक्षजाप्यत ॥५
गणाधिपतये गणेश्वराय गणनायकाय गणक्रीडाय ॥६
दिग्दले पूजयेन्मूर्ती पुगवच्चाङ्गपञ्चकम् ॥७
वक्रतुण्डायैकदष्ट्राय महोदराय गजवक्त्राय विकटाय विघ्नराजाय
धूम्रवर्णाय ॥८
दिग्विदिक्षु यजेदेताल्लोका (के) शाश्च्व मुद्रया ।
मध्यमातर्जनीमध्यगताङ्गुष्ठौ समुष्टिकौ ॥६
चतुर्भुज मोदकाढ्य दण्डपाशाङ्कुशान्वितम् ।
दन्तभक्ष्यधर रक्त साब्जपाशाङ्कुशैर्वृतम् ॥१०
पूजयेत्त चतुर्थ्यां च विशेषेणाथ नित्यश ।
श्व तार्कमूलेन कृत मर्वाप्ति स्यात्तिलैर्हुते ॥११

इस अध्याय म सूय के अचन का वणन है। अग्नि देव ने कहा—शय्या-दण्डी—मज ईश और पावक के सहित चतुरानन—यह बीज समस्त अर्थों का साधक है और पिण्डाथ कहा जाता है ॥ १ ॥ स्वय दीर्घ स्वर आदि वाला है और बीजो म सब ओर से अग हैं। खात-साधु-विष-सवि दु तथा सकल—य गण के पाँच बीज होते हैं। इनका फल बडा और पृथक् दृष्ट होता है। 'गण जयाय नम एकद ष्ट्राय चलकर्णिने गज वक्त्राय महोदर हस्ताय" यह प चाग है। इसके एक लक्ष जप मे सर्व साधारण सिद्धि होती है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ गणो के अधिपति के लिये—गणो के ईश्वर के लिये—गणो के नायक के लिये और गणो के क्रीडा के लिये दिशाओ के दल मे पूर्व की भाँति मूर्ति का पाँच अ गो का पूजन करना चाहिए ॥ ६ ॥ ७ ॥ वक्त्र

सुण्ड—एकदष्ट्र—महोदर—गज वक्त्र—विकट—विघ्नराज—धूम्र वर्ण के लिये दिशाओं और विदिशाओं में लोकों को और वेशों को मुद्रा से यजन करना चाहिए। मध्यमा और तर्जनी के मध्यगत अंगुष्ठ वाले समुष्टिक चार भुजाओं से युक्त—मोदक (लड्डू) के सहित—दण्ड, पाश और अंकुश से अन्वित—दांत पर भद्र को धारण करने वाले—कमल, पाश और अंकुश से युक्त उसका पूजन करे और चतुर्थी तिथि में नित्य विशेष रूप से अर्चना करनी चाहिए। सफेद आक की जड़ से यदि इन की मूर्ति बनवाकर पूजन करे तो सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है। तिलों से हवन करना चाहिए ॥ ६ ॥ ७ ॥ ॥ ८ ॥ ॥९॥१०॥११॥

तण्डुलैर्दधिमध्वाज्यै सौभाग्य वश्यतामियात् ।
घोपासृक्प्राणधात्वर्दी दण्डी मार्तण्डभैरव ॥१२
धर्मार्थकाममोक्षाणां कर्ता विश्वपुटीवृत ।
ह्रस्वा स्युर्मूर्तय पञ्च दीर्घाण्यङ्गानि तस्य च ॥१३
सेन्द्र वारुणमीशानवामार्धदयित रविम् ।
पाशाङ्कुशधर देव ह्यक्षमालाकपालिनम् ॥१४
खट्वाङ्गादिकशक्ति च दधान चतुराननम् ।
अन्तर्बाह्ये निषद्भक्त पद्मस्य रविमण्डलम् ॥१५
आदित्यादियुत प्राच्यं उदितर्केऽर्धक ददेत् ।
आस विषाग्निविषदण्डीन्दुलेखामकला भृगु ॥१६
अर्कीय भूर्भुवः स्वरज्वालिकुरस्थ्यसगकम् ।
पद्मासनोऽरुणो रक्तवस्त्रवद्युतिविम्बग ॥१७
उदान पद्मदृग्दोर्म्यां धूम्रकेतुरुदाहृत ।
रक्ता हृदादय सौम्या वरदा पद्मधारिण ॥१८

तण्डुल—दधि—मधु और घृत के द्वारा हवन करने से सौभाग्य की वृद्धि होती है और वश्यता को प्राप्त होता है। घाष्ण—असृक् (रक्त)—प्राण और धातुओं के मर्दन करने वाले और दण्डी मार्तण्ड भैरव हैं ॥ १२ ॥ धर्म—अर्थ

काम और मोक्ष इन चारों के करने वाले और विम्ब पुरी वृत हैं। ये पाँच मूर्तियाँ ह्रस्व हैं, उनके अङ्ग दीर्घ होने हैं ॥ १३ ॥ इन्द्र-वरुण के सहित तथा वामार्ध भाग में दयिता के रखि ने वाले ईशान-रवि तथा अक्षमाला धारी कपाली को—पाश और अंकुश धारण करने वाले देव को पूजित करे और खट्वाङ्ग आदि शक्ति के धारण करने वाले चतुरानन (चार मुख वाले) का यजन करे। जिन के अन्तर और बाह्य भाग मे भक्त स्थित हैं ऐसे पद्म पर विराजमान रवि मण्डल को जो आदित्य आदि से युक्त हैं यजन करे। जब सूर्य उदय हो जावे तब अर्घ्य देवे। भास-विपाग्नि विपदण्डी और चन्द्रलेखा के मकल वाले भृगु हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ अर्क के लिये " भूर्भुवः स्व " " ऐ ज्वालिकुरत्स्मरा ङ्कम् '—यह मन्त्र है। अरुण पद्म के आसन वाला और रक्त वस्त्र एवं द्युति के सहित विम्ब मे गमन करने वाला है ॥ १७ ॥ उदात्त और दोनों हाथों से पूत्र केतु वाला तथा पद्म के समान नेत्र वाला कहा गया है। रक्त हृदादि तथा सौम्य—वर देने वाले और पद्म के धारण करने वाले हैं ॥१८॥

> विद्युत्पुञ्जनिभं स्वर्कं श्वेतं सोमोऽरुणं कुजः।
> बुधस्तद्वद्गरुः पीतं शुक्लं शुक्रं शनैश्चरः ॥१९
> कृष्णाङ्गारनिभो राहुर्ध्रकेतुरुदाहृतः।
> वामोरुवामहस्तास्ते दक्षहस्ताभयप्रदाः ॥२०
> स्वनामाद्यन्तबीजास्ते हस्तौ सशोध्य चाख्रन।
> अंगुष्ठादौ तले नेत्रे हृदादौ व्यापकं न्यसेत् ॥२१
> मूलबीजैस्त्रिभिः प्राणव्यापकं न्यस्य साङ्गकम्।
> प्रक्षाल्य पात्रमस्त्रेण मूलेनाऽऽपूर्य वारिणा ॥२२
> गन्धपुष्पाक्षतं न्यस्य दूर्वामर्घ्यं च मन्त्रयेत्।
> आत्मानं तेन सम्प्रोक्ष्य पूजाद्रव्यं च वैभवम् ॥२३
> प्रभूतं विमलं सारमाराध्यं परमं सुखम्।
> पीठाद्यान्कल्पयेदेतान्हृदा मध्ये विदिक्षु च ॥२४

अर्क विद्युत् के समूह के तुल्य है। सोम श्वेत है। मङ्गल अरुण वर्ण

वाला है। बुध उसके ही समान है। गुरु पीत वर्ण वाला है। शुक्र शुक्ल है और शनैश्चर काले अंगारे के तुल्य है। राहु धूम्र के तुल्य बताया गया है। वे सुन्दर उरु और सुन्दर हाथों वाले हैं। दाहिने हाथों से अभय का दान करने वाले हैं ॥ १९ ॥ २० ॥ उनका अपना नाम आदि मे और अन्त मे बीज से युक्त वाले हैं। अस्त्र के द्वारा हाथों का शोधन करे। अगुष्ठादि मे—तल मे—नेत्र मे—हृदादि का व्यापक न्यास करना चाहिए ॥ २१ ॥ तीन मूल बीजों से अङ्ग के सहित प्राण व्यापक न्यास करे और फिर अस्त्र के द्वारा पात्र का प्रक्षालन करके मूल मन्त्र से जल के द्वारा उसे पूरित करे। इसके पश्चात् गन्धाक्षत पुष्प रखकर दूर्वा और अर्घ्य को मन्त्रित करना चाहिए। उससे फिर अपने आप का सम्प्रोक्षण करे तथा पूजा के समस्त द्रव्यों का वैभव भी प्रोक्षण करे ॥ २२ ॥ २३ ॥ प्रभूत—विमल—सार परम सुख का आराधन करना चाहिए। इन पीठ आदि की कल्पना करे हृदय से तथा मध्य मे एवं विदिशाओं मे कल्पित करना चाहिए ॥२४॥

पीठोपरि हृदाद्यं च केसरेष्वस्त्रशक्तय. ।
रां दीप्ता री तथा सूक्ष्मा रं जया रू च भद्रया ॥२५
रे विभूति रैं विमला रोममयोद्याथ विद्युतम् ।
रौं सर्वतोमुखी र च पीठ प्रार्च्य रवि यजेत् ॥२६
आवाह्य दद्यात्पाद्यादि हृत्पड गेन सर्वतः ।
खकारो दण्डिनो चण्डो मज्जादशनसयुता ॥२७
मासादीर्घा जवद्वायुहृद्दैतत्सर्वद रवेः ।
वन्हीशरक्षोमरुता दिक्षु पूज्या हृदादय. ॥२८
स्वमन्त्रैः कर्णिकान्तस्या दिक्षु त पुरतश्च धृक् ।
पूर्वादिदिक्षु सपूज्याश्च-द्रज्ञगुरुभार्गवा ॥२९
आग्नेयादिषु कोणेषु कुजमन्दाहिकेतव ।
स्नात्वा विधिवदादित्यमाराध्यार्घ्यमुर सरम् ॥३०

कृतान्तलमैशे निर्माल्य तेजश्चण्डाय दीपितम् ।
रोचन कुङ्कुम वारि रक्तगन्धाक्षताकुराः ।३१
वेणुवीजयवा. शालिश्यामाकतिलराजिकाः ।
जपापुष्पान्विता दत्वा पात्रैः शिरसि धार्य तत् ॥३२

पीठ के ऊपर हृदादि और केसरों में मल्त्र शक्तियों की कल्पना करे। दीप्ता 'रां'–सूक्ष्मा 'री'–जया 'रू'भद्रा 'रू'–विभूति 'रें'–विमला 'रैं'–रोमया उदा विद्युत–सर्वतोमुखी 'रों'–और पंठ 'र' का प्रपूर्व अर्चन कर के फिर रवि का यजन करना चाहिए ॥ २५ ॥ २६ ॥ आवाहन करके व्रत से युक्त को हृदयादि षड् अङ्गों द्वारा पाद्य आदि देना चाहिए। उद्वार दूत–दण्डी एवं चन्द्र हैं तथा मज्जा और दर्शन से युत–मानदीर्घा एव जपढ्या हुदा है—यह रवि का सर्वद है। वह्नीश मल्त्र के हृदादि दिशाओं में पूजने के योग्य हैं ॥ २७ ॥ अपने मन्त्रों के द्वारा कर्णिका के मध्य में स्थिनों को पूजना चाहिए। दिशाओं में और आगे उमे पूजे। पूर्वादि दिशाओं में चन्द्र–बुध–बृहस्पति और शुक्र का पूजन करे ॥ २९ ॥ आग्नेय आदि कोणों में मगल–शनि–राहु और केतु का पूजन करे। स्नान करके विधि के साथ आदित्य की आराधना करे और अर्घ्य देवे ॥ ३० ॥ ऐश दिशा में कृतान्त (यम) को निर्माल्य–चण्ड के लिये दीप्ति तेज–रोचना–रोली–जल–रक्त गन्ध–अक्षत–अकुर–वेणु बीज–यव–शालि—श्यामाक—तिल—राजी (राई) और जपा के पुष्प से युक्त अर्पण करके पात्रों के द्वारा उन सिर पर धारण करना चाहिए ॥३१॥३२॥

जानुभ्यामवनीं गत्वा सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।
स्वविद्यामन्त्रितं कुम्भनेवमि प्रार्ग्यं वै महान् ॥३२
ग्रहादिशान्तये स्नानं जप्त्वाऽर्कं सर्वमाप्नुयात् ।
मङ्ग्रामविजय मारिन वीजदाप मविन्दुकम् ॥३३
न्यस्य मूर्धादिपादान्त मूल पुष्प तु मुद्रया ।
स्वागानि च यथान्यासमात्मान भावयेदविम् ॥३४

ध्यानं च मारणस्तम्भे पीतमाप्यायने सितम् ।
रिपुघातविधौ कृष्णं मोहयेच्छक्रचापवत् ॥३६
योऽभिषेकजपध्यानपूजाहोमपरः सदा ।
तेजस्वी ह्यजयः श्रीमान्स युद्धादौ जयं लभेत् ॥३७
ताम्बूलादाविदं न्यस्य जप्त्वा दद्यादुशीरकम् ।
न्यस्तबीजेन हस्तेन स्पर्शनं तद्वशे स्मृतम् ॥३८

घुटनों के बल भूमि पर चलकर सूर्य के लिये अर्घ्य निवेदन करना चाहिए। अपनी विद्या से मन्त्रित नव कुम्भों के द्वारा अङ्गों की अर्चना करके फिर ग्रहादि की शान्ति के लिये स्नान करे। सूर्य के मन्त्र का जप करके सभी युद्ध की प्राप्ति करनी चाहिए। संग्राम की विजय प्राप्ति करता है। अग्नि के सहित बीज-दीप-सबिन्दुक न्यास कर के मुद्रा के द्वारा मूर्धा (शिर) से आदि लेकर चरण पर्यन्त मूल का पूजन करना चाहिए। न्यास के अनुसार अपने अङ्गों की और अपने आपको रवि होने की भावना करनी चाहिए ॥ ३३ ॥ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ मारण और स्तम्भन में पीत का ध्यान करे आप्यायन में सित वर्ण का ध्यान करे शत्रु के घात करने की विधि में कृष्ण वर्ण का शक्र धनु के समान ध्यान मोहन कर्म में करना चाहिए ॥ ३६ ॥ जो सर्वदा अभिषेक-जप-ध्यान---पूजा और होम में तत्पर रहा करता है वह तेजस्वी-अजय-श्रीमान् और युद्ध आदि में जय का लाभ करने वाला होता है ॥३७॥ ताम्बूल आदि में इस का न्यास करके तथा जप कर के उशीरक को देवे। न्यस्त बीज वाले हाथ से स्पर्श करने से उसके वश में हो जाता है ॥३८॥

१५७-नानामन्त्रौषधकथनम् ।

वाकर्मपार्श्वयुक्शुक्लतोकक्रते मतो प्लवः ।
हुतान्ता देशवर्णाय विद्या मुख्या सरस्वती ॥१
अक्षाराद्यौ वर्णलक्षं जपेत्स मतिमान्भवेत् ।
अग्निः सवन्हिर्नामादिविन्दुर्विद्रावकृत्परं ॥२

वज्रपद्मधरं शक्रं पीतमावाह्य पूजयेत् ।
नियुतं होमयेदाज्यतिलैस्तेनाभिषेचयेत् ॥३
नृपादिर्भ्रष्टराज्याद्यीन्राज्यपुत्रादिमाप्नुयात् ।
हृल्लेखा शक्तिदेवाख्या धापोऽग्निदण्डिदण्डवान् ॥
शिवमिष्ट्वा जपेच्छक्तिमष्टम्यादिचतुर्दशीम् ।
चक्रपाशाङ्कुशधरां साभयां वरदायिकाम् ॥
होमादिना च सौभाग्यं कवित्वं पुत्रवान्भवेत् ॥५
ॐ ह्रीम् ॐ नमः कामाय सर्वजनहिताय सर्वजनमोहनाय प्रज्वलिताय सर्वजनहृदयं ममाऽऽत्मगतं कुरु कुरु ओम् ॥६
एतज्जपादिना मन्त्रो वशयेत्सकलं जगत् ॥७
ॐ ह्रीं चामुण्डेऽमुकं दह दह पच पच मम वशमानयाऽऽनय ठठ उ (ओम्) ॥८
वशीकरणकृन्मन्त्रश्चामुण्डायाः प्रकीर्तितः ।
फलत्रयकषायेण वराङ्गं क्षालयेद्वरो ॥९

इस अध्याय मे अनेक मन्त्र और औषधो का वर्णन किया जाता है। अग्नि देव ने कहा—वाक्रम पार्श्वयुक् और युक्त लोक के लिए यह प्रणव माना गया है। यह हुतान्त अर्थात् अन्त मे जिसके हवन किया जावे ऐसी देवता वर्णा मुख्य विद्या सरस्वती है। जो प्रणवादी का वर्ण लक्ष जप करता है वह निश्चय ही मतिमान् होता है। अत्रि-सवह्नि-वामाक्षि बिन्दुवि द्राव युत् परायण होने वाला है ॥ १ ॥ २ ॥ वज्र और पद्म को धारण करने वाले पीत इन्द्र का आवाहन करके उसकी पूजा करनी चाहिए। नियुत संख्या मे घृत और तिलो के द्वारा हवन कर और उससे अभिषेक करे ॥ ३ ॥ नृप आदि अपने भ्रष्ट हुए राज्य आदि को तथा राज्य पुत्र आदि की प्राप्ति करता है। हृल्लेखा शक्ति देव नाम वाली है। धापोऽग्नि और दण्डि दण्डवान् शिव की उपासना करके अष्टमी से लेकर चतुर्दशी तक शक्ति का जप करे जो कि चक्र-पाश-अङ्कुश को धारण करने वाली अभय युक्त और वरदायिका है। होम आदि के द्वारा मानव सौभाग्य—कवित्व और पुत्र की प्राप्ति किया करता

है ॥ ४ ॥ ५ ॥ मन्त्र—"ॐ ह्रीं ॐ नम कामाय सर्वजन हिताय सर्वजन मोहनाय प्रज्वलिताय सर्वजन हृदय ममात्म गत कुरु कुरु ओम्' । इस मन्त्र के जप आदि के द्वारा उपासक समस्त जगत् को अपने वश मे कर लेता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ मन्त्र—" ॐ ह्रीं, चामुण्डेऽमुक दह दह, पच पच, मम वश मानयाऽऽनय ठ ठ ठ ओम् " यह चामुण्डा देवी का वशीकरण करने वाला मन्त्र है । वश मे फलत्रय के क्वाथ से वराङ्ग का क्षालन करना चाहिए ।८-६।

> अश्वगन्धायवे स्त्री तु निशा कर्पूरकादिना ।
> पिप्पलीतण्डूलान्यष्टौ मरिचानि च विंशति ॥१०
> वृहलीरसलेपश्च वशे स्यान्मरणान्तिकम् ।
> कटीरमूलत्रिकटुक्षौद्रलेपस्तथा भवेत् ॥११
> हिम कपित्थकरस मागधी मधुक मधु ।
> तेपा लेप प्रयुक्तन्तु दपत्यो स्वस्तिमावहेत् ॥१२
> सशर्करो योनिलेपात्कदम्बरसको मधु ।
> सहदेवी महालक्ष्मी पुत्रजीवी कृताञ्जलि ॥१३
> एतच्चूर्णं शिर क्षिप्त लोकस्य वशमुत्तमम् ।
> त्रिफलाचन्दनक्वाथप्रस्था द्विकुडव पृथक् ॥१४
> भृ गहेमरस दोपा तावती छम्भुक मधु ।
> घृतं. पक्वा निशाछायाशुष्का लेप्या तु रञ्जनी ॥१५
> विदारी सजटामामचूर्णीभूता सशर्कराम् ।
> मथिता य पिबेत्क्षीरं नित्य स्त्रीशतक व्रजेत् ॥१६

स्त्री तो, अश्वगन्धा यव-निशा और कपूर आदि मत या पिप्पली और तण्डुल आठ-बीस मिरच और वृहती के रस म प्रलप करे तो मृत्युपर्यन्त वश म रहती है । करीर का मूल-त्रिकटु शहद का लेप भी इसी प्रकार का प्रभाव करता है ॥ १० ॥ ११ ॥ हिम-कपित्थक का रस—मागधी—मधुक और मधु इन सब का किया हुआ प्रलेप दम्पति (स्त्री-पुरुष का जोडा) का कल्याण करता है ॥ १२ ॥ शर्करा के सहित योनि लेप करे । कदम्ब रसक—मधु—

सहदेवी—महालक्ष्मी—पुत्रजीवी—कृताञ्जलि—इनके चूर्ण को सिर पर क्षेप करे तो लोक का उत्तम वशीकरण होता है। त्रिफला—चन्दन का क्वाथ प्रास्थ—पृथक् द्विकुडव—भृङ्ग हेम रस–हरिद्रा इन सबके समान प्रमाण का द्याम्बुक मधु को घृत में पाक करके छाया शुष्क करके रजनी का लेप करना चाहिए ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १५ ॥ विदारीकन्द—शतावरी का चूर्ण करे और शर्करा से युक्त कर मथन करके जो क्षीर के साथ पीता है वह नित्य ही सौ स्त्रियों के गमन की शक्ति प्राप्त किया करता है ॥ १६ ॥

गुप्तामाषतिलव्रीहिचूर्णं क्षारसितान्वितम् ।
अश्वत्थवशदर्भाणां मूलं वै वैष्णवीश्रियोः ॥१७
मूलं दूर्वाश्वगन्धोत्थं पिबेत्क्षीरं सुतार्थिनी ।
कौन्तीलक्ष्मी शिवाधात्रीबीजं लाघवटाकुरम् ॥१८
आज्यक्षीरमृतौ पेयं पुत्रार्थं त्रिदिवं स्त्रिया ।
पुत्रार्थिनी पिबेत्क्षीरं श्रीमूलं सवटाकुरम् ॥१९
श्रीवटाकुरदेवीनां रसं नस्ये पिबेच्च सा ।
श्रीपद्ममूलमुत्क्षीरमश्वत्थोत्तरमूलवुक् ॥२०
तरुणं पयसा युक्तं कार्पासिफलपल्लवम् ।
अपामार्गस्य पुष्पाग्रं नवं समहिषीपयः ॥२१
पुत्रार्थं चाघपटलाकैर्योगाश्चत्वार ईरिताः ।
शर्करोत्पलपुष्पाक्षं लोध्रं चन्दनसारिवा ॥२२
स्रवमाणे स्त्रिया गर्भे दातव्यास्तण्डुलाम्भसा ।
लाजा यष्टिसिताद्राक्षाक्षौद्रसर्पीषि वा लिहेत् ॥२३
आटरूषकलाङ्गल्यो काकमाच्या शिफा पृथक् ।
नाभेरधः समालिप्य प्रसूते प्रमदा सुखम् ॥२४

गुप्ता-माष (उड़द)—तिल और व्रीहि के चूर्ण को क्षीर और मिश्री से युक्त करे तथा अश्वत्थ (पीपल)-वंश दर्भ (डाभ) के मूल-वैष्णवी और श्री के मूल-दूर्वा और अश्व गन्धा का मूल इनका क्षीर के साथ स्त्री पीवे तो सुत की

प्राप्ति होती है। कोन्ती—लक्ष्मी—शिवा—धात्री के बीज—लोध और वटाकुर को लेवे घृत और क्षीर का ऋतु के समय में तीन दिन पीवे तो स्त्री को गर्भ की प्राप्ति होती है। जो पुत्र की कामना करने वाली स्त्री है उसे वटाकुर के साथ श्रीमूल का दूध के साथ पान करना चाहिए ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ श्री—वटाकुर और देवी के रस को उसे नस्य मे पीना चाहिए। इससे भी पुत्र का लाभ होता है। श्री-पद्म का मूल उत्क्षीर और पीपल और उत्तर का मूल या साना—जल से तरण करना—कपास के फूल और पत्ते, अपामार्ग के पुष्प का अग्र भाग नवीन महिषी का दुग्ध ये साढ़े छै इलोको क द्वारा पुत्र प्राप्ति के चार योग कहे गये हैं। शर्करा—उत्पल पुष्प—मधु—लोध—चन्दन और सारिवा इन वस्तुओं को गर्भ के स्राव होने के समय में स्त्री को तण्डुलो के जल के साथ देनी चाहिएँ। अथवा खील—यष्टि—मिश्री—द्राक्षा—शहद और घृत को चाटना चाहिए ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ आटरूषक—नागली—काकमाची की शिफा को पृथक् नाभि के नीचे के भाग मे स्त्री को प्रसव के समय में लेप करना चाहिए इस से सुख पूर्वक प्रसव होता है ॥२४॥

रक्त शुल्क जपापुष्प रक्तशुक्लसतो पिबेत् ।
केशर बृहतीमूल गोपीपष्टीतृणोत्पलम् ॥२५
साजक्षीर सतैल तद्भक्षण रोमजन्मकृत् ।
शीर्यमाणेषु केशेषु स्थापन च भवेदिदम् ॥२६
धात्रीभृ गरसप्रस्थ तैल च क्षीरमाढकम् ।
पष्ठयञ्जनपल तैल तत्केशाक्षिशिरोहितम् ॥२७
हरिद्राराजवृक्षत्वक्चिञ्चा लवणलाध्रको ।
पीता सारी हरेदाशु गवामुदरवृ हणम् ॥२८
ॐ नमा भगवते त्र्यम्बकायोपशमयोपशमय चलु चलु मिलि मिलि भिदि भिदि गोमानिनि चक्रिणि ह्रू ह्रूँ फट् ॥२९
अस्मिन्ग्रामे गोकुलस्य रक्षा कुरु शान्ति कुरु कुरु ठ ठ ठ ॥३०
घण्टाकर्णो महासेना वीर प्राक्तो महाबल. ।
मारीनिर्ना (र्णा) शनकर स मा पातु जगत्पतिः ।

श्लोकौ चैव न्यसेदेतौ मन्त्री गोरक्षणौ पृथक् ॥३१

रक्त और श्वेत युक्त क सवरा म अर्थात् उदर में रक्त और सफेद जवा के पुष्प का घोट कर पीना चाहिए। केदार—बृहती का मूल—गोपीपद्दी तृणो त्पल क्षाजशीर और तैल का भक्षण करने से गौओं की उत्पत्ति होती है। वेद यदि शीर्यमाण (झड़न वाले) हों तो इस से वे पुन स्थापित हो जाया करत हैं॥ २५॥ २६॥ धात्री और भृङ्ग रस प्रस्थ-तैल-माढक क्षीर पष्ठी प्रधन पल और तैल का योग भी केश-नत्र तथा शिर के लिये हितकर होता है ॥२७॥ हल्दी—राजवृक्ष की छाल—चित्रा—लवण—लोध और खारी इनके पीने से शीघ्र ही गौओं के उदर का वृहण नष्ट हो जाता है ॥ २८॥ मन्त्र—"ॐ नमो भगवत त्र्यम्बकाय उपशमयोपशमय चलु चलु, मिलि मिलि, भिदि भिदि, गोमानिनि चक्रिणि हूं फट्" ॥ २९॥ "अस्मिन् ग्रामे गोकुलस्य रक्षां कुरु, शान्ति कुरु कुरु ठ ठ ठ" ॥ ३०॥ "घण्टाकर्णो महासनो वीर प्रोक्तो महाबल। मारी निर्नाशन कर स मां पातु जगत्पति"—इन दो श्लोक और मन्त्रों का ज्ञाता पृथक् न्यास करे जो कि गौओं क रक्षा करने वाले हैं॥ ३१॥

१५८ अङ्गाक्षरार्चनम्।

यदा जन्मक्षगश्चन्द्रो भानु सप्तमराशिग।
पौष्ण काल स विज्ञेयस्तदा श्वास परिक्षयेत् ॥१
कण्ठोष्ठौ चलन स्थानाद्यस्य वक्त्रा च नासिका।
कृष्णा जिह्वा च सप्ताह जीवित तस्य वै भवेत् ॥२
तारो मेषो विष दन्ती नगो दीर्घो धनारस।
करुद्धाल्वाय महाल्वाग वीर ल्काय शिखा भवेत् ॥३
हा ल्साय सहस्राल्वाय वैष्णवाऽष्टाक्षरो मनु।
कानष्ठादितदष्टानामङ्गु लीना च पर्वसु ॥४
ज्येष्ठाग्रेण क्रमातार मध्यन्यष्टाक्षर न्यसेत्।
तर्जन्या तारमङ्गुष्ठे लग्न मध्यमया च तत् ॥५

तलेऽङ्गुष्ठे तद्गुत्तार बीजोत्तार ततो न्यसेत् ।
रक्तगौरधूम्रहरिज्जातरूपाः सितास्त्रयः ॥६
एवरूपानिमान्वर्णास्तावद्बुद्ध्वा न्यसेत्क्रमात् ।
हृदास्यनेत्रमूर्धाङ्घ्रितालुगुह्यकरादिषु ॥७
अङ्गानि च न्यसेद्बीजान्यस्याथ करदेहयोः ।
यथाऽऽत्मनि तथा देवे न्यास कार्यः कर विना ॥८

इस अध्याय मे अङ्गाक्षरों का अर्चन वर्णित किया जाता है । अग्निदेव ने कहा—जब जन्म के नक्षत्र का चन्द्रमा हो और सूर्य सातवें राशि का हो उसे पौष्ण काल जानना चाहिए । उस समय म श्वास का परिक्षेप करे ॥१॥ जिसके कण्ठ और ओष्ठ स्थान से चलित हो और जिसकी नासिका वक्र हो तथा जीभ काली हो उसका जीवन केवल सात दिन का ही होता है ॥ २ ॥ "तारो मेषो विष दन्ती नगेदीर्घो घना रम । कुद्धोल्काय महोल्काय: वीरोल्काय शिखा भवेद् । द्युल्काय सहस्रोल्काय"—यह आठ अक्षर वाला वैष्णव मन्त्र होता है कनिष्ठिका से लेकर आठ अँगुलियो के पर्वों मे ज्येष्ठा के अग्रभाग से क्रम से तार को मूर्धा मे अष्टाक्षर का न्यास करना चाहिए । तर्जनी मे तार को—लग्न अँगुष्ठ मे और मध्यमा से उसको—तल अँगुष्ठ मे हृद्गुत्तार को फिर बीजोत्तार का न्यास करना चाहिए । रक्त (लाल)–गौर–धूम्र–हरित्–जातरूप (सुनहरी) और सित तीन है ॥ ३।४।५।६ ॥ इस प्रकार के इन वर्णों का ज्ञान प्राप्त कर क्रम से न्यास करना चाहिए । हृदय–मुख–नेत्र–मस्तक–चरण–तालु–गुह्य और कर आदि मे न्यास करे । कर और देह मे इसके अङ्गों को और बीजो का न्यास करे । जिस प्रकार से अपने मे न्यास करे उसी प्रकार से देवता मे हाथ के बिना न्यास करना चाहिए ॥७।८॥

हृदादिस्थानगान्वर्णान्गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ।
धर्माद्यग्न्याद्यधर्मादि गात्रे पीठेऽम्बुज न्यसेत् ॥९
पत्रकेसरकिञ्जल्कव्यापिसूर्येन्दुदाहिनाम् ।
मण्डल त्रितय तावद्भेदैस्तत्र न्यसेत्क्रमात् ॥१०

गुणाश्च तत्र सत्त्वाद्याः केशरस्थाश्च शक्तयः ।
विमलोत्कर्षणीज्ञानक्रियायोगाश्च वै क्रमात् ॥११
प्रह्वी सत्या तथेशानाऽनुग्रहा मध्यतस्ततः ।
यागपीठं समभ्यर्च्य समावाह्य हरिं यजेत् ॥१२
पाद्यार्घ्याचमनीयं च पीतवस्त्रविभूषणम् ।
एतत्पञ्चोपचारं च सर्वं मूलेन दीयते ॥१३
वासुदेवादयः पूज्याश्चत्वारो दिक्षु मूर्तयः ।
विदिक्षु श्रीसरस्वत्यौ रतिशान्ती च पूजयेत् ॥१४
शङ्खं चक्रं गदा पद्मं मुसलं खड्गशार्ङ्गके ।
वनमालान्वितं दिक्षु विदिक्षु च यजेत्क्रमात् ॥१५
अभ्यर्च्य च बहिस्तार्क्ष्यं देवस्य पुरतोऽर्चयेत् ।
विष्वक्सेनं च सोमेशं मध्ये चावरणाद्बहिः ॥१६
इन्द्रादिपरिवारेण सपूज्य समवाप्नुयात् ॥१७

हृदय आदि स्थानों में रहने वाले वर्णों का गन्धाक्षत पुष्पों के द्वारा अर्चन करे। धर्म आदि—अग्नि आदि और अधर्म आदि का गात्र में तथा पीठ में कमल का न्यास करना चाहिए ॥६॥ पत्र–केसर–किञ्जल्क में व्यापी सूर्य–चन्द्र और दाहों के मण्डल का त्रितय और उनके देशों के द्वारा वहाँ पर क्रम से न्यास करना चाहिए ॥१०॥ वहाँ पर सत्त्व आदि गुण और केसरों में स्थित शक्तियाँ तथा विमल उत्कर्षणी ज्ञान वे क्रिया योगों का क्रम से न्यास करे। प्रह्वी–सत्या–ईशाना–अनुग्रहा मध्य में और इनके अनन्तर योग पीठ इनका भली भाँति अर्चन करके फिर हरि का आवाहन करे और यजन करे ॥११॥१२॥ पाद्य–अर्घ्य–आचमनीय–पीत वर्ण का वस्त्र और भूषण यह पाँच उपचार समस्त मूल मन्त्र के द्वारा ही हरि को समर्पित किए जाते हैं। वासुदेव आदि मूर्तियाँ चारों दिशाओं में पूजनी चाहिए। चार विदिशाओं में श्री—सरस्वती—रति और शान्ति इनका पूजन करना चाहिए ॥१३॥१४॥ शङ्ख–चक्र–गदा–पद्म—मुसल—खड्ग—शार्ङ्ग और वनमाला इनको क्रम से पूर्व आदि दिशाओं और विदिशाओं में यजन करना चाहिए। बाहिर तार्क्ष्य का अभ्यर्चन कर देव

के आगे यजन करे। आवरण से बाहिर मध्य में विष्वक्सेन और सोमेश का यजन करे। इन्द्र आदि के परिचार से भली-भाँति पूजन करके प्राप्त करना चाहिए ॥१५।१६।१७॥

१५६—पञ्चाक्षरादिपूजामन्त्राः

मेष सज्ञा विप साज्यमस्ति दीर्घोदक रस ।
एतत्पञ्चाक्षर मन्त्र शिवद च शिवात्मकम् ॥१
तारकादि समभ्यर्च्य देवत्वादि समाप्नुयात् ।
ज्ञानात्मक पर ब्रह्म पर बुद्धि शिवा हृदि ॥२
तच्छक्तिभूत सर्वेशा भिन्ना ब्रह्मादिमूर्तिभि ।
मन्त्राणां पञ्च भूतानि तन्मात्रा विषयास्तथा ॥३
प्राणादिवायव पञ्च ज्ञान कर्मेन्द्रियाणि च ।
सर्वं पञ्चाक्षर ब्रह्म तद्वदष्टाक्षरात्मकम् ॥४
गव्येन प्रोक्षयेद्दीक्षास्थान मन्त्रेण चोदितम् ।
तत्र सभूतसभार शिवमिष्ट्वा विधानत ॥५
मूलमूर्त्यङ्गविद्या भिस्तण्डुलक्षेपणादिकम् ।
कृत्वा चरु च यत्क्षीरे पुनस्तद्विभजेत्त्रिधा ॥६
निवेद्यैक पर हुत्वा सशिष्योऽयद्भजेद् गुरु ।
आचम्य सकलीकृत्य दद्याच्छिष्याय देशिक ॥७
दन्तकाष्ठ हृदा जप्त क्षीरवृक्षादिसभवम् ।
सशाप्य दन्तान्संक्षिप्त्वा प्रक्षाल्यैतत्क्षिपेद् भुवि ॥८

इस अध्याय में पञ्चाक्षर आदि पूजा के मन्त्रों का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा— मेष सज्ञा निपेसाज्यमस्ति दीर्घोदक"—यह पञ्चाक्षर मन्त्र शिव स्वरूप है और शिव के देने वाला है ॥ १ ॥ तार आदि का सम्यर्चन करके देवत्व आदि की प्राप्ति करनी चाहिए। ज्ञान स्वरूप पर ब्रह्म है और हृदय में परम बुद्धि शिव हैं ॥२॥ ब्रह्मादि मूर्तियों से भिन्न उसकी शक्ति भूत सर्वेश है। मन्त्र के वर्ण पाँच भूत हैं और उसके मन्त्र विषय हैं ॥३॥

प्राण–अपान आदि पाँच वायु और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ यह सब पञ्चाक्षर मन्त्र है। उसी की भाँति आठ अक्षर वाला मन्त्र होता है ॥४॥ मन्त्र के द्वारा प्रेरित यह दीक्षा का स्थान गव्य से प्रोक्षित होना चाहिए। वहाँ पर समस्त सम्भार (सामान) रक्खे और विधि पूर्वक शिव का यजन करे मूल मूर्ति अग विद्याओं से तण्डुल (चावल) आदि का क्षेपण आदि करे और क्षीर म चरु को करे। इसके अनन्तर उसे तीन भागों में विभक्त करना चाहिए ॥ ५-६ ॥ एक को निवेदन करके परका हवन करे और फिर शिष्य के सहित गुरु अन्य का सेवन करे। आचार्य को यह समस्त करके तथा आचमन करके शिष्य के लिए देना चाहिए ॥७॥ दूध वाले वृक्ष के बनाये हुए दन्तधावन (दाँतुन) का हृदय से जाप करे अर्थात् ध्यान करे। दाँतों का भली-भाँति शोधन करके सक्षेप करे और प्रक्षालन करके भूमि म इस फैंक देवे ॥८॥

पूर्वेण सौम्यवारीशगत शुभमतोऽशुभम् ।
पुनस्त शिष्यमायान्त शिखाबन्धादिरक्षितम् ॥९
कृत्वा वेद्या सहानेन स्वपेद्दर्भास्तरे बुध ।
स्वस्वप्न वीक्ष्य त शिष्य प्रभाते श्रावयेद्गुरुम् ॥१०
शुभं सिद्धिपदैर्भक्तिस्तै पुनर्मण्डलार्चनम् ।
मण्डल भद्रकायुक्त पूजयेत्सवसिद्धिदम् ॥११
स्नात्वाऽऽचम्य मृदा देह मन्त्रैरालिप्य कल्पते ।
शिवतीर्थे नर स्नायादघमर्षणपूर्वकम् ॥१२
हस्ताभिषेक कृत्वाऽथ प्रायात्पूजागृह बुध ।
मूलेनाब्जासन कुर्यात्तेन पूरककुम्भकान् ॥१३
आत्मान योजयित्वोर्ध्वं शिखान्ते द्वादशाङ्गुले ।
सशोध्य दग्ध्वा स्वतनु प्लावयेदमृतेन च ॥१४
ध्यात्वा दिव्य वपुस्तस्मिन्नात्मान च पुनर्नयेत् ।
कृत्वैव चाऽऽत्मशुद्धि स्याद्दिव्यस्यार्चनमारभेत् ॥१५
क्रमात्कृष्णसितश्यामरक्तपीता नगादय ।
मन्त्राणां दण्डिनाऽङ्गानि तेषु सर्वास्तु मूर्तय ॥१६

अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं विन्यस्याङ्गानि सर्वतः ।
न्यसेन्मन्त्राक्षरं पादगुह्यहृद्वक्त्रमूर्धसु ॥१७

पूर्व से सौम्य वारीश गत शुभ अतः अशुभ फिर आये हुए उस शिष्य को शिखा के बन्धन आदि से रक्षित करना चाहिए। फिर विद्वान् का कर्त्तव्य है कि इस शिष्य के साथ वेदी में स्थित होकर दर्भों के स्तर पर शयन करे। शिष्य शयन करके जोभी उसे अपना स्वप्न दिखलाई देवे उसे प्रातःकाल में अपने गुरु को सुनाना चाहिए ॥ ११० ॥ भक्ति पूर्वक फिर शुभ सिद्धि युक्त पदों के द्वारा मण्डल का मचन करे। भद्रता से युक्त एवं समस्त सिद्धियों के देने वाले मण्डल की पूजा करनी चाहिए ॥११॥ स्नान करके—आचमन करके और मिट्टी से मन्त्रों के द्वारा आलेपन करना चाहिए। इस प्रकार से उस शिव-तीर्थ में मनुष्य को अघमर्षण के साथ स्नान करना चाहिए ॥१२॥ हस्ताभिषेक करके विद्वान् को फिर पूजा के घर में जाना चाहिए। वहाँ मूल मन्त्र से कमलासन करे और उससे पूरक एवं कुम्भक करे अर्थात् प्राणायाम का विधान सम्पन्न करे द्वादशांगुल शिखान्त में अपने आपको ऊर्ध्व में योजित करके संशोषण करे और अपने तनु को दग्ध करके अमृत के द्वारा प्लावित करना चाहिए ॥१३-१४॥ दिव्य वपु का ध्यान करके उसमें पुनः आत्मा को ले जावे। इस प्रकार से आत्म शुद्धि करे और विन्यास करके फिर अर्चना का आरम्भ करना चाहिए ॥१५॥ क्रम से कृष्ण—सित—श्याम—रक्त और पीत नग आदि मन्त्र के वर्ण, दण्डी के द्वारा उनमें अग, समस्त मूर्त्तियों को अंगुष्ठ से आदि लेकर कनिष्ठिका पर्यन्त सब अंगों को विन्यस्त करके चरण—गुह्येन्द्रिय—मुख—हृदय—और मस्तक में मन्त्र के अक्षरों का विन्यास करना चाहिए ॥१६।१७॥

व्यापकं न्यस्य मूर्धादि मूलमङ्गानि विन्यसेत् ।
रक्तपीतश्यामसितान्पीठपादान्स्वकोणजान् ॥१८
साध्यान्मन्त्रान्न्यसेद्गात्राण्यधर्मादीनि दिक्षु च ।
तत्र पद्मं च सूर्यादिमण्डलत्रितयं गुणान् ॥१९

पूर्वादिपत्रे वामाद्या नवमी कर्णिकोपरि ।
वामा ज्येष्ठा क्रमाद्रौद्री काली कलविकारिणी ॥२०
बलविकारिणी चाथ बलप्रमथिनी तथा ।
सर्वभूतदमनी च नवमी च मनोन्मनी ॥२१
श्वेता रक्ता सिता पीता श्यामा वह्निनिभाऽसिता ।
कृष्णारुणाश्च ता शक्तीर्ज्वालारूपा. स्मरेत्क्रमात् ॥२२
अनन्तयोगपीठाय आवाह्याथ हृदब्जत ।
स्फटिकाभ चतुर्बाहु फलशूलधर शिवम् ॥२३
साभय वरद पञ्चवदन च त्रिलोचनम् ।
पत्रेषु मूर्तय पञ्च स्थाप्यास्तत्पुरुषादय ॥२४
पूर्वे तत्पुरुष श्वेतो अ (तोऽप्य) घोराऽष्टभुजोऽसित. ।
चतुर्बाहुर्मुख पीत सद्योजातश्च पश्चिमे ॥२५

मूर्धा आदि का व्यापक न्यास करके मूल का और अगो का न्यास करे रक्त—पीत—श्याम और सित पीठ पादो का, स्वकोणज तथा साध्या मन्त्रो का न्यास करना चाहिए । और दिशाओ मे अधर्म आदि गात्रो को विन्यस्त करे । वहाँ पर पद्म और सूर्यादि के तीन मण्डलो तथा गुणो का स्मरण करे । पूर्वादि पत्र मे कर्णिका के ऊपर वामा आदि नौका स्मरण करना चाहिए । उन नौ के ये नाम हैं—वामा-ज्येष्ठा रौद्री-काली-बल विकारिणी बल विकारिणी बल प्रमथिनी-सव भूत दमनी तथा नवमी मनोन्मनी है । श्वेता—रक्ता—सिता—श्यामा—वह्निनिभा (अग्नि के तुल्य)—असिता—कृष्णा—अरुणा ये शक्तियाँ होती हैं । ये ज्वाला के रूप वाली हैं इनका क्रम से स्मरण करना चाहिए ॥१८। १९।२०।२१।२२॥ हृदय कमल से अनन्त योग पीठ के लिए आवाहन करे । स्फटिक की आभा के समान आभा से युक्त—चार भुजा वाले—फल और शूल को धारण करने वाले—अभय से युक्त—वर देने वाले—पाँच मुख वाले—तीन नेत्रो से युक्त शिव का आवाहन करना चाहिए । पत्रो में तत्पुरुष आदिक पाँच मूर्तियो की स्थापना करनी चाहिए ॥२३।२४॥ पूर्व दिशा मे तत्पुरुष जो

श्वेत वर्ण वाले—अघोर और आठ भुजाओं से युक्त हैं। पश्चिम में अमित वर्ण वाले—चार बाहुओं से युक्त और चार मुख वाले हैं। तथा पीत और सद्योजात हैं ॥२५॥

वामदेवः स्त्रीविलासी चतुर्वक्त्रभुजोऽरुणः।
सौम्ये पञ्चास्य ईशान ईशान सर्वदः सितः ॥२६
इष्टा (ष्ट्वा) ङ्गानि यथान्यायमनन्त सूक्ष्ममर्चयेत्।
सिद्धेश्वर त्वेकनेत्र पूर्वादौ दिशि पूजयेत् ॥२७
एकरुद्र त्रिनेत्र च श्रीकण्ठ च शिखण्डिनम्।
ऐशान्यादिविदिक्ष्वेते विद्येशा कमलासना ॥२८
श्वेत पीतः सितो रक्तो धूम्रो रक्तोऽरुण. सित।
शूलाशनिशरेष्वासधा हवश्चतुराननाः ॥२९
उमा चण्डीशनन्दीशौ महाकालो गणेश्वर।
वृषो भृङ्गिरिटिस्कन्दानुत्तरादौ प्रपूजयेत् ॥३०
कुलिश शक्तिदण्डौ च खड्ग पाशध्वजौ गदाम्।
शूल चक्र यजेत्पद्म पूर्वादौ देवमर्च्य च ॥३१
ततोऽधिवासित शिष्य पाययेद्गव्यपञ्चकम्।
आचान्त प्रोक्ष्य नेत्रान्तर्नेत्रे नेत्रेण बन्धयेत् ॥३२
द्वारे प्रवेशयेच्छिष्य मण्डपस्याथ दक्षिणे।
सासनादिकुशासीन तत्र संशोधयेद् गुरु ॥३३

वामदेव—स्त्रियों के साथ विलास करने वाले चार मुख और भुजाओं वाले—अरुण सौम्य दिशा में तथा ईशान दिशा में पाँच मुखों से युक्त—सब देने वाले ईशान सित वर्ण वाले हैं। न्याय पूर्वक अंगों का यजन कर सूक्ष्म अनन्त का अर्चन करना चाहिए। सिद्धेश्वर और एक नेत्र वाले का पूर्व आदि दिशाओं में पूजन करना चाहिए ॥ २६-२७ ॥ एक रुद्र-त्रिनेत्र-श्रीकण्ठ और शिखण्डी का ऐशानी आदि विदिशाओं में पूजन करे। ये विद्या के ईश और कमल के आसन वाले हैं ॥२८॥ श्वेत–पीत–सित–रक्त–धूम्र–रक्त–अरुण और

लिन हैं। शूल-अशनि-शर-इष्वास (धनुष) बाहु वाले तथा चार मुख वाले हैं ॥२९॥ उमा-चण्डीश-नन्दीश-महाकाल-गणेश्वर-वृष-भृङ्ग रिटि और स्कन्द इनकी उत्तर आदि दिशा में पूजा करनी चाहिए ॥३०॥ कुलिश-शक्ति-दण्ड खड्ग-पाश-ध्वज-गदा-शूल-चक्र और पद्म का यजन करे। पूर्व आदि दिशा में देव का अर्चन करके फिर अधिवास किये हुए शिष्य को पञ्च गव्य का पान करावे। आचान्त प्रोक्षण करके नेत्रान्तों से नेत्रों को नेत्र से बन्धन करे ॥३१-अनन्तर मण्डप के दक्षिण द्वार में शिष्य को प्रवेश करावे। वहाँ गुरु को आसनादि के सहित कुश पर स्थित का सशोधन करना चाहिए ॥३३॥

आदितत्त्वानि संहृत्य परमार्थे लयं क्रमात् ।
पुनरुत्पादयेच्छिष्य सृष्टिमार्गेण देशिक ॥३४
न्यास शिष्ये नत धृत्वा त प्रदक्षिणमानयेत् ।
पश्चिमद्वारमानीय क्षेपयेत् कुसुमाञ्जलिम् ॥३५
यस्मिन्पतन्ति पुष्पाणि तन्नामाद्य विनिर्दिशेत् ।
पार्श्वे यागभुव खाते कुण्डे सन्नाभिमेखले ॥३६
शिवाग्नि जनयित्वेष्ट्वा पुन शिष्येण चार्चयेत् ।
ध्यानेनाऽऽत्मनि त शिष्य संहृत्य प्रलय क्रमात् ॥३७
पुनरुत्पाद्य तत्पाणौ दद्याद्दर्भांश्च मन्त्रितान् ।
पृथिव्यादीनि तत्त्वानि जुहुयाद्धृदयादिभि ॥३८
एकैकस्य शत हुत्वा व्योममूलेन होमयेत् ।
हुत्वा पूर्णाहुतिं कुर्यादस्त्रेणाष्टाऽऽहुतीर्हुनेत् ॥३९
प्रायश्चित्त विशुद्ध्यर्थ तत शेष समापयेत् ।
कुम्भ समभ्यर्च्य प्रार्च्य शिशु पीठेऽभिषेचयेत् ॥४०
शिष्ये तु समय दत्त्वा स्वर्गाद्यर्थं स्वगुरु यजेत् ।
दीक्षा पञ्चाक्षरस्योक्ता विष्ण्वादेरेवमेव हि ॥४१

आदि के तत्त्वों का संहार करके क्रम से परमार्थ में लय करे। देशिक (आचार्य) का कर्त्तव्य है कि पुन सृष्टि के मार्ग से उन्हें शिष्य को उत्पादन

करे ॥ ३४ ॥ इसके पश्चात् शिष्य में न्यास करके उसको प्रदक्षिणा में लावे । पश्चिम दिशा के द्वार पर लाकर कुसुमों की अञ्जलि को क्षिप्त करना चाहिए ॥३५॥ जिस पर पुष्प गिरते हैं उसके नाम को मात्र निर्दिष्ट करना चाहिए । पार्श्व भाग में याग की जो भूमि है उसके खोदे हुए नाभि और मेखला के सहित कुण्ड में शिवाग्नि को उत्पन्न कराकर उसका स्वयं यजन करे और फिर शिष्य के द्वारा उसका अर्चन कराना चाहिए । ध्यान में उस शिष्य का आत्मा में संहार करके क्रम से प्रलय करे । फिर उत्पादन कर उसके हाथ में अभिमन्त्रित कुशाग्रों को देवे । हृदय आदि से पृथिवी आदि तत्वों का हवन करे ॥३६॥ ॥३७।३८॥ एक-एक की सौ आहुतियाँ देकर व्योम मूल के द्वारा होम करना चाहिए । हवन करने के पश्चात् पूर्णाहुति देवे और फिर अस्त्र के द्वारा आठ आहुतियाँ देवे ॥३९॥ इसके अनन्तर विशुद्धि के लिये प्रायश्चित्त करे और शेष को पूर्ण करे । मन्त्रित किये हुए कुम्भ का अर्चन कर पीठ में शिशु का अभिषेक करना चाहिए ॥४०॥ शिष्य के विषय में समय देकर स्वर्ण आदि से अपने गुरु का यजन करे । यहाँ पर पञ्चाक्षर मन्त्र की दीक्षा कही गई है । इसी प्रकार से विष्णु आदि की भी होती है ॥४१॥

१६० पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि

जपन्वै पञ्चपञ्चाशद्विष्णुनामानि यो नरः ।
मन्त्रजप्यादिफलभाक्तीर्थेष्वर्चादि चाक्षयम् ॥१
पुष्करे पुण्डरीकाक्षं गयायां च गदाधरम् ।
राघवं चित्रकूटे तु प्रभासे दैत्यसूदनम् ॥२
जयं जयन्त्यां तद्वच्च जयन्तं हस्तिनापुरे ।
वाराहं वर्धमाने च काश्मीरे चक्रपाणिनम् ॥३
जनार्दनं च कुब्जाख्ये मथुरायां च केशवम् ।
कुब्जाम्रके हृषीकेशं गङ्गाद्वारे जटाधरम् ॥४
शालग्रामे महायोगं हरिं गोवर्धनाचले ।
पिण्डारके चतुर्बाहुं शङ्खोद्धारे च शङ्खिनम् ॥५

वामन च कुरुक्षेत्रे यमुनायां त्रिविक्रमम् ।
विश्वेश्वर तथा शोणे कपिल पूर्वसागरे ॥६
विष्णु महोदधौ विद्याद्गङ्गासागरसंगमे ।
वनमाल च किष्किन्धायां देव रैवतक विदु ॥७
काशीतटे महायोग विरजायां रिपुंजयम् ।
विशाखयूपे ह्यजित नेपाले लोकभावनम् ॥८
द्वारकायां विद्धि कृष्ण मन्दरे मधुसूदनम् ।
लोकाकुले रिपुहर शालग्रामे हरि स्मरेत् ॥६

इस अध्याय मे पचपन विष्णु के नामो का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—जो आदमी विष्णु के पचपन नामों का जाप करता है वह निश्चय ही मन्त्र के जप आदि के फल को प्राप्त करने वाला होता है और तीर्थों मे अक्षय अर्चा आदि के फल को प्राप्त किया करता है ॥१॥ पुष्कर में पुण्डरीकाक्ष को—गया मे गदाधरको—चित्रकूट मे राघव को—प्रभास क्षेत्र मे दैत्य सूदन को ॥२॥ जयन्ती में जय को—इसी भाँति हस्तिनापुर में जयन्त को—वर्धमान में वाराह को—काश्मीर म चक्रपाणि को ॥३॥ कुब्जाम्र मे जनार्दन को—मथुरा में केशव भगवान् को—कुब्ज अक म हृषीकेश को—गङ्गा के द्वार में जटाधर को ॥ ४ ॥ शालग्राम मे महायोग को—गोवर्द्धन पर्वत पर हरि को—पिण्डारक मे चतुर्बाहु को—शङ्खोद्धार में शङ्खी को ॥५॥ कुरुक्षेत्र मे वामन को—यमुना मे त्रिविक्रमको—शोण म विश्वेश्वर को—पूर्व सागर में कपिल को ॥६॥ महोदधि में विष्णु को—गङ्गा सागर के संगम में वनमाल को—किष्किन्धा में रैवतक देव को ॥ ७ ॥ काशीतट म महायोग को—विरजा में रिपुंजय को—विशाखयूप मे अजित को—नेपाल मे लोकभावन को ॥८॥ द्वारका मे कृष्ण को—मन्दर पर मधुसूदन को लोकाकुल म रिपुहर को—शालग्राम मे हरि को स्मरण करे ॥९॥

पुरुष पूरुषवटे विमले च जगत्प्रभुम् ।
अनन्त सैन्धवारण्ये दण्डके शार्ङ्गधारिणम् ॥१०

उत्पलावर्तकसौरिं नर्मदाया श्रियः पतिम् ।
दामोदरं रैवतके नन्दाया जलशायिनम् ॥११
गोपीश्वरं च सिन्ध्वब्धौ माहेन्द्रे चाच्युतं विदुः ।
सह्याद्रौ देवदेवेशं वैकुण्ठं मागधे वने ॥१२
सर्वपापहरं विन्ध्ये ओण्ड्रे तु पुरुषोत्तमम् ।
आत्मानं हृदये विद्धि जपतां भक्तिमुक्तिदम् ॥१३
वटे वटे वैश्रवणं चत्वरे चत्वरे शिवम् ।
पर्वते पर्वते रामं सर्वत्र मधुसूदनम् ॥१४
नरं भूमौ तथा व्योम्नि वशिष्ठे गरुडध्वजम् ।
वासुदेवं च सर्वत्र संस्मरन्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१५
नामान्येतानि विष्णोश्च जप्त्वा सर्वमवाप्नुयात् ।
क्षेत्रेष्वेतेषु यच्छ्राद्धं दानं जप्यं च तर्पणम् ॥१६
तत्सर्वं कोटिगुणितं मृतो ब्रह्ममयो भवेत् ।
यः पठेच्छृणुयाद्वाऽपि निर्मल. स्वर्गमाप्नुयात् ॥१७

पूरव वट में पुरुष का—विमल मे जगत् के प्रभु का—सैन्धवारण्य में अनन्त का—दण्डक मे श ङ्र्गधारी का—उत्पला वर्त्तक मे सौरिका—नमदा में श्री के पति का—रैवतक मे दामोदर का—नन्दा म जलशायी भगवान् का ॥६॥ ॥१०॥११॥ सिन्धु अब्धि म गोपीश्वर का—माहेन्द्र मे अच्युत भगवान् का—सह्य पर्वत पर देवदवेश का—मागध वन मे वैकुण्ठ का ॥ १२ ॥ विन्ध्य मे सर्व पाप हर का—ओण्ड्र मे पुरुषोत्तम का—हृदय म आत्मा का जप करने वालो को भुक्ति और मुक्ति देने वाले का—वट–वट म अर्थात् प्रत्येक वट म वैश्रवण का—चत्वर-चत्वर म अर्थात् प्रत्येक आँगन म शिव का—प्रत्येक पर्वत में राम का—सवत्र मधुसूदन भगवान् का—भूमि म नरका—व्योम मे वशिष्ठ मे गरुड ध्वज का—सभी स्थानो में वासुदेव का स्मरण भली विधि स करने वाला भोग एव मोक्ष को प्राप्त करने वाला होता है ॥१३॥१४॥१५॥ इन उपर्युक्त भगवान् विष्णु के नामों का जप करने वाला सभी कुछ की प्राप्ति किया करता है। इन क्षेत्रो मे जोभी श्राद्ध—दान—जप और तपण होता है वह

सब कोटिगुना हो जाता है और इनको करने वाला मरकर ब्रह्ममय होजाता है। जो इनको पढ़ता है या इनका श्रवण करता है वह मल रहित होजाता है और अन्त में स्वर्ग का वास प्राप्त किया करता है ॥१६।१७॥

१६१–त्रैलोक्यमोहनमन्त्राः

वक्ष्ये मन्त्रं चतुर्वर्गसिद्धयै त्रैलोक्यमोहनम् ॥१
ओम श्रीं ह्रीं हूं मं, ओम नमः पुरुषोत्तम पुरुषोत्तमप्रतिरूप लक्ष्मीनिवास सकलजगत्क्षोभण सर्वस्त्रीहृदयदारण त्रिभुवन-मदोन्मादकर सुरमनुजसुन्दरीजनमनांसि तापय तापय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय द्रावय द्रावयाऽऽकर्षया-ऽऽकर्षय परमसुभग सर्वसौभाग्यकर कामप्रदामुक हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्ववाणैर्भिद भिद पाशेन कट कट, अङ्कुशेन ताडय ताडय त्वर त्वर किं तिष्ठसि यावत्तावत्समीहितं मे सिद्धं भवति हूं फट्, नमः ॥२
ओम पुरुषोत्तम त्रिभुवनमनोन्मादकर हूं फट्, हृदयाय नमः कर्षय महाबल हूं फट्, अस्त्राय त्रिभुवनेश्वर सर्वजनमनांसि हन हन दारय दारय मम वशमानयाऽऽनय हूं फट्।
नेत्रत्रयाय त्रैलोक्यमोहन हृषीकेशाप्रतिरूप सर्वस्त्रीहृदया-कर्षण, आगच्छ, आगच्छ नमः ॥३
सङ्गाक्षिव्यापकेनैव न्यासं मूलमुदीरितम्।
इष्ट्वा सजप्य पञ्चाशत्सहस्रमभिषिच्य च ॥४
कुण्डेऽग्नौ दैविके वह्नौ चक्र कृत्वा शतं हुनेत्।
पृषद्दधि घृत क्षीरं चरु साज्य पय मूलम् ॥५
द्वादशाम्हुतीर्मू लेन सहस्रं चाक्षतास्तिलान्।
यव मधुत्रय पुष्प फल दधि समिन्द्धतम् ॥६
हुत्वा पूर्णाहुतिं शिष्ट प्राशयेत्सघृतं चरुम्।
सभोज्य विप्रानाचार्यं तोषयेत्साध्यते मनुः ॥७

स्नात्वा यथावदाचम्य वाग्यतो यागमन्दिरम् ।
गत्वा पद्मासनं बद्ध्वा शोषयेद्विधिना वपु ॥८

श्री भगिरथ ने कहा—अब मैं चतुर्वर्ग की सिद्धि के लिये त्रैलोक्य के मोहन करने वाला मन्त्र बताता हू ॥१॥ मन्त्र—"ॐ श्री ह्रीं ह्रू म्, ॐ नम पुरुषोत्तम पुरुषोत्तम प्रतिरूप लक्ष्मी निवास सकल जगत्क्षोभण सर्वस्त्री हृदय-दारण त्रिभुवन मदोन्मादकर सुरमनुज सुन्दरीजन मनासि तापय तापय, दीपय दीपय, शोषय-शोषय, मारय-मारय, स्तम्भय-स्तम्भय, द्रावय द्रावय, आकर्षया-कर्षय, परम सुभग सर्व सौभाग्य कर काम प्रद मुक हन हन, चक्रेण गदया खड्गेन सर्व बाणैभिंद-भिंद, पाशेन कट-कट, अकुशेन ताडय ताडय, त्वर-त्वर कि तिष्ठसि यावत्तावत्समीहित मे सिद्ध भवति हु फट्, नम "। अब मन्त्र के न्यास दिये जाते हैं—मन्त्र न्यास—"ॐ पुरुषोत्तम त्रिभुवन मनोन्मादकर हु फट्, हृदयाय नम । कर्पय महाबल हु फट्, अस्त्राय । त्रिभुवनेश्वर सर्व जन मनासि हन-हन, दारय-दारय मम वशमानयानय हु फट् नेत्रत्रयाय । त्रैलोक्य मोहन हृषीकेश प्रतिरूप ऋषि सहित व्यापक से ही मूल न्यास कहा गया है । यजन करके—जप करके और पचास सहस्र अभिषेक करके कुण्ड मे दैविक अग्नि म चरु बनाकर सौ बार आहुतियाँ देव । पृथक् दही—घृत—और—चरु—घृत के सहित पय शृत किया हुआ हो, इनकी मूल मन्त्र से बारह आहुतियाँ देवे । अक्षत और तिलों की एक सहस्र, यव, मधुर त्रय पुष्प, फल दधि और समिधा की सौ आहुतियाँ देकर फिर शेष पूर्णाहुति देकर घृत के सहित चरु का खिलावे विप्रो को और आचार्य को भली भाँति भोजन करावे सन्तुष्ट करे तो मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥ ४।५।६।७ ॥ स्नान करके यथाविधि आचमन करके मौन-व्रती होकर याग मन्दिर म जावे वहाँ पर पद्मासन लगाकर विधिपूर्वक शरीर का शोषण करे ॥८॥

रक्षोघ्नविघ्नकृद्दिक्षु न्यसेदादौ सुदर्शनम् ।
पञ्चबीज नाभिमध्यस्थ धूम्र चण्डानिलात्मकम् ॥९
अशेष कल्मष देहाद्विश्लेपयदनुस्मरेत् ।

रंबीजं हृदयाब्जस्थं स्मृत्वा ज्वालाभिरादहेत् ॥१०
ऊर्ध्वाधस्तिर्यगाभिस्तु मूर्ध्नि सम्प्लावयेद्वपुः ।
ध्यात्वाऽमृतैर्बहिश्चान्तः सुषुम्नामार्गगामिभिः ॥११
एवं शुद्धं वपुः प्राणानायम्य मनुना त्रिधा ।
विन्यसेन्न्यस्तहस्तान्तः शक्ति मस्तकवक्त्रयो ॥१२
गुह्ये गले दिक्षु हृदि कुक्षौ देहे च सर्वतः ।
आवाह्य ब्रह्मरन्ध्रेण हृत्पद्मे सूर्यमण्डलात् ॥१३
तारेण साधरात्मानं स्मरेत्तं सर्वलक्षणम् ॥१४
त्रैलोक्यमोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि ।
तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥१५
आत्मार्चनात्क्रतुद्रव्यं प्रोक्षयेच्छुद्धपात्रकम् ।
कृत्वाऽऽत्मपूजां विधिना स्थण्डिले तं समर्चयेत् ॥१६

आदि में दिशाओं में राक्षसों के हनन करने विघ्नकृतों के बाधक सुदर्शन का न्यास करे। नाभि मध्य में स्थित 'यं' बीज—धूम्र—चण्डानिलात्मक समस्त कल्मष को अपने देह आदि से अलग करने का स्मरण करना चाहिए। हृदय कमल में स्थित 'रं'—इस बीज का स्मरण करके ज्वालाओं से उसका दाह करे ॥९।१०॥ ऊपर—नीचे और तिरछी जाने वालीओं के द्वारा मूर्धा में वपु को सम्प्लावित करावे। फिर सुषुम्ना मार्ग से गमन करने वाले अमृतों से बाहिर और अन्दर का ध्यान करके इस प्रकार से शरीर को शुद्ध करे और फिर तीन बार मन्त्र के द्वारा प्राणायाम करना चाहिए। इसके पश्चात् न्यस्त हस्तान्त हो मस्तक और मुख में शक्ति का न्यास करना चाहिए ॥११।१२॥ गुह्य—गला—दिशा—हृदय—कुक्षि और समस्त देह में सूर्य मण्डल से हृत्कमल में रन्ध्र के द्वारा आवाहन करके तार के द्वारा समस्त लक्षण वाले सदरात्मा का स्मरण करना चाहिए ॥१३।१४॥ मन्त्र—'त्रैलोक्य मोहनाय विद्महे स्मराय धीमहि। तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्' ॥१५॥ आत्मा के अर्चन से जो क्रतु (याग) के द्रव्य हों उनका प्रोक्षण करे और शुद्ध पात्र करके विधि से आत्म पूजा करके स्थण्डिल में उसका अर्चन करे ॥१६॥

कूर्मादिकल्पिते पीठे पद्मस्थं गरुडोपरि ।
सर्वाङ्गसुन्दरं प्राप्तवयोलावण्ययौवनम् ॥१७
मदाघूर्णिततास्राक्षमुदारं स्मरविह्वलम् ।
दिव्यमाल्याम्बरालेपभूषितं सस्मिताननम् ॥१८
विष्णुं नानाविधानेकपरिवारपरिच्छदम् ।
लोकानुग्रहणं सौम्यं सहस्रादित्यतेजसम् ॥१९
पञ्चबाणधरं प्राप्तकामाक्षं द्विचतुर्भुजम् ।
देवस्त्रीभिर्वृतं देवीमुखासक्तेक्षणं जपेत् ॥२०
चक्रं शङ्खं धनुः खड्गं गदां मुसलमङ्कुशम् ।
पाशं च बिभ्रतं चार्चेदावाहादिविसर्जनं ॥२१
श्रियं वामोरुजङ्घास्था श्लिष्यन्ती पाणिना पतिम् ।
साब्जवामकरां पीनां श्रीवत्सकौस्तुभान्विताम् ॥२२
मालिनं च पीतवस्त्रं च चक्राद्याढ्यं हरिं यजेत् ॥२३
ॐ सुदर्शन महाचक्रराज धर्मशान्त दुष्टभयङ्कर छिन्द छिन्द विदारय २ परमन्त्रान्ग्रस ग्रस भक्षय भक्षय भूत नि चाऽऽशय चाऽऽशय हुं फट्, ॐ जलचराय स्वाहा खड्गतीक्ष्ण छिन्द छिन्द खड्गाय नमः शारङ्गाय सशराय हुं फट् ॥२४

कूर्म आदि के द्वारा कल्पित पीठ में गरुड के ऊपर पद्म पर स्थित—समस्त अंगों से सुन्दर—प्राप्त वय के लावण्य एवं यौवन वाले—मद से आघूर्णित ताम्र (लाल) नेत्रों वाले—उदार—काम से विह्वल—दिव्य माला, वस्त्र और आलेप से भूषित—मन्द मुस्कान से युक्त मुख वाले भगवान् विष्णु का जोकि अनेक प्रकार के विविध परिवार के परिच्छद से युक्त हैं। लोकों पर अनुग्रह करने वाले—सौम्य—सहस्र सूर्य के समान तेज वाले हैं ॥१७।१८।१९॥ पञ्च बाण धारण करने वाले—प्राप्त कामाक्ष—दो और चार भुजा वाले तथा देवों की अङ्गनाओं से आवृत एवं देवी के मुख पर अपने नेत्रों को आसक्त रखने वाले का जप करना चाहिए अर्थात् उक्त स्वरूप में रहने वाले विष्णु का ध्यान करते हुए जप करे ॥२०॥ शङ्ख—चक्र—धनुष—खड्ग—गदा—मुसल—अङ्कुश और

पाश इन आयुधों को धारण करने वाले विष्णु की अर्चना करे। जिसमें आदि में आवाहन हो और विसर्जन्त पर्यन्त होना चाहिए ॥२१॥ वाम ऊरु और जांघ पर स्थित तथा हाथ से पति का आलिङ्गन करती हुई और वाम हस्त से कमल लिये हुए—पीन तथा श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि से युक्त श्री का यजन करे और मालाधारी–पीत वस्त्र वाले चक्र आदि से युक्त भगवान् हरि का यजन करना चाहिए ॥ २२।२३ ॥ मन्त्र—'ॐ सुदर्शन महाचक्रराज धर्मदान्त दुष्ट भयङ्कर छिन्द छिन्द, विदारय-विदारय, परम मन्त्रान् ग्रस-ग्रस, भक्षय भक्षय, भूतानि त्रासय-त्रासय, हूं फट । ॐ जल चराय स्वाहा खड्ग तीक्ष्ण छिन्द छिन्द खड्गाय नम शार्ङ्गाय सशराय हूं फट्' ॥२४॥

ॐ भूतत्रासाय विद्महे चतुर्विधाय धीमहि ।
तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात् ॥२५
सवर्तक श्रमन पाथय पोथय हूं फट, स्वाहा पाश घम घमाऽऽकर्षयर हूं फट , फट ।
अङ्कुशेन कट्ट हूं फट ॥२६
क्रमाद्भुजेषु मन्त्रै स्वैरेभिरस्त्राणि पूजयेत् ॥२७
ॐ पक्षिराजाय हूं फट् ॥२८

तार्क्ष्यं यजेत्कर्णिकायामङ्गदेवान्यथाविधि ।
शक्तिरिन्द्रादिदिक्पत्रेषु तार्क्ष्याद्या धृतचामराः ॥२९
शक्त्याऽन्ते प्रयोज्याऽऽद्यो सुरशाद्याश्च दण्डिना ।
पीते लक्ष्मीसरस्वत्यौ रतिप्रीतिजयासिताः ॥३०
कीर्तिकान्त्यौ सिते श्यामे तुष्टिपुष्टी स्मरोदिते ।
लोकेशान्तं यजेदेवं विष्णुमिष्टार्थसिद्धये ॥३१
ध्यायेन्मन्त्रं जपेद्वैनं जुहुयात्त्वभिषेचयेत् ॥३२
ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं हूं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः ३३
एतत्पूजादिना सर्वान्कामानाप्नोति पूर्ववत् ।
तोयं संमोहनीपुष्पं नित्यं तेन च तर्पयेत् ॥३४

अन्य मन्त्र—"ॐ भूतमाताय विद्महे चतुर्विधाय धीमहि । तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्" ॥२५॥ 'सवर्त्तक भ्रमन पोथय-पोथय हुं फट्, स्वाहा पाश धम धमऽऽकर्षमाऽऽर्षय हुं फट्, फट् । अङ्कुशेन कट्टु हुं फट्" । क्रमसे इन मन्त्रों के द्वारा भुजाओं में अस्त्रों का पूजन करना चाहिए । मन्त्र—ॐ पक्षिराजाय हुं फट्" ॥२६॥२७॥२८॥ तार्क्ष्य का यजन करे और कर्णिका में विधि के अनुसार अङ्ग देवी का यजन करे । इन्द्र आदि मन्त्रों में शक्ति है । चामर धारण करने वाली तार्क्ष्यादि शक्तियाँ अन्त में प्रयुक्त करनी चाहिए और दण्डी को सुरेशाद्या आदि में प्रयुक्त करने चाहिए । पीत में लक्ष्मी और सरस्वती तथा रति प्रीति जया सिता तथा कीर्त्ति और कान्ति सित में एवं स्मरोदिता तुष्टि और पुष्टि का यजन करे । इस प्रकार से इष्ट अर्थ की सिद्धि के लिये लोकेशान्त विष्णु का यजन करना चाहिए ॥२९॥३०॥३१॥ इस मन्त्र का ध्यान करे अथवा मन्त्र का जप करना चाहिए । हवन करे और अभिषेक करना चाहिए ॥३२॥ मन्त्र—"ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं हुं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः" । पूर्व की भाँति पत्नपूजादिक द्वारा समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है । जपों के द्वारा सम्मोहनी पुष्पों के द्वारा और उससे नित्य ही तर्पण करना चाहिए ॥३३-३४॥

ब्रह्मा सशक्रश्रीदण्डी बीज त्रैलोक्यमोहनम् ।
जप्त्वा त्रिलक्षं हुत्वाऽब्जैर्लक्ष बिल्वैश्च साज्यकैः ॥३५
तण्डुलैः फलगन्धाद्यैर्दूर्वाभिस्त्वायुराप्नुयात् ।
जपाभिषेकहोमादिक्रियातुष्टो ह्यभीष्टद ॥३६
ॐ हुं नमो भगवते वराहाय भूर्भुवःस्वःपतये ।
भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा ॥३७
पञ्चाङ्ग मित्यमयुतं जप्त्वा ऽऽयू राज्य माप्नुयात् ॥३८

ब्रह्मा शक्र (इन्द्र) के सहित श्री दण्डी त्रैलोक्य मोहन बीज का तीन लाख जाप करके कमलों के द्वारा और घृत के साथ बिल्वों के द्वारा एक लक्ष हवन करे तण्डुल—फल गन्धादि तथा दूर्वाओं के द्वारा हवन करने

से आयु की प्राप्ति करता है। जप–अभिषेक–होम आदि कर्मों से सन्तुष्ट देव अभीष्ट का दान किया करते हैं। मन्त्र–"ह्रूं नमो भगवते वराहाय भूर्भुवः स्वः पतये भूपतित्वं मे देहि दापय स्वाहा"। इसके पञ्चाङ्ग का एक अयुत जाप करके आयु और राज्य की प्राप्ति होती है ॥३५-३६-३७ ३८॥

१६२ नानामन्त्राः

ओमु विनायकार्चनं वक्ष्ये यजेदाधारशक्तिकम् ।
धर्माद्यष्टककन्दं च नालं पद्मं च कर्णिकाम् ॥१
केशरं त्रिगुणं पद्मं तीव्रं च ज्वलिनीं यजेत् ।
नन्दां च सुयशां चोग्रां जीवन्तीं विन्ध्यवासिनीम् ॥२
गणमूर्ति गणपतिं हृदयं स्याद्गणंजयं ।
एकदन्तोत्कटशिरः शिखायाचलकर्णिने ॥३
गजवक्त्राय कवचं हुं फडन्तं तथाऽष्टकम् ।
महोदरो दण्डहस्तः पूर्वाद्ये मध्यतो यजेत् ॥४
जमो गणाधिपो गणनायकाऽथ गणेश्वर ।
वक्रतुण्ड एकदन्तोत्कटलम्बोदरो गज ॥५
वक्त्रो विकटनामाऽथ हुं फ पूर्वो विघ्ननाशिने ।
धूम्रवर्णो महेन्द्राद्या बाह्ये विघ्नेशपूजनम् ॥६

इस अध्याय में नाना मन्त्रों के विषय में वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा–अब मैं विनायक (गणेश) के अर्चन को बतलाता हूँ। आधार शक्ति वाले का यजन करे। धर्म आदि अष्टक कन्द-नाल-पद्म कर्णिका केशर-त्रिगुण पद्म-तीव्र और ज्वालिनी का यजन करना चाहिए। नन्दा-सुयशा उग्रा-जीवन्ती और विन्ध्य वासिनी का यजन करे ॥ १ ॥ २ ॥ गणमूर्ति-गणपति गणंजय हृदय का यजन करे। एकदन्त उत्कट शिर शिखा वाले-अचलकर्णी और गज वक्त्र के लिये 'हुं फट्' अन्त वाला कवच है तथा अष्टक होता है। महान् उदर वाले-दण्ड हाथ में रखने वाले का पूर्व आदि दिशा में मध्य में यजन करना चाहिए ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥ जप-गणों का स्वामी गणनायक-गणेश्वर तुण्ड-

एकदन्त उत्कट लम्बोदर-गज-वक्त्र-विकट नामा ये विघ्नों के नाश करने वाले के लिये 'हू'-यह पूर्व वाले हैं। धूम्रवर्ण—महेन्द्राद्य मह आह्य मे विघ्नेश का पूजन होना है ॥५॥६॥

त्रिपुरायजनं वक्ष्ये अजिताग्रो रुरुस्तथा ।
चण्ड क्रोधस्तथोन्मत्त कपाली भीषण क्रमात् ॥७
सहाग्रे भैरवो ब्राह्मी मुख्या ह्रस्वास्तु भैरवा ।
ब्रह्माणी पद्ममुखा दीर्घा अग्न्यादौ वटुका क्रमात् ॥८
समयपुत्रा व (व)टुको योगिनीपुत्रकस्तथा ।
सिद्धपुत्रश्च वटुकः कुलपुत्रश्चतुर्थक ॥९
हेतुक क्षेत्रपालश्च त्रिपुरान्तो द्वितीयकः ।
अग्निवेतालोऽग्निजिह्व. कराली काललोचन ॥१०
एकपादश्च भीमाक्ष ऐं क्षें प्रेतस्तथाऽऽसनम् ।
(ओम्) ऐं ह्रीं श्रीश्च त्रिपुरा पद्मासनसमास्थिता ॥११
बिभ्रत्यभयपुस्तकं च वामे वरदमालिकाम् ।
मूलेन हृदयादि स्याज्जालपूर्णं च कार्मुकम् । १२
गोमध्ये नाम सलिख्य चाष्टात्रे च मध्यत ।
श्मशानादिपटे श्मशानाङ्गारेण विलेखयेत् ॥१३

अब आगे त्रिपुरा का यजन बताते हैं—अमित अङ्ग वाला-रुरु-चण्ड-क्रोध—उन्मत्त-कपाली और क्रम से भीषण-सहार-भैरव-ब्राह्मी मुख्या—ह्रस्व भैरव-ब्रह्माणी—पद्ममुखा—दीर्घा और वटुक क्रम मे अग्नि आदि मे इनका यजन करना चाहिए। समय पुत्र—वटुक तथा योगिनी पुत्र—वटुक—कुल पुत्र—चतुर्थक-हेतुक-क्षेत्रपाल—त्रिपुरान्त—द्वितीयक—अग्नि वेताल-अग्नि जिह्व—कराली—कामलोचन—एकपाद-भीमाक्ष-ऐं क्षें प्रेत तथा आसन ओम् ऐं ह्रीं श्री. और पद्मासन पर स्थित त्रिपुरा-अभय पुस्तक को धारण करने वाली-वाम मे वर देने वाली मालिका को धारण करने वाली—मूल से हृदय आदि और जालपूर्ण कार्मुक लिखे और गो मध्य मे नाम को भली-भाँति लिखे

और अष्टदल में मध्य में लिखे। श्मशान आदि के वस्त्र में श्मशान के अंगार के द्वारा लिखवाना चाहिए ॥७ से १३॥

चिताङ्गारपिष्टेन मूर्ति ध्यात्वा तु तस्य च।
क्षिप्त्वोदरे नीलसूत्रैर्वेष्ट्य चोच्चाटनं भवेत् ॥१४
ॐ नमो भगवति जा (ज्वा)लामालि (लि) नि गृध्रगणपरिवृते स्वाहा ॥१५
युद्धे गत्वाजपन्मन्त्रं पुमान्साक्षाज्जयी भवेत् ॥१६
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं श्रियै नमः ॥१७
उत्तरादौ च धूमिनी मूर्धा पूज्या चतुर्दले।
आदित्या प्रभावती च मोमाच्चिमधराचिद्रय. ॥१८
ॐ ह्रीं गौर्यै नमः ॥१९
गौरीमन्त्रः सर्वकरो होमाद्ध्यानाज्जपार्चनात्।
रक्ता चतुर्भुजा पाशवरदा दक्षिणे करे ॥२०
अं कुशाभययुक्ता ता प्रार्थ्यं सिद्धात्मना पुमान्।
जीवद्दर्पगत धीमान्न चौराग्निभयं भवेत् ॥२१
क्रुद्ध प्रमादी भवति युधि मन्त्राम्बुपानतः।
अञ्जन तिलक वश्यो जिह्वाग्रे कजिला भवेत् ॥२२

चिता के अन्दर जला हुआ अंगार को पीस कर उस से उस की मूर्ति बनाकर ध्यान करे तथा उदर में डाल कर नील सूत्रों से वेष्टन करे उच्चाटन हो जाता है ॥ १४ ॥ मन्त्र—'ओम् नमो भगवति ज्वाला मालिनि गृध्रगण परिवृते स्वाहा" ॥ १५ ॥ युद्ध में जाता हुआ इस मन्त्र का जाप करे तो पुरुष का साक्षात् जय होता है ॥ १६ ॥ मन्त्र—" ओम् श्रीं ह्रीं क्लीं श्रियै नमः." ॥ १७ ॥ उत्तर आदि में धूमिनी—मूर्धा चतुर्दल में पूजने के योग्य हैं। आदित्या और प्रभावती तथा मामा विमधरा श्री को पूजे ॥ १८ ॥ गौरी का मन्त्र—" ॐ ह्रीं गौर्यै नमः " ॥ १९ ॥ यह गौरी का मन्त्र सब कार्य करने वाला है। इसका जाप–होम–ध्यान और अर्चन करना चाहिए। इसका ध्यान

इस प्रकार से किया जाता है— रक्त वर्ण वाली–चार भुजाओं से युक्त–पाश–वर का देने वाली दक्षिण हाथ में–दूसरे हाथ में अंकुश तथा अभय दान से युक्त है। इस प्रकार की मिद्धात्मा के द्वारा पुरुष प्रार्थना करे तो उस धीमान् की सौ वर्ष की आयु हो जाती है और उसे किसी भी चोर या शत्रु का भय नहीं होता है। ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

तज्जपान्मैथुन वश्ये तज्जपाद्योनिवीक्षणम् ।
स्पर्शाद्वशी तिलहोमात्सर्व चैव तु सिध्यति ॥२३
सप्ताभिमन्त्रित चान्न भुङ्क्तस्य श्रिय सदा ।
अर्धनारीनरूपोऽयं लक्ष्म्यादिर्वैष्णवादिक ॥२४
अनङ्गरूपा शक्तिश्च द्वितीया मदनातुरा ।
पवनवेगा भुवनपाला वै सर्वसिद्धिका ॥२५
अनङ्गमदनानङ्गमेखला ता जपेच्छ्रिये ।
पद्ममध्यदलेषु ह्रीं स्वरान्कादीस्तत स्त्रियाः ॥
पट्कोणे वा घटे वाऽथ लिखित्वा स्याद्वशीकरम् ॥२६
ॐ ह्रीं ह्रूं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे । ओम्, ओम् ॥२७
मूलमन्त्र षडङ्गोऽय रक्तवर्णे त्रिकोणके ।
द्रावणी ह्लादकारिणी क्षोभिणी गुह्यक्लिन्ना ॥२८
ईशानादौ च मध्ये ता नित्या पाशाकुशौ तथा ।
कपालकल्पकतरु वीणा रक्ता च तद्वती ॥२९
नित्याऽभया मङ्गला च नववीरा च मङ्गला ।
दुर्भगा मनोन्मनी पूज्या द्रावा पूर्वादिन स्थिता ॥३०

उसके जाप से मैथुन को वश्य करे–उसके जप से योनि का वीक्षण हो–स्पर्श मात्र करने से वशी हो तथा तिला से होम करने पर सभी कुछ की सिद्धि होती है ॥ २३ ॥ सात बार मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित किया हुआ अन्न का भोजन करे तो उसके सर्वदा श्री का निवास रहता है। यह अर्ध नारीन र का रूप है जो लक्ष्मी आदि वैष्णव आदि वाला है ॥ २४ ॥ यह अनङ्ग रूपा

शक्ति है, द्वितीया मदनातुरा है, पवन वेगा और भुवन पाला निश्चय ही समस्त सिद्धियों को करने वाली हैं ॥ २५ ॥ श्री के लिये अनङ्ग मदना और अनङ्ग मेखला उसका जाप करना चाहिए। पद्म के मध्य दलों में 'ह्रीं' और स्वरों को तथा 'क' आदि वर्णों को लिखे। इसके अनन्तर षट्कोण में अथवा घर में लिखे तो स्त्री का वशीकरण होता है ॥ २६ ॥ मन्त्र—"ॐ ह्रीं ह्. नित्य क्लिन्ने मदद्रवे। ओम् ओम्' ॥ २७ ॥ यह षडङ्ग मूल मन्त्र है। रक्त वर्ण त्रिकोण में-द्रावणी—ह्लाद कारिणी—क्षोभिणी—गुह्यशक्तिका ईशान आदि दिशाओं में मध्य में नित्या उसको तथा पाश और अंकुश—कपाल—कल्प तरु—वीणा और तङ्गी रक्ता—निरया—अभया—मङ्गला—नव वीरा— मङ्गला— दुर्भगा—मनोन्मनी और द्रावा पूर्वादि में स्थित पूजने के योग्य होती हैं ॥ २८ ॥ ॥२९॥३०॥

ॐ ह्रीम्, अनङ्गाय नम ।
ॐ ह्रीं स्मराय नम ।३१
मन्मथाय च माराय कामायैव च पञ्चधा।
कामा पाशाङ्कुशौ चापबाणा ध्येयाश्च बिभ्रत ॥३२
रतिश्च विरति प्रीतिर्विप्रीतिश्च मतिर्धृतिः।
विघृति पुष्टिरेभिश्च क्रमात्कामादिर्युता. ॥३३
ॐ ह्रं नित्यक्लिन्ने मदद्रवे, ओम्, ओम्, अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म य र ल व श ष स ह क्ष, ॐ ह्रं नित्यक्लिन्न मदद्रवे स्वाहा ॥३४
आधारशक्ति पद्म च सिंहे देवी हृदादिपु ॥३५
ॐ ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि हूं फट् स्वाहा ॥३६

मन्त्र—"ॐ ह्रीम् अनङ्गाय नम । ॐ ह्रीं स्मराय नम ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार से मन्मथ के लिय-मार के लिये और काम के लिये पाँच प्रकार के मन्त्र हैं। काम-पाश-अंकुश-चाप और बाण इनको धारण करने वाली

का ध्यान करना चाहिए ॥ ३२ ॥ रति–विरति–प्रीति–विप्रीति–मति–धृति–विधृति–पुष्टि इनसे क्रम से कामादिक से युक्त हैं ऐसा ध्यान करे। मन्त्र—" ॐ ह्र नित्यक्लिन्न मद द्रवे, श्रोम्। अ आ इ ई उ ऊ ॠ ऋ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अ अः, क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म य र ल व, श ष स ह क्ष ॐ ह्रं नित्यक्लिन्न मद द्रवे स्वाहा" ॥ ३४ ॥ आधार शक्ति का और पद्म का तथा सिंह पर एवं हृदादि में देवी का ध्यान करे। मन्त्र—'ॐ ह्रीं गौरि रुद्रदयित योगेश्वरि हू फट् स्वाहा' ॥३५॥३६॥

१६३ त्वरिताज्ञानम्।

ॐ ह्लीं हू रु खे छे क्ष स्त्री हू रू क्ष ह्रीं फट् त्वरितायै नम ॥१

त्वरिता पूजयेन्न्यस्य द्विभुजा चाष्टबाहुकाम्।
आधारशक्ति पद्म च सिंहे देवीहृदादिकम् ॥२
पूर्वादौ गायत्री यजेन्मण्डले वै प्रणीतया।
हू रू कारा खेचरी चण्डा छेदनी क्षेपणी स्त्रिया. ॥३
हू रू कारी क्षमकारी च फट् कारी मध्यतो यजेत्।
जया च विजया द्वारि किंकर च तदग्रत ॥४
तिलैर्होमश्च सर्वाप्त्यै नामव्याहृतिभिस्तथा।
अनन्ताय नम स्वाहा कुलिकाय नम स्वाहा ॥५
स्वाहा वासुकिराजाय शङ्खपालाय वौषट्।
तक्षकाय वषण्नित्य महापद्माय वै नम ॥६
स्वाहा कर्कोटनागाय वट पद्माय च वै नम।
लिखेन्निग्रहचक्र तु एकाशीतिपदैनरः ॥७
वस्त्रे पट्टे तनौ भूर्जे शिलाया यष्टिकायु च।
मध्ये कोष्ठे साध्यनाम पूर्वादौ पट्टिकासु च ॥८

इस अध्याय में त्वरिता के ज्ञान के विषय में वर्णन किया जाता है।

मृत्युंजय ने कहा—मन्त्र—'ॐ ह्रीं हूँ षे छ्क्ष स्त्री हूँ क्ष ह्रीं फट् त्वरितायै नमः'—त्वरिता को जो दो भुजाओं वाली और आठ भुजाओं वाली है न्यास कर और ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिए। आधार शक्ति—पद्म और सिंह पर देवी हृदादिक का पूजन करे। पूर्व आदि दिशाओं में गायत्री का यजन करे। मण्डल में प्रणीता में हूँ कार खचरी—चण्डा—छेदनी—क्षपणी—स्त्री में हूँ कारी—क्षम कारी और मध्य में फटकारी का यजन करना चाहिए। जया और विजया का द्वार पर और उसके आगे किंकर का यजन करना चाहिए ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ मर्दादि अर्थात् सब युद्ध की प्राप्ति के लिए तिलों से होम करना चाहिए तथा नाम व्याहृतियों के द्वारा करे। यथा—अनन्ताय नमः स्वाहा—कुलिकाय नमः स्वाहा—वासुकिराजाय स्वाहा—शङ्खपालाय वौषट्—तक्षकाय वषट्—नित्य महापद्माय वैं नमः—कर्कोटक नागाय स्वाहा—पद्मयाय नमः—इस प्रकार से मनुष्य का हृदयासी पदों के द्वारा निग्रह चक्र लिखना चाहिए ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥ वस्त्र में—पट में—शरीर में—भाजन पर—शिला में और पट्टिकाओं में कोष्ठक में पूर्वादि में अष्टिकाओं में साध्य का नाम लिखे ॥८॥

ॐ ह ह थ छ् छन्द च्छन्द चतुर कण्ठका वालरात्रिकाम् ।
एषादावशुगादी च यमराज्य च आह्वान ॥९
ष गा त्रा नारवमार्जीका तनिमाक्षमानती ।
मामादनन्दमाता रक्षत रक्ष रक्ष मक्ष था ॥१०
पमपाटरपाट मान्मा ।
मामादृशाभूचिरिभूपाटरवीश्वरीश्वाटट ॥ ११
यमराजाह्वाह्वाना र त नाय मारणात्मकम् ।
कज्जल निम्बनियामन्यामृत्विषमयुक्तम् ॥१२
अङ्गारग समायुक्त पिङ्गवाचारसयुतम् ।
कारपक्षस्य लम्भ्या श्मशान वा चतुष्पथे ॥१३
निघायवत्कुण्डावस्नाद्वल्माक वाऽथ निक्षिपेत् ।
विभीतद्रुमशाखाया यन्त्र सर्वारिमर्दनम् ॥१४

लिखेदनुग्रह चक्रं शुक्लपक्षेऽथ भूर्जके ।
लाक्षया कुंकुमेनाथ खटिकाचन्दनेन वा ॥१५
भुवि भित्तौ च पूर्वादि नाम मध्यमकोष्ठके ।
खण्डेन्दुवारिमध्यस्थमों ज सोवाऽपि घट्टिगम् ॥१६

ॐ हू धू च्छन्द च्छन्द इन चारो को—काठ वा—काल रात्रिका को ऐशादि दिशा में अणुपाद और बाहिर यमराज को लिखे ॥ ६ ॥ करालो नालमाली कालनि मोत मोनको । मामो देतत्त दे मोता रक्षत न्व भक्षया । (पम या रट याट मोट मा मोटमा । मोमो दृगाभू त्रिरि भू पाटटवीश्वरी रचा-ट ट) यमराज से बाहिर र त और तोम यह मारण करने वाला होता है । नीम का गोंद—मज्जा—रक्त और विष से संयुक्त कज्जल जो कि अंगारे से समा-युक्त हो और पिंगलाधार से युक्त हो इसे कौए के पंख की कलम से श्मशान में अथवा चोराहे पर रक्खे । कुण्ड के नीचे अथवा वल्मीक में निक्षिप्त करे । विभीत वृक्ष की शाखा के नीचे न्थ पित यन्त्र समस्त शत्रुओं के मर्दन करने वाला होता है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ अनुग्रह चक्र को शुक्ल पक्ष में भोजपत्र पर लिखना चाहिए । इसे लाख से, कुंकुम से अथवा खटिका चन्दन से लिखना चाहिए ॥ १५ ॥ भूमि पर और भीत पर पूर्वादि नाम मध्यम कोष्ठक में लिखना चाहिए खण्डेन्दु वारि मध्य में स्थित ॐ ज सो वा घट्टिग लिखे ॥ १६ ॥

लक्ष्मीस्लोक शिवाद्यौ च राक्षसादिकमान्निवेत् ।
श्री. सा मा मा मा साश्री सा नौ या ज्ञे ज्ञेया नौ सा ॥१७
माया लीता ला ली या मा ज्ञेया नो सा माया ।
लीला यत्र पद्मका वहि शीघ्रा दिक्षु च कलश वन्हि ॥१८
पद्मस्थ पद्मचक्र च मृत्युजित्स्वर्गग धृतिम् ।
शान्तीना परमा शान्ति सौभाग्यादिप्रदायकम् ॥१६
रुद्रे रुद्रसमा कार्या कोष्ठकास्तत्र ता लिखेत् ।
जो माया हू म्फ फडन्ता च आदिरणमथान्तत ॥२०

विद्यावर्णक्रमेणैव नंगा च अपडन्तिकाम् ।
अधस्तात्प्रत्यगिरैषा सर्वकामार्थसाधिका ॥२१
एकाशीतिपद सर्वामादिवर्णक्रमेण तु ।
आदिम यावदन्ते स्याद्वषडन्त च नाम वै ॥२२
एषा प्रत्यगिरा चान्या सर्वकार्यादिसाधनी ।
निग्रहानुग्रह चक्र चतु षष्टिपदैर्लिखेत् ॥२३
अमृती सा विद्या चक्र म ह्रीनामाथ मध्यत ।
फट्काराद्यास्यन्तगता विह्नीकारेण वेष्टयेत् ॥२४
कुम्भवद्दारिता सर्वशत्रुहृत्सवदायिका ।
विप नश्यत्करणजपादक्षरार्यं श्च दण्डकं ॥

लक्ष्मी श्लोक को शिवादि में गाक्षसादि क्रम से लिखे । श्री सा मा मा मा मा श्री मा नो या ळ क्ष या नो मा । मा मा लीला ला ली या मा क्षं या नो सा माया । जहाँ पर षट् कार वर्जित लीना बाहिर लिखे, दिशाओं में रा ग्रा–क्लश और वह्नि निग्र ॥ १७ ॥ १८ ॥ पद्म में स्थित और दष चक्र-मृत्युजित् है और स्वग म गमन करने वाला है । धृति है और शान्तियो में यह परम शान्ति है तथा सौभाग्य आदि का प्रदायक है ॥ १९ ॥ रुद्र के विषय में रुद्र के समान काष्ठ बनाने चाहियें उनमे उसे लिखना चाहिए । जो माया को जिसके अन्त म हूं फट् हो इसके अनन्तर आदि वर्ण को लिखे ॥ २० ॥ विद्या वर्णों के क्रम स ही वषट् शब्द के अन्त वाली सज्ञाओ को लिखना चाहिए । नीचे के भाग म यह सर्वार्थ एव कामनाओ की साधिका प्रत्यङ्गिरा लिखे ॥ २१ ॥ इक्यासी पद म आदि वर्ण के क्रम से सब को लिखे । आदिम वर्ण जब तक अन्त म होवे और नाम लिखे जिसके अन्त में वषट् हो ॥ २२ ॥ यह एक अन्या प्रत्यगिरा है जो समस्त कार्य आदि के साधन करने वाली है । इस प्रकार से निग्रह और अनुग्रह करने वाला चक्र चौंसठ पदो के द्वारा लिखना चाहिए ॥ २३ ॥ वह अमृती विद्या है और वह चक्र है । मध्य में ह्रीं नाम लिखे । फट्कार जिसके आदि म हो ऐसे अन्यत-

पन को तीन ह्रीं कारों से अर्थात् तीन 'ह्रीं' इन बीजों से वेष्टित करना चाहिए ॥ २४ ॥ कुम्भ की भाँति धारण की हुई समस्त शत्रुओं का हरण करने वाली और सब कुछ देने वाली है। वरणजपादिक्षरादि के दण्डकों से विष का नाश होता है ॥२५॥

१६४—सकलादिमन्त्रोद्धारः

सकल निष्कल शून्य कलाढ्य स्वमलङ्कृतम् ।
क्षपण क्षयमन्तस्थ कण्ठोष्ठ चाष्टम शिवम् ॥१
प्रासादस्य पराख्यस्य स्मृतरूप गुहाष्टया ।
सदा शिवस्य शब्दस्य रूपस्याखिलसिद्धये ॥२
अमृतश्चांशुमानिन्द्रश्चेश्वरश्चोग्र ऊहक ।
एकपादेल ओजाख्य ओपधश्चांशुमान्वशी ॥३
अकारादेर्वाचकाश्च ककारादे क्रमादिमे ।
वामदेव शिखण्डी च गणेश कालशङ्करौ ॥४
एकनेत्रो द्विनेत्रश्च त्रिशिखो दीर्घबाहुक ।
एकपादर्धचन्द्रश्च बलपो योगिनीप्रिय ॥५
शक्तीश्वरा महाग्रन्थिस्तर्पक स्थाणुदन्तुरौ ।
निधीशो नन्दिपद्मश्च तथाऽन्य शाकिनीप्रिय ॥६
मुखबिम्बो भीषणश्च कृतान्त. प्राणसञ्ज्ञक ।
तेजस्वी शक्र उदधिः श्रीकण्ठ सिंह एव च ॥७
शशाङ्को विश्वरूपश्च क्षश्च स्यान्नरसिंहक ।
सूर्यमात्रा समाक्रान्त विश्वरूप तु कारयेत् ॥८

इस अध्याय में सकलादि तन्त्रों का उद्धार वर्णन किया जाता है। ईश्वर ने कहा—सकल–निष्कल–शून्य–कलाढ्य–स्वमलङ्कृत–क्षपण–क्षयमन्तस्थ और कण्ठोष्ठ अष्टम शिव हैं। पराख्य प्रासाद की स्मृतरूप आठ प्रकार की गुहा हैं। सदाशिव शब्द के रूप ही समस्त सिद्धियों की निष्पत्ति के लिये हैं ॥१॥२॥ अमृत अंशुमान्–इन्द्र–ईश्वर–उग्र–ऊहक–एक पादेल–ओजाख्य–

औषध-अंशुमान्-वषी ये मकारादि के और वकारादि के क्रमसे वाचक होते हैं। कामदेव—शिखण्डी—गणेश—काल—शङ्कर—एक नेत्र-द्विनेत्र-त्रिशिख दीर्घ बाहुक-एक पाद-अर्धचन्द्र-वलय—योगिनी प्रिय-शक्तीश्वर—महाग्रन्थि-तर्पक-स्थाणु-दन्तुर-निधीश-नन्दि पद्म तथा अन्य शाकिनी प्रिय—मुखबिम्ब-भीषण कृतान्त—प्राण नाम वाला—तेजस्वी—शक्र—उदधि—श्रीकण्ठ और सिंह—शशाङ्क—विश्वरूप—क्षरव—नरसिंहक—सूर्यमाया से समाक्रान्त विश्वरूप कराना चाहिए ॥३-४-५-६-७-८॥

अंशुमत्समयत कृत्वा शशिनीज विना युतम् ।
ईशानमाजसाऽऽक्रान्त प्रथम तु समुद्धरेत् ॥६
तृतीय पुष्प विद्धि दक्षिण पञ्चम तथा ।
सप्तम वामदेव तु सद्योजात तत परम् ॥१०
रस युक्त तु नवम ब्रह्मपञ्चकमीरितम् ।
ओजःराद्याश्चतुर्थन्ता नमान्ता सर्वमन्त्रका ॥११
सद्योदवा द्वितीय तु हृदय चाङ्गसयुतम् ।
चतुर्थं तु शिरो विद्धि ईश्वर नाम नामत ॥१२
उहकणशिखा ज्ञ या विश्वरूपममन्विता ।
तन्मन्त्रमष्टसम्यान नत्र तु दशम मतम् । १३
अस्त्र शशी समास्यात शिवमत्र शिखिध्वज ।
नमः स्वाहा तथा वौषड् हूम् च षट्कक्रमेण तु ॥१४
जातिषट्क हृदादाना प्रासाद मन्त्रमावदे ।
ईशानाद्रुद्रसख्यात प्राद्धरन्नायुग्मिश्रितम् ॥१५
औषधाक्रान्तशिरसमूहकस्यापरि स्थितम् ।
अर्धचन्द्राध्वंनादश्च बिन्दुद्वितयमध्यगम् ॥१६

अंशुमत् को मयत करके शशिनीज के बिना युक्त करके ओज से आक्रान्त ईशान का पहिले अर्थात् प्रथम भली भाँति उद्धार करना चाहिए। ऐसे समुद्धार करे ॥ ६ ॥ तृतीय का पुष्प जाने तथा पञ्चम को दक्षिण और

सप्तम को वामदेव तथा इसके आगे सद्योजात समझना चाहिए। रसयुक्त नवम होता है। इस प्रकार से ब्रह्म पञ्चक कहे हैं। सभी मन्त्रों में आदि में ओङ्कार अर्थात् 'ॐ' यह होता है और फिर चतुर्थी विभक्ति अन्त में लगाकर यह दिया जाता है और अन्त "नम."—यह शब्द होता है ॥१०।११॥ सद्योदेव हैं और अङ्गों से युक्त द्वितीय हृदय होता है। चौथा शिर जानना चाहिए। नाम से ईश्वर—यह नाम है ॥ १२ ॥ विश्वरूप से समन्वित उहकर्ण शिखा जाननी चाहिए। वह मन्त्र अष्ट संख्या वाला है। नेत्र दशम माना गया है ॥१३॥ अस्त्र षष्ठी कहा गया है और शिखि ध्वज शिव मन्त्र माना है। नम स्वाहा—वौषट्—हूं यह षट्क क्रम से होता है ॥१४॥ हृदादिक का यह जाति षट्क है। प्रासाद मन्त्र को कहा जाता है। ईशान से रुद्र संख्या वाला मधु रञ्जित का उद्धार करना चाहिए ॥१५॥ चौथवों से आक्रान्त शिवों के समूह के ऊपर स्थित अर्धचन्द्र और ऊर्ध्वनाद दो बिन्दुओं के मध्यगामी हैं ॥१६॥

तदन्ते विश्वरूप तु कुटिल तु त्रिधा तत ।
एव प्रासादमन्त्रश्च सर्वकर्मकरो मनु ॥१७
शिखावीज समुद्धृत्य फट्कारान्त तु चैव फट् ।
अर्धचन्द्रासन ज्ञेय कामदेवसर्पकम् ॥१८
महापाशुपतास्त्र तु सर्वदुष्टप्रमर्दनम् ।
प्रासाद सकल प्रोक्तो निष्कल प्रोच्यतेऽधुना ॥१९
सौषध विश्वरूप तु रुद्राख्य सूर्यमण्डलम् ।
चन्द्रार्धनादसयोग विसर्ग कुटिल तत ॥२०
निष्कलो भुक्तिमुक्ती स्यात्पञ्चाङ्गोऽय सदाशिवः ।
अंशुमान्विश्वरूप च आवृत शून्यराञ्जितम् ॥२१
ब्रह्माङ्गरहित- शून्यस्तस्य मूर्तिरसस्वरु ।
विघ्ननाशाय भवति पूजितो वालवालशैः ॥२२
अंशुमान्विश्वरूपाख्यमूर्धकस्योपरि स्थितम् ।
कलाद्यं सकलस्यैव पूजाङ्गादि च सर्वदा ॥२३

नरसिंह कृतान्तस्थ तेजस्वी प्राणमूर्ध्वगम् ।
अंशुमानूहकाक्रान्तमधोर्ध्वं खमलङ्कृतम् ।।२४
चन्द्रार्धनादनादान्त ब्रह्मविष्णुविभूषितम् ।
उदधि नरसिंह च सूर्यमायाविभेदितम् ।।२५
यदा कृत तदा तस्य ब्रह्माण्यङ्गानि पूर्ववत् ।
ओजाख्यमंशुमद्युक्त प्रथम वर्णमुद्धरेत् ।।२६

उसके अन्त में कुटिल विश्वरूप तीन प्रकार है । इसके अनन्तर प्रासाद मन्त्र है और यह मन्त्र समस्त कर्मों के करने वाला है ।।१७।। शिखा बीज का समुद्धार करके अन्त म फट् करे हो और यह फट् अर्ध चन्द्रासन समझना चाहिए जो कामदेव ससर्दक है ।।१८।। महापाशुपत प्रास्त्र समस्त दुष्टों का मर्दन करन वाला है । यह समस्त सकल प्रासाद बताया गया है अब निष्कल बताया जाता है ।।१९।। औषध के सहित रुद्र नाम वाला विश्व रूप सूर्यमण्डल है । फिर चन्द्रार्ध नाद सयोग विसर्ग कुटिल है । यह निष्कल भुक्ति (भोग प्रदानमे) और मुक्ति (मोक्ष दने से) आता है । इस प्रकार से यह पाँच मन्त्र वाला सदा शिव है । अंशुमान्–विश्वरूप और प्राज्ञ शून्य से रञ्जित है ।।२०।२१।। ब्रह्माङ्ग से रहित शून्य है और उसकी मूर्ति रस कर वृक्ष है । वह बाल एव बालिश क द्वारा विघ्नों के नाश के लिए पूजित होती है । अंशुमान् विश्वरूप नाम वाल मूषक क ऊपर स्थित है । सकल का ही कलाद्य तथा पूजाङ्ग आदि सर्वदा होता है ।। २२।२३ ।। कृतान्त पद स्थित नरसिंह–तेजस्वी प्राण और ऊर्ध्वगामी–अंशुमान्––ऊहाक्रान्त–अधोर्ध्व तथा खमलङ्कृत––चन्द्रार्धनाद के अन्तिम नाद वाल एव ब्रह्मा विष्णु स विभूषित ऐसे उदधि और नरसिंह का जो सूर्यमाया से विभेदित है । इसका जिस समय मे करे तब उसके पूर्व की भाँति ब्रह्मा अगों और ओजाख्य अंशुमन् स युक्त प्रथम वर्ण का उद्धार करना चाहिए ।।२४।२५।२६।।

अंशुमच्चांशुनाऽऽक्रान्ता द्वितीया वर्णनायकम् ।
अंशुमानीश्वर तद्वत्त तीय मुक्तिदायकम् ।।२७

ऊहकश्चायुनाऽऽक्रान्त वरुण प्राणतैजसम् ।
पञ्चम तु समाख्यात कृतान्त तु तत. परम् ॥२८
अ शुमानुदकप्राणः सप्तम वर्णमुद्धतम् ।
पद्मामिन्दुसमाक्रान्त नन्दीशमेकपादधृक् ॥२६
प्रथम चान्तलो योज्य क्षपण दशवीजकम् ।
ग्रस्याऽऽद्यं च तृतीय च पञ्चम सप्तम तथा ॥३०
सद्योजात तु नवम द्वितीय हृदयादिकम् ।
दश तु प्रणव यत्तु फडन्त चास्त्रमुद्धरेत् ॥३१
नमस्कारयुतान्यत्र ब्रह्माङ्गानि तु नान्यथा ।
द्वितीयादष्टम् यावदष्टौ विद्येश्वरा मता ॥३२
ग्रनन्तेशश्च सूक्ष्मश्च तृतीयश्च शिवोत्तम. ।
एकमूर्त्येकरूपस्तु त्रिमूर्तिरपरस्तथा ॥३३
श्रीकण्ठश्च शिखण्डी च ग्रष्टौ विद्येश्वरा. स्मृताः ।
शिखण्डिनोऽप्यनन्तान्त मन्त्रान्त मूर्तिरीरिता ॥३४

ग्र शु से श्राक्रान्त ग्र शुमत् द्वितीय वर्ण नायक है। इसी भाँति ग्र शु-मान् ईश्वर तृतीय है जो मुक्ति के प्रदान करने वाला है। ऊहक और ग्र शु से ग्राक्रान्त प्राण तैजस वरुण तथा कृतान्त पञ्चम कहा गया है। इसके आगे उदक प्राण ग्र शुमान् सातवाँ वर्ण उद्धृत किया गया है। इन्दु से समाक्रान्त पद्म और एक पाद को धारण करने वाले नन्दीश हैं। प्रथम और अन्त मे दशबीज वाला क्षपण का योजन करना चाहिए। इसके ग्रादि में होने वाला—तृतीय—पञ्चम तथा सप्तम—सद्योजात और नवम—द्वितीय और हृदयादिक—दश प्रणव है जिसके ग्रन्त में 'फट्' शब्द होता है। इस प्रकार से ग्रस्त्र का भी उद्धार करना चाहिए ॥२७ से ३१॥ ब्रह्माङ्ग सब नमस्कार से युक्त होते हैं। ग्रन्य प्रकार से कभी नहीं होते हैं। द्वितीय से ग्रष्टम पर्यन्त ये ग्राठ विद्येश्वर कहे गये हैं ॥३२॥ ग्रनन्तेश—सूक्ष्म और तृतीय शिवोत्तम—एक मूर्ति—एक रूप और दूसरे त्रिमूर्ति हैं। श्रीकण्ठ—शिखण्डी ये ग्राठ विद्येश्वर माने गये हैं। शिखण्डी से भी ग्रनन्त के ग्रन्त पर्यन्त मन्त्रान्त मूर्ति कही गई है ॥३३।३४॥

१६५—वागीश्वरीपूजा

वागीश्वरीपूजनं च प्रवक्ष्यामि समण्डलम् ।
ईश्वरं कालसयुक्तं मनुं वर्णसमायुतम् ॥१
निपाद ईश्वरं कार्यं मनुना च द्रसूर्यवत् ।
अक्षरं न हि देयं स्याद्ध्यायेत्कुन्देन्दुसंनिभाम् ॥२
पञ्चाशद्वर्णमालां तु मुक्तास्रग्दामभूषिताम् ।
वरदाभयाक्षसूत्रपुस्तकाढ्यां त्रिलोचनाम् ॥३
लक्षं जपेन्मन्त्रवांस्तु कादान्तां वर्णमालिकाम् ।
अकारादिक्षकारान्तां विशन्तीं मालवत्स्मरेत् ॥४
कुर्याद्गुरुश्च दीक्षार्थं मन्त्रग्राहे तु मण्डलम्
तुर्याग्रमिन्दुभक्तं तु भागाभ्यां समलं हितम् ॥५
वीथिका पादिका कार्या पद्मान्यष्टौ चतुष्पदे ।
वीथिका पट्टिका बाह्ये द्वाराणि द्विपदानि तु ॥६

श्री ईश्वर ने कहा—अब मैं मण्डल के सहित श्री वागीश्वरी के पूजन को बताता हूँ । काल सयुक्त और वर्ण समायुत ईश्वर मन्त्र का भी वर्णन करूँगा ॥१॥ हे निपाद ! चन्द्र और सूर्य के समान मन्त्र से ईश्वर करने के योग्य है । अक्षर नहीं देना चाहिए । कुन्द के श्वेत पुष्प और चन्द्र के समान का ध्यान करना चाहिए । मुक्ता की माला और दाम से भूषित—पचास वर्णों की माला—वरदान, अभयदान अक्षसूत्र और पुस्तक से युक्त—तीन नेत्रों वाली का ध्यान करे ॥२॥३॥ मन्त्रों का एक लक्ष जाप करे और ककार से अ त तक एवं अकार से क्षकारान्त पर्यन्त मालवत् प्रवेश करती हुई वर्णों की मालिका का स्मरण करना चाहिए ॥ ४ ॥ दीक्षा प्राप्त करने के लिये गुरु अवश्य ही बनाना चाहिए । मन्त्र के ग्रहण करने में मण्डल करे । वह मण्डल भागों से तुर्याग्र और इन्दु भक्त होना चाहिए तथा समल हितकर होता है ॥५॥ वीथिका और पट्टिका बनानी चाहिए । चतुष्पद में आठ पद्म बनावे । बाहिरी भाग में वीथिका और पट्टिका करे तथा द्विपद द्वार बनावे ॥६॥

उपद्वाराणि तद्वच्च कोणबाह्यं द्विपट्टिकम् ।
सितानि नव पद्मानि कर्णिका कनकप्रभा ॥७
केशराणि विचित्राणि कोणान्रक्तेन पूरयेत् ।
व्योमरेखान्तरं कृष्णं द्वाराणीन्द्रेभमानत. ॥८
मध्ये सरस्वती पद्मे वागीशी पूर्वपद्मके ।
हृल्लेखा चित्रवागीशी गायत्री विश्वरूपया ॥९
शाकरी मतिर्धृतिश्च पूर्वाद्या ह्रीं स्ववीजकाः ।
ध्येया सरस्वतीवच्च कपिलाज्येन होमक. ॥१०
सस्कृतप्राकृतकविः काव्यशास्त्रादिविद् भवेत् ॥११

इसी भाँति उपद्वार बनावे और दोपट्टिका वाले कोण बाह्य करे । नव पद्म सित हो तथा कनक के समान प्रभा वाली कर्णिका होनी चाहिए ॥७॥ उसके विचित्र रग वाले केसर बनावे और कोणो को लाल रग से पूरित करे । व्योम रेखा का अन्तर कृष्ण रक्खे और इन्द्रेभमान से द्वारो को करे । पद्म के मध्य मे सरस्वती रक्खे । पूर्व पद्म मे अर्थात् पद्म के पूर्व दिशा के भाग में अपला पूर्व की ओर वाले पद्म में वागीशी बनावे । हृल्लेखा—चित्रवागीशी—गायत्री—विश्वरूपया—शाकरी—मति और धृति तथा पूर्वाद्या ह्रीं और स्ववीजका का सरस्वती की भाँति ध्यान करना चाहिए । कपिला गौ के घृत से होम करे । इसके करने से सस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का कवि तथा काव्य शास्त्र आदि का ज्ञाता विद्वान् होता है ॥८।९।१०।११॥

१६६—मण्डलानि

सर्वतोभद्रकान्यष्ट मण्डलानि वदे गुह ।
शङ्कुना साधयेत्प्राचीमिष्टया विषुवे सुधी ॥१
चित्रास्वात्यन्तरेणाथ हृष्टसूत्रेण वा पुन. ।
पूर्वापरायत सूत्रमास्फाल्य मध्यतोऽङ्कयेत् ॥२
कोटिद्वय तु तन्मध्यादङ्कयेद्दक्षिणोत्तरम् ।
मत्स्यद्वय प्रकर्तव्य स्फालयेद्दक्षिणोत्तरम् ॥३

शतक्षेत्रार्धमानेन कोणसंपातमादिशेत् ।
एवं सूत्रचतुष्कस्य स्फालनाच्चतुरस्रकम् ।।४
जायते तत्र कर्तव्यं भद्रं वेदकरं शुभम् ।
वसुभक्तेन्दुद्विपदे क्षेत्रे वीथी च भागिका ।।५
द्वारं द्विपदिकं पद्ममानाद्वै सकपोलकम् ।
कोणबन्धविचित्रं तु द्विपदं तत्र वर्तयेत् ।।६
शुक्लं पद्मं कर्णिका तु पीता चित्रं तु केसरम् ।
रक्ता वीथी तत्र कल्प्या द्वारं लोकेशरूपकम् ।।७
रक्तकोणं विधौ नित्ये नैमित्तिकेऽब्जकं शृणु ।
असंसक्तं तु संसक्तं द्विधाऽब्जं भुक्तिमुक्तिकृत् ।।८

इस अध्याय में मण्डलों का वर्णन किया जाता है। श्री ईश्वर ने कहा हे गुह ! अब हम सर्वतो भद्रक आदि आठ मंडलों को बताते हैं। शंकु (कील) से प्राची को साधित करना चाहिए। विद्वान् को इष्ट विषुव में यह करना चाहिए। चित्रा और स्वाती के अन्तर से अथवा पुनः इष्ट सूत्र से पूर्वपरायत सूत्र को फैलाकर मध्य में अङ्क (निशान) करना चाहिए ।।१।२।। उसके मध्य से दक्षिणोत्तर दो कोटी को अंकित करे। दो मत्स्य बनाने चाहिए और दक्षिण-उत्तर में उन्हें स्फालित करे ।।३।। शत क्षेत्र के अर्धमान से कोण सम्पात को आदिष्ट करे। इस तरह से चार सूत्रों के स्फालन करने से वह चौकोर होजाता है। उस चौकोर में वेदकर शुभ भद्र बनावे। वसु भक्तेन्दु क्षेत्र में वीथी और भागिका की रचना करे ।।४।५।। द्विपदिक द्वार पद्म के मान से सकोपलक करे और कोण बन्ध से विचित्र द्विपद बनावे ।।६।। इसमें जो पद्म हो वह शुक्ल होना चाहिए। उसकी कर्णिका पीत वर्ण की करे तथा केसर विचित्र वर्ण के विरचित करे। वीथी रक्त वर्ण की रक्खे और द्वार लोकेश के रूप वाला बनावे ।।७।। नित्यविधि हो तो उसमें कोण रक्त रक्खे और यदि विधि नैमित्तिक हो तो अब्जक रक्खे। अब्ज भी असंसक्त और संसक्त दो प्रकार का होता है जो भोग मोक्ष के देने वाला है ।।८।।

अमसक्तं मुमुक्षूणा ममक्त तत्त्रिधा पृथक् ।
बालो युवा च वृद्धश्च नामत. फलसिद्धिदाः ॥९
पद्मक्षेत्र तु सूत्राणि दिग्विदिक्षु विनिक्षिपेत् ।
वृत्तानि पञ्चकल्पानि पद्मक्षेत्रेसमानि तु ॥१०
प्रथमे कर्णिका तत्र पुष्करर्नवभिर्युता ।
केसराणि चतुर्विंशद्वितीयेऽथ तृतीयके ॥११
दलसधिर्गजकुम्भनिभान्तर्यद्दलाग्रकम् ।
पञ्चमे व्योमरूप तु समक्त कमल स्मृतम् ॥१२
अमसक्ते दलाग्रे तु दिग्भागैविस्तराद् भजेत् ।
भागद्वयपरित्यागाद्वस्त्वग्रैर्वर्तयद्दलम् ॥१३
साधिविस्तारसूत्रेण तन्मानान्नाङ्कयेद्दलम् ।
सव्यासव्यक्रमेणैव वर्धयेत्तद्वेत्तया ॥१४
अथ वा साधिमध्यात्तु भ्रामयेदर्धचन्द्रवत् ।
साधिद्वयाग्रसूत्र वा बालपद्म तदा भवेत् ॥१५
साधिसूत्रार्धमानेन पृष्ठत परिवर्तयेत् ।
तीक्ष्णाग्र तन्तुवातेन कमल भुक्तिमुक्तिदम् ॥१६

जो अमसक्त अब्ज होता है वह मुक्ति की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुओ का होता है । जो समक्त अब्ज होता है वह पृथक् तीन प्रकार का होता है । एक बाल, दूसरा युवा और तीसरा वृद्ध है । नाम स ही ये फल सिद्धि देने वाले होते हैं ॥९॥ पद्म क क्षेत्र मे सूत्रा को दिशा और विदिशाओ मे विशेष रूप से निक्षिप्त करे । पद्म क्षेत्र क सम पञ्च कल्प वृत्त होते हैं ॥१०॥ प्रथम मे कर्णि का वहाँ पर होती है जो नव पुष्करो से युक्त होती है । द्वितीय और तीसरे मे चौबीस केसर होत हैं । दला की सन्धि और हाथो के कुम्भो के तुल्य दलो का अग्रभाग होता है । पञ्चम म व्योम रूप समक्त कमल बताया गया है ॥११।१२॥ जो अमसक्त होता है उसक दलो के अग्र भाग मे विस्तार से दिग्भागो का सेवन किया जाता है । दो भागो के परित्याग करने से वस्तु के अग्रा से दल का वर्तन करना चाहिए ॥१३॥ सन्धि—विस्तार के सूत्र के द्वारा

उसके मान से दल की मार्जन नहीं करे। किन्तु हव्य और अपसव्य अर्थात् दक्षिण नाम के क्रम से ही उसका वर्धन करे। इसीसे वह होजाता है ॥१४॥ अथवा सन्धि के मध्य से अर्ध चन्द्र की भाँति उसे घुमा देवे अथवा सन्धि द्वय के अग्र सूत्र को करे तब बाल पद्म हो जाया करता है ॥१५॥ सन्धि सूत्र के अर्धमान से पीछे की ओर परिवर्तित कर देवे। तन्तु वात से तीक्ष्ण अग्र भाग वाला कमल सांसारिक समस्त सुखोपभोग और अन्त मे संसार के जन्म-मरण के आवागमन से छुटकारा देने वाला होता है ॥१६॥

मुक्तौ वृद्ध च वश्यादौ बाल पद्म समानकम् ।
नवनाभ नवहस्त भागैर्मन्त्रात्मकैश्च तत् ॥१७
मध्येऽब्ज पट्टिकावीथीद्वारेणाब्जस्य मानत. ।
कण्ठोपकण्ठमुक्तानि तद्बाह्ये वीथिका मता ॥१८
पञ्चभागान्विता सा तु समन्ताद्दशभागिका ।
दिग्विदिक्ष्वष्ट पद्मानि द्वारपद्म सवीथिकम् ॥१९
तद्बाह्ये पञ्चपादिका वीथिका यत्र भूषिता ।
पद्मवद्द्वारकण्ठस्तु पदिक चाष्टकण्ठकम् ॥२०
कपोल पदिक कार्य दिक्षु द्वारत्रय स्फुटम् ।
कोणबन्धा त्रिपट्ट तु द्विपद वज्रवद्भवेत् ।२१
मध्या तु कमल शुक्ल पीत रक्त च नीलकम् ।
पीत शुक्ल च धूम्र च रक्त पीत च मुक्तिदम् ॥२२
पूर्वादौ कमलान्यष्ट शिवविष्ण्वादिकं यजेत् ।
प्रासादमध्यतोऽभ्यर्च्य शक्रादीनब्जकादिषु ॥२३
अस्त्राणि बाह्यवीथ्या तु विष्ण्वादीनश्वमेधभाक् ।
पवित्रारोहणादौ च महामण्डलमालिखेत् ॥२४

मुक्ति मे वृद्ध और वश्य कर्म आदि मे बाल पद्म समान होता है। नवनाभ और नवहस्त वाला वह भागों के द्वारा तथा मन्त्रात्मकों से होता है ॥१७॥ मध्य में अब्ज है, पट्टिका—वीथी और द्वार से अब्ज के मान से कंठो-

कठ मुक्त हैं। उसके वाह्य भाग मे वीथिका मानी जाती है ।।१८।। वह पाच भागो मे युक्त है और चारो ओर दश भागो वाली होती है। दिशाओ और विदिशाओ मे आठ पद्म होते हैं जो द्वार पद्म होता है वह वीथिका के रहित होता है ।।१६।। उसके वाहिर के भाग मे पञ्चपदिका वीथीका जहाँ भूषित होती है। पद्म की भाँति ही द्वार कण्ठ है और पदिक आठ कण्ठ वाला है ।।२०।। कपोल—पदिक और दिशाओ मे तीन द्वार स्फुट बनाने चाहिए। कोण वन्ध–त्रिपट्ट और द्विपद वज्र के तुल्य होता है ।। २१ ।। मध्य कमल–शुक्ल–पीत–रक्त और नीला होता है। पीत—शुक्ल और धूम्र तथा रक्त–पीत मुक्ति देने वाला होता है ।।२२।। पूर्व आदि दिशाओ मे आठ कमल है। यहाँ शिव एवं विष्णु आदि का यजन करना चाहिए। प्रासाद मध्य से अर्चना करके अब्जक आदि मे इन्द्र आदि का यजन करे। वाहिर के भाग मे वीथी मे अस्त्रों का यजन करे। जो विष्णु आदि का यजन करता है वह अश्वमेध के फल को भोगने वाला होता है। पवित्रारोहण आदि मे महा मण्डल को लिखना चाहिए ।।२४।।

अष्टहस्तं पुरा क्षेत्रं रसपक्षैर्विवर्तयेत् ।
द्विपदं कमलं मध्ये वीथिका पदिका ततः ।।२५
दिग्विदिक्षु ततोऽष्टौ च लीलाब्जानि विवर्तयेत् ।
मध्यपद्मप्रमाणेन विशत्पद्मानि तानि तु ।।२६
दलसंधिविहीनानि नीलेन्दीवरकाणि च ।
तत्पृष्ठे पदिका वीथी स्वस्तिकानि तदूर्ध्वतः ।।२७
द्विपदानि तथा चाष्टौ कृतभागकृतानि तु ।
वर्तयेत्स्वग्निपार्श्वेत्र वीथिका पूर्ववद्वहिः ।।२८
द्वाराणि कमलं यद्वद्वककण्ठयुतानि तु ।
रक्तं कोणं पीतवीथी नला पद्मं च मण्डले ।।२६
स्वस्तिकादि विचित्रं च सर्वकामप्रदं गृहं ।
पञ्चाब्जं पञ्चहस्तं स्यात्समन्ताद्दशभाजितम् ।।३०
द्विपदं कमलं वीथी पट्टिका दिक्षु पङ्कजम् ।
चतुष्कं पृष्ठतो वीथी पदिका द्विपदाऽन्यथा ।।३१

वीथिका हस्तमात्रा तु स्वस्तिकैर्बहुभिर्वृता ।
हस्तमात्राणि द्वाराणि दिक्षु वृत्तं सपद्मकम् ॥३६
पद्मानि पञ्च शुक्लानि मध्ये पूज्यश्च निष्कलः ।
हृदयादीनि पूर्वादौ विदिक्ष्वस्त्राणि वै यजेत् ॥३७
प्राग्वच्च पञ्च पद्मानि वुद्धयाधारमतो वदे ।
शतभागे तिथिभागे पद्मं लिङ्गाष्टकं दिशि ॥३८
मेखलाभागसंयुक्तं कण्ठं द्विपदिकं भवेत् ।
आचार्यो वुद्धिमाश्रित्य कल्पयेच्च लतादिकम् ॥३९
चतुः षट् पञ्चमाष्टादि खाद्धिग्वाण्यादि मण्डलम् ।
खाक्षीन्दुसूर्यगं सर्वं खाद्धिर्वेन्दुवर्णनात् ॥४०

दश हस्त जो मण्डल होता है वह समस्त कामनाओं के देने वाला होता है उसे बताया जाता है। यह मण्डल विस्तार भक्त-तुर्यास्र द्वार और द्विपद होता है ॥३४॥ इसके मध्य में पूर्व के ही समान एक पद्म होता है जो विघ्नों का ध्वंस करने वाला है। उसे मैं बतलाता हूँ। चार हाथ का पुर बनाकर और दो हाथ का वृत्त बनावे ॥३५॥ एक हाथ भर की वीथिका बनावे जो बहुत से स्वस्तिकों से युक्त होती है। हाथ भर के द्वार होते हैं और दिशाओं में पद्म के सहित वृत्त बनाया जाता है ॥३६॥ इसमें पाँच पद्म शुक्ल वर्ण के होते हैं। मध्य में निष्कल पूजने के योग्य होता है। पूर्वादि दिशाओं में हृदय आदि का तथा विदिशाओं में अस्त्रों का यजन करना चाहिए ॥३७॥ पूर्व की भाँति पाँच पद्म होते हैं। इसलिए अब बुद्धि के आधार को बताते हैं। शत भाग तिथि भाग में पद्म तथा दिशा में लिङ्गाष्टक होता है। मेखला भाग से संयुक्त कण्ठ द्विपदिक होता है। जो आचार्य हो उसे अपनी बुद्धि का आश्रय लेकर लता आदि की कल्पना करनी चाहिए ॥३८॥ चार-छै-पाँच और आठ आदि खद्धि-ग्वाण्यादि मण्डल होता है। ख-अक्षि-इन्दु और सूर्यगामी खाद्धिर्वेन्दु के वर्णन से सब होता है ॥४०॥

चत्वारिंशदधिकानि चतुर्दशशतानि हि ।
मण्डलानि हरे. शम्भोर्देव्या सूर्यस्य सन्ति च ॥४१
दश सप्त विभक्ते तु लतालिङ्गोद्भवं शृणु ।
दिक्षु पञ्च त्रय चैक पञ्च च लोपयेत् ॥४२
ऊर्ध्वगे द्विपद लिङ्ग मन्दिर पार्श्वकोष्ठयो ।
मध्ये न द्विपद पद्ममथ चैक च पङ्कजम् ॥४३
लिङ्गस्य पश्वयोर्भद्रे पदद्वारमलोपनात् ।
तत्पार्श्वे शोभा षड्लोप्य लता शेषास्तथा हरे. ॥४४
ऊर्ध्वं द्विपदिक लोप्य हरेर्भद्राष्टक स्मृतम् ।
रश्मिमालासमायुक्त वेदलोपाच्च शोभिकम् ॥४५
पञ्चविंशतिभि पद्म ततः पीठमपीठकम् ।
द्वय द्वय रक्षयित्वा उपशोभास्तथाऽष्ट च ॥४६
देव्यादिरव्यापक भद्र बृहन्मध्ये पर लघु ।
मध्ये नव पद पद्म कोणे भद्रचतुष्टयम् ॥४७
त्रयोदशपद शेष बुद्धयाधारस्तु मण्डलम् ।
शतपत्र षष्ट्यधिक बुद्धयाधार हरादिषु ॥४८

हरि–शम्भु–देवी और सूर्य के चौदह सौ चालीस मण्डल होते हैं ।४१। दस–सप्त विभक्त में लता लिङ्गोद्भव को श्रवण करो । दिशाओं में पाँच–तीन–एक–तीन और पाँच को लोप कर देना चाहिए ॥४२॥ ऊर्ध्वग में द्विपदलिङ्ग और मन्दिर होना है । पार्श्व कोष्ठ के मध्य में द्विपद पद्म नहीं होता है, एक पङ्कज होता है ॥४३॥ लिङ्ग के पार्श्वों में भद्र में अलोपन होने से पदद्वार होता है । उसके पार्श्व की शोभा षड्लोप्या लता शेष है । इसी प्रकार से हरि के ऊर्ध्व में द्विपदिक लोप्य होता है । यह हरि का भद्राष्टक कहा गया है । रश्मि-माला से समायुक्त और वेदलोप से शोभित है ॥ ४४।४५ ॥ पच्चीस से पद्म होता है और इसके पश्चात् अपीठक पीठ हैं । दो–दो की रक्षा करके आठ उपशोभा हैं ॥४६ । देवी आदि का अव्यापक भद्र है जो मध्य में बृहत् होता

परन्तु लघु है। मध्य में नवपद पद्म और कोण में चार भद्र है ॥४७॥ दाय त्रयोदश पद होता है। यह मण्डल बुद्धि के आधार वाला है। हर आदि के विषय में बुद्धि के आधार साठ से अधिक शत पत्र होते हैं ॥४८॥

१६७ गौर्यादिपूजा ।

सौभाग्यादेरुमापूजा वक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्तिदाम् ।
मन्त्रध्यान मण्डल च मुद्रा होमादिसाधनम् ॥१—
चित्रभानु शिव काल महाशक्तिसमन्वितम् ।
इडाद्य परतोद्धृत्य सदेव सविकारणम् ॥२ —
द्वितीय द्वारकाक्रान्त गौरीगतिपदान्वितम् ।
चतुर्थ्यन्त प्रकर्तव्य गौर्या वै मूलवाचकम् ॥३ —
ॐ ह्रीं स. शौ—गौर्यै नमः ॥४ ॥ —
तनार्णत्रितयेनैव जातियुक्त षडङ्गकम् ।
आसन प्रणवेनैव मूर्ति वै हृदयेन तु ॥१०
उह्नक च तथा काल शिवबीज समुद्धरेत् ।
प्राण दीर्घस्वराक्रान्त षडङ्ग जातिसयुतम् ॥६
आसन प्रणवेनात्र मूर्तिन्यास हृदाऽऽचरेत् ।
यामल कथित वत्स एकवीर वदाम्यथ ॥७
व्यापक सृष्टिसयुक्त वन्हिमायाकृशानुभि. ।
शिवशक्तिमय बीज हृदयादिविवर्जितम् ॥८

इस अध्याय में गौरी आदि की पूजा का वर्णन किया जाता है। ईश्वर ने कहा—सौभाग्य आदि के हेतु भुक्ति और मुक्ति के देने वाली उमा की पूजा को बतलाते है। मन्त्र का ध्यान—मण्डल—मुद्रा और होम आदि का साधन भी बतलाया जायगा। चित्रभानु—शिव—काल जो कि महाशक्ति से समन्वित हैं—इडाद्य के आगे सविकार और सदेव का उद्धार करे। द्वितीय द्वारकाक्रान्त जो कि गौरी गति पद से अन्वित है। इसको चतुर्थी विभक्ति अन्त वाला करना चाहिए। यह गौरी का मूल वाचक है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

मन्त्र—'ॐ ह्रीं म हां—गौर्ये नम'॥ ४॥ यहाँ पर पद तीन वर्णों से ही जातियुक्त षड्ङ्ग को प्रणव से आसन को, हृदय म मूर्ति को अहक—काल और शिव बीज का उद्धार करना चाहिए। प्राग—शेष स्वराकान्त, जाति समुक्त षड्ङ्ग का और प्रणव से आसन और हृदय से मूर्ति का न्यास करना चाहिए। हृदन्त ! यामल तो बता दिया है अब एक वीर को बताना है ॥ ५॥ ६॥ ॥ ७॥ व्यापक—वृष्टि से संयुक्त—वह्नि माया और कृशानु स शिव शक्तिमय हृदय आदि म वर्जित बीज है॥ ८॥

गौरी यजेद्ध मरूप्या काष्ठजा शैलजादिकाम्।
पञ्चपिण्डा तथाऽव्यक्ता कोणा मध्ये तु पञ्चमम्॥९
ललिता सुभगा गौरी क्षोभणी चाग्नितः क्रमात्।
वामा ज्येष्ठा क्रिया ज्ञाना वृत्ते पूर्वादितो यजेत्॥१०
सपीठे वामभागे तु शिवस्याव्यक्तरूपकम्।
व्यक्ता द्विनेत्रा त्र्यक्षा वा शुद्धा वा भावरान्विता॥११
पीठपद्मद्वयस्था वा द्विभुजा वा चतुर्भुजा।
सिंहस्था वा वृषस्था वा अष्टाष्टादशसत्करा॥१२
स्रगक्षसूत्रकलिका गलनालपत्रपिण्डिका।
शार धनुर्वा सव्यत पाणिना व्यलम महत्॥१३
वामन पुस्तताम्बूलदण्डाभयकमण्डलुम्।
गणेश दर्पणेष्वासा दद्याद्दक्षवश क्रमात्॥१४
व्यक्तनाव्यक्ताव जा राया पद्ममुद्रा स्मृताऽऽसने।
लिङ्गमुद्रा शिवस्यावना मुद्रा चाऽऽवाहनी द्वयो॥१५
शक्तिमुद्रा तु योन्याख्या चतुरस्र तु मण्डलम्।
चतुहस्त त्रिपद्माब्ज मध्यकोष्ठचतुष्टय॥१६

हेम—रत्न तथा काष्ठ स [illegible] त तथा शैलज (पाषाण) आदि की बनी हुई गौरी का जा पञ्च पिण्डा तथा अव्यक्त है यजन करे। मध्य कोणों म पञ्चम का करे॥ ९॥ अग्नि आदि दिशाओं के क्रम से ललिता—सुभगा—

गौरी और क्षोमणी का यजन करना चाहिए। वृत्त में पूर्व आदि के दिशा–क्रम से वामा–ज्येष्ठा—क्रिया और ज्ञाना का यजन करे ॥ १० ॥ सपीठ बाँई ओर में शिव के अव्यक्त रूप का करे। व्यक्ता—त्रिनेत्रा—त्र्यक्षा अथवा शङ्कर में अन्विता का यजन करे ॥ ११ ॥ पीठवद्य द्वय में स्थिता—द्विभुजा अथवा चार भुजाओं वाली—सिंह पर स्थिता—अथवा वृषस्था या अष्ट अष्टादश करों वाली का यजन करे। माला, अक्षसूत्र कर्णिका, गले में उत्पलों की पिण्डिका वाली, शर–धनुष को शङ्ख कर से वहन करने वाली—वाम हस्त में पुस्तक–ताम्बूल दण्ड—अभय और कमण्डलु को धारण करने वाली—गणेश–दर्पण–इष्वास (धनुष) को एक-एक को क्रम से देवे ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ व्यक्ता अथवा अव्यक्ता आसन पर पद्ममुद्रा का स्मरण करना चाहिए। शिव की लिंग मुद्रा कही गई है और दोनों की आवाहनी मुद्रा होती है ॥ १५ ॥ योनि के नाम्या (नाम) वाली शक्ति मुद्रा है चतुरस्र (चौकोर) मण्डल होता है। मध्य कोष्ठ चतुष्टय में चार हाथ का निधवाब्ज है ॥१६॥

> त्र्यस्रनार्धे चार्धचन्द्रं तु द्विपदं द्विगुणं क्रमात् ।
> द्विपदं द्वारकण्ठं तु द्विगुणाद्रूपकण्ठत ॥१७
> द्वारत्रयं त्र्यं दिक्षु अथ वा भद्रके यजेत् ।
> स्थण्डिले वाऽथ सास्थाप्य पञ्चगव्यामृतादिना ॥१८
> रक्तपुष्पाणि देयानि पूजयित्वा ह्युदङ्मुख. ।
> शत हुत्वा घृताद्यं च पूर्णादं सर्वसिद्धिभाक् ॥१९
> बलिं दत्त्वा कुमारीश्च तिस्रो वा चाष्ट भोजयेत् ।
> नैवेद्यं शिवभक्तेषु दद्यान्न स्वयमाचरेत् ॥२०
> कन्यार्थी लभते कन्यामपुत्रः पुत्रमाप्नुयात् ।
> दुर्भगा चैव सौभाग्यं राजा राज्य जयं रणे ।२१
> अष्टलक्षैश्च वाक्सिद्धिर्वशाद्या वशमाप्नुयु ।
> अनिवेद्य न चाश्नीयाद्वामहस्तेन चार्चयेत् ॥२२

त्र्यस्रार्ध में अर्धचन्द्र को, क्रम से द्विपद और द्विगुण को, द्विपद द्वार-

कलश का उत्तम्भ त्रिशूल से, द्वारदेश-मन का अन्नव में मजन करे। अथवा स्थण्डिल में सम्पादित करके पञ्चगव्य अमृत आदि से यजन करना चाहिए ॥ १७ ॥ १८ । उत्तर की ओर मुख करके पूजा करे और लाल रंग के पुष्पों को समर्पित करना चाहिए। घृतादि की पूर्ण सात आहुतियाँ देने पर मनुष्य सिद्धियों को प्राप्त करने वाला होता है। बलि देकर तीन या आठ कुमारी कन्याओं को भोजन कराना चाहिए। जो नैवेद्य हो उसे शिव के भक्तों में वितरित कर देवे। इसे स्वयं ग्रहण नहीं करे ॥ १९ ॥ २० ॥ जो कन्या की इच्छा वाला हो वह कन्या की प्राप्ति किया करता है और जो पुत्रहीन हो वह पुत्र को प्राप्त करता है। जो दुर्भाग्य वाली हो वह सौभाग्य पाती है। राजा राज्य और रण में जय प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ आठ सौ करने पर वाक् की सिद्धि हो जाती है। देवता आदि सब वश में हो जाया करते हैं। निवेदन न करके इसे स्वयं न खावे तथा वाम हस्त से अर्चना न करे ॥२२॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां तृतीयायां विशेषतः।
मृत्युञ्जयार्चनं वक्ष्ये पूजयेत्कलशोदरे ॥२३
हूयमानं च प्रणवो मूर्तिर्होञ्च स ईदृशम्।
मूलं च वौषडन्तेन कुम्भमुद्रां प्रदर्शयेत् ॥२४
होमयेत्क्षीरदूर्वाज्यममृतां च पुनर्नवाम्।
पायसं च पुरोडाशमयुतं तु जपेन्मनुम् ॥२५
चतुर्मुखं चतुर्बाहुं द्वाभ्यां च कलशं दधत्।
वरदाभयकं द्वाभ्यां स्नायं द्वे कुम्भमुद्रया ॥२६
आरोग्यैश्वर्यदीर्घायुर्गौरवं मन्त्रितं शुभम्।
अपमृत्युहरो ध्यानं पूजिता ह्यन एव स ॥२७

अष्टमी—चतुर्दशी और तृतीया में विशेष रूप से मृत्युञ्जय का अर्चन करे और कलशोदर में पूजन करना चाहिए ॥ २३ ॥ प्रणव तथा मूर्ति है। मूल—इस प्रकार का मूल से हवन करे। अन्त में वौषट् लगा कर इस से कुम्भ मुद्रा को दिखलावे ॥ २४ ॥ क्षीर—दूर्वा—घृत—अमृता—पुनर्नवा

और पायस के पुरोडाश का होम करे तथा मन्त्र की अयुत (दश हजार) संख्या का जाप करना चाहिए। मन्त्र—"हो जू स" है। चतुर्मुख—चतुर्बाहु कलश को दो से धारण करे। दो से वरदायक होता है। कुम्भ मुद्रा से स्नान करावे आरोग्य-ऐश्वर्य-दीर्घायु देता है। मन्त्रित किया हुआ औषध शुभ होता है। ध्यान किया हुआ तथा पूजित अपमृत्यु का हरण करने वाला इसीलिये होता है ॥२५॥२६॥२७॥

१६८ देवालयमाहात्म्यम् ।

व्रतेश्वराश्च सत्यादीनिष्ट्वा व्रतसमर्पणम् ।
अरिष्टशमने शस्तमरिष्ट सूत्रनायकम् ॥१
हेमरत्नमयं भूत्यै महाशङ्ख च मारणे ।
आप्यायने शङ्खसूत्र मौक्तिक पुष्टवर्धनम् ॥२
स्फाटिक भूतिद कौश मुक्तिद रुद्रनेत्रजम् ।
धात्रीफलप्रमाणेन रुद्राक्षं चोत्तम तत ॥३
समेरु मेरुहीन वा सूत्र जप्य तु मानसम् ।
अनामाङ्गुष्ठमाक्रम्य जप भाष्य तु कारयेत् ॥४
तर्जन्यङ्गुष्ठमाक्रम्य न मेरु लङ्घयेज्जपे ।
प्रमादात्पतिते सूत्रे जप्तव्य तु शतद्वयम् ॥५
सर्ववाद्यमयी घण्टा तस्या वादनमर्थकृत् ।
गोशकृन्मूत्रवल्मीकमृत्तिकाभस्मवारिभि ॥६
वेश्मायतनलिङ्गादे कार्यमेव विशोधनम् ।
स्कन्दो नम शिवायेति मन्त्र सर्वार्थसाधक ॥७
गीतः पञ्चाक्षरो वेदे लोके गीत षडक्षर.।
ओमित्यन्ते स्थित शम्भुमहार्णे वटबीजवत् ॥८

इस अध्याय में देवालय के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। ईश्वर ने कहा—सत्य आदि व्रतेश्वरों का इष्ट करके व्रतों का समर्पण कर देना अरिष्टों के शमन करने में प्रशस्त होता है। सूत्र नायक अरिष्ट होता है ॥ १ ॥ भूति

के लिये हेम और रत्न से पूर्ण—मारण में महाशङ्ख—साध्यायन में शङ्ख सूत्र—पुष्टि के वर्धन करने वाला स्फाटिक अर्थात् स्फटिक से निर्मित—क्षुधा से विनिर्मित मुक्ति देने वाला—स्फटिक निर्मित भूति (वैभव) के देने वाला—रुद्र तत्त्व मुक्ति के प्रदान करने वाला होता है। धात्री (आँवला) के फल के प्रमाण वाला रुद्राक्ष में लिखा होता है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ सुमेरु अथवा मेरु से हीन सूत्र मानस जप होता है। अनामिका और अङ्गुष्ठ का आक्रमण करके जप करना चाहिए ॥ ४ ॥ तर्जनी और अङ्गुष्ठ का आकर्षण करके जप में मेरु को कभी लंघित नहीं करना चाहिए। यदि किसी समय प्रमाद वश सूत्र अर्थात् माला गिर जावे अर्थात् छूट जावे तो जितना जप करना है उससे अधिक दो सौ और जप करना चाहिए ॥ ५ ॥ समस्त वाद्यों से परिपूर्ण घण्टा होता है। इसलिए उस घण्टा का वादन जयकृत् होता है। गोबर—गोमूत्र—बाँबी की मिट्टी भस्म और पानी के द्वारा देवस—आयतन और लिङ्ग आदि का विशेष रूप से शोधन करना चाहिए। नमः शिवाय इस पञ्चाक्षरी मन्त्र के पूर्व "ओम्" लगाकर सब काम करे। यह मन्त्र सब अर्थों का साधक होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ वेद में पञ्चाक्षर कहा गया है और लोक में षडक्षर बताया गया है। ओम्—यह अन्त में स्थित शम्भु महार्णव में वट के बीज की भाँति होता है ॥८॥

क्रमात्रम शिवायति इशानाद्यानि वै विदु।
षडक्षरस्य सूत्रस्य भाष्य विद्याकदम्बकम् ॥९
यदा नम शिवायति एतावत्परम पदम्।
अनेन पूजयल्लिङ्ग लिङ्ग यस्मात्स्थित शिव ॥१०
अनुग्रहाय लोकानां धर्मकामार्थ मुक्तिद।
यो न पूजयते लिङ्ग न स धर्मादिभाजनम् ॥११
लिङ्गार्चनाद्भुक्तिमुक्तिर्यावज्जीवमतो यजेत्।
वर प्राणपरित्यागो भुञ्जीतापूज्य नैव तम् ॥१२
रुद्रस्य पूजनाद्रुद्रो विष्णु स्याद्विष्णुपूजनात्।
सूर्य स्यात्सूर्यपूजात शक्त्यादि शक्तिपूजनात् ॥१३

जपयज्ञतपोदाने तीर्थे वदेषु यत्फलम्
तत्फल कोटिगुणित स्याप्य लिङ्ग
त्रिसध्य योऽर्चयेल्लिङ्ग कृत्वा बिल्वेन
शतैकादशिक यावत्कुलमुद्धृत्य नाकभाक्॥ १८
भक्त्या वित्तानुसारेण कुर्यात्प्रासादसचयम् ।
अल्पे महति वा तुल्य फलमाढ्यदरिद्रयो ॥१६

क्रम स "नम शिवाय"—यह ईशानाद्य जानने चाहिए । पडक्षर सूत्र का भाष्य विद्या कदम्बक होता है । जो "ओम् नम शिवाय" इतना परम पद है । इस मन्त्र से लिंग का पूजन करना चाहिए क्योंकि लिंग मे भगवान् शिव स्थित रहा करते हैं ॥ ६ ॥ १० ॥ लिंग मूर्त्ति मे विराजमान रहने वाले भगवान् शिव लोकों के ऊपर अनुग्रह करने के लिये होते हैं और धर्म–अर्थ–काम तथा मुक्ति के प्रदान करने वाले होते हैं । जो आदमी शिव के लिंग का पूजन नहीं किया करता है वह धर्मादि का पात्र कभी भी नहीं होता है ॥ ११ ॥ लिंग की पूजा करने से समस्त ससार के सुखों का उपभोग और मोक्ष प्राप्त होता है । इसलिए जब तक भी जीवित रहे बराबर लिंग का यजन करते रहना चाहिए । भूख से प्राणों का त्याग कर देना श्रेष्ठ है किन्तु शिवलिंग का पूजन न करके कभी भी खाना नहीं चाहिए ॥ १२ ॥ रुद्र के पूजन करने से रुद्र का स्वरूप प्राप्त होता है । विष्णु के अर्चन से विष्णु का स्वरूप तथा सूर्य की पूजा से सूर्य का रूप एव शक्ति आदि के यजन से शक्ति आदि का स्वरूप प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जप–यज्ञ–तप–दान—तीर्थ और वेदों से जो फल प्राप्त होता है उससे करोड गुना फल शिवलिंग की पूजा से मनुष्य प्राप्त करता है ॥ १४ ॥ पार्थिव शिव का निर्माण करके जो बिल्व पत्रों के द्वारा तीनों काला म लिंग की अर्चना किया करता है वह एक सौ दस कुलों का उद्धार करके अन्त में स्वर्ग का वास प्राप्त करता है ॥ १५ ॥ भक्तिपूर्वक धन के अनुसार जो मनुष्य शिव के प्रासाद (मन्दिर) का सचय किया करता है अर्थात् शिव मन्दिर का निर्माण कराता है चाहे वह छोटा हो या बडा हो, धनी और दरिद्र का फल तुल्य होता है ॥ १६ ॥

।गद्वय च धर्मार्थं कल्पयेज्जीवनाय च ।
धनस्य भागमेक तु अनित्य जीवित यतः ॥१७
त्रिसप्तकुलमुधृद्त्य देवागारकृदर्य भाक् ।
मृत्काष्ठेष्टकशैलाद्यं क्रमात्कोटिगुण फलम् ॥१८
अष्टेष्टकसुरागारकारी स्वर्गमवाप्नुयात ।
पांशुना क्रीडनानोऽपि देवागारकृदर्य भाक् ॥१९

जो धन हो उसके दो भाग धर्म के लिये कल्पित कर देने चाहिए । जीवन के लिये धन का एक भाग ही रखना चाहिए क्योंकि यह मानव जीवन अनित्य होता है ॥ १७ ॥ देवागार के निर्माण कराने वाला अपने इक्कीस कुल का उद्धार करके अर्य का भाजन होता है । मृत्तिका-ईंट-पत्थर आदि के द्वारा क्रम से करोड गुना फल प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ देवायतन के निर्माण म आठ ईंट भी लगाने वाला स्वर्ग का वास प्राप्त किया करता है धूल से क्रीडा करता हुआ भी यदि कोई देवागार की रचना करता है तो उसका फल भी यह होता है कि वह अर्यकृत् होता है ॥१९॥

१६६—छन्दःसारः । १

छन्दो वक्ष्ये मूलजैस्तैः पिङ्गलोक्तं यथाक्रमम् ।
सर्वादिमध्यान्तगणौ स्नौ म्यौ ज्रौ स्तौ त्रिका गणाः ॥१
ह्रस्वो गुर्वा पादान्ते पूर्वयोगाद्विसर्गतः ।
अनुस्वार व्यञ्जनात्स्याज्जिह्वामूलीयतस्तथा ॥२
उपध्मानीयतो दीर्घो गुरुर्लौ नौ गणाविह ।
वसवोऽष्टौ च चत्वारो वेदादीन्यादिलोकनः ॥३
छन्दोधिकारे गायत्री देवी चैकाक्षरा भवेत् ।
पञ्चदशाक्षरा सा स्यात्प्राजापत्याऽष्टवर्णिका ॥४
यजुषा षडर्णा गायत्री साम्ना स्याद् द्वादशाक्षरा ।
ऋचामष्टादशार्णा स्यात्साम्ना वर्धेत च द्वयम् ॥५

ऋचा श्रय च वर्धन प्राजापत्याचतुष्टयम् ।
वधदेकैकक शेपे श्रासुर्या एकमुत्सृजेत् ॥६
उष्णिगनुष्टुब्बृहती पङ्क्तिस्त्रिष्टुब्जगत्यपि ।
तानि शं यानि क्रमशो गायत्र्यो ब्राह्म्य एव ता ॥७
तिस्रस्तिस्रः सनाम्न्य. स्युरेकैका आर्ष एव च ।
प्राग्यजुषा च सज्ञाः स्युश्चतु.षष्टिपदे लिखेत् ॥८

इस अध्याय में छन्दों का सार बतलाया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—अब हम छन्द को बतलाते हैं जो कि यथा क्रम मूलज उनके द्वारा पिंगल ने कहे हैं। सभी छन्द आदि—मध्य और अन्त में गणों वाले होते हैं। मगण—नगण—भगण—जगण—सगण—यगण—रगण—तगण ये गुणों के त्रिक होते हैं पाद के अन्त मे—विसर्गों के पूर्व योग वाला—अनुस्वार युक्त—जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय और समुक्त व्यञ्जन से पूर्व वाला ह्रस्व भी गुरु ही माना जाता है। भगण मे आदि गुरु होता है। जगण मे मध्य का वर्ण गुरु होता है। सगण मे अन्तिम गुरु होता है। यगण मे—रगण मे और तगण मे क्रम से आदि—मध्य और अन्त मे लघु हुआ करते हैं। मगण मे तीनो गुरु और नगण मे तीनो लघु वर्ण होते हैं। ये आठ वसु हैं जो चारो वेद और लोक मे होते हैं ॥१।२।३॥ छन्दो के अधिकार म गायत्री देवी एक अक्षर वाली होती है। वह पन्द्रह अक्षरो वाली होती है। आठ वर्णों वाली प्राजापत्या होती है ॥४॥ जो यजुर्वेदी होते हैं उनकी गायत्री छे वर्णों वाली होती है। जो साम-वेदी होते हैं उनकी गायत्री बारह अक्षरो वाली हुआ करती है। ऋचाओं के अष्टादश वर्ण होते हैं। सामवेद के दो बढ जाते हैं ॥५॥ ऋचाओं के तीन बढ़ जाया करते हैं। प्राजापत्या के चार बढ जाते हैं। शेष मे एक—एक बढ़ता है। आसुरी के इसी प्रकार से उत्सृष्ट करने चाहिए ॥६॥ उष्णिक्—अनुष्टुप्—बृहती पंक्ति—त्रिष्टुप् और जगती इनको जान लेना चाहिए। ये क्रम से गायत्र्य और और ब्राह्म्य हैं होते हैं ॥७॥ तीन—तीन सनाम्नी होती हैं और एक—एक आर्ष हैं। पहिले यजु की सज्ञा हैं। इन्हे चौंसठ पद मे लिखना चाहिए ॥८॥

१७०—छन्दसारः (२)

पाद आपादपूरणे गायत्र्यो वसव. स्मृताः ।
जगत्या आदित्या पादो विराजो दिश ईरिताः ॥१
त्रिष्टुभो रुद्रा पाद स्याच्छन्द एकादिपादकम् ।
आद्य चतुष्पाद्‌तुभिस्त्रिपात्सप्ताक्षरै क्वचित् ॥२
सा गायत्री पादनिचृत्प्रतिष्ठाद्रिपट्त्रिपात् ।
वर्धमाना पडष्टाष्टा त्रिपात्वडष्टभूधरै ॥३
गायत्र्यतिपादनिचृन्नागी नवनवनु‍र्भि. ।
वाराही रसद्विरन्ध्र रच्छन्दश्चाथ तृतीयकम् ॥४
द्विपाद्द्वादशवस्वर्णैस्त्रिपात्तु त्रैष्टुभं स्मृतम् ।
उष्णिवछन्दाऽष्टवस्वक पादैर्वेदे प्रकीर्तित. ॥५
ककुबुष्णि गष्टसूर्यवसुवस्वर्णैश्च त्रिपाद् भवेत् ॥६
पराष्णिकपरतस्तु स्याच्चनुष्पादपिभिभवेत् ।
साष्टाक्षरैरतुष्टुप्स्याच्चतुष्पाच्च त्रिपात्क्वचित् ॥७

इस अध्याय में भी छन्दो का सार वर्णित किया जाता है । अग्निदेव ने कहा—पाद मे आपाद पूरण म गायत्री वसु कही गई हैं । जगती के आदित्य पाद हैं जगती के आदित्य पाद हैं और विराज दिश कही गई हैं । त्रिष्टुप् के रुद्र पाद होते हैं । छन्द एकादि पादक होता है । आद्य चतुष्पाद् है और ऋतुओ से अर्थात् छ से त्रिपाद है कही पद सात अक्षरो से है ॥२॥ वह गायत्री पाद निचृत् प्रतिष्ठा अष्टाद्रिपट् त्रिपात् । वर्धमाना पट् अष्ट–अष्ट, त्रिपात्, पट् अष्ट और सात से होती है ॥ ३ ॥ गायत्री नव–नव और छै से अति पाद निचृत् नागी है । रस—दो और रन्ध्रो स वाराही होती है । इसके अनन्तर तृतीय द्विपाद् द्वादश आठ वर्णों से त्रिपाद त्रैष्टुभो से कहा गया है । आठ वसु और द्वादश पदो से वेद मे उष्णिक् छन्द कहा गया है ॥४।५॥ अष्ट—सूर्य और वसु वर्णों से ककुब् और उष्णिक् है और तीन से भी नही होता है । द्वादश और आठ–आठ वर्णों से पुर उष्णिक् त्रिपाद होता है ॥ ६ ॥ परत वह परोष्णिक्

हो जाता है। सात से चतुष्पाद् होता है। आठ अक्षरों के सहित अनुष्टुप् और वही चतुष्पाद तथा त्रिपाद होता है ॥७॥

अष्टार्कसूर्यवर्णैः स्यान्मध्येऽन्ते च क्वचिद्भवेत्।
बृहती जगतस्त्रयो गायत्र्याः पूर्वको यदि ॥८
तृतीय पथ्या भवति द्वितीया न्यङ्कुमारिणी।
स्कन्धो ग्रीवा क्रौष्टुके स्याद्यास्कस्योरो बृहत्यपि ॥९
उपरिष्टाद्बृहत्यन्ते पुरस्ताद्बृहती पुन.।
क्वचिन्नवकाश्चत्वारो दिग्विदिक्ष्वष्टवर्णिका. ॥१०
महाबृहती जागतैः स्यात्त्रिभिः सतो बृहत्यपि।
ताण्डिन पङ्क्तिश्छन्द स्यात्सूर्याकाष्टाष्टवर्णकैः ॥११
पूर्वौ चेदयुजौ सतः पङ्क्तिश्च विपरीतकौ।
प्रस्तारपङ्क्ति. पुरत. परादास्तारपङ्क्तिक ॥१२
विस्तारपङ्क्तिरन्तश्चेद्बहिः संस्तारपङ्क्तिका।
अक्षरपङ्क्तिः पञ्चकाश्च चत्वारश्चाल्पशो द्वयम् ॥१३
पदपङ्क्तिः पञ्च भवेच्चतुष्क षट्कत्रयम्।
षट्कपञ्चभिर्गायत्रैः षड्भिश्च जगती भवेत् ॥१४

आठ द्वादश सूर्य वर्णों से मध्य मे तथा अन्त मे कहीं होता है। यदि पूर्वक हो तो गायत्री के बृहती और जगत त्रय होते हैं। तीसरा पथ्या होता है। द्वितीया न्यङ्कुमारिणी है। स्कन्ध और ग्रीवा क्रौष्टुक होते हैं। यास्कका उरु बृहती भी होता है ॥८।९॥ ऊपर बृहती फिर अन्त में और आगे बृहती होता है। कहीं नवक चार हैं, दिशा और विदिशाओं मे अष्ट वर्ण वाली होती है ॥१०॥ जागती से महा बृहती होती है और तीनों से सत् की बृहती भी है। ताण्डीका पंक्ति छन्द होता है जोकि सूर्य—अर्क (द्वादश) आठ-आठ वर्णों से होता है ॥११॥ यदि पूर्व अयुज हो तो सत् का पंक्ति और विपरीतक है। आगे से प्रस्तार पंक्ति और पर से आस्तार पङ्क्ति होता है ॥ १२ ॥ यदि अन्दर विस्तार पंक्ति होता है तो बाहिर संस्तार पंक्तिका होता है। अक्षर पंक्ति और

पञ्चदश और चार अक्षर से दो होता है ॥१३॥ पाँच पद पंक्ति छन्द होता है चतुष्क, षट्कत्रय षट्क पाँचों से और छै गायत्रों से जगती छन्द होता है ॥१४॥

एकेन त्रिष्टुब्ज्योतिष्मती तथैव जगतीरिता।
पुरस्ताज्ज्योतिः प्रथमे मध्येज्योतिश्च मन्यतः ॥१५
उपरिष्टाज्ज्योतिरन्त्यादेकस्मिन्पञ्चके तथा।
भवेच्छन्दः शङ कुमती षट्के छन्दः ककुद्मती ॥१६
त्रिपादशिशुमध्या स्यात्सा पिपीलिकमध्यमा।
विपरीता यवमध्या त्रिपृदेकेन वर्जिता ॥१७
भूरिजेकेनाधिकेन विहीना च विराड् भवेत्।
स्वराट्स्याद्द्वाभ्यामधिक संदिग्धे दैवतादिनः ॥१८
आदिपादान्निश्चय- स्याच्छन्दसा देवताः क्रमात्।
अग्नि सूर्य शशी जीवो वरुणश्चन्द्र एव च ॥१९
विश्वे देवाश्च षड्जगत्या' स्वराः षड्जो वृषः क्रमात्।
गान्धारो मध्यमश्चैव पञ्चमो धैवतस्तथा ॥२०
निषादो वर्णा श्वेनश्च सारङ्गश्च पिशङ्गकः।
कृष्णो नीलो लोहितश्च गौरो गायत्रिमुख्यके ॥२१
गोरोचनाभाः कृतयो ह्यति च्छन्दो हि श्यामलम्।
अग्निर्वेश्य काश्यपश्च गौतमाङ्गिरसौ क्रमात् ॥२२
भार्गवः कौशिकश्चैव वासिष्ठो गोत्रमीरितम् ॥२३

एक से त्रिष्टुप्—ज्योतिष्मती तथा जगती कहा गया है। प्रथम में आगे ज्योति तथा मध्य में मध्य से ज्योति, ऊपर से ज्योति छन्द है। अन्त्य से एक पञ्चक में शङ्कुमती छन्द होता है। षट्क में ककुद्मती छन्द होता है ॥१५।१६॥ त्रिपाद् शिशुमध्या होता है। वह पिपीलिक मध्यमा है। जो विपरीता है वह यवमध्या है और एक से जो वर्जित है वह त्रिवृद् छन्द होता है ॥१७॥ अधिक एक से विर विहीना भूरिजा होता है। दैवतादि से संदिग्ध में दो से अधिक स्वराट् छन्द होता है। आदि पाद से छन्दों के देवता क्रम से

निश्चय होता है। अग्नि—सूर्य—चन्द्र—जीव—वरुण और चन्द्र और विश्वे-देवा देवता हैं। जगती के छै स्वर हैं षड्ज और वृषभ क्रम से हैं। गान्धार—मध्यम—पञ्चम—धैवत और निषाद होते हैं और वर्ण श्वेत है। सारङ्ग पिशङ्ग वर्ण वाला तथा कृष्ण—नील—लोहित और गौर—गायत्री मुख्य में होते हैं। कृतियाँ गोरोचन की आभा वाली होती हैं और अति छन्द श्यामल होता है। अग्नि—वैश्य—काश्यप गौतम—आंगिरस क्रम से भार्गव और कौशिक तथा वसिष्ठ य गोत्र बताये गये हैं ॥१८ से २३॥

१७१-छन्दोजातिनिरूपणम्

चतुःशतमुत्कृति स्यादुत्कृतेश्चतुरस्त्यजेत् ।
अभिसंख्या प्रत्यकृतिस्तानि च्छन्दांसि वै पृथक् ॥१
कृतिश्चातिधृतिर्धात्री अत्यष्टिश्चाष्टिरित्यत ।
अतिशक्वरी शक्वरीति अति जगती जगत्यपि ॥२
छन्दोऽत्र लौकिकं स्याच्च आर्षमार्त्रेष्टुभात्स्मृतम् ।
त्रिष्टुप्पङ्क्तिर्बृहती अनुष्टुबुष्णिगीरितम् ॥३
गायत्री स्यात्सुप्रतिष्ठा प्रतिष्ठा मध्यया सह ।
अत्युक्तात्युक्त आदिश्च एकैकाक्षरवर्जितम् ॥४
चतुर्भागो भवेत्पादो गणश्छन्दः प्रदर्श्यते ।
तावन्त समुदा गणा ह्यादिमध्यान्तसर्वगा ॥५
चतुर्वर्णा पञ्च गणा आर्यालक्षणमुच्यते ।
स्वरार्धं च आर्यार्धं स्याद्वार्याया विषमेण ज ।६
षष्ठो जो न लघुर्वा स्याद्द्वितीयादिपद नले ।
सप्तमेऽन्ते प्रथमा च द्वितीये पञ्चमे नले ॥७
अर्धे पद प्रथमादि षष्ठ एको लघुर्भवेत् ।
त्रिषु गणेषु पाद स्यादार्यास्वार्धे स्मृता पद
विपुलान्यथ चपला गुरुमध्यगतौ च जो ।
द्वितीयचतुर्थौ पूर्वे च चपला मुखपूर्विका । ६

द्वितीये जघनपूर्वा चपलार्या प्रकीर्तिता ।
उभयोर्महाचपला गीतवाद्यार्घतुल्यकौ ॥१०

इस अध्याय में छन्दों की जातियों का निरूपण किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—चार सौ उत्कृति हैं। चार सौ उत्कृति में से चार त्याग कर प्रत्यकृति की अभिमरया है। वे छन्द पृथक् होते हैं ॥१॥ कृति—प्रति धृति—धात्री—अत्यष्टि—अष्टि—अनिदाक्करी—शक्करी—अति जगती—जगती यहाँ लौकिक छन्द हैं आर्षमात्र ऐष्टुभ से कहे गये हैं। त्रिष्टुप्—पंक्ति—बृहती—अनुष्टुप्—उष्णिक् कहे गये हैं। गायत्री—सुप्रतिष्ठा—प्रतिष्ठा—मध्या—अत्युक्ता—अत्युक्त और आदि एक—एकाक्षर से वर्जित हैं ॥२।३।४॥ चौथा भाग पाद होता है। गण-छन्द प्रदर्शित किया जाता है। उनके समुद्र गण हैं जो कि आदि—मध्य अन्त और सर्वत्र होते हैं ॥५॥ चार वर्ण वाले, पाच गण वाले हैं, आर्या का लक्षण कहा जाता है। स्वरार्ध और आर्यार्ध होता है। आर्या छन्द में विषम से जगण होता है। छटा जगण अथवा न लघु होता है। द्वितादि पद में नगण लघु होते हैं। सप्तम अन्त में प्रथमा और द्वितीय पञ्चम में नगण लघु होते हैं ॥६।७॥ षष्ठे पद म प्रथमादि और एक षष्ठ लघु होता है। तीन गणों में पाद नेता है। पश्चार्धक में आर्या कहा गया है ॥८॥ ये विपुल होते हैं,इसके अनन्तर होता है जिसमें गुरु मध्यगत दो जगण होते हैं। पूर्व में जिसके द्वितीय और चतुर्थ हो वह मुख पूर्वि का चपला होता है। द्वितीय में जो जघन पूर्वा हो वह चपलार्या छन्द कहा जाता है। गीतवाद्यार्ध तुल्य वाले दोनों जहाँ होते हैं उसे महा चपला छन्द कहते हैं ॥९।१०॥

अन्त्येनार्धेनोपगीतिरुद्गीतिश्चोत्क्रमात्स्मृता ।
अर्धे रक्षगणा आर्या गीतिश्छन्दोऽथ मात्रया ॥११
वैतालीय द्विरस्ता स्याच्चतुष्पादे समे नल. ।
वसवोऽन्ते वनगाश्च गोपुच्छ दशक भवेत् ॥१२
भगणान्ता पातलिका शेषे परे च पूर्ववत् ।
साक्र षड् वा मिश्रयुति प्रच्च्यवृत्ति प्रदर्श्यते ॥१३
पञ्चमेन पूर्वसाक तृतीयेन सहलयुक् ।
उदीच्यवृत्तिराद्या स्याद्युगपञ्चकम् ॥१४

अयुक्चारुहासिनी स्याद्युगपच्चान्तिका भवेत् ।
समाचिर्वसवश्चैव मात्रासमकमीरितम् ॥१५
मवेम्नलरमो लश्च द्वादशो व नवासिका ।
विश्लोक पञ्चमाष्टौ मो चित्रा नवमकश्च ल ॥१६
परयुक्ते नोपचित्रा पादाकुलकमित्यत ।
गीत्यार्यालोपश्चेत्सौम्या लपूर्वा ज्योतिरीरिता ॥१७
स्याच्छिखा विपर्यस्तार्धा तूलिका समुदाहृता ।
एकोनत्रिंशदन्ते ग स्याज्ज्ञेन न समावला ॥
गु इत्येकगुरु सख्या वर्णादिश्च विपर्ययात् ॥१८

आधे अन्त्य भाग के होने से उपगीति छन्द और इसके उत्क्रम मे उद्गीति छन्द होता है । आधे मे रगण वाला आर्या होता है तथा मात्रा से गीति छन्द होता है ॥ ११ ॥ द्विरस्ता वैतालीय होता है चतुष्पाद मे नगण और लघु समान होते हैं । अन्त मे वसु और वनग होते हैं वह गोपुच्छ दशक कहा जाता है ॥१२॥ जिनके अन्त मे भगण होता है वे पातालिका होते हैं । शेष मे दूसरे पूर्ववत् होते हैं । मिश्रयुक् मे षड्वा साक प्राच्यवृत्ति प्रदर्शित की जाती है ।१३। पञ्चम के साथ पूर्व साक और तृतीय के साथ सहस्रयुक् यह आद्या उदीच्यवृत्ति होती है और एक साथ प्रवर्तक है ॥१४॥ जो अयुक् है वह चारुहासिनी और जो एक साथ होता है वह अन्तिका है । समाचि और वसवमात्रासमक छन्द कहे गये हैं ॥१५॥ नगण, लघु, रगण, मगण और लघु अथवा द्वादश नवासिका छन्द होता है । पञ्चम विश्लोक और आठ मगण और नवम लघु हो वह चित्रा नामक छन्द होता है ॥ १६ ॥ पर युक्त मे उपचित्रा नहीं पादाकुलक होता है । गीति और आर्या में यदि लोप हो तो सौम्या होता है । लघु पूर्व में हो तो वह ज्योति नामक छन्द कहा गया है । विपर्यस्त अर्ध भाग वाला शिखा तथा तूलिका कहा गया है । उन्तीस के मे अन्तिम गुरु हो तो ज्ञ के साथ समावला नहीं होता है । गु—इससे एक गुरु की सख्या होती है और वर्णादि के विपर्यय से होती है ॥१७।१८॥

१७२ विषम अर्द्धसमनिरूपणम्

वृत्त सम चार्धसम विषम च त्रिधा वदे ।
सम तावत्कृत्वकृतमर्धं सम च कारयेत् ।।१
विषम चैव वा स्यूनमतिवृत्त समान्यपि ।
मनौ चतुष्प्रमाणी स्यादाभ्यामन्यद्वितानकम् ।।२
पादस्याऽऽद्य तु वक्त्र स्यात्सनौ न प्रथमा स्मृतौ ।
वान्यमुश्चतुर्थाद्वर्णात्पथ्यावक्त्र स्वयोजतः ।।३
किरीतपथ्या न्यासाच्च चपला वायुजस्वनः ।
विपुला युग्मसप्तम स्यात् सर्व तस्यैत तस्य च ।।४
भौतो वा विपुलानेका वक्त्रजाति समीरिता ।
भयेत्पद चतुरूर्ध्व चतुर्वृद्धया पदेषु च ।।५
गुरुद्वयान्त् आपीडः प्रत्यापीडो गणादिकः ।
प्रथमस्य विपर्यासे मञ्जरी लवली क्रमात् ।।६
भवेदमृतधाराख्या उद्गतेत्युच्यतेऽधुना ।
एकत ससजसा न स्युमनौ जो गोऽथ भौ न जौ ।।७
यो गोऽथ सजमा गो गस्तृतीयचरणस्य च ।
सौरभे केचन भगा ललित च नमौ जसौ ।।८
उपस्थित प्रचुपित प्रथमाद्यौ समौ जसौ ।
गोगयो मनजा रो गः समौ च रजया. पदे ।।९
वर्धमान मलौ स्वोन सौ द्वौ तोजोर ईरिता ।
शुद्धविराडार्षभाख्य वक्ष्ये चार्धसम तत ।।१०

इस अध्याय मे विषम छन्द आदि का वर्णन किया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा—अब हम छन्दो के भिन्न भेद बतलाते हैं । छन्द सम-अर्धसम और विषम तीन प्रकार के होते है । जिस वृत्त मे सभी पक्तियां समान होती हैं वह सम वृत्त कहा जाता है । जिसमें आधा भाग समान होता है वह अर्धसम कहलाता है इत्वकृत सम, अकृत अर्ध और सम करना चाहिए ।।१।। विषम स्यून-

अतिवृत्त और सम भी लाओ चतुष्प्रमाणी होता है। इन दोनों से जो अन्य है वह वितानक छन्द होता है ॥२॥ पाद का आद्य वक्त्र होता है। प्रथम सगण नगण नहीं कहे गये हैं। चतुर्थ वर्ण से यान्यमु पथ्या वक्त्र स्वयोजित होते हैं ॥३॥ न्यास से किरीत पथ्या और वायुजस्वन चपला होता है। उसके और इसके सब युग्म सप्तम विपुला होते हैं ॥४॥ भीत-विपुला-अनेका और वक्त्र-जाति कही गई है। पदो मे चार की वृद्धि से चतुरूर्ध्व पद होता है ॥५॥ गुरु-द्वय मे आपीड-प्रत्यापीड-गणादिक होता है। प्रथम के विपर्यास करने पर क्रम से मञ्जरी और लवणी होते हैं ॥ ६ ॥ अमृतधारा नामक होता है जो अब उद्धृता नाम से कहा जाता है। एक से सगण-सगण-जगण और सगण तथा नगण होते हैं। भगण-सगण-जगण-गुरु-दो भगण-नगण और दो जगण होते हैं और यगण एव गुरु होते हैं। इसके अनन्तर तृतीय चरण मे सभण-जगण-सगण-गुरु दो होते हैं कुछ लोगो का मत है कि सौरभ मे भगण और गुरु होता है। ललित वृत्त में नगण-मगण-जगण और होते हैं ॥७।८॥ उपस्थित और प्रचपित मे प्रथमाद्य सम और जगण-सगण होते हैं। गौगय मलजा है अर्थात् मगण-लघु और जगण होते हैं। रगण और गुरु सम होते हैं और पद में रगण-जगण और यगण होते हैं ॥१॥ मगण और लघु वर्धमान का होता है, स्वोन दो सगण और तगण-जगण और रगण कहे गये हैं। आर्षभ नामक शुद्ध विराट् और अर्धसम आगे बताये जायेंगे ॥ १० ॥

उपचित्रक ससमनामथभोज भगामथ।
द्रुतमध्या ततभगा गयोननजया: स्मृता: ॥११
वेगवती ससमगा भमभ गोगयो स्मृता।
रुद्रविस्तारस्तो सभगासमजा गोगया स्मृता ॥१२
रजसा गोगयो द्रोणो गोगो वै केतुमत्यपि।
आस्यानिकी ततजगा गयो जगतजगागथ ॥१३
विपरीतास्यामकीतिर्जयागा तो जगोगय।
सीमलोगय लभमारो भवेद्धरिणवल्लभा ॥१४

लौ वनौ गाथ गजजा यः स्यादपराक्रमम् ।
पुष्पिताग्रा नलवया नजजा रो गथो रजौ ॥१५
वाजथौ जवजवागो मूले पनमती शिखा ।
अष्टाविंशतिनागाभा त्रिंशन्नाग ततो युजि ॥
खञ्जा तद्विपरीता स्यात्समवृत्त प्रदश्यते ॥१६

दो सगण—मगण—और नगण का वृत्त उपचित्रक नाम वाला होता है। भगण और गुरु का भाज होता है। दो तगण—भगण और गुरु का द्रुतमध्या वृत्त होता है। गथोन नगण—जगण—यगण कहे गये हैं॥ ११ ॥ दो सगण—मगण और गुरु वाला वेगवती वृत्त है। भगण–मगण और गोगथ कहे गये हैं। रुद्र विस्तार से सगण–भगण–गुरु–सगण—मगण और जगण गोगथ कहे गये हैं ॥१२॥ रगण–जगण और सगण गोगथ द्रोण होते है। तीन गुरु वाला केतुमती भी होता है। दो तगण–जगण—गुरु—गथ–जगत—गुरु—तगण—जगण और गथ आख्यानिकी नाम वाला वृत्त होता है ॥१३॥ विपरीताख्या को प्रकीर्त्ति कहते हैं जिसमें जगण–यगण गुरु वे दोनों जगण—गुरु गथ होते हैं। सौमलौग और लभभार हरिण वल्लभा नामक वृत्त होता है ॥१४॥ जिसमें दो लघु, वनौ–गाथ–गुरु और दो जगण होते हैं वह अपराक्रम नामक वृत्त होता है। नगण—लघु—वया और नगण—दो जगण—रगण—गथ तथा रगण—जगण होते हैं वह पुष्पिताग्रा नाम वाला वृत्त होता है ॥१५॥ वोजथ और जव जवाग मूल में पनपती शिखा दो ये अट्ठाईस नागाभ हैं। इसके पश्चात् तीस नाग होते हैं। इनके विपरीत कुछ खञ्ज होते हैं। आगे अब समवृत्त प्रदर्शित किये जाते हैं ॥१६॥

१७३–समवृत्तनिरूपणम्

यतिर्विच्छेद इत्युक्तस्तत्तन्मध्यान्तयौ गणौ ।
यौ स॰ कुमारललिता तौ गौ चित्रपदा स्मृता ॥१
विद्युन्माला सभागस्य गणौ रतलगैर्भवेत् ।
माणवकाक्रीडितक वनौ हलमुखौ वस. ॥२

रयाद्भुजगशिशुसृता नौ मोह् सश्च ननौ ।
भवेच्छुद्धविराड वृत्त प्रतिपाद समौ जगौ ॥३
प्रणवो न तयाम स्याज्जो गो मयूर सारिणी ।
सत्तामभसगा वृत्त भजताद्युपरि स्थिता ॥४
रुक्मवन्ती मसमभगाविन्द्रवज्रा तजौ जगौ ।
जतौ जगौ तूपपूर्वा वाद्यन्ताद्युपजातय ॥५
दोधक भग (भ) भागौ स्याच्छालिनी मतभागगौ ।
यति समुद्रा ऋषयो वातार्मी भभता गगौ ॥६
चतुःस्वरा स्याद्भ्रमरी विलसिता मभौ नलौ ।
समुद्रा अथ ऋषयो वनौ लौ गो रथोद्धता ॥७

इस अध्याय म समवृत्तो का निरूपण किया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा—यति को विच्छेद कहा गया है । उनके मध्य और अन्त मे दो यगण होते हैं । दो यगण जिसम होते हैं वह कुमार ललिता नाम वाला वृत्त कहा जाता है । वे दोनो गुरु हैं तो वह चित्रपदा नामक कहा गया है ॥१॥ सभाग के दोनो गण रगण–तगण लघु और गुरु स युक्त हों तो विद्युन्माला छन्द होता है । जिसमें वनौ हलमुखी वस हो वह माणवकाक्रीडित वृत्त होता है ॥२॥ दो नगण मोह सगण–रगण—तगण और तीन नगण हों वहां भुजङ्ग शशी सुता नामक वृत्त होता है । जिसमें प्रति चरण म सगण–मगण और जगण गुरु हो वह शुद्ध विराट् छन्द होता है ॥३॥ प्रणव नगण–तगण–यगण–मगण तथा दो जगण और गुरुद्वय से युक्त हो वह मयूर सारिणी वृत्त होता है । भगण जगण और तगण के ऊपर सगण–तगण–मगण–भगण–सगण और गुरु हो वह रुक्मवती नाम वाला वृत्त होता है । मगण—दो मगण और गुरु वाला इन्द्र वज्रा होता है । तगण–जगण–जगण—गुरु वाला उपपूर्वा होता है तथा आदि अन्त वाले जो होते हैं वे उपजाति नामक छन्द होते हैं ॥४।५॥ भगण गुरु और भगण गुरुद्वय वाला दोधक वृत्त होता है । मगण—तगण—भगण और गुरु द्वय वाला शालिनी छन्द होता है । चार और सात पर यति वाला तथा मगण–और गुरुद्वय वाला वातोर्मी वृत्त होता है ॥६॥ चतुःस्वरा भ्रमरी है और मगण

भगण-नगण लघु वाला विलम्बिता वृत्त होता है। चार और सात पर यति वाले रगणों तथा दो लघु और दो गुरु हो वह रथोद्धता वृत्त होता है ॥७॥

स्वागता धनभा गो गो द्रुतानन्तसमाश्च सः।
श्येनीव जवना ग स्याद्रम्या नपरगा नग. ॥८
जगती वदास्था वृत्त जतौ जावथ तौ जवौ।
इन्द्रवशा तोटक संज्ञस्तुभि प्रतिपादितम् ॥९
भवेद्द्रुतविलम्बिता नभौ भरावथो नलौ।
स्यौ श्रीपरा वसुवेदाङ्कतोद्धतगनिर्जलौजसौ ॥१०
जसौ वसवंवश्चाथ तन ननमरा स्मृतम्।
कुसुमविचित्रा ध्रौनौ च नौ रम्याचलाधिका ॥११
भुजगप्रयात ये स्याच्चतुभि स्रग्विणी तु रैः।
प्रमिताक्षरा गजो भौ कान्तोत्पीडा मतौ समौ ॥१२
वैश्वदेवी ममयया पञ्चाङ्का नवमालिनी।
नजौ भयौ प्रतिपाद गणा यदि जगत्यपि ॥१३
प्रहर्षिणी मवजवा गोपतिर्वन्हिदिक्षु च।
रुचिरा जभसजगा छिन्ना वेदैर्ग्रहै स्मृता ॥१४

स्वागता वह वृत्त होता है जो ध—नगण-भगण और दो गुरु जिसमें होते हैं और वह द्रुतानन के समान होता है। श्येनी के समान वेग युक्त गुरु हो वह रम्या होता है और नगण के परे गुरु और फिर दो गुरु हो वह जगती छन्द होता है। जगण—तगण और दो जगण जिसमें हो वदास्थ वृत्त होता है। दो तगण जबो जिसमें हो वह इन्द्र वशा नामक वृत्त है तथा चार सगणों के द्वारा तोटक वृत्त प्रतिपादित किया गया है ॥८।९॥ नगण-भगण और भगण-रगण जहाँ हो वह द्रुतविलम्बित नामक छन्द होता है। नगण-लघु-नगण और यगण वाला श्रीपर होता है जिसमें आठ-चार पर यति होती है। जलोद्धत जगण और सगण हो वह जलोद्धतगति नामक वृत्त होता है। तगण-तगण दो नगण-मगण और रगण जिसमें हो वह कुसुम विचित्रा नामक

वृत्त है । दो-दो नगण और फिर दो नगण हों वह रम्या चलाधिका वृत्त होता है ॥१०।११॥ चार यगण जिसमें होते हैं वह भुजङ्ग प्रपात नाम वाला वृत्त कहा जाता है । और चार रगण जिसमे हो वह सृग्विणी नामक छन्द होता है । गुरु—जगण और दो सगण जिसमे होते हैं वह प्रमिताक्षरा नामक वृत्त है । मगण—तगण—सगण और मगण और मगण जिसमे होते हैं वह कान्तोत्पीडा नाम वाला छन्द होता है ॥१२॥ मगण—मगण और दो यगण जिसमें होते हैं वह वैश्वदेवी नाम वाला छन्द होता है । पश्चाङ्ग वाला नव-मालिनी वृत्त है । नगण-जगण प्रत्येक पद में होतो जगती भी है । फिर प्रह-र्षिणी वह होता है जहाँ मनजव होते हैं तथा वह्नि दिशाओ मे गोपति वृत्त कहा जाता है । वेद और ग्रहो से जो छिन्न (यति वाला) हो और जिसमें जगण-भगण-सगण-जगण और गुरु हो वह रुचिरा नामक वृत्त कहा गया है ॥१३।१४॥

मत्तमयूर मतया सतो वेदग्रहैर्यतिः ।
गौरी नलनसा गः स्यादसबाधा नतो नगौ ॥१५
गो ग इन्द्रियनवकौ ननौ रसलगाः स्वरा ।
स्वराश्चापराजिता स्यान्ननभा नलगाः स्वरा. ॥१६
द्विः प्रहरणकलिता वसन्ततिलका नभौ ।
जौ गौ सिंहोन्नता सा स्यान्मुनेरुद्धर्षिणी च सा ॥१७
चन्द्रावर्ता ननौ सोमावर्ततुं नवक स्मृतः ।
मणिगुणनिकराऽसौ मालिनी मयौ यस. ॥१८
यतिर्वसुस्वरा भौ वौ नवलमिग्रसग्रहाः ।
ऋषभगजविलसित ज्ञेया शिखरिणी जगौ ॥१९
रसभालभृगुरुद्राः पृथ्वीजसजसा जनौ ।
गोवसुग्रहविच्छिन्ना पिङ्गलेनेरिता पुरा ॥२०

मगण—तगण-यगण के सहित सगण और तगण हों तथा चार नौ पर यति हो वह मत्तमयूर छन्द होता है । नगण-लघु-नगण और मगण वाला

गौरी नाम वाला वृत्त है। नगण–तगण–नगण और गुरु वाला असम्बाधा होता है ॥१४॥ इन्द्रिय (दश) और नौ पर दो गुरु हो तथा नगण–नगण हो और स्वर रगण–सगण–लघु और गुरु हो वह अपराजिता वृत्त होता है। नगण द्वय–भगण–नग –लघु और गुरु हो तो प्रहरण कलिता वृत्त होता है। नगण–भगण हो तो वसन्त तिलका छन्द होता है। दो जगण और दा गुरु हो तो सिंहोन्नता छन्द होता है। वही सात पर विरति होने पर उद्धर्षिणी होता है ॥१६।१७॥ दो नगण–सगण–मगण हो और छँ तथा नौ पर यति हो तो चन्द्रावर्ता वृत्त होता है। जिसमे दो नगण–मगण–यगण और मगण–सगण हो वह मणि गुण निकरा मालिनी छन्द होता है ॥ १८ ॥ आठ और छँ पर जिसमे यति है दो भगण दो व तथा नतन मित्र सग्रहा हो एवं ऋषभ गज की भाँति जिसकी क्रीडा हो वह निखरिणी छन्द होना है। पहिले पिंगलाचार्य ने इस रस भाल भृगु रुद्रा और पृथ्वी जस जसा–जगण और नगण युक्त गो–वसु (आठ) और ग्रह (नौ) पर विच्छेद वाली कहा था। १९।२०॥

वशपत्रपतित स्याद्भवना भो नगौ सदिक्।
हरिणी नसमा र सो नगौ रसचतु स्वरा ॥२१
मन्दाक्रान्ता समभत नगौ राब्धिवसु स्वरा।
कुसुमितलता वेदिलता मतना ययया दारा ॥२२
रथा स्वरा प्रतिरथससजा सलताश्च ग।
शार्दूलविक्रीडित स्यादादित्यमुनयो यति ॥२३
कृति सुवदना मो रो भनया भनगा सुरा।
यतिर्मुनिरसाश्चाय इति वृत्त क्रमात्स्मृतम् ॥२४
स्रग्धरा मरभा नो मो यपौ थि सप्तका यति।
समुद्रक भरजा नो बनगा दश भास्करा ॥२५
अश्वललित नजभा जभजा भनमीशत।
मत्तक्रीडा ममनना नो नग्नौ गोष्टमातिथि ॥२६

तन्वी भनतसा भो भो लयो बाणमुरार्कका ।
क्रौञ्चपदा भमतता नौ नौ वाणशराष्टतः ॥२७
भुजगविजृम्भित ममतना ननवासनौ ।
गष्टेशमुनिभिश्छेदो ह्य् पहावाप्यमीदृशम् ॥२८
मनना ननता म सो गर्णम् हरसो रसात् ।
नौ सप्त रो दण्डद स्याच्चण्डवृष्टिप्रघातकम् ॥२९
रेफवृद्ध्या ननवाः स्युर्व्यालजीमूतमुख्यका ।
शेषे यं प्रतितो ज्ञेयो गाथा प्रस्तार उच्यते ॥३०

वश पत्र पतित भयना होता है । दो मगण और नगण वाला सदिक् हरिणी वृत्त होता है । नगण—सगण—मगण—रगण—सगण एव सगण द्वय वाला जिसमे रस (छं) और चार एवं स्वर (ग्यारह) पर विरति हो वह मन्दाक्रान्ता छन्द होता हैं । सगण–मगण–मगण–नगण और नगण द्वय जिस वृत्त मे होते हैं तथा रात्रि–वसु और स्वर पर विरति हो वह कुसुमित लता वेल्लिता वृत्त होता है । मगण–तगण–नगण—तीन यगण हो, वाण, रथ और स्वर पर विरति हो, प्रतिरथ मगण द्वय–जगण और गुरु हो वह शार्दूल विक्रीडित छन्द होता है जिसमे बारह और सात पर यति बताई गई है ॥२१।२२॥ ॥२३॥ धृति और सुवदना वृत्त क्रम से निम्न गणों वाले होते हैं । मगण–रगण भगण–नगण और यगण तथा भगण–नगण और गुरु—सुर मुनि (सात) और रस (छं) पर यति होती है ॥२४॥ सग्धरा मे मगण–रगण—तगण–नगण–मग——पय और त्रिसप्तक पर यति होती हैं वह समुद्रक वृत्त होता है । भगण–रगण–जगण–नगण—वनग दश जिसमे हो वह भास्कर वृत्त होता है ॥२५॥ नगण–जगण–भगण–जगण–भगण–नगण और भनमीश से मत्तक्रीडा वृत्त होता है । दो मगण–दो नगण–फिर दो नगण और नाग से गोष्ठमातिथि होता है ॥२६॥ तन्वी वृत्त में भगण–नगण–तगण–सगण–भगण द्वय होते हैं और वाल–सुर और अर्क (बारह) पर लय होता है । क्रौञ्चपदा छन्द मे भगण–मगण–दो तगण–दो नगण और नगण द्वय होते हैं और वाण–शर और आठ

पर विरति होती है ॥२७॥ भुजङ्ग विजृम्भित मे मगण द्वय–नगण–नगण और ननवानन होते हैं तथा गष्टेश–मुनि (सात) पर छेद अर्थात् यति होती है। ऐसा ही उपहावास्य वृत्त होता है ॥२८॥ मगण–दो नगण–नगण–रगण और सगण हों और रस पर यति हो वह ग्रह रस वृत्त होता है। दो नगण सात रगण वाला दण्ड होता है। चण्ड वृष्टि प्रघातक छन्द होता है ॥२९॥ रेफ वृद्धि से ननवा व्यानजीमूत मुरवक छन्द होते हैं। शेष में प्रनित ज नना चाहिए अब गाथा प्रस्तार बतलाया जाता है। ३०॥

छन्दोऽत्र सिद्ध गाथा स्यात्पादे सर्वगुरौ तथा।
प्रस्तार आद्यगाथो न परतुल्योऽथ पूर्वगः ॥३१
नष्टमध्ये समेऽङ्कं न समेऽर्धविषमे गुरु ।
प्रतिलामगुरुण नाद्य द्विरुद्दिष्टग एकनुत् ॥३२
सख्याद्विरर्धे रूपे तु शून्य शून्ये द्विरीरितम् ।
तावदर्धे तद्गुणितन द्विद्व्यून च तदन्तत ॥३३
परे पूर्ण परे पूर्ण मेरुप्रस्तारतो भवेत् ।
नगसख्या वृत्तसख्या चार्धाङ्ग लमघोर्धत ॥३४
सख्यैव द्विगुर्णवोना छन्द सारोऽयमीरितः ॥३५

अब प्रस्तार का निरूपण किया जाता है। अग्निदेव ने कहा–यहाँ पर छन्द तो सिद्ध कर दिया गया है, समस्त गुरु वाले पाद मे गाथा होता है। आद्यगाथ नगण प्रस्तार हाता है और पूर्वग पर तुल्य होता है ॥३१॥ नष्टमध्य मे सम अङ्क म नगण होता है। सम और अर्ध विषम मे गुरु होता है। आद्य प्रतिलोम गुरु नही होता है। दो उद्दिष्ट एकनुत् होता है ॥३२॥ अर्ध मे सख्या दो होता है और शून्य में दो शून्य कहा गया है। अर्ध मे रूप तद्गणित और उसके अन्त मे द्विद्व्यून होता है ॥३३॥ पर मे पूर्ण पर मे पूर्ण मेरुप्रस्तार से हुआ करता है। अध से अघोगण मे अर्धाङ्गुल नगसख्या और वृत्त सख्या होती है ॥३४॥ सख्या ही द्विगुर्णोना होती है। यह छन्द का सार बताया गया है ॥३५॥

१७४ काव्यादिलक्षणम्

काव्यस्य नाटकादेश्च अलङ्कारान्वदाम्यथ ।
ध्वनिर्वर्णाः पदं वाक्यमित्येतद्वाङ्मयं मतम् ॥१
शास्त्रेतिहासवाक्यानां त्रयं यत्र समाप्यते ।
शास्त्रे शब्दप्रधानत्वमितिहासेषु निष्ठता ॥२
अभिधायाः प्रधानत्वात्काव्यं ताभ्यां विभिद्यते ।
नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ॥३
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र च दुर्लभा ।
व्युत्पत्तिर्दुर्लभा तत्र विवेकस्तत्र दुर्लभः ॥४
सर्वं शास्त्रमविद्वद्भिर्मृग्यमाणं न सिध्यति ।
आदिवर्णा द्वितीयाश्च महाप्राणास्तुरीयकाः ॥५
वर्गेषु वर्णवृन्दं स्यात्पदं सुप्तिङ्प्रभेदतः ।
सक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली ॥६
काव्यं स्फुरदलंकारं गुणवद्दोषवर्जितम् ।
योनिर्वेदश्च लोकश्च सिद्धमन्नादयो निजम् ॥७
देवादीनां संस्कृतं स्यात्प्राकृतं त्रिविधं नृणाम् ।
गद्यं पद्यं च मिश्रं च काव्यादि त्रिविधं स्मृतम् ॥८

इस अध्याय में काव्य आदि का लक्षण बतलाया जाता है। श्री अग्नि देव ने कहा—अब हम काव्य का और नाटक आदि को तथा अलङ्कारों को बतलाते हैं। ध्वनि—वर्ण—पद और वाक्य यह इतना समस्त वाङ्मय माना गया है॥ १॥ जिसमें शास्त्र—इतिहास वाक्यों का त्रय समाप्त होता है। शास्त्र में शब्द की प्रधानता होती है और इतिहासों में निष्ठता होती है। अभिधा शक्ति की प्रधानता होती है इसी हेतु से काव्य उन दोनों से भेद वाला हो जाता है। संसार में पहिले तो यह मानव देह का प्राप्त होना ही कठिन है अर्थात् चौरासी लाख योनियों में यह जीवात्मा विभिन्न शरीरों में अपने कर्मानुसार भटकता रहता है तब कहीं बड़ी कठिनाई हिताहित ज्ञान सम्पन्न

और सर्वकार्यक्षम इस नर शरीर को प्राप्त होता है। परम दुर्लभ एवं महान् पुण्यप्रद इस नर शरीर को पाकर विद्या प्राप्त कर लेना यानी विद्वान् बनना उसमे भी कठिन है। अनेक मानवों मे विरले ही विद्वान् हुआ करते हैं ॥ ३ ॥ विद्वान् होकर कवि बनना दुर्लभ होता है क्योंकि बहुत से विद्वानों मे विरला ही कवि होता है। कवियों मे भी शक्तिशाली कोई ही होता है। फिर शक्तिमानो की व्युत्पत्ति कठिन होती है और व्युत्पत्ति मे विवेक बहुत ही दुर्लभ होता है ॥ ४ ॥ जो विद्वान् नहीं होते हैं उनके द्वारा मृग्यमाण (खोज किया हुआ) समस्त शास्त्र सिद्ध नहीं होता है। वर्गों मे आदि के वर्ण—द्वितीय वर्ण और चौथे वर्ण महाप्राण हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ कवर्गादि वर्गों में वर्णों का समुदाय होता है अर्थात् क ख ग घ ङ—इस प्रकार से प्रत्येक कवर्ग—च वर्ग आदि वर्णों मे बहुत से वर्ण होते हैं। प्रत्येक वर्ण सुबन्त तथा तिङन्त के भेदों से पद बना करता है। इस तरह इन्ही पदों के द्वारा वाक्य की रचना होती है जोकि अपने अभीष्ट अर्थ व्यवच्छिन्न होता है। ऐसी एक पदो की पंक्ति उस वाक्य मे हुआ करती है ॥ ६ ॥ इसी प्रकार के बहुत से वाक्यो से काव्य की रचना कवियो द्वारा की जाती है जिस काव्य मे विभिन्न अलङ्कारो की प्रभा चमकती रहती है और अनेक गुण जिसमे होते हैं तथा समस्त काव्यो के दोषो से रहित होता है। जो निर्वेद और लोक का ज्ञान तथा निज सिद्ध मन्त्रादिक का ज्ञान होता है ॥ ७ ॥ देव आदि की भाषा तो संस्कृत होती है और अन्य लोगों की एवं स्त्रियों की प्राकृत भाषा काव्य आदि मे हुआ करती है। ऐसे मनुष्यो की तीन प्रकार की गद्य—पद्य और मिश्रित (मिली हुई) भाषा हुआ करती है जो काव्य—नाटक आदि मे होती है ॥८॥

अपाद पदसन्तानो गद्यं तदपि गद्यते ।
चूर्णकोत्कलिकावृत्तगन्धिभेदात्त्रिरूपकम् ॥९
अल्पाल्पविग्रहं नातिमृदुसंदर्भनिर्भरम् ।
चूर्णकं नामतो दीर्घसमासोत्कलिका भवेत् ॥१०

भवेन्मध्यमसंदर्भं नातिकुत्सितविग्रहम् ।
वृत्तच्छायाहरं वृत्तसंधिर्नोत्कलिकोत्कटम् ॥११
आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा ।
कथानिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा ॥१२
कर्तृवंशप्रशंसा स्याद् यत्र गद्येन विस्तरात् ।
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भविपत्तयः ॥१३
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः ।
उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र या चूर्णकोत्तरा ॥१४
वक्त्रं वाऽपरवक्त्रं वा यत्र साऽऽख्यायिका स्मृता ।
श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात्कविर्यत्र प्रशंसति ॥१५
मुख्यस्यार्थावताराय भवेद् यत्र कथान्तरम् ।
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद्वा लम्बकैः क्वचित् ॥१६
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयाच्चतुष्पदीम् ।
भवेत्खण्डकथा याऽसौ कथा परिकथा तयोः ॥१७

सुप् और तिङ् जिसके अन्त म होता है ऐसा ही पदों का समुदाय गद्य कहा जाता है। वह गद्य चूर्णक—उत्कलिका वृत्त सन्धि भेद से होने के कारण त्रिरूपक होता है ॥ ९ ॥ जिस गद्य मे कम से कम विग्रह हो और जो अत्यन्त मृदुसन्दर्भ से निर्भर न हो वह चूर्णक नाम वाला गद्य होता है। जिस मे दीर्घ समास होती है वह उत्कलिका नामक गद्य कही जाती है ॥ १० ॥ जो मध्यम सन्दर्भ वाली होती है और जिसका अत्यन्त कुत्सित विग्रह नही होता है, वृत्त की छाया का हरण करने वाली वृत्त सन्धि गद्य हुआ करती है। यह अति उत्कट नही होती है ॥ ११ ॥ आख्यायिका-कथा-खण्डकथा-परिकथा-कथानिका ये पाच प्रकार का गद्य काव्य होता है ॥ १२ ॥ जहाँ गद्य के द्वारा कर्त्ता के वंश की प्रशंसा होती है कन्या का हरण—संग्राम—विप्रलम्भ (जुदाई) विपत्ति आदि होते हैं, जहा पर रीति वृत्ति की प्रवृत्तियां दीप्त होती हैं और उच्छ्वासों के द्वारा परिच्छेद जहाँ होता है, जो चूर्णकोत्तरा स्वयं मुख से कही जावे वह आख्यायिका कही गई है। श्लोकों के द्वारा अपने वंश की संक्षेप से कवि जहाँ

पद मुख्य अर्थ के अवतरण करने के लिये मन्य किसी कथा को कहा करता है जहां कोई परिच्छेद नहीं होता अथवा कहीं पद लम्बकों द्वारा परिच्छेद किया जावे वह कथा नामक गद्य काव्य होता है । उसके गर्भ मे चतुष्पदी का निबन्धन करना चाहिए । इन दोनों की कथा और परिकथा की खण्ड कथा होती है ॥१३।१४।१५।१६।१७॥

अमात्य सार्थकं वाऽपि द्विज वा नायक विदुः ।
स्यात्तयो करुण विद्धि विप्रलम्भश्चतुर्विध ॥१८
समाप्यते तयोर्नाऽद्या सा कथामनुधावति ।
कथाख्यायिक्ययोमिश्रभावात्परिकथा स्मृता ॥१९
भयानक सुखपर गर्भे च करुणो रसः ।
अद्भुतोऽन्ते सुक्लृप्तार्थो नोदात्ता सा कथानिका ॥२०
पद्य चतुष्पदी तच्च वृत्त जातिरिति द्विधा ।
वृत्तमक्षरसख्येयमुक्थ तत्कृतिशेजम् ॥२१
मात्राभिर्गणना यत्र सा जातिरिति काश्यप ।
सममर्ध सम वृत्त विषम पैङ्गल त्रिधा ।२२
सा विद्या नौस्तितीर्षूणा गभीर काव्यसागरम् ।
महाकाव्य कलापश्च पर्याबन्धो विशेषकम् ॥२३
कुलक मुक्तक कोष इति पद्यकुटुम्बकम् ।
सर्गबन्धो महाकाव्यमारब्ध सस्कृतेन यत् ।२४
तादात्म्यमजहत्तत्र तत्सम नातिदुष्यति ।
इतिहासकथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ॥२५

अमात्य सार्थक हो अथवा द्विज को नायक जानें । उन दोनों का करुण जानो । विप्रलम्भ इस तरह चार प्रकार का होता है ॥ १८ ॥ उन दोनो की आद्या समाप्त नहीं होती हैं और वह कथा अनुधावन किया करती है । इस तरह कथा और आख्यायिका इन दोनो का जो मिश्र भाव होता है वही परिकथा होती है ॥ १९ ॥ भयानक और सुख पर हो तथा गर्भ मे करुण

रस हो एव ग्रन्त में मुक्तसार्थ हो अद्भुत रस हो वहां कथानिका उदात्ता न होती है ॥ २० ॥ वह पद्य चतुष्पदी होता है और वृत्त जाति होता है इस प्रकार से दो प्रकार का होता है। वृत्त—अक्षर संख्येय अर्थात् अक्षरों की संख्या जिसमें की जाती है ऐसा और उक्थ तत्कृति कोपज है ॥ २१ ॥ हे वत्स! जहाँ पर मात्राओं के द्वारा गणना होती है। सम—विषम और अर्ध सम इस तरह से विद्वानाचार्य द्वारा किया हुआ वृत्त तीन प्रकार का होता है॥ २२ ॥ यह विद्या गम्भीर काव्य सागर को तैर कर पार करने की इच्छा वालों के लिये नौका के समान है। महाकाव्य—कलाप—पर्यविन्ध—विशेषक—कुलक—मुक्तक और कोष ये पद्यों का पुञ्ज होता है। सर्गों में बांधा हुआ महाकाव्य होता है जोकि संस्कृत के द्वारा आरम्भ किया गया हो। वहाँ पर तादात्म्य का त्याग किया गया है। इससे सम कृति दूषित नहीं होता है। वह किसी इतिहास की कथा से उद्भूत होता है अथवा अन्य सदाश्रय होता है ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ २५ ॥

मन्त्रदूतप्रयाणाजिनियतं नातिविस्तरम् ।
शक्वर्यातिजगत्यातिशक्वर्या त्रिष्टुभा तथा ॥२६
पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्राभिजनैश्चारुभि समैः ।
मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्ता नातिसंक्षिप्तसर्गकम् । २७
अतिशक्वरिकाष्टम्यामेकस कीर्णकै पर. ।
मात्रयाप्यपरः सर्गः प्राशस्त्येषु च पश्चिम ॥२८
कल्पोऽतिनिन्दितस्तस्मिन्विशेषानादर सताम् ।
नगरार्णवशैलर्तुचन्द्रार्काश्रमपादपैः ॥२६
उद्यानसलिलक्रीडामधुपानरतोत्सवैः ।
दूतीवचनविन्यासैरसतीचरिताद्भुतैः. ॥३०
तमसा मरुताप्यन्यैर्विभावै रतिनिर्भरैः ।
सर्ववृत्तिप्रवृत्तं च सर्वभावप्रभाविनम् ॥३१

जो मन्त्र दूत और प्रयाणाजि नियत होता है और अति विस्तार वाला

नहीं होता है । शक्करी—अति जगती—अति शक्करी—त्रिष्टुभ तथा पुष्पिताग्रा आदि से होता है । सुन्दर सम वक्त्राभिजनों से युक्त होता है । अन्त मे अर्थात् सर्ग के अन्त मे भिन्न वृत्त महाकाव्य होता है । सर्ग भी महाकाव्य मे अत्यन्त सक्षिप्त नही हुआ करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ अति शक्करिकाष्टो से एक शकीर्णको के द्वारा पर सर्ग का आरम्भ होता है । मात्रा के द्वारा भी सर्ग को किया जाता है । आशसयों मे पश्चिम होता है । उसमे कल्प अतिनिन्दित होता है जहाँ सत्पुरुषो का विशेष अनादर वर्णित होता है । नगर—समुद्र—पर्वत—ऋतु—चन्द्र—सूर्य—आश्रम के वृक्ष—उद्यान—जल की क्रीडा—मधुपान—रतोत्सव—दूतियों के वचनो का विश्वास—असती के चरित्र से अद्भुत—तम—मरुत तथा इस प्रकार के विभावादि से अति निर्भर सर्ववृत्ति द्वारा प्रवृत्त और सबके भावो से प्रभावित महाकाव्य हुआ करता है ॥ २८ ॥ ॥२९॥३०॥३१॥

सर्वरीतिरसैः स्पृष्टं पुष्टं गुणविभूषणैः ।
अत एव महाकाव्य तत्कर्ता च महाकविः ॥३२
वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम् ।
पृथक्प्रयत्न निर्वर्त्यं वाग्विक्रमणि रसाद्वपु ॥३३
चतुर्वर्गफल विश्वग्व्याख्यात नायकाख्यया ।
समानवृत्तिनिर्व्यूढ कौशिकीवृत्तिकोमल ॥३४
कलापोऽत्र प्रवास प्रागनुरागाह्वयो रस ।
सविशेषक प्राप्त्यादि सस्कृतेनेतरेण च ॥३५
श्लोकैरनेकै कुलक स्यात्सदानितकानि तत् ।
मुक्तक श्लोक एकैकश्चमत्कारक्षम सताम् ॥३६
सूक्तिभि कविसिंहाना सुन्दरीभिः समन्वित. ।
कोषो ब्रह्मपरिच्छिन्न स विदग्धाय रोचते ॥३७
आभासोपमशक्तिश्च सर्गे यद् भिन्नवृत्तता ।
मिश्र वपुरिति ख्यात प्रकीर्णमिति च द्विधा ॥३८
श्रव्य चैवाभिनेय च प्रकीर्ण सकलोक्तिभि ॥३९

समस्त प्रकार की रीति—रसों के द्वारा स्पृष्ट एवं गुणों के भूषण अर्थात् माधुर्यादि गुण और उपमादि अलङ्कारों से भूषित महाकाव्य होता है। इसीलिये इसका नाम महाकाव्य होता है और इसकी रचना करने वाला महाकवि कहलाता है ॥ ३२ ॥ वाणी का कौशल इसमें अर्थात् महाकाव्य की रचना में प्रधान होता है तो भी इस काव्य का जीवित अर्थात् प्राण रस ही होता है। वाणी के पुरुषार्थ करने से कोई विशेष प्रयत्न न करके रस से ही इसके कलेवर की पूर्ण रचना होती है। इसमें चारों वर्ग की सभी ने प्राप्ति बतलाई है क्योंकि एक नायक को आख्या होती है। समान वृत्ति से निर्व्यूढ (निर्वाह किया हुआ) तथा कौशिकी वृत्ति से कोमल कलाप और इसमें प्रवास प्राक् अनुराग के नाम वाला होता है। सविशेषक प्राप्ति आदि संस्कृत तथा अन्य के द्वारा होती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ जहाँ अनेक श्लोकों के द्वारा अन्वय होने पर कुलक होता है। वह सान्दानितक होते हैं। जो सत्पुरुषों के एक-एक ही श्लोक चमत्कार युक्त होते हैं वे मुक्तक कहे जाते हैं ॥ ३६ ॥ सिंह के समान वीर कवियों की जो सुन्दर उक्तियाँ होती हैं उनसे युक्त कोष होता है यह ब्रह्म से अपरिच्छिन्न होता है और कुशल पुरुषों के लिये बहुत ही रुचिकर होता है ॥ ३७ ॥ पर्यास और उपशम शक्ति होते हैं जबकि सर्ग में भिन्न वृत्त होते हैं। यह मिश्र वपु और प्रकीर्ण दो प्रकार से विख्यात है ॥ ३८ ॥ काव्य श्रव्य और अभिनेय दो होते हैं जो समस्त उक्तियों से प्रकीर्ण होता है ॥३६॥

१७५ नाटकनिरूपणम् ।

नाटकं सप्रकरणं डिम ईहामृगोऽपि वा ।
ज्ञेयः समवकारश्च भवेत्प्रहसनं तथा ॥१
व्यायोगभाणवीथ्यङ्कत्रोटकान्यथ नाटिका ।
सट्टकं शिल्पकः कर्णा एको दुर्मल्लिका तथा ॥२
प्रस्थानं भाणिका भाणी गोष्ठी हल्लीशकानि च ।
काव्यं श्रीगदितं नाट्यरासकं रासकं तथा ॥३

उल्लाप्यक प्रेङ्क्षण च सप्तविंशतिरेव तत् ।
सामान्य च विशेषश्च लक्षणस्य द्वयी गति ॥४
सामान्य सर्वविषय विशेष क्वापि वर्तते ।
पूर्वरङ्गे निवृत्ते द्वौ देशकालावुभावपि ॥५
रसभावविभावानुभावा अभिनयास्तथा ।
अङ्कु स्थितश्च सामान्य सर्वनैवोपसर्पणात् ॥६
विशेषोऽवसरे वाज्य सामान्य पूर्वमुच्यते ।
त्रिवर्गसाधन नाटचमित्याहु करण च यत् ॥७
इतिकर्तव्यता तस्य पूर्वरङ्गो यथाविधि ।
नान्दीमुखानि द्वात्रिंशदङ्गानि पूर्वरङ्गके ॥८

इस अध्याय मे नाटकों के विषय का निरूपण किया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा—नाटक–सप्रकरण–डिम, ईहामृग जानना चाहिए तथा समवकार और प्रहसन होता है । व्यायोग–भाण–वीथ्यङ्क–त्रोटक होते हैं । अब नाटिका बतलाते हैं सट्टक–शिल्पक–कर्णा–दुर्मल्लिका–प्रस्थान—भाणिका–भाणी–गोष्ठी और हल्लीशक, काव्य–श्रीगदित–नाट्य रासक–रासक–उल्लाप्यक—प्रेङ्क्षण ये सत्ताईस प्रकार के कुल होते हैं । सामान्य और विशेष यही दो प्रकार की लक्षण गति हुआ करती हैं ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ सामान्य जो होता है वह सर्वविषयक होता है और विशेष कहीं पर हुआ करता है । पूर्व रङ्ग के निवृत्त होने पर दोनों देश और काल भी रस-भाव–विभाव–अनुभाव तथा अभिनय होते हैं । अङ्क स्थित होता है यह सामान्य है जोकि सर्वत्र ही उपसर्पित होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ विशेष जो होता है वह अवसर वाला होता है सामान्य पूर्व मे कहा जाता है । नाट्य को भी धर्म–अर्थ और काम इस त्रिवर्ग का साधन बताया गया है जोकि करण है ॥ ७ ॥ उस नाट्य की जो इति कर्तव्यता होती है वह यथाविधि पूर्व रङ्ग होता है । बत्तीस नान्दी मुख होते हैं जोकि पूर्व रङ्ग मे हैं ॥८॥

देवतानां नमस्कारो गुरूणामपि च स्तुति
गोब्राह्मणनृपादीनामाशीर्वादादि मीयते ॥९

नाद्य (न्द्य)न्ते सूत्रधारोऽसौ रूपकेषु निबध्यते ।
गुरुपूर्वक्रम वंशप्रशंसा पौरुष कवेः ॥१०
सम्बन्धार्थौ च काव्यस्य पञ्चैतानेषु निर्दिशेत् ।
नटी विदूषको वाऽपि पारिपार्श्वक एव च ॥११
सहिता सूत्रधारेण सलाप यत्र कुर्वते ।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थै (र्थे) प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः ॥१२
आमुखं तत्तु विज्ञेयं बुधै प्रस्तावनाऽपि सा ।
प्रवृत्तक कथोद्घात प्रयोगातिशयस्तथा ॥१३
आमुखस्य त्रयो भेदा बीजांशेपूपजायते ।
काल प्रवृत्तमाश्रित्य सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ॥१४
तदाश्रयस्य पात्रस्य प्रवेशस्तत्प्रवृत्तकम् ।
सूत्रधारस्य वाक्य वा यत्र वाक्यार्थमेव वा ॥१५
गृहीत्वा प्रविशेत्पात्र कथोद्घात स उच्यते ।
प्रयोगेषु प्रयोग तु सूत्रधृग्यत्र वर्णयेत् ॥१६
ततश्च प्रविशेत्पात्र प्रयोगातिशयो हि सः ।
शरीर नाटकादीनामितिवृत्त प्रचक्षते ॥१७

देवताओं को प्रणाम—गुरुवर्ग का स्तवन करना—गो—ब्राह्मण और राज्य आदि का आशीर्वाद आदि देना इसमें हुआ करता है ॥ ९ ॥ नान्दी के अन्त में सूत्रधार रूपकों में निबद्ध किया जाता है। गुरुपूर्व क्रम में वंश की प्रशंसा करना कवि का पौरुष होता है ॥ १० ॥ सम्बन्ध और अर्थ ये पाँच इनमें निर्दिष्ट करने चाहिएँ। नटी—विदूषक—पारिपार्श्वक जो कि सूत्रधार के सहित जहाँ पर सलाप किया करते हैं। अपने काय के लिये विचित्र वाक्यों के द्वारा परस्पर में प्रस्तुत पर आक्षेप करने वाले होते हैं। उसे आमुख कहते हैं। विद्वान् लोग इसे प्रस्तावना भी कहा करते हैं। प्रवृत्तक—कथोद्घात और प्रयोगातिशय ये आमुख के तीन भेद हुआ करते हैं जो कि बीजांशों में उत्पन्न होते हैं। जहाँ पर सूत्रधार प्रवृत्त काल का आश्रय लेकर वर्णन किया करता

है। पात्र को उसका आश्रय वाला होने से ही प्रवेश तत्प्रवृत्तक होता है। सूत्रधार के वाक्य को अथवा जहाँ पर वाक्यार्थ को ग्रहण करके पात्र प्रवेश किया करता है वह कथोद्घात कहा जाता है। प्रयोगो मे जहाँ पर सूत्रधार प्रयोग का वर्णन किया करता है और इसके पश्चात् पात्र का प्रवेश होता है वह प्रयोगातिशय नामक होता है। नाटक आदि का शरीर इति वृत्त ही कहा जाता है ॥११।१२।१३।१४।१५।१६।१७॥

सिद्धमुत्प्रेक्षित चेति तस्य भेदावुभौ स्मृतौ।
सिद्धमागमदृष्ट च सृष्टमुत्प्रेक्षित कवे. ॥१८
बीज बिन्दु पताका च प्रकरी कार्यमेव च।
अर्थप्रकृतय पञ्च पञ्च चेष्टा अपि क्रमात् ॥१९
प्रारम्भश्च प्रयत्नश्च प्राप्ति सद्भाव एव च।
नियता च फलप्राप्ति फलयोगश्च पञ्चम ॥२०
मुख प्रतिमुख गर्भो विमर्शश्च तथैव च।
तथा निहरण चेति क्रमात्पञ्चैव सधयः ॥२१
अल्पगात्र समुद्दिष्ट बहुधा यत्प्रसर्पति।
फलावसान यच्चैव बीज तदभिधीयते ॥२२
यत्र बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरसस भवा।
काव्ये शरीरानुगत तन्मुख परिकीर्तितम् ॥२३
इष्टस्यार्थस्य रचना वृत्तान्तस्यानुपक्षय।
रागप्राप्ति प्रयोगस्य गुह्याना चैव गूहनम् ॥२४
आश्चर्यवदभिख्यात प्रकाशाना प्रकाशनम्।
अङ्गहीनो नरो यद्वन्न श्रेष्ठ काव्यमेव च ॥२५
देशकालौ विना किचिन्नेतिवृत्त प्रवर्तते।
अतस्तयोरुपादान नियमात्पदमुच्यते ॥२६
देशेषु भारत वर्ष काले कृतयुगत्रयम्।
नहि ताभ्या प्राणभृता सुखदु खोदय. क्वचित् ॥

सर्गे सर्गादिवार्ता च प्रसज्जन्ती न दुष्यति ।२७

इसके भी सिद्ध और उत्प्रेक्षित दो भेद कहे गये हैं सिद्ध वह है जो प्रत्यक्ष है और उत्प्रेक्षित कवि का सर्जन मात्र है। पाँच अर्थ प्रकृतियाँ होती हैं जिनके नाम—बीज—बिन्दु—पताका—प्रकरी और कार्य ये हैं। इसी प्रकार से क्रम से पाँच चेष्टाऐं होती हैं ॥ १८ ॥ १९ ॥ प्रारम्भ—प्रयत्न—प्राप्ति—सद्भाव, नियत फल प्राप्ति होती है और पाँचवाँ फल योग है ॥ २० ॥ पाँच ही सन्धियाँ होती हैं जिनके नाम—मुख—प्रतिमुख-गर्भ-विमर्श-निर्हरण ये होते हैं ॥ २१ ॥ जो समुद्दिष्ट तो अल्प मात्र हो और फिर विशेषतया प्रसर्पण करता हो और जिसका अवसान फल पर्यन्त होता है वह बीज कहा जाता है। जहाँ पद बीज की उत्पत्ति अनेक अर्थ और रसों के द्वारा हुई हो तथा काव्य में शरीर के अनुगत हो वह मुख सन्धि नाम से कही गई है ॥२२॥ ॥ २३ ॥ इष्ट अर्थ की रचना—वृत्तान्त का अनुपक्षय हो तथा प्रयोग की राग प्राप्ति एवं गुह्य वस्तुओं का गोपन किया जाता है अद्भुत की भाँति कथन और प्रकाश्यों का प्रकाशन हो ये सब बातें जिस तरह अङ्गहीन मनुष्यों की होती हैं उसी तरह वह काव्य भी श्रेष्ठ नहीं होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥ देश और काल के बिना कोई भी इति वृत्त प्रवृत्त नहीं हुआ करता है। अतएव उन दोनों का उपादान नियम से पद कहा जाता है ॥ २६ ॥ देश में भारत-वर्ष और काल में कृतयुग आदि तीन युग हैं। उन दोनों से प्राणधारियों का सुख—दुःख का उदय कहीं हुआ करता है। सर्ग में सर्ग के आदि की वार्त्ता प्रसज्जित होती हुई दोष युक्त नहीं हुआ करती है ॥२७॥

१७६—शृङ्गारादिरसनिरूपणम्

अक्षर परम ब्रह्म सनातनमज विभुम् ।
वेदान्तेषु वदन्त्येक चैतन्य ज्योतिरीश्वरम् ॥१
आनन्दः सहजस्तस्य व्यज्यते स कदाचन ।
व्यक्तिः सा तस्य चैतन्यचमत्काररसाह्वया ॥२

आद्यस्तस्य विकारा य सोऽहंकार इति स्मृत ।
ततोऽभिमानस्तत्रेद समाप्त भुवनत्रयम् ॥३
अभिमानाद्रति सा च परिपोषमुपेयुषी ।
व्यभिचार्यादिसामान्याच्छृङ्गार इति गीयते ॥४
तद्भेदा काममितरे हास्याद्या अप्यनेकश ।
स्वस्यस्थायिविशेषोऽथ परिघोपस्वलक्षणा ॥५
सत्त्वादिगुणसतानाज्जायन्त परमात्मन ।
रागाद्भवति शृङ्गारो रौद्र स्तैक्ष्ण्यात्प्रजायते ॥६
वीरोऽवष्टम्भज सकोचभूर्बीभत्स इष्यते ।
शृङ्गाराज्जायते हासा राद्रात्तु करुणो रस ॥७
वीराच्चाद्भुतनिष्पत्ति स्याद्बीभत्साद्भयानक ।
शृङ्गारहास्यकरुणा रौद्रवीरभयानका ॥८
बीभत्साद्भुतशान्ताख्या स्वभावाच्चतुरा रसा ।
लक्ष्मीरिव विना त्यागान वाणी भाति नीरसा ॥६

इस अध्याय म शृङ्गारादि रसो का निरूपण किया जाता है । अग्नि देव ने कहा—अक्षर परम ब्रह्म है । यह सनातन–अज–विभु होता है । वेद तो म इसे चैतन्य–ज्योति और एक ईश्वर कहा करते हैं ॥ १ ॥ उसका वह सहज आनन्द किसी समय व्यञ्जित किया जाता है । उसकी वह व्यक्ति चैतन्य के चमत्कार के सहन होती है ॥२॥ उसका जो आद्य विकार होता है वह अहङ्कार नाम से कहा गया है । इसके पश्चात् अभिमान होता है । उसमें यह भुवनत्रय समाप्त होता है ॥३॥ अभिमान से परिपोष को प्राप्त होने वाली वह द्रुति व्यभिचारी आदि के सामान्य होने स शृङ्गार इस नाम से गाई जाती है ॥ ४ ॥ उस रस क हास्य आदि अनक अन्य भी भेद होते हैं । अपना स्थायी भाव विशेष जब परिपोष को प्राप्त होता है तभी रस की निष्पत्ति होती है यही उनका लक्षण है ॥५॥ सत्त्वादि गुणो क सन्तान से परमात्मा से ही ये उत्पन्न हुआ करते हैं,राग होने क कारण स शृङ्गार होता है । तीक्ष्णता होने से रौद्र उत्पन्न

होता है। अवष्टम्भ से जन्म लेने वाला वीर रस होता है। सकोच से जन्म लेने वाला बीभत्स रस हुआ करता है। शृङ्गार से हास होता है और रौद्र से करुण रस की उत्पत्ति हुआ करती है। वीर रस से अद्भुत रस उत्पन्न होता है तथा बीभत्स से भयानक रस की निष्पत्ति हुआ करती है। इस तरह शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानक—बीभत्स और अद्भुत तथा शान्त नाम वाले हैं। स्वभाव से होने वाले चार रस ही होते हैं। त्याग के बिना लक्ष्मी की भाँति नीरसा वाणी शोभा नही दिया करती है ॥६।७।८।९॥

अपारे काव्यससारे कविरेव प्रजापति ।
यथा वै रोचते विश्व तथेद परिवर्तते ॥१०
शृङ्गारी चेत्कवि काव्ये जात रसमय जगत् ।
स चेत्कविर्वीतरागो नीरस व्यक्तमेव तत् ॥११
न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवजित ।
भावयन्ति रसानेभिर्भाव्यन्ते च रसा इति ॥१२
स्थायिनोऽष्टौ रतिमुखा स्तम्भाद्या व्यभिचारिण ।
मनोनुकूलेऽनुभव सुखस्य रतिरिष्यते ॥१३
हर्षादिभिश्च मनसा विकासो हास उच्यते ।
मनोवैक्लव्यमिच्छन्ति शोकमिष्टक्षयादिभि ॥१४
क्रोधस्तैक्ष्ण्य प्रबोधश्च प्रतिकूलानुकारिणी ।
पुरुषानुसमोऽप्यर्थो य स उत्साह उच्यते ॥१५
चित्रादिदर्शनाच्चेतोवैक्लव्य ब्रुवते भयम् ।
जुगुप्सा च पदार्थाना निन्दा दौर्भाग्यवाहिनाम् ॥१६
विस्मयोऽतिशयेनार्थदर्शनाच्चित्तविस्मृति ।
अष्टौ स्तम्भादय सत्त्वाद्रजसस्तमस परम् ॥१७

इस अपार काव्य रूपी ससार में कवि ही एक प्रजापति होता है। जैसे यह विश्व जैसा भी अच्छा लगता है उसी प्रकार का इसे कवि परिवर्त्तित कर दिया करता है ॥१०॥ यदि कोई कवि शृंगार रस का प्रेमी है तो वह

इस जगत् को काव्य म रसमय कर देता है। और यदि वह कवि वीतराग हो तो वह इस समस्त जगत् को नीरस व्यक्त कर दिया करता है ॥११॥ कोई भी रस भाव से हीन नहीं होता है और कोई भी भाव रस से वर्जित नहीं होता है इन भावों के द्वारा रस भावित करते हैं और रस इन्हें सुन्दर बनाया करते हैं ॥१२॥ स्थायी भाव आठ रसो के आठ हुआ करते हैं जिनम रति नामक शृङ्गार का स्थायी भाव प्रधान होता है। स्तम्भ आदि व्यभिचारी भाव होते हैं। मन के अनुकूल जो सुख का अनुभव होता है वही रति कहा जाता है ॥१३॥ हर्ष आदि के द्वारा जो मन का एक प्रकार का विकास होता है वही हास कहलाता है। अपने किसी अभीष्ट के क्षय आदि होने से जो मन का वैक्लव्य होता है उसी को शोक कहते हैं ॥१४॥ तीक्ष्णता क्रोध है और प्रवीर प्रतिकूल के अनुकारी पुरुषानुगम जो अर्थ होता है वह ही उत्साह कहा जाता है ॥१५॥ चित्र आदि के दर्शन से चित्त की जो विक्लवता होती है उसी को भय बोलते हैं। दौर्भाग्य के वहन करने वाले पदार्थों की जो निन्दा होती है वही जुगुप्सा है। अतिशय से अर्थ दर्शन से जो चित्त की विस्मृति हो जाती है उसे ही विस्मय कहते हैं। स्तम्भ आदि अष्ट सत्त्व से होते है। शेष रजोगुण और तमोगुण से व्यभिचारी हुआ करते हैं ॥१६।१७॥

स्तम्भश्चेष्टाप्रतीघातो भयरागाद्युपाहित ।
श्रमरागाद्युपेतान्त क्षोभजन्म वपुर्जलम् ॥१८
स्वेदो हर्षादिभिर्देहाच्छ्वासोऽन्त पुलकोद्गम ।
हर्षादिजन्मवाक्सङ्ग स्वरभेदो भयादिभि ॥१६
चित्तक्षोभमवस्तम्भो वेपथु परिकीर्तित ।
वैवर्ण्यं च विषादादिजन्मा कान्तिविपर्यय ॥२०
दु खानन्दादिज नेत्रजलमश्रु च विश्रुतम् ।
इन्द्रियाणामस्तमय प्रलयो लङ्घनादिभि ॥२१
वैराग्यादेर्मन खेदो निर्वेद इति कथ्यते ।
मन पीडादिजन्मा च सादो ग्लानि शरीरगा ॥२२

शङ्काऽनिष्टागमोत्प्रेक्षा स्यादसूया च मत्सर: ।
मदिराद्युपयोगोत्थ मन समोहन मद: ॥२३
क्रियातिशयजन्माऽन्त शरीरोत्थक्लम: श्रम ।
शृङ्गारादिक्रियाद्वेषश्चित्तस्याऽऽलस्यमुच्यते ॥२४

जो चेष्टा का प्रतिघात होता है वही स्तम्भ कहा जाता है और यह प्रतिघात भय तथा राग आदि से उपाहित हुआ करता है। श्रम और राग आदि से उत्पन्न जो अन्दर क्षोभ है और उससे उत्पन्न होने वाले शरीर मे जो जल के कण दिखाई दिया करते हैं उसी को स्वेद कहते हैं। हर्ष आदि के द्वारा देहोच्छ्वास होता है जो अन्दर पुलकोद्गम होता है। भय आदि के द्वारा हर्ष आदि के जन्म वाला स्वर स्वर भेद होता है। १८।१९॥ चित्त क्षोभ अवस्तम्भ वेपथु कहा गया है। विष आदि से जन्म लेने वाला जो कान्ति का विपर्यय है वही वैवर्ण्य कहा जाता है ।२०॥ दुख और आनन्द आदि से उत्पन्न होने वाला जो नेत्रो का जल है वह ही अश्रु नाम से प्रसिद्ध होता है। लयन आदि के द्वारा जो इन्द्रियो का अस्त प्राय हो जाना है वही प्रलय कहा जाता है। वैराग्य आदि से जो मनका खेद होता है उसको निर्वेद कहते हैं। मन की पीड़ा आदि से जन्म लेने वाला जो अवसाद है वही शरीर मे रहने वाली ग्लानि होती है ॥२१।२२॥ अनिष्ट के होने की जो उत्प्रेक्षा होती है वही शङ्का होती है। मत्सरता को ही असूया कहते हैं। मदिरा आदि के उपयोग से उत्पन्न होने वाला जो मनका सम्मोहन होता है वही मद कहलाता है ॥२३॥ क्रिया के अतिशय से उत्पन्न होने वाला शरीर मे जो उत्क्लम होता है उसी को श्रम कहते हैं। चित्त मे शृङ्गार आदि की क्रिया से जो द्वेष होता है उसी को आलस्य कहा जाता है ॥२४॥

दैन्य सत्त्वादपभ्रंशश्चिन्तार्थपरिभावनम् ।
इतिकर्तव्यतोपायादर्शन मोह उच्यते ॥२५
स्मृति स्यादनुभूतस्य वस्तुन प्रतिबिम्बनम् ।
मतिरर्थपरिच्छेदस्तत्त्वज्ञानोपनायित. ॥२६

व्रीडानुरागादिभव. संकोच. कोऽपि चेतस· ।
भवेच्चपलताऽस्थैर्यं हर्षश्चि (श्च) त्तप्रसन्नता ।।२७
आवेशश्च प्रतीकाराशया वैधुर्यमात्मन. ।
कर्तव्ये प्रतिभाभ्र शो जडतेत्यभिधीयते ।।२८
इष्टप्राप्तेरुपचित. सपदाम्युदयो धृति. ।
गर्व परेष्ववज्ञाचमन्युरुत्कर्षभावना ।।२९
भवेद्विपादोदैवादेर्विघातोऽभीष्टवस्तुनि ।
औत्सुक्यमीप्सिताप्राप्तेर्वाञ्छया तरला स्थिति ।।३०
चित्तेन्द्रियाणा स्तैमित्यमपस्मारोऽनवस्थिति. ।
युद्धे व्याधादिभिस्त्रासो वीप्सा चित्तचमत्कृति ।।३१

सत्व से अपभ्रंश हो जाना ही दैन्य होता है । अर्थ की परिभावना करना चिन्ता कहलाती है । इति कर्त्तव्यता के उपायो का जो नही दिखलाई देना है वह ही मोह कहा जाता है ।।२५।। किसी भी अनुभव मे आई हुई वस्तु का जो चित्त मे प्रतिबिम्बन हुआ करता है उसी को स्मृति कहा जाता है। तत्वज्ञान से उपनीत जो अर्थ का परिच्छेद होता है वही मति कही जाती है ।।२६।। अनुराग आदि से उत्पन्न होने वाला जो संकोच है वही पीडा होती है। यह सकोच चित्त के अन्दर होता है। स्थिरता का अभाव चपलता होती है। चित्त की प्रसन्नता को ही हर्ष कहते हैं ।।२७।। प्रतीकार करने की आशा से जो आत्मा का वैधुर्य होता है वही आवेश कहा जाता है । कर्त्तव्य करने मे प्रतिभा का जो भ्रंश होता है उसी को जडता कहा जाता है ।।२८।। इष्ट प्राप्ति का उपचित जो सम्पदा का अभ्युदय है उसे ही धृति कहते हैं । दूसरो के विषय में अवज्ञा के भाव को ही गर्व कहते हैं । उत्कर्ष की भावना को मन्यु कहा जाता है । किसी अभीष्ट वस्तु मे दैवादि का विघात ही विषाद होता है । किसी ईप्सित अर्थ की प्राप्ति के कारण इच्छा से जो तरल स्थिति होती है उसी को औत्सुक्य कहते हैं चित्त और इन्द्रियों का स्तैमित्य एव अनवस्थिति का होना अपस्मार कहा जाता है । व्याध आदि के द्वारा युद्ध मे अनवस्थिति का होना त्रास होता है। चित्त की चमत्कृति को वीप्सा कहते हैं ।२९ ३०।३१।।

क्रोधस्याप्रशमोऽमर्षं प्रबोधश्चेतनोदय. ।
अवहित्थ भवेद् गुप्तिरिङ्गिताकारगोचरा ॥३२
रोषतो गुरुवाग्दण्डपारुष्य विदुरुग्रताम् ।
ऊहो वितर्क स्याद्व्याधिर्मनोवपुरवग्रह ॥३३
अनिबद्धप्रलापादिरुन्मादो मदनादिभि ।
तत्त्वज्ञानादिना चेत कषायोपरम शम. ॥३४
कविभिर्योजनीया ये भावा. काव्यादिके रसाः ।
विभाव्यते हि रत्यादिर्यत्र येन विभाव्यते ॥३५
विभावो नाम स द्वेधाऽऽलम्बनोद्दीपनात्मक ।
रत्यादिभाववर्गोऽय यमाजीव्योपजायते ॥३६
आलम्बनविभावोऽसौ नायकादिभवस्तथा ।
धीरोदात्तो धीरोद्धत स्याद्धीरललितस्तथा ॥३७
धीरप्रशान्त इत्येव चतुर्धा नायक स्मृत ।
अनुकूलो दक्षिणश्च शठो धृष्ट प्रवर्तितः ॥३८
पटिमर्दो विटश्चैव विदूषक इति त्रय ।
शृङ्गारे नर्मसचिवा नायकस्यानुनायकाः ॥३९
पीठमर्दस्तु कलश श्रीमास्तद्देशजो विट ।
विदूषको वैहसिक स्त्व इष्ट नायकनायिका ॥४०

क्रोध का जो अप्रशम होता है उसे अमर्ष कहते हैं और चेतना का जो उदय होता है वही प्रबोध कहा जाता है। इङ्गित के आकार की गोचर गुप्ति को अवहित्था कहते हैं॥ ३२॥ रोष से गुरु वाग् का दण्ड पारुष्य ही उग्रता कही जाती है। वितर्क को ऊह कहते हैं। मन और शरीर का जो अवग्रह होता है उसे व्याधि कहते हैं॥३३॥ अनिबद्ध अर्थात् सन्दर्भ विवर्जित जो प्रलाप आदि है उसे उन्माद कहते हैं जो कि मदन आदि के कारण से हुआ करता है तत्त्वों के ज्ञान आदि से चित्त का कषाय द्वारा उपराम होजाना ही शम कहलाता है॥३४॥ कवियों के द्वारा योजनीय जो भाव होते हैं वे काव्य में रस कहे जाते हैं। रत्यादि जहाँ पर जिसके द्वारा विभावित होते हैं वे विभाव कह

जाते हैं। वे विभाव आलम्बन और उद्दीपन के भेद से दो प्रकार के कहे जाते हैं। रति आदि भावों का समुदाय जिसका आश्रय लेकर उत्पन्न होते हैं वही आलम्बन विभाव होता है जोकि नायक एवं नायिका आदि हैं। धीरोदात्त-धीरोद्धत–धीर ललित और धीर प्रशान्त ये चार प्रकार के होते हैं। ये नायक फिर अनुकूल—दक्षिण—शठ और धृष्ट चार प्रकार का हुआ करता है। पीठ-मर्द–विट और विदूषक ये तीन होते हैं। ये तीनों शृङ्गार रस में नायक के नर्म सचिव तथा अनुनायक हुआ करते हैं ॥३५ से ३९॥ पीठमर्द कलश श्रीमान् होता है और उस देश में उत्पन्न विट होता है। विदूषक जो होता है वह हास्य करने वाला होता है इस प्रकार से कुल आठ नायक हुआ करते हैं। चार पहिले और तीन विदूषकादि हैं। आठ प्रकार की ही नायिका होती हैं ॥४०॥

स्वकीया परकीया च पुनर्भूरिति कौशिका ।
सामान्या न पुनर्भूरि इत्याद्या बहुभेदत. ॥४१
उद्दीपनविभावास्ते स स्कारैर्विविधै. स्थिता ।
आलम्बनविभावेषु भावानुद्दीपयन्ति ये ॥४२
चतुःषष्टिकला द्वेधा कर्माद्यैर्गीतिकादिभि ।
कुहक स्मृतिरप्येषा प्राया हासोपहारक. ॥४३
आलम्बनविभावस्य भावैरुद्बुद्धसस्कृतै ।
मनोवाग्बुद्धिवपुषा स्मृतीच्छाद्वेषयत्नत ॥४४
आरम्भ एव विदुषामनुभाव इति स्मृत ।
स चानुभूयते चात्र भवत्युत निरुच्यते ॥४५
मनोव्यापारभूयिष्ठो मनआरम्भ उच्यते ।
द्विविध पौरुष स्त्रैण ईदृशोऽपि प्रसिध्यति ॥४६
शोभा विलासो माधुर्यं स्थैर्यं गाम्भीर्यमेव च ।
ललित च तथौदार्यं तेजोऽष्टाविति पौरुषा ॥४७

स्वकीया और परकीया और पुनर्भू यह कौशिक कहते हैं। जो सामान्या होती है वह पुनर्भू नहीं है—इत्यादि बहुत से भेदों वाली नायिकाएँ होती हैं

॥४०॥ उद्दीपन विभाव वे होते हैं जो कि विविध सस्कारो से स्थित हुआ करते हैं। आलम्बन विभावों में जो भावों को उद्दीप्त किया करते हैं वे चतु षष्टि कला होते हैं। वे फिर कर्माद्यो से और गीतकादि से दो प्रकार के होते हैं। कुहक और इनकी स्मृति भी प्राय' हास का उपकारक होता है ॥४१।४३॥ आलम्बन विभाव के उद्बुद्ध सस्कार वाले भावो से मन—वाणी—बुद्धि और शरीर की इच्छा—द्वेष—स्मृति के प्रयत्न से जो आरम्भ होता है वही विद्वानो का अनुभाव कहा गया है। वह यहाँ पर अनुभव किया जाता है अर्थात् अनुभूत होता है यही इसकी निरुक्ति की जाती है ॥४४।४५॥ मन के व्यापार की बहुलता वाला मन का आरम्भ कहा जाता है। दो प्रकार का स्त्रैण और पौरुष है ऐसा भी प्रसिद्ध होता है। शोभा—विलास—माधुर्य—स्थैर्य—गाम्भीर्य—ललित—औदार्य—तेज ये आठ प्रकार के पौरुष होते हैं ॥४६।४७॥

नीचनिन्दोत्तमस्पर्धा शौर्य दाक्षा (क्ष्या) दिकारणम् ।
मनोधर्मे भवेच्छोभा शोभते भवन यथा ॥४८
भावो हारश्च हेला च शोभा कान्तिस्तथैव च ।
दीप्तिर्माधुर्यशौर्ये च प्रागल्भ्य स्यादुदारता ॥४९
स्थैर्य गम्भीरता स्त्रीणा विभावा द्वादशेरिता ।
भावो विलासो हाव स्याद्भाव किंचिद्व हृपज ॥५०
वाचोयुक्तिर्भवेद्वागारम्भो द्वादश एव स' ।
तत्र भाषणमालाप प्रलापो वचन बहु ॥५१
विलापो दु खवचनमनुलापोऽसकृद्वच ।
सलाप उक्तप्रत्युक्तमपलापोऽन्यथा वच ॥५२
वार्ता प्रयाण सदेशो निर्देश प्रतिपादनम् ।
तत्त्वदेशोऽतिदेशोऽयमपदेशोऽन्यवर्णनम् ॥५३
उपदेशश्च शिक्षावाग्व्याजोक्तिर्व्यपदेशक' ।
बोधाय एष व्यापार सुबुद्धयारम्भ इष्यते ॥
तस्य भेदास्त्रयस्ते च रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः ॥५४

नीच निन्दा—उत्तम स्पर्धा—शौर्य और दाक्ष्य आदि कारण हैं। मनो धर्म
र शोभा होती है जिस प्रकार भवन शोभा देता है। भाव-हाव-हेला-शोभा-कान्ति-
दीप्ति—माधुर्य—धैर्य—प्रागल्भ्य—उदारता—स्थैर्य—गम्भीरता ये स्त्रियों के
बारह विभाव कहे गये हैं। भाव—विलास—हाव होता है। और भाव कुछ
हर्ष से उत्पन्न होता है ॥४८।४९।५०॥ वाचो युक्ति वागारम्भ होता है और
वह बारह प्रकार का होता है। उस में जो भाषण किया जाता है वह आलाप
कहा जाता है। बहुत बोलना प्रलाप (अनर्थक वचन) होता है ॥५१॥ दुःख मय
जो वचन होते हैं उसे विलाप कहते हैं। एक वचन को कई बार जो कहा जाता
है वह अनुलाप कहा जाता है। उक्ति और प्रत्युक्ति जिसमे होती हैं उसे सलाप
कहते हैं। जो अन्यथा वचन अर्थात् असम्बद्ध वचन है उसे अपलाप कहते हैं
॥५२॥ वार्ता—प्रयाण—सन्देश—निर्देश—प्रतिपादन—तत्त्व देश—अति देश—अपदेश
अन्य वर्णन और शिक्षा की वाणी उपदेश है। जो व्याजोक्ति होती है वह व्य-
पदेशक होता है। यह व्यापार बोध के लिये सुबुद्धि से आरम्भ अभीष्ट है।
उसके तीन भेद हैं रीति— वृत्ति और प्रवृत्ति। ये तीन उन भेदों के नाम
हैं ॥५३।५४॥

१७७ रीतिनिरूपणम्

वाग्विद्यासप्रतिज्ञाने रीतिः साऽपि चतुर्विधा।
पाञ्चाली गौडदेशीया वैदर्भी लाटजा तथा ॥१
उपचारयुता मृद्वी पाञ्चाली ह्रस्वविग्रहा।
अनवस्थितसन्दर्भा गौडीया दीर्घविग्रहा ॥२
उपचारैर्न बहुभिरुपचारैर्विजिता।
नातिकोमलसन्दर्भा वैदर्भी मुक्तविग्रहा ॥३
लाटीया स्फुटसन्दर्भा नातिविस्फुरविग्रहा।
परित्यक्ताऽभिभूयोऽपि रुपचारैरुदाहृता ॥४
क्रियास्वविषमा वृत्तिर्भारत्यारभटी तथा।
कौशिकी सात्त्वती चेति सा चतुर्धा प्रतिष्ठिता ॥५

वाक्यधाना नरप्राया स्त्रीयुक्ता प्राकृतोक्तिना ।
भरतेन प्रणीतत्वाद्भारती रीतिरुच्यते ॥६

इस अध्याय मे रीति का निरूपण किया जाता है । श्री अग्निदेव ने कहा—वाग् विद्या के सम्प्रति ज्ञान मे जो रीति है वह रीति चार प्रकार की होती हैं । उनके नाम पाञ्चाली —गौडी–वैदर्भी और लाटजा अर्थात् लाट देश की लाटी ये हैं । उपचार से युक्त ह्रस्व विग्रह वाली और मृदु पाञ्चाली होती है । लम्बे विग्रह वाली अनवस्थित सन्दर्भ स युक्त गौडी होती है । जिसमे बहुत उपचार नही होते और उपचार से विवर्जित होती है तथा विग्रह मे मुक्त और अति कोमल सन्दर्भ स रहित जो होती है वह वैदर्भी है । स्फुट सन्दर्भ वाली और अति विस्फुर विग्रह से रहित लाटीया होती है । अभिभूत होकर भी परित्यक्ता और उपचारो से उदाहृत तथा क्रियाओं मे अविषम वृत्ति भारती–आरभटी–कौशिकी और सात्वती ये चार प्रकार की प्रतिष्ठित होती हैं ॥१।२॥ ॥३।४।५॥ वाक्प्रधाना–नरप्राया और स्त्री युक्ता तथा प्राकृत भाषा मे कथित भरतमुनि के द्वारा प्रणीत होने से भारती रीति—इस नाम से कही जाती है ॥६॥

चत्वार्यङ्गानि भारत्या वीथी प्रहसन तथा ।
प्रस्तावना नाटकादेर्वीथ्यङ्गाश्च त्रयोदश ॥७
उद्घातक तथैव श्यावलम्बित स्याद् द्वितीयकम् ।
असत्प्रलापो वाक्श्रेणी नालिका विपण तथा ॥८
व्याहारस्त्रिमत चैव छलावस्कन्दिते तथा ।
गण्डोऽथ मृदवश्चैव त्रयोदशमथोचितम् ॥९
तापमादे प्रहसन परिहासपर वच ।
मायेन्द्राजालयुद्धादिबहुलाऽऽरभटी स्मृता ॥१०
सक्षिप्तकारपातौ च वस्तूत्थापनमेव च ॥११

भारती रीति क चार अङ्ग होते हैं—वीथी, प्रहसन—प्रस्तावना जोकि नाटक आदि म होती है । उप वीथी के अङ्ग भी तेरह हुआ करते हैं ॥७॥

उद्घात्यक—लपित—द्वितीयक—असत्प्रलाप—वाक्श्रेणी—नालिका—विपण—व्याहार—त्रिमत—छला—अवस्कन्दित—गण्ड और मृदव ये तेरहों के नाम हैं। ॥८।९॥ तापस आदि का प्रहसन होता है जोकि परिहास प्रधान वचन होता है। माया—इन्द्रजाल और युद्ध जिसमे बहुत होते है वह आरभटी कही गई है ॥१०॥ सङ्क्षिप्ताकार—पात तथा वस्तूत्थापन भी होता है ॥११॥

१७८—नृत्यादावङ्गकर्मनिरूपणम्

चेष्टाविशेषमप्यङ्गप्रत्यङ्गं कर्म चानयो. ।
शरीरारम्भमिच्छन्ति प्राय पूर्वोऽबलाश्रय ॥१
लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रम किलकिंचितम् ।
मोट्टायित कुट्टमित विब्बोको ललित तथा ॥२
विकृत क्रीडित केलिरिति द्वादशधैव सः ।
लीलेष्टजनचेष्टानुकरण सवृतक्षये ॥३
विशेषान्दर्शयन्किंचिद्विलास सद्भिरिष्यते ।
हसितक्रन्दितादीना सकर विलकिंचितम् ॥४
विकार कोऽपि विब्बोको ललित सौकुमार्यतः ।
शिर पाणिरुरः पार्श्वं कटिरङ्घ्रिरिति क्रमात् ॥५
अङ्गानि भ्रूलतादीनि प्रत्यङ्गान्यभिजायते ।
अङ्गप्रत्यङ्गयो कर्म प्रयत्नजनित विना ॥६

इस अध्याय मे नृत्यादि मे अङ्गों के कर्मों का निरूपण किया जाता है अग्निदेव ने कहा—अग प्रत्यग में इन दोनो का चेष्टा-विशेष कर्म होता है। प्राय जो पूर्व है वह अबल ओ के आश्रय वाला होता है और शरीरारम्भ को चाहते हैं ॥१॥ लीला-विलास-विच्छित्ति-विभ्रम—किल किञ्चित—मोट्टायित-कुट्टमित-विब्बोक-ललित- विकृत-क्रीडित—केलि इन भेदों से वह बारह प्रकार का होता है। सवृत क्षय मे इष्टजन की चेष्टाओं का अनुकरण लीला कहलाती है ॥ २।३ ॥ विशेषों को दिखलाता हुआ सत्पुरुषों के द्वारा विलास कहा जाता है। हसित और क्रन्दित (रुदन) का जो सकर (मिलाव)

होता है वह किल किञ्चित नाम से कहा जाता है ।।४।। कोई विकार जो होता है उसे शिर—हाथ—वक्ष—पार्श्वभाग—कमर—चरण इस क्रम से अंगो तथा भ्रू लता आदि प्रत्यगों में जो अभिजात होता है वह अंग—प्रत्यंग का कर्म है जो बिना ही प्रयत्न के उत्पन्न हुआ करता है ।।५ ६।।

न प्रयोग. क्वचिन्मुख्य तिरश्चीनं च तत्क्वचित् ।
आकम्पित कम्पित च धुत विधुतमेव च ।।७
परिवाहितमाधूतमवधूतमथाऽञ्चितम् ।
निकुञ्चित परावृत्तमुत्क्षिप्त चाप्यधोगतम् ।।८
ललित चेति विज्ञेय त्रयोदशविध शिरः ।
भ्रूकर्म सप्तधा ज्ञेय पातन भ्रूकुटीमुखम् ।।९
दृष्टिस्त्रिधा रसस्थायिसचारि त्रिबन्धना ।
षट्त्रिंशद्भेदविधुरा रसजा तत्र चाष्टधा ।।१०
नवधा तारकाकर्म भ्रमण चलनादिकम् ।
षोढा च नासिका ज्ञेया नि श्वासो नवधा मत ।।११
षोढौष्ठकर्मकं पाद सप्तधा चिबुकक्रिया ।
कलुषादिमुख षोढा ग्रीवा नवविधा स्मृता ।।१२
असयुतः सयुतश्च भूम्ना हस्त. प्रयुज्यते ।
पताकस्त्रिपताकश्च तथा वै कर्तरीमुख ।।१३
अर्धचन्द्रोत्करालश्च शुकतुण्डस्तथैव च ।
मुष्टिश्च शिखरश्चैव कपित्थः कटकामुख ।।१४
सूच्यास्यः पद्मकोषो हि शिराः समृगशीर्षक ।
कामूलकालपद्मौ च चतुरभ्रमरौ तथा ।।१५
हंसास्यहसपक्षौ च सदशमकुलौ तथा ।
ऊर्णनाभस्ताम्रचूडश्चतुर्विंशतिरित्यमी ।।१६

कही पर प्रयोग नही होता है, कही मुख्य होता है और किसी जगह पर तिरश्चीन होता है। आकम्पित—कम्पित—धुत—विधुत—परिवाहित—आधूत

म। पूर—प्राचित-निकुञ्चित-परावृत-उत्क्षिप्त-मघोगत इस प्रकार के भेदों से ललित तेरह प्रकार का होता है। सिर और भ्रू कर्म सात प्रकार का जानना चाहिए। पातन भ्रूकुट मुख और दृष्टि ये तीन प्रकार के होते हैं। रस स्थायी और सचारी भाव छत्तीस प्रकार के भेदों वाले होते हैं किन्तु रसों को उत्पन्न करने वाले रति आदि आठ ही होते हैं ॥७ से १०॥ भ्रमण और चलनादि नौ प्रकार का तारका का कम होता है। छै प्रकार की नासिका जाननी चाहिए। नौ प्रकार का निश्वास माना गया है ॥११॥ छै प्रकार का ओष्ठ कर्म होता है और सात तरह की चिबुक की क्रिया होती है। कलुषादि मुख के छै भेद होते हैं। ग्रीवा नौ प्रकार की कही गई है ॥१२॥ असयुत और सयुत बहुत प्रकार से हस्त का प्रयोग किया जाता है। पताक-त्रिपताक-कर्तरी मुख-अर्ध चन्द्रोत्कराल-शुक तुण्ड-मुष्टि—शिखर-कपित्थ—कटकामुख-सूच्यास्य-पद्मकोष—शिरा—समृग शीर्षक-का मूल—काल पद्म-चतुर-भ्रमर-हंसास्य-हंस पक्ष-सदंश-मुकुल—ऊर्णनाभ-ताम्र चूड-ये चौबीस प्रकार के होते हैं ॥१३।१४।१५।१६॥

असंयुतकराः प्रोक्ताः संयुतास्तु त्रयोदश ।
अञ्जलिश्च कपातश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा ॥१७
कटका वर्धमानश्चाप्यसङ्गो निषधस्तथा ।
दोल पुष्पपुटश्चैव तथा मकर एव च ॥१८
गजदन्तो बहिःस्तम्भो वर्धमानोऽपरे कराः ।
उरः पञ्चविधं स्यात्तु आभुग्ननतकादिकम् ॥१९
उदरं दूरनतिक्षाम खण्डं पूर्णमिति त्रिधा ।
पार्श्वयोः पञ्च कर्माणि जङ्घाकर्म च पञ्चधा ॥२०
अनेकधा पादकर्म नृत्यादौ नाटके स्मृतम् ॥२१

ये असंयुत कर बताये गये हैं। संयुत तेरह प्रकार के होते हैं—अञ्जलि-कपोत-कर्कट-स्वस्तिक-कटक-वर्धमान-असंगम-निषध-दोल-पुष्पपुट-मकर-गजदन्त—बहिःस्तम्भ और वर्धमान ये दूसरे करके भेद होते हैं। उर पाँच

प्रकार की होता है जोकि भेद आभुग्न और नर्तक आदि होते हैं ॥१७।१८॥-॥१९॥ उदर तीन प्रकार का होना है जिन भेदों के नाम अनतिक्षाम-खण्ड और पूर्ण ये होते हैं। पार्श्वों के पाच कर्म हुआ करते हैं और जघाओं के भी पाँच कर्म होते हैं। पादों के अनेक प्रकार के कर्म होते हैं जोकि नाटक आदि में जो नृत्य होता है उसमें हुआ करते हैं ॥२०।२१॥

१७६ प्रलयवर्णनम्

चतुर्विधस्तु प्रलयो नित्यो य. प्राणिना लय ।
सदा विनाशो जाताना ब्राह्मो नैमित्तिको लयः ॥१
चतुर्युगसहस्रान्ते प्राकृतः प्रकृतौ लय ।
लय आत्यन्तिको ज्ञानादात्मनः परमात्मनि ॥२
नैमित्तिकस्य कल्पान्ते वक्ष्ये रूप लयस्य ते ।
चतुर्युगसहस्रान्ते क्षीणप्राये महीतले ॥३
अनावृष्टिरतीवोग्रा जायते शतवार्षिकी ।
ततः सत्त्वक्षय. स्याच्च ततो विष्णुर्जगत्पति ॥४
स्थितो जलानि पिबति भानो सप्तसु रश्मिषु ।
भूप तालसमुद्रादितोय नयति सक्षयम् ॥५
ततस्तस्यानुभावेन तोयाहारोपवृंहिता ।
त एव रश्मय सप्त जायन्ते सप्त भास्करा ॥६
दहन्त्यशेष त्रैलोक्य सपातालतल द्विज ।
कूर्मपृष्ठसमा भू स्यात्ततःकालाग्निरुद्रक ॥७
शेषाहिश्वाससपात. पातालानि दहत्यध ।
पातालेभ्यो भुव विष्णुर्भुव स्वर्ग दहत्युत ॥८

इस अध्याय मे प्रलय का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—प्रलय चार प्रकार का होता है उनमें एक लय तो वह है जो प्राणियो का नित्य हुआ करता है। दूसरा उत्पन्न होने वालों का सदा जो विनाश होता है वह ब्राह्म नैमित्तिक लय होता है ॥१॥ एक सहस्र चतुर्युग (सतयुग-त्रेता-द्वापर-

कलियुग ये चार युग होते हैं। वे प्र न मे प्रकृति में जो लय होता है प्राकृत-प्रलय तीसरा होता है। ज्ञान के होने से परमात्मा में जो प्र रमा का लक्ष्य होना है वह चतुर्थ प्रात्यन्तिक लय कहा जाता है ॥२॥ कल्प के अन्त मे नैमित्तिक लय का स्वरूप मैं तुमको बताता हूँ। एक सहस्र चतुर्युग के अन्त म इस मही तल के क्षीण प्राय हो जाने पर अत्यन्त उग्र सौ वर्ष तक अनवृष्टि (वर्षा का अभाव) होती है। इससे बहुत से सत्त्वो (जीवो) का क्षय हो जाता है। इसके अनन्तर जगत् के स्वामी विष्णु स्थित होकर जलो का पान किया करते हैं। सूर्य की सात किरणो से भूमि—पाताल और समुद्र आदि का जल क्षीणता को प्राप्त हो जाता है ॥३।४।५॥ इसके अनन्तर उसके अनुभाव से जल के आहार करक परिपुष्ट वे ही सात रश्मियाँ सात सूर्य हो जाया करते हैं ॥६॥ हे द्विज! वे सात सूर्य पाताल तल के सहित समस्त त्रैलोक्य को दग्ध किया करते हैं। उस समय यह भूतल कूर्म की पीठ के समान हो जाता है। इसके पश्चात् कालाग्नि रुद्रक शेष नाग के श्वासो का सम्पात नीचे के पाताल आदि लोको को जला देता है। फिर विष्णु पातालो से भूलोक को और भूलोक से स्वर्ग को दग्ध किया करते हैं ॥७।८॥

अम्बरीषमिवाऽऽभाति त्रलोक्यमखिल तथा ।
ततस्तापपरीतास्तु लोकद्वयनिवासिन ॥६
गच्छन्ति त महर्लोक महर्लोकाज्जन तत ।
रुद्ररूपी जगद्दग्ध्वा मुखनि श्वासतो हरे ॥१०
उत्तिष्ठन्ति ततो मेघा न नारूपा सविद्युत ।
शत वर्षाणि वर्षन्त शमयन्त्यग्निमुत्थितम् ॥११
सप्तर्षिस्थानमाक्रम्य स्थितऽम्भसि शत मरुत् ।
मुखानि श्वासतो विष्णोर्नाश नयति तान्घनान् ॥१२
वायु पीत्वा हरि शेषे शेन चैकार्णवे प्रभु ।
ब्रह्मरूपधर सिद्धै जलगैमु निभि स्तुतः ॥१३
आत्ममायामयी दिव्या योगनिद्रा समास्थित ।
आत्मान वासुदेवाख्य चिन्तयन्मधुसूदनः ॥१४

कल्पं शेते प्रबुद्धोऽथ ब्रह्मरूपी सृजत्यसौ ।
द्विपरार्धं ततो व्यक्त प्रकृतौ लीयते द्विज ॥१५
स्थानात्स्थान दशगुणमेकस्माद् गुण्यते स्थले ।
ततोऽष्टादशमे (के) भागे परार्धमभिधीयते ॥१६

उस समय यह समस्त त्रैलोक्य अम्बरीष की भांति प्रतीत होता है । फिर व अधिक चारों ओर के महान् ताप से सन्तप्त दोनों लोकों के निवासी प्राणी महर्लोक को चले जाते हैं और महर्लोक से जनलोक को जाया करते हैं । रुद्र रूप वाला हरि के मुख के निःश्वास से इस जगत् को जला कर भस्मसात् कर देता है । इसके अनन्तर अनेक रूप वाले विद्युत् से युक्त मेघ उठा करते हैं । ये मेघ निरन्तर सौ वर्ष तक वर्षा करते हैं और इस उठी हुई आग को शान्त कर देते हैं ॥६।१०।११॥ सप्तर्षियों के स्थान का आक्रमण करके जल में स्थित हो जाने पर विष्णु के मुख के निःश्वास से निकलती हुई वायु सौ वर्ष पर्यन्त उन समस्त घनों का नाश किया करता है ॥१२॥ इस वायु का पान करके फिर भगवान् हरि एकार्णव में शेष की शय्या पर शयन किया करते हैं । वहाँ जल में गमन करने वाले सिद्ध और मुनियों के द्वारा उनकी स्तुति की जाया करती है । भगवान् मधुसूदन आत्ममायामयी (अपनी माया से परिपूर्ण) दिव्य-योग निद्रा में भली-भाँति स्थित होकर वासुदेव नामक अपने आपके स्वरूप का चिन्तन किया करते हैं ॥१३।१४॥ एक कल्प पर्यन्त यह शयन करके प्रबुद्ध होते हैं और ब्रह्मरूप वाले यह सृजन किया करते हैं । हे द्विज ! द्विपरार्ध होता है और इसके अनन्तर व्यक्त प्रकृति में लय हो जाता है ॥१५॥ स्थान से स्थान दश गुना होता है और एक से स्थल में गुणित किया जाता है । इसके पश्चात् अष्टादशम भाग में परार्ध कहा जाता है ॥१६॥

परार्धं द्विगुणं यत्तु प्राकृत प्रलय स्मृतः ।
अनावृष्ट्याऽग्निसंपर्कात्कृते सज्वलने द्विज ॥१७
महदादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये ।
कृष्णेच्छाकारिते तस्मिन्सम्प्राप्ते प्रतिसंचरे ॥१८

आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धादिकं गुणम् ।
आत्मगन्धा ततो भूमि प्रलयत्वाय कल्पते ॥१६
रसात्मिकाश्च तिष्ठन्ति ह्यापस्तासां रसो गुणः ।
पीयते ज्योतिषा तासु नष्टास्वग्निश्च दीप्यते ॥२०
ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुर्ग्रसति भास्क (स्व) रम्
नष्टे ज्योतिषि वायुश्च बली दोधूयते महान् ॥२१
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते ततः ।
वायौ नष्टे तु चाऽऽकाशं नीरवं तिष्ठति द्विज ॥२२

पराध द्विगुण होता है जो कि प्राकृत प्रलय कहा गया है। हे द्विज! अनावृष्टि और अग्नि के सम्पर्क से सज्वलन करने पर विशेषान्त महदादि विकार का सञ्चय होता है और ऐसा होने पर कृष्णेच्छा से कराया हुआ उस प्रति सचर के सम्प्राप्त होने पर पहिले जल भूमि के गन्धादिक गुण को ग्रस लिया करते हैं। इसके पश्चात् आत्म गन्धा यह भूमि प्रलय के लिए मानी जाया करती है ॥१७।१८।१६॥ फिर रसात्मक जल ही रहा करते हैं क्योंकि जल का गुण रस ही होता है। उनके नष्ट हो जाने पर ज्योति के द्वारा पान किया जाता है और फिर अग्नि दीप्त हो जाया करती है। ज्योति का भी गुण रूप होता है और उस भास्वर रूप को वायु ग्रस लेती है। ज्योति के नष्ट हो जाने पर यह परम बलवान् वायु बडी जोर से कम्पित किया करता है ॥२०।२१॥ वायु का गुण भी स्पर्श होता है उसे आकाश ग्रस लेता है। हे द्विज! जब वायु नष्ट हो जाता है तो यह नीरव (बिना ध्वनि वाला खामोश) आकाश रह जाता है ॥२२॥

आकाशस्याथ वै शब्दं भूतादिर्ग्रसते च खम् ।
अभिमानात्मकं खं च भूतादिं ग्रसते महान् ॥२३
भूमिर्याति लयं चाप्सु आपो ज्योतिषि तद् व्रजेत् ।
वायौ वायुश्च खे खं च अहंकारे लयं स च ॥२४
महत्तत्त्वे महान्तं च प्रकृतिर्ग्रसते द्विज ।
व्यक्ताऽव्यक्ता च प्रकृतिर्व्यक्तस्याऽव्यक्तके लयः ॥२५

पुमानेकाक्षर. शुद्ध. सोऽप्यश परमात्मन. ।
प्रकृति पुरुषश्चैतौ लीयेते परमात्मनि ॥२६
न सन्ति यत्र सर्वेशे नामजात्यादिकल्पना ।
सत्तामात्रात्मके ज्ञेये ज्ञानात्मन्यात्मन परे ॥२७

आकाश का गुण शब्द होता है उस आकाश को भूतादि ग्रस लेते हैं। अभिमानात्मक भूतादि और आकाश को महान् ग्रास कर जाता है। यह भूमि मे लय को प्राप्त हो जाती है और जल ज्योति मे—ज्योति वायु में—वायु आकाश मे—आकाश अहङ्कार म लय को प्राप्त होता है ॥२३।२४॥ महान् को महत्तत्व मे—प्रकृति ग्रस लेती है। वह प्रकृति व्यक्त और अव्यक्त होती है। व्यक्त प्रकृति का अव्यक्त में लय होता है। एकाक्षर शुद्ध पुमान् जोकि परमात्मा का एक अश है। यह पुरुष और प्रकृति दोनो परमात्मा मे लीन हो जाया करते हैं। जिस सर्वेश्वर भगवान् में नाम और जाति आदि की कल्पना नहीं हुआ करती है। आत्मा से पर ज्ञानात्म मे ये सत्तामात्रात्मक ही जानने के योग्य होते हैं ॥२५।२६।२७॥

१८०—आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्त्योर्निरूपणम्

आत्यन्तिक लय वक्ष्ये ज्ञानादात्यन्तिको लय ।
आध्यात्मिकादिसताप ज्ञात्वा स्वस्य विरागत ॥१
आध्यात्मिकस्तु सताप शारीरो मानसो द्विधा ।
शारीरो बहुभिर्भेदैस्तापोऽसौ श्रूयते द्विज ॥२
त्यक्त्वा जीवो भोगदेह गर्भमाप्नोति कर्मभि ।
आतिवाहिकसज्ञस्तु देहो भवति वै द्विज ॥३
केवल स मनुष्याणा मृत्युकाल उपस्थिते ।
याम्यै पुभिर्मनुष्याणा तच्छरीर द्विजोत्तम ॥४
नीयते याम्यमार्गेण मर्त्यानां प्राणिना मुने ।
तत्र स्वर्याति नरक स भ्रमेद्घटयन्त्रवत् ॥५

कर्मभूमिरिय ब्रह्मन्फलभूमिरसौ स्मृता ।
यमो योनि (नी) श्च नरकान्निरूपयति कर्मणा ॥६
पूरणीयाश्च तेनैव यम चैवानुपश्यताम् ।
वायुभूता प्राणिनश्च गर्भं ते प्राप्नुवन्ति हि ॥७
यमदूतैर्मनुष्यस्तु नीयते त च पश्यति ।
धर्मी च पूज्यते तत्र पापिष्ठस्ताड्यते गृहे ॥८

इस अध्याय मे आत्यन्तिक लय और गर्भोत्पत्ति का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—अब मैं आत्यन्तिक लय को बताऊँगा। ज्ञान से आत्यन्तिक लय होता है। आध्यात्मिक—आधिदैविक और आधिभौतिक सन्ताप का ज्ञान प्राप्त करके अपने आपका विराग होता है ॥१॥ आध्यात्मिक सन्ताप भी शारीरिक और मानसिक दो प्रकार का होता है। हे द्विज ! यह शारीरिक आध्यात्मिक सन्ताप बहुत से भेदों के द्वारा सुना जाया करता है ॥२॥ यह जीवात्मा इस भोग के देह को त्याग करके कर्मों के अनुसार फिर गर्भ को प्राप्त किया करता है। हे द्विज ! देह अतिवाहिक सज्ञा वाला होता है ॥३॥ वह केवल मनुष्यों के मृत्यु का समय उपस्थित हो जाने पर यमराज के पुरुषों के द्वारा वह शरीर याम्य मार्ग मे इन प्राणियों को ले जाया जाता है। इसके अनन्तर जैसे भी उनके भले बुरे कर्म हों उनके अनुसार वह स्वर्ग या नरक की भूमि के घट यन्त्र की भाँति जाता है ॥४।५॥ हे ब्रह्मन् ! यह कर्मों के करने की भूमि तथा यह फलो के भोग करने की भूमि कही गई है। यमराज कर्मानुसार योनियों को तथा नरकों का निरूपित किया करता है ॥६। उस प्राणी के द्वारा ही वे सब यमराज के शासन पूर्ण करने होते हैं। प्राणी वायु भूत होते हैं और वे गर्भ को प्राप्त किया करते हैं। ७ ॥ यमराज के दूतों के द्वारा यह मानव वहाँ ले जाया जाता है और मनुष्य उस यमराज के समक्ष मे उपस्थित होकर उसका दर्शन करता है। वहाँ यमराज के द्वारा जो धर्मात्मा जीव होता है उसका बड़ा सत्कार एव पूजन किया जाता है और जो पापिष्ठ होता है वह घर में ताड़ित किया जाता है ॥८॥

शुभाशुभ कर्म तस्य चित्रगुप्तो निरूपयेत् ।
वान्धवानामशौचे तु देहे खल्वातिवाहिके ॥६
तिष्ठन्नयति धर्मज्ञ दत्तपिण्डाशन ततः ।
त त्यक्त्वा प्रेतदेह तु प्राप्यान्य प्रेतलोकत ॥१०
वसेत्क्षुधातृषायुक्त आमश्राद्धान्नभुड्नर. ।
आतिवाहिकदेहात्तु प्रेतपिण्डैर्विना नरः ॥११
न हि मोक्षमवाप्नोति पिण्डास्तत्रैव सोऽश्नुते ।
कृते सपिण्डीकरणे नरः सवत्सरात्परम् ॥१२
प्रेतदेह समुत्सृज्य भोगदेह प्रपद्यते ।
भोगदेहावुभौ प्रोक्तावशुभा शुभसज्ञितौ ॥१३
भुक्त्वा तु भोगदेहेन कर्मबन्धान्निपात्यते ।
त देह परतस्तस्माद्भक्षयन्ति निशाचराः ॥१४
पापे तिष्ठति चेत्स्वर्गं तेन भुक्त तदा द्विज ।
तदा द्वितीय गृह्णाति भोगदेह तु पापिनाम् ॥१५
भुक्त्वा तु पाप वै पश्चाद्येन भुक्त त्रिविष्टपम् ।
शुचीना श्रीमता गेहे स्वर्गभ्रष्टोऽभिजायते ॥१६

उस समय मनुष्य के शुभ और अशुभ कर्मों का यमराज के यहाँ उपस्थित लेखा-जोखा रखने वाले चित्रगुप्त निरूपण किया करते हैं। बान्धवों के अशौच आतिवाहिक देह मे वह रहता हुआ, हे धर्मज्ञ ! दिये हुए पिण्डो का अशन करने वाला अर्थात् दत्त पिण्डो को खाने वाला प्राप्त करता है। फिर उसका त्याग करके प्रेत लोक से अन्य प्रेत देह प्राप्त करके निवास किया करता है। वहाँ भूख और प्यास से युक्त होता हुआ मनुष्य आमश्राद्ध के अन्न को खाने वाला होता है। आतिवाहिक देह से प्रेत-पिण्डो के बिना मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति नही किया करता है और वहाँ पर ही पिण्डों को खाता है। सपिण्डी करण करने पर नर एक वर्ष के आगे प्रेत देह का त्याग करके फिर भोग प्राप्त करने वाला देह प्राप्त किया करता है। भोग के देह शुभ और अशुभ

दोनो बताये गये हैं ॥६ से १३॥ भोग देह के द्वारा भोग करके कर्मों के बन्धन से निपातित किया जाता है। उससे आगे उस देह को निशाचर भक्षण किया करते हैं ॥१४॥ हे द्विज ! पाप के रहने पर यदि उसने स्वर्ग का भोग किया है तो तब फिर दूसरा पापियों का भोग देह ग्रहण किया करता है ॥१५॥ पाप का भोग करके जो पीछे स्वर्ग का भोग किया करता है वह स्वर्ग के भोग की अवधि समाप्त हो जाने पर पुन स्वर्ग से भ्रष्ट होकर पवित्रों और श्रीमानों के गृह में उत्पन्न हुआ करता है अर्थात् शुद्धोत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण या राजाओं के घर में जन्म लेता है ॥१६॥

पुण्ये तिष्ठति चेत्पाप तेन भुक्त तदा भवेत् ।
तस्मिन्स्सभक्षिते देहे शुभ गृह्णाति विग्रहम् ॥१७
कर्मण्यल्पावशेषे तु नरकादपि मुच्यते ।
मुक्तन्तु नरकाद्याति तिर्यग्योनि न सशय ॥१८
जीव प्रविष्टो गर्भ तु कललेऽप्यत्र तिष्ठति ।
घनीभूत द्वितीये तु तृतीयेऽवयवास्तत ॥१६
चतुर्थेऽस्थीनि त्वड्मास पञ्चमे रोमसभवः ।
षष्ठे चेतोऽथ जीवस्य दु ख विन्दति सप्तमे ॥२०
जरायुवेष्टिते देहे मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिस्तथा ।
मध्ये क्लीब तु वाम स्त्री दक्षिणे पुरुषस्थिति ॥२१
तिष्ठत्युदरभागे तु पृष्ठस्याभिमुखस्तथा ।
यस्या तिष्ठत्यसौ योनौ ता स वेत्ति न सशय ॥२२
सर्व च वेत्ति वृत्तान्तमारम्य नरजन्मन ।
अन्धकारे च महती पीडा विन्दति मानव. ॥२३
मातुराहारपीत तु सप्तमे मास्युपाश्नुते ।
अष्टमे नवमे मासि भृशमुद्विजत तथा ॥२४

पुण्य के रहते हुए यदि उसने पहिले पापों के फल का भोग किया है तो हे द्विज ! उस देह के सभक्षित हो जाने पर फिर वह कोई शुभ शरीर धारण

किया करता है ॥१७॥ कर्म के अल्प अवशेष रहने पर नरक से भी छुटकारा हो जाया करता है। मुक्त होकर वह नरक से तिर्यक् योनि (पशु-पक्षी की योनि) को प्राप्त होता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥१८॥ जीव जिस समय गर्भ में प्रविष्ट होता है तब वह यहाँ कलल के स्वरूप में रहा करता है। द्वितीय मास में वह कलल घनीभूत हो जाता है। तीसरे मास में उसके कुछ अवयवों की रचना होती है ॥१९॥ चौथे मास में उसकी हड्डियाँ-त्वचा और माँस का निर्माण होता है। पाँचवे मास में रोम उत्पन्न होते हैं। छठे में चित्त बन जाता है जिससे वह जीव के दुःख का अनुभव किया करता है। सप्तम मास में यह देह गर्भ में जरायु से वेष्टित हो जाता है और मूर्द्धा में बद्धाञ्जलि वाला हो जाता है। मध्य में क्लीव-वामभाग में स्त्री और दक्षिण भाग में पुरुष की स्थिति रहा करती है ॥२०॥२१॥ उदर भाग में पृष्ठ के अभिमुख रहा करता है। जिस योनि में यह रहता है उसका ज्ञान उसे निस्सन्देह हुआ करता है ॥२२॥ वह नर जन्म का आरम्भ से लेकर समस्त वृत्तान्त जानता है। गर्भ की दशा में यह जीवात्मा अन्धकार में बड़ी भारी पीड़ा का दुःख भोगा करता है ॥२३॥ माता का जो भी आहार होता है या वह जो कुछ भी पान किया करती है उसका उपभोग गर्भस्थ बालक सातवें मास में किया करता है। आठवें और नवम मास में यह अत्यन्त उद्विग्न रहा करता है ॥२४॥

व्यवायपीडामाप्नोति मातुर्व्यायामके तथा ।
व्याधिश्च व्याधितायाः स्यान्मुहूर्तं शतवर्षवत् ॥२५
सतप्यते कर्मभिस्तु कुरुतेऽथ मनोरथान् ।
गर्भाद्वि नर्गतो ब्रह्मन्मोक्षज्ञानं करिष्यति ॥२६
सूतिवातैरधोभूतो नि सरेद्योनियन्त्रत ।
पीड्यमानो मासमात्र करस्पर्शेण दुःखितः ॥२७
खराद्वाल्क्षुद्रस्रोतांसि देहे श्रोत्र विविक्तता ।
श्वासोच्छ्वासौ गतिर्वायोर्वक्त्रसस्पर्शन तथा ॥२८

अग्ने रूपं दर्शने स्यादूष्मा पङ्क्तिश्च पित्तकम् ।
मेधा वर्णं बल छाया तेज शौर्यं शारीरके ।।२६
जलात्स्वेदश्च रसन देहे वै सम्प्रजायते ।
क्लेदो वसा रसा रक्त शुक्रमूत्रकफादिकम् ।।३०
भूमेर्घ्राण केशनख रोम च शिरसस्तथा ।
मातृजानि मृदून्यत्र त्वङ्मासहृदयानि च ।।३१
नाभिर्मज्जा शकृन्मेद क्लेदान्यामाशयानि च ।
पितृजानि शिरा स्नायु शुक्र चैवाऽऽत्मजानि तु ।।३२

माता के परिश्रम युक्त कार्य मे यह व्यवाय पीडा को प्राप्त किया करता है । यदि किसी भी कारण से माता रोगिणी हो जाती है तो गर्भस्थ बालक को भी उस व्याधि का दु ख होता है । और उस समय एक मुहूर्त्त का समय सौ वर्ष के समान भ्रूण करता है ।।२५।। उस समय कर्मों के द्वारा उसे बडा सन्तार होता है और बहुत से मनोरथो को किया करता है । वह सोचा करता है कि इस गर्भ की गुफा स बाहिर निकल जाने पर मोक्ष ज्ञान को करेगा ।।२६।। प्रसव की वायु उसे नीचे की ओर ढकेला करती है और वह अधोभूत होकर योनि के यन्त्र से बाहिर निकला करता है । उस समय उसे योनियन्त्र से बाहिर निकल आने में भी अत्यन्त पीडा होती है और एक मास तक पीडित रहा करता है । हाथ के स्पर्श करने से भी उसे पीडा हुआ करती है क्योंकि उसके शरीर का प्रत्येक अङ्ग बडे भिचाव से पीडित हो जाया करता है ।।२७।। स दाब्द म उसक क्षुद्र श्रोत्र होते हैं, देह मे श्रोत्र—विविक्तता–श्वास–उच्छ्वास वायु की गति है । तथा वक्रमस्पर्शन होता है । दर्शन म अग्नि का रूप होता है । शरीर में ऊष्मा—पक्ति–पित्त—मघा—वर्ण—बल—छाया–तेज और शौर्य होता है ।।२८।२६।। जल स दह मे स्वेद–रसन उत्पन्न होता है । क्लेद–बसा–रक्त—शुक्र—मूत्र और कफ आदि होते हैं ।।३०।। भूमित्व से घ्राण—नख—केश–रोम जोकि शिर में होत हैं । इसमे मृदु त्वचा–माँस और हृदय मातृज हुआ करते हैं । नाभि—मज्जा—मल—मेद—क्लेद और आमाशय ये पितृज हुआ करते हैं । शिरा— स्नायु–शुक्र य सब आत्मज हुआ करते हैं ।।३१।३२।।

कामक्रोधौ भय हर्षो धर्माधर्मात्मता तथा ।
श्राकृति स्वरवर्णौ तु मेहनाद्य तथा च यत् ॥३३
तामसानि तथा ज्ञान प्रमादालस्यतृट्क्षुधाः ।
मोहमात्सर्यवैगुण्यशोकायासभवानि च ॥३४
कामक्रोधौ तथा शौर्यं यज्ञेप्सा बहुभाषिता ।
अहकार परावज्ञा राजसानि महामुने ॥३५
धर्मेप्सा मोक्षकामित्व परा भक्तिश्च केशवे ।
दाक्षिण्य व्यवसायित्व सात्त्विकानि विनिर्दिशेत् ॥३६
चपल क्रोधनो भीरुर्बहुभाषी कलिप्रिय ।
स्वप्ने गगनगश्चैव बहुवातो नरो भवेत् ॥३७
अकालपलित क्रोधी महाप्राज्ञो रणप्रिय ।
स्वप्ने च दीप्तिमत्प्रेक्षी बहुपित्तो नरो भवेत् ॥३८
स्थिरमित्र स्थिरोत्साह स्थिराङ्गो द्रविणान्वित ।
स्वप्ने जलसितालोकी बहुश्लेष्मा नरो भवेत् ॥३९

काम—क्रोध—भय—हर्ष—धर्मात्मा—अधर्मात्मा—आकृति स्वर—वर्ण और मेहनादि ये सब तामस होते हैं अर्थात् तमोगुण के कृत्य हैं। ज्ञान—प्रमाद—आलस्य—क्षुधा—तृषा—मोह—मात्सर्य—वैगुण्य—शोक—आयास—भव—काम—क्रोध—शौर्य—यज्ञ की इच्छा—बहुभाषिता—अहङ्कार—परावज्ञा ये राजस होते हैं। धर्म की इच्छा—मोक्ष की कामना रखना—केशव में पराभक्ति—दाक्षिण्य—व्यवसायी होना ये सब सात्त्विक होते हैं ॥३३।३४।३५।३६॥ चपल—क्रोध वाला डरपोक—बहुत बोलने वाला—कलह से प्यार करने वाला—स्वप्न में गमन करने वाला जो मानव होता है वह बहुत वात वाला अर्थात् वात प्रकृति वाला होता है ॥३७॥ असमय में अर्थात् छोटी उम्र में ही सफेद हो जाने वाला क्रोधी—महान् प्राज्ञ—युद्ध से प्यार करने वाला—स्वप्न में दीप्ति युक्त वस्तुओं को देखने वाला—ऐसा मनुष्य अधिक पित्त वाला हुआ करता है। स्थिर मित्रता वाला—स्थिर उत्साह वाला—स्थिर अङ्गों से युक्त—द्रविण से युक्त—स्वप्न में जल और

सित के देखने वाला मनुष्य बहुत श्लेष्मा वाला हुआ करता है अर्थात् कफ की प्रकृति वाला होता है ।।३८।३९।।

रसस्तु प्राणिना देहे जीवन रुधिर तथा ।
लेपन च तथा मास मेदस्नेहकर तु तत् । ४०
धारण त्वस्थिमज्जा स्यात्पूरण वीर्यवर्धनम् ।
शुक्रवीर्यकर ह्योज प्राणकृज्जीवसस्थिति ।।४१
ओज शुक्रात्सारतरमापीत हृदयोपगम् ।
पडङ्ग सक्थिनी वाहुमूर्धाजठरमीरितम् ।।४२
षट् त्वचा वाह्यतो यद्वदन्या रुधिरधारिका ।
किलासधारिणी चान्या चतुर्थी कुण्डधारिणी ।।४३
पञ्चमीमिन्द्रियस्थान षष्ठी प्राणधरा मता ।
कला सप्तमी मासधरा द्वितीया रक्तधारिणी ।।४४
यकृत्प्लीहाश्रया चान्या मेदोधराऽस्थिधारिणी ।
मज्जाश्लेष्मपुरीषाणा धरा पक्वाशयस्थिता ।।
षष्ठी पित्तधरा शुक्रधरा शुक्राशयाऽपरा ।।४५

प्राणियो के देह मे रस और रुधिर जीवन होता है । लेपन तथा माँस मेद और स्नेह करने वाले हैं ।।४०।। अस्थि और मज्जा धारण हैं । वीर्य-वर्धन पूरण हैं । शुक्र और वीर्य के उत्पन्न होने वाला ओज होता है । जीव की देह मे सस्थिति या रहना प्राणो की करने वाली होती हैं ।। ४१ ।। ओज शुक्र से भी अधिक सार वाली वस्तु है जो हृदयोपग आपीत होता है । दोनो सक्थि-बाहु—मूर्धा और जठर ये छै अग कहे गये हैं ।।४२।। छै प्रकार की त्वचाएँ होती हैं जो बाहिरी भाग मे होती है और इसी की भाँति दूसरी रुधिर के धारण करने वाली होती है । एक किलास धारणी होती है । चौथी कुण्ड धारिणी नाम वाली हुआ करती है । पाँचवी इन्द्रिय स्थान और छटी प्राण-धरा कही गई है । सातवी कला माम के धारण करने वाली तथा द्वितीया रक्त धारिणी है ।।४३ ४४।। एक अन्य यकृत् और प्लीहा (तिल्ली) के आश्रय

वाली है। एक मेद के धारण करने वाली और अन्य अस्थि धारिणी होती है। मज्जा–श्लेष्मा—पुरीष (मल) के धारण करने वाली पक्वाशय मे स्थित होती है। छटी पित्त के धारण करने वाली और अन्य एक शुक्राशय वाली शुक्र के धारण करने वाली होती है ॥४५॥

१८१ शरीरावयवाः

श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा घ्राणं धीः ख च भूतगम्।
शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः खादिषु तद्गुणाः ॥१
पायूपस्थौ करौ पादौ वाग्भवेत्कर्म ख तथा।
उत्सर्गानन्दकादानगतिवागादिकर्म तत् ॥२
पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यत्र पञ्च बुद्धीन्द्रियाणि च।
इन्द्रियार्थाश्च पञ्चैव महाभूता मनोधिपाः ॥३
आत्माऽव्यक्तश्चतुर्विंशतत्त्वानि पुरुष परः।
संयुक्तश्च वियुक्तश्च यथा मत्स्योदके उभे ॥४
अव्यक्तमाश्रितास्तीह रज सत्त्वतमांसि च।
आन्तर. पुरुषो जीव स पर ब्रह्म कारणम् ॥५
स याति परम स्थान यो वेत्ति पुरुष परम्।
सप्ताऽऽशयाः स्मृता देहे रुधिरस्यैक आशय ॥६
श्लेष्मणश्चाऽऽमपित्ताभ्या पक्वाशयस्तु पञ्चमः।
वायुमूत्राशयः सप्त स्त्रीणां गर्भाशयोऽष्टम. ॥७
पित्तात्पक्वाशयोऽग्नेः स्याद्योनिर्विकशिता द्युतौ।
पद्मवद्गर्भाशय. स्यात्तत्र धत्ते सरक्तकम् ॥८

इस अध्याय मे शरीर के अवयवो का निरूपण किया गया है। श्री अग्निदेव ने कहा—श्रोत्र–त्वक्–चक्षु–जिह्वा–घ्राण ये धी (बुद्धि) इन्द्रिया हैं। आकाश नामक भूतग होते हैं। शब्द–स्पर्श–रूप–रस–गन्ध ख आदि मे गुण हुआ करते हैं। अर्थात् पाँच भूतो के पृथक्-पृथक् गुण हैं ॥ १ ॥ पायु–उपस्थ–दोनों हाथ–दोनो पैर और वाणी ये कर्म–इन्द्रिया होती हैं। इनके मल का

त्याग-आनन्द—आदान और गति तथा बोलना ये कर्म हुआ करते हैं ॥ १ ॥ इन दश इन्द्रियों में पाँच तो कर्म करने वाली कर्मेन्द्रियाँ होती हैं और पाँच ज्ञान प्राप्त करने वाली बुद्धीन्द्रिया कही जाती हैं। इन इन्द्रियों के अर्थ मन के अधिप महाभूत पाँच ही हुआ करते हैं ॥ ३ ॥ आत्मा अव्यक्त चौबीस तत्व हैं; और पुरुष पर है। ये दोनों जल में जिस प्रकार से संयुक्त और वियुक्त होते हैं। रज सत्व और तमस् ये तीनों अव्यक्त के आश्रित होते हैं। आन्तर पुरुष जीवात्मा होता है। पर ब्रह्म कारण है ॥ ४ ॥ ५ ॥ जो पर पुरुष को जान लेता है वह परम स्थान को जाया करता है। इस शरीर में सात आशय होते हैं। उन सातों में एक रुधिर का भी आशय हुआ करता है ॥ ६ ॥ श्लेष्मा का-आम का और पित्त का आशय होता है। पाचवाँ आशय पक्वाशय हुआ करता है। वायु का और मूत्र का आशय होता है। इस तरह से पुरुष के सात आशय होते हैं और स्त्रियों के एक अधिक आठवाँ गर्भाशय हुआ करता है ॥ ७ ॥ पित्त से अग्नि का पक्वाशय होता है। ऋतु काल में रक्त के सहित धारण किया करता है ॥८॥
विकसित योनि होती है और पद्म की भाँति गर्भाशय हुआ करता है। वहाँ

शुक्र स्वसृजनश्चाङ्गं कुन्तलान्यत्र कालतः।
न्यस्त शुक्रमतो योनौ नैति गर्भाशय मुने ॥६
ऋतावपि च योनिश्चेद्वातपित्तकफावृता।
नवेत्तदा विकासित्व नैव तस्या प्रजायते ॥१०
वुक्कात्पुक्कसफ्लीहकृनकोष्ठाङ्गहृद्व्रणा ।
तण्डकश्च महाभाग निवद्धान्याशये मत ॥११
रसस्य पच्यमानस्य साराद् भवति देहिनाम्।
प्लीहा यकृच्च धर्मज्ञ रक्तफेनाच्च पुक्कस. ॥१२
रक्त पित्त च भवति तथा तण्डकसंज्ञकः।
मेदो रक्तप्रसाराच्च वुक्कायाः सम्भव स्मृत ॥१३
रक्तमांसप्रसाराच्च भवन्त्यन्त्राणि देहिनाम्।
सार्धत्रिव्यायाम (व्याम) सख्यानि तानि नृणां विनिर्दिशेत् ।१४

त्रिंशामानि तथा स्त्रीणां प्राहुर्वेदविदो जना. ।
रक्तवायुसमायोगात्कामे यस्योद्भवः स्मृतः ॥१५
कफप्रसाराद् भवति हृदयं पद्मसंनिभम् ।
अधोमुखं तच्छुषिरं यत्र जीवो व्यवस्थितः ॥१६

शुक्र और अपने शुक्र से कुन्तलान्यन काल में न्यास किया हुआ वीर्य जोकि योनि में छोड़ दिया जाता है वह गर्भाशय में नहीं प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ ऋतु काल में भी यदि योनि वात-पित्त और कफ से आवृत हुआ करती है तो उसमें विकास नहीं उत्पन्न होता है । हे महाभाग ! बुक्क से पुक्कस प्लीहा कृत कोष्ठान्त्र हृदयरण और तण्डक आशय में निबद्ध माने गये हैं ॥ १० ॥११॥ *हे धर्मज्ञ ! देहधारियों के पच्यमान रस के सार से प्लीहा और यकृत् होता* है और रक्त के फेन से पुक्कस होता है ॥ १२ ॥ रक्त और पित्त तण्डक संज्ञा वाला हुआ करता है । मेदरक्त के प्रसार से बुक्का से उत्पन्न होने वाला कहा गया है ॥ १३ ॥ देहधारियों के अन्त्र रक्त-भाग के प्रसार में हुआ करते हैं । वे मनुष्यों के साढ़े त्रिव्यायाम संख्या वाले होते हैं ॥ १४ ॥ वेदों के ज्ञाता पुरुष स्त्रियों के त्रिव्याम बताया करते हैं । रक्त वायु के समायोग से काम में जिसकी उत्पत्ति बताई गई हैं ॥ १५ ॥ कफ के प्रसार से पद्म के तुल्य हृदय होता है । वह सुषिर अधोमुख होता है जहाँ पर जीव व्यवस्थित रहा करता है ॥१६॥

चैतन्यानुगता भावा सर्वे तत्र व्यवस्थिता. ।
तस्य वामे यथा प्लीहा दक्षिणे च तथा यकृत् ॥१७
दक्षिणे च तथा क्लोम पद्मस्यैव प्रकीर्तितम् ।
श्रोतांसि यानि देहेऽस्मिन्कफरक्तवहानि च ॥१८
तेषां भूतानुमानाच्च भवतीन्द्रियसंभवः ।
नेत्रयोर्मण्डलं शुक्लं कफाद् भवति पैतृकम् ॥१९
कृष्णं च मण्डलं वातात्तथा भवति मातृकम् ।
पित्तात्त्वङ्मण्डलं ज्ञेयं मातापितृसमुद्भवम् ॥२०

मासासृक्कफजा जिह्वा मेदोसृक्कफमासजौ ।
वृषा (ष) णौ दश प्राणस्य ज्ञेयान्यायतनानि तु ॥२१
मूर्धा हृन्नाभिकण्ठाश्च जिह्वा शुक्र च शोणितम् ।
गुद वस्तिश्च गुल्फ च कण्डुरा. षाडशेरिताः ॥२२
द्वे करे द्वे च चरणे चनस्र पृष्ठतो गले ।
देहे पादादिशीर्षान्ते जालानि चैव षोडश ॥२३
मासस्नायुशिरास्थिम्यश्चत्वारश्च पृथक्पृथक् ।
मणिबन्धनगुल्फेषु निबद्धानि परस्परम् ॥२४

वहाँ पर समस्त भाव चैतन्य के अनुगत ही अवस्थित रहा करते हैं। उसके वाम भाग मे प्लाहा स्थित होती है और दक्षिण भाग मे यकृत् होता है ॥ १७ ॥ दाहिने भाग मे पद्मस्य क्लोम कहा गया है। इस देह मे रक्त और कफ के वहन करने वाले जो स्रोत होते है उनके भूतानुमान से इन्द्रियो की उत्पत्ति हुआ करती है। नेत्रो का जो शुक्ल मण्डल है वह कफ से होता है— यह मण्डल पैतृक होता है । १८ ॥ १९ ॥ कृष्ण मण्डल वात (वायु) से हुआ करता है और यह मातृक होता है। पित्त से त्वक् का मण्डल होता है क्योंकि माता-पिता दोनो से उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ मास-रक्त और कफ से जिह्वा होती है। मेद-कफ-रक्त और मास से वृषणो की उत्पत्ति होती है। अन्य दश आयतन प्राण के जानने चाहिएँ। मूर्धा-हृदय-नाभि-कण्ठ-जिह्वा-शुक्र (वीर्य)—रक्त-गुदा-वस्ति और गुल्फ ये सोलह कण्डुर कहे गये हैं ।२१। ॥ २२ ॥ दो हाथ-दो पैर-चार पृष्ठ से गले मे देह मे पाद आदि लेकर शीर्ष के अन्त तक षोडश जाल होते हैं ॥ २३ ॥ मास-स्नायु—शिरा-अस्थि से चार पृथक्-पृथक् मणि बन्धन गुल्फो मे परस्पर मे निबद्ध हुआ करते हैं ॥२४॥

षट् कूर्चानि स्मृतानीह हस्तयो पादयो. पृथक् ।
ग्रीवाया च तथा मेढे, कथितानि मनीषिभि. ॥२५
पृष्ठवशस्यास्थगताश्चतस्रो मासरज्जव. ।
तावन्त्य श्च तथा पेश्य स्तासा बन्धनकारिका. ।२६

सीरण्यश्च तथा सप्त पञ्च मूर्धानमाश्रिता. ।
एकैका मेढ्रजिह्वास्ता अस्थिषष्टिशतत्रयम् ॥२७
सूक्ष्मै सह चतु.षष्टिर्दशना विंशतिर्नखाः ।
पाणिपादशलाकाश्च तासां स्थानचतुष्टयम् ॥२८
षष्टयङ्गुलीनां द्वे पार्ष्ण्योर्गुल्फेषु च चतुष्टयम् ।
चत्वार्यरत्न्योरस्थीनि जङ्घयोस्तद्वदेव तु ॥२९
द्वे द्वे जानुकपोलोरुफलकांशसमुद्भवम् ।
अक्षस्थानांशकश्रोणिफलके चैवमादिशेत् ॥३०
भगास्त्नीक तथा पृष्ठे चत्वारिंशच्च पञ्च च ।
ग्रीवायां च तथाऽस्थीनि जत्रुकं च तथा हनु ॥३१
तन्मूल द्वे ललाटाक्षिगण्डनासामवस्थिताः ।
पर्शुकास्तालुकैः सार्धमर्बुदैश्च द्विसप्तति ॥३२

हाथो में और पैरों में छै कूर्च पृथक् यहाँ पर बताये गये हैं। ग्रीवा में तथा मेढ्र मे मनीषिगण ने बताये हैं ॥ २५ ॥ पृष्ठ का जो वंश होता है उसके उपगत मांस रज्जु चार होते हैं और उतनी ही वहां पर उनके बन्धन करने वाली पेशियां हुआ करती हैं। ॥ २६ ॥ सीरणी सात होती हैं। उनमे पाँच मूर्धा मे आश्रित हुआ करती हैं और एक–एक मेढ्र तथा जिह्वा मे होती हैं। इस प्रकार से तीन सौ आठ अस्थियाँ हुआ करती हैं ॥ २७ ॥ सूक्ष्मों के सहित चौसठ दसना–बीस नख और हाथ पैरो की शलाकाऐं हैं। उनके चार स्थान हैं ॥ २८ ॥ अंगुलियों के साठ–पार्ष्णियों के दो और गुल्फों मे चार हैं। अरत्नियो मे चार अस्थियां होती हैं और इसी भाँति जांघों मे भी होती हैं ॥ २९ ॥ दो–दो घुटना—कपोल—ऊरु और फलकांश मे उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार से अक्ष स्थानांशक श्रोणि फलक मे समझना चाहिए ॥ ३० ॥ भगास्त्रीक तथा पृष्ठ मे पैंतालीस हैं। उसी प्रकार से ग्रीवा मे अस्थियाँ हैं। जत्रुक तथा हनु (ठोडी) इनके मूल दो हैं। ललाट–आँख–गण्ड

और नाक में व्यवस्थित अर्बुद और तालुकों के साथ बहत्तर पर्युक हैं ॥ ३१ ॥ ॥ ३२ ॥

द्वे शङ्खके कपालानि चत्वार्येव शिरस्तथा ।
उर. सप्तदशास्थीनि सन्धीना द्वे शते दश ॥३३
अष्टषष्ठिस्तु शाखासु षष्टिश्चैकविवर्जिता ।
अन्तरा वै ध्यशीतिश्च स्नायोर्नवशतानि च ॥३४
त्रिंशाधिके द्वे शते तु अन्तराधौ तु सप्ततिः ।
ऊर्ध्वगा षट् शतान्येव शाखास्तु कथितानि तु ॥३५
पञ्च पेशीशतान्येव चत्वारिंशत्तथोर्ध्वगाः ।
चतु शत तु शाखासु अन्तराधौ च षष्ठिका ॥३६
स्त्रीणा चैकाधिका व स्याद्विंशतिश्चतुरुत्तरा ।
स्तनयोर्दश यानौ च त्रयोदश तथाऽऽशये ॥३७
गर्भस्य च चतस्र स्यु सिराणा च शरीरिणाम् ।
त्रिंशच्छतसहस्राणि तथाऽन्यानि नवैव तु ॥३८

दो शङ्ख कपाल तथा चार शिर और उर सत्रह अस्थियाँ रखते हैं। सन्धियो के दो सौ दस हैं। शाखाओ मे अडसठ हैं और एक कम साठ अन्तरा होती हैं। नौ सौ तिरासी स्नायु की हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ दो सौ तीस अन्तराधि में और सत्तर ऊर्ध्वगा होती हैं। इस प्रकार से छै सौ शाखाएँ हैं जो कि कही गई हैं ॥ ३५ ॥ पाच सौ पेशिया हैं। उनमें चालीस ऊर्ध्वगामी होती हैं। शाखाओ मे चार सौ और अन्तराधि मे साठ हैं। स्त्रियो के एक अधिक होती है। चौबीस स्तनो में—योनि में तेरह तथा गर्भ के आशय में चार होती हैं। इस तरह शरीर धारियो की शिराऐं सौ सहस्र तीस हैं तथा अन्य नौ ही होती हैं ॥३६॥३७॥३८॥

षट्पञ्चाशत्सहस्राणि रस देहे वहन्ति ता. ।
केदार इव कुल्याश्च क्लेदलेपादिक च यत् ॥३९

द्वासप्ततिस्तथा कोट्यो व्योम्नामिह महामुने ।
मज्जाया मेदसश्चैव वसायाश्च तथा द्विज ॥४०
मूत्रस्य चैव पित्तस्य श्लेष्मणः शकृतस्तथा ।
रक्तस्य सरमस्यात्र क्रमशोऽञ्जलयो मताः ॥४१
अर्धार्धम्यधिकाः सर्वाः पूर्वपूर्वाञ्जलेर्मताः ।
अर्धाञ्जलिश्च शुक्रस्य तदर्धं च तयोजमः ॥४२
रजसस्तु तथा स्त्रीणां चतस्रः कथिता बुधैः ।
शरीरं मलदोषादिपिण्डं ज्ञात्वाऽऽत्मनि त्यजेत् ॥४३

ये छप्पन सहस्र हैं जो देह में रस का वहन करती हैं। क्षेत्र में कुल्याओं की भांति क्लेद और लेपादिक होते हैं। हे महामुने! बहत्तर करोड़ रोम होते हैं। हे द्विज! मज्जा–मेद–वसा–मूत्र–पित्त–श्लेष्मा–मल–रक्त जो रस के सहित हैं इनके क्रम से अञ्जलियाँ बताई गई हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ पूर्व-पूर्व अञ्जलि से सब अर्ध-अर्ध अधिक मानी गई हैं। शुक्र की अर्धाञ्जलि है और उसकी आधी ओज की है। विद्वानों ने स्त्रियों के रज की चार कही हैं। यह शरीर मल दोष आदि का पिण्ड है—ऐसा अपनी आत्मा में जान कर इसे त्याग देवे ॥४२॥४३॥

१८२ नरकनिरूपण ।

उक्तानि यममार्गाणि वक्ष्येऽथ मरणे नृणाम् ।
ऊष्मा प्रकुपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ॥१
शरीरमुपरुध्याथ कृत्स्नान्दोषान्रुणद्धि वै ।
छिनत्ति प्राणस्थानानि पुनर्मर्माणि चैव हि ॥२
शैत्यात्प्रकुपितो वायुश्छिद्रमन्विष्यते ततः ।
द्वे नेत्रे द्वौ तथा कर्णौ द्वौ तु नासापुटौ तथा ॥३
ऊर्ध्वं तु सप्त च्छिद्राणि अष्टमं वदनं तथा ।
एतैः प्राणो विनिर्याति प्रायशः शुभकर्मणाम् ॥४

अध पायुरुपस्थ च अनेनाशुभकारिणाम् ।
मूर्धान योगिनो भित्वा जीवो यात्यथ चेच्छया ॥५
अन्तकाले तु स प्राप्ते प्राणेऽपानमुपस्थिते ।
तमसा स वृते ज्ञाने स वृतेषु च मर्मसु ॥६
स जीवो नाभ्यधिष्ठानाच्चाल्यते मातरिश्वना ।
बाध्यमानश्चाऽऽनयते अष्टाङ्गा. प्राणवृत्तिका ॥७
च्यवन्त जायमान वा प्रविशन्त च योनिषु ।
प्रपश्यन्ति च त सिद्धा देवा दिव्येन चक्षुषा ॥८

इस अध्याय मे नरको का निरूपण किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—यमराज के मार्ग बता दिये गये हैं। अब मनुष्यों के मरण के समय मे जो होता है उसे बतलाया जाता है मानव के शरीर मे तीव्र वायु से समीरित ऊष्मा प्रकुपित होकर शरीर को उपरुद्ध कर देता है और फिर इसमे समस्त दोषों को रुद्ध करता है। वह प्राण स्थानो को और फिर मर्मों को छिन्न कर देता है ॥ १ ॥ २ ॥ शैत्य से प्रकुपित होने वाला वायु फिर छिद्र का अन्वेषण किया करता है। दो नेत्र—दो कान—दो नासापुट इस प्रकार से ऊपर सात छिद्र होते हैं और आठवाँ मुख है। इन्ही छिद्रों के द्वारा प्राण वायु निकलकर जाया करता है किन्तु इन से उन्ही का प्राण जाता है जो बहुधा शुभ कर्मों के करने वाले होते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ नीचे की ओर पायु (गुदा) और उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय) ये दो छिद्र होते हैं। इनसे अशुभ कर्म करने वालो का प्राण निकला करता है। जो योगी होते हैं उनका प्राण इच्छापूर्वक भेदन करके जीव जाया करता है ॥ ५ ॥ जब अन्त काल उपस्थित होता है तो उस समय प्राण के अपान मे उपस्थित हो जाने पर ज्ञान के तम से संवृत होने पर तथा मर्मों के संवृत होने पर वह जीव वायु के द्वारा नाभि के अधिष्ठान से चलाया जाता है और बाध्यमान होता हुआ लाया जाता है। आठ अङ्ग प्राण वृत्ति वाले होते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ च्यवन करते हुए-जायमान होते हुए और योनियो मे प्रवेश करते हुए उसको देव और सिद्ध दिव्य चक्षु के द्वारा देखा करते हैं ॥८॥

गृह्णाति तत्क्षणाद्योगे शरीरं चाऽऽतिवाहिकम् ।
आकाशवायुतेजांसि विग्रहादूर्ध्वगामिनः ॥९
जलं मही च पञ्चत्वमापन्नः पुरुषः स्मृतः ।
आतिवाहिकदेहं तु यमदूता नयन्ति तम् ॥१०
याम्यं मार्गं महाघोरं षडशीतिसहस्रकम् ।
अन्नोदकं नीयमानो बान्धवैर्दत्तमश्नुते ॥११
यमं दृष्ट्वा यमोक्तं न चित्रगुप्तेन प्रेरितान् ।
प्राप्नोति नरकान्रौद्रान्धर्मी शुभपथैर्दिवम् ॥१२
भुज्यन्ते पापिभिर्वक्ष्ये नरकांस्तांश्च यातनाः ।
अष्टाविंशतिरेवाधः क्षितेर्नरककोटयः ॥१३
सप्तमस्य तलस्यान्ते घोरे तमसि संस्थिताः ।
घोराख्या प्रथमा कोटिः सुघोरा तदधःस्थिता ॥१४
अतिघोरा महाघोरा घोररूपा च पञ्चमी ।
षष्ठी तरलताराख्या सप्तमी च भयानका ॥१५
भयोत्कटा कालरात्री महाचण्डा च चण्डया ।
कोलाहला प्रचण्डाख्या पद्मा नरकनायिका ॥१६
पद्मावती भीषणा च भीमा चैव करालिका ।
विकराला महावज्रा त्रिकोणा पञ्चकोणिका ॥१७
सुदीर्घा वर्तुला सप्त भूमा चैव सुभूमिका ।
दीप्तमायाऽष्टाविंशतय कोटयः पापिदुःखदा ॥१८

योगी लोग तुरन्त ही अति वाहिक शरीर को योग से ग्रहण कर लिया करते हैं। आकाश—वायु और तेज विग्रह से ऊर्ध्वगामी होते हैं। जल और पृथ्वी ये पाँच तत्वों से पुरुष पञ्चत्व को प्राप्त होने वाला कहा गया है। उसके अतिवाहिक देह को यम दूत ले जाया करते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ वह यमराज के पास जाने वाला याम्य मार्ग छयासी हजार का महान् घोर होता है। बान्धवों के द्वारा अन्न और जल को लेता हुआ वहा वह खाया करता है ॥११॥

यम के दर्शन करने पर यमराज के द्वारा प्रेरित चित्र गुप्त से कहे गये बड़े भीषण नरकों को प्राप्त किया करता है जो धर्मात्मा होते हैं वे शुभ मार्गों के द्वारा स्वर्ग में जाया करते हैं ॥ १२ ॥ जो पापी होते हैं वे उन नरकों की यातनाओं को भोगा करते हैं। उन्हें हम बतलाते हैं—भूमि के अट्ठाईस ही नरक कोटियाँ हैं ॥ १३ ॥ सातवें तल के अन्त में घोर अन्धकार में वे संस्थित होते हैं। घोराख्या प्रथम कोटि होती है। उसके भी नीचे सुघोरा नामक दूसरी कोटि होती है ॥ १४ ॥ अतिघोरा—महाघोरा—घोररूपा इस तरह तीन-चार और पाँचवी कोटिया हैं। उनके भी नीचे तरल तारा नाम वाली सातवीं कोटि होती है। भयानका—भयोत्कटा—कारात्री—महाचण्डा—चण्डा—कोलाहला—प्रचण्डा—पद्मा—नरक नायिका—पद्मावती—भीषणा—भीमा—करालिका—विकराला—महाज्वरा—त्रिकोणा—पञ्चकोणिका—सुदीर्घा—वर्त्तुला—सप्तभूमा—सुभूमिका और दीप्तमाया ये अट्ठाईस कोटियाँ हैं जो कि पापी प्राणियों के लिये दुःख देने वाली होती हैं ॥१५॥१६॥१७॥१८॥

अष्टाविंशतिकोटीना पञ्च पञ्च च नायकाः ।
रौरवाद्याः शत चैक चत्वारिंशच्चतुष्टयम् ॥१९
तामिश्रमन्धतामिश्र महारौरवरौरवौ ।
असिपत्र (त्र) वन चैव लोहभार तथैव च ॥२०
नरक कालसूत्र च महानरकमेव च ।
सजीवन महावीचि तपन सप्रतापनम् ॥२१
सघात च सकाकाल कुड्मल पूतिमृत्तिकम् ।
लोहशङ्कुमृजीप च प्रधान शाल्मली नदीम् ॥२२
नरकान्विद्धि कोटीशनागान्वै घोरदर्शनान् ।
पात्यन्ते पापकर्मणि एकैकस्मिन्बहुष्वपि ॥२३
मार्जारोलूकगोमायुगृध्रादिवदनाश्च ते ।
तैलद्रोण्या नर क्षिप्त्वा ज्वालयन्ति हुताशनम् ॥२४

अम्बरीषेषु चै वान्यास्ताम्रपात्रेषु चापरान् ।
अयस्पात्रेषु चैवान्यान्बहुवह्निकरणेषु च ॥२५
शूलाग्रारोपितास्त्वान्ये छिद्यन्ते नरकेऽपरे ।
ताड्यन्ते कशाभिस्तु भोज्यन्ते चाप्ययोगुडान् ॥२६

इन अट्ठाईस कोटियों की पाँच-पाँच नायिका होती हैं । जोकि रौरव आदि हैं । इस तरह एक सौ चौआलीस होन हैं । तामिश्र—अन्ध तामिश्र—महारौरव—रौरव—असि पत्रवन—लोहभार—कालसूत्र नरक—महानरक—सजीवन—महा वीचि—तपन—सम्प्रतापन—सघात—सकाकाल—कुड्मल—पूतिमृत्तिक—लोहशकु मृजीष—प्रधान—शाल्मली नदी इस तरह घोर दर्शन वाल कोटीश नाग नरकों को जानना चाहिए । इस तरह पापी प्राणी एक एक में और बहुतों मे भी गिरा दिये जाते हैं ॥ १६ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ मार्जार—उल्लू—गोमायु और गिद्ध आदि के मुख वाले ये यमदूत तैल द्रोणी मे मनुष्य को डाल कर अग्नि जलाया करते हैं ॥ २४ ॥ कुछ पापियों को अम्बरीषों मे और कुछ को ताम्र पात्रों मे तथा लोहे के पात्रों में और अन्यों को बहुत से अग्नि के घरणों में डाल दिया करते हैं । कुछ पापी शूली की नौंक पर आरोपित करके नरक म छेदे जाया करते हैं । कोड़ा से पीट जाते हैं तथा अयोगुड खिलाये जाया करते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

यमदूतैर्नराः पाशून्विष्टारक्तकफादिकान् ।
तप्त मद्य पाययन्ति पाटयन्ति पाटयन्ति पुनर्नरान् ॥२७
यन्त्रेषु पीडयन्ति स्म भक्ष्यन्ते वायसादिभि ।
तैलेनाप्यग्नेन सिच्यन्ते छिद्यन्ते नैकधा शिर ॥२८
हा तातेति क्रन्दमाना स्वक विन्दन्ति कर्म ते ।
महापातकजान्घोरान्नरकान्प्राप्य गर्हितान् ॥२६
कर्मक्षयात्प्रजायन्ते महापातकिनस्त्विह ।
मृगश्वशूकरोष्ट्राणां ब्रह्महा योनिमृच्छति ॥३०

सपुक्कश (स) म्लेच्छाता मद्यप स्वर्णहार्यपि ।
कृमिकीटपतङ्गत्व गुरुगस्तृणगुल्मताम् ॥३१
ब्रह्महा क्षयरागी स्यात्सुराप. श्यावदन्तकः ।
स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः ॥३२

यम के दूतो के द्वारा मनुष्य जो पापी हैं उन्हे पांशु–विष्ठा–रक्त और कफ आदि खिलाते हैं। यम मद्य पिलाते हैं और नरो को पाट दिया करते हैं ॥२७॥ यन्त्रो मे उन्हे डालकर पीडा दिये जाते हैं तथा वायस आदि के द्वारा भक्षित कराये जाते हैं। यम तैल ऊपर डाला है तथा बहुत ही जगह चिर काटा जाता है अर्थात् शस्त्रो के प्रहार किये जाते हैं। उस समय नरक की घोर यातनाऐ भोगते हुए पापी प्राणी हा–हाकार करते हुए चीखते तथा रोते हैं और अपने किये हुए पाप कर्मों या बुराई करते हैं कि हमने ऐसा क्यो किया था। इस तरह से महापातकों प्राप्त उन घोर नरको को भोग कर वे महा-पातकी कर्मों के क्षय होने पर यहाँ ससार म उत्पन्न होते हैं। ये ब्रह्म हत्यारे पशु–कुत्ता–सूकर और उष्ट्र आदि की योनियाँ प्राप्त किया करते हैं ॥ २८ ॥ ॥ २६ ॥ ३० ॥ मद्यपान करने वाला तथा स्वर्ण का हरण करने वाले गधा-पुक्कस और मलेच्छा की योनियाँ प्राप्त किया करते हैं। तथा गुरुशय्या का गमन करने वाला कृमि–कीट और पतङ्ग तथा तृण और गुल्म की योनि प्राप्त करते हैं। जो ब्राह्मण का हनन करने वाला है वह क्षय रोग का रोगी होता है। सुरा पान करने वाला श्याव दन्तक हो जाता है। स्वर्ण का हरण करने वाला कुनखी होता है। जो गुरु गमन करने वाला है वह दुष्ट चर्म वाला होता है अर्थात् कुष्ठी होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

यो येन सम्पृशत्येवा स तल्लिङ्गोऽभिजायते ।
अन्नहर्ता मायावी स्यान्मूको वागपहारकः ॥३३
धान्य हृत्वाऽतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः ।
तैलहृत्तैलपायी स्यात्पूतिवक्त्रस्तु सूचकः ।३४

परस्य योषित हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च ।
अरण्ये निर्जने देशे जायते ब्रह्मराक्षस ॥३५
रत्नहारी हीनजातिर्गन्धाश्छुच्छुन्दरी शुभान् ।
पत्र शाक शिखी हृत्वा मुखराधान्यहारकः ॥३६
अजः पशु पय काका यानमुष्ट्र फल कपिः ।
मधु दश. फल गृध्रो गृहकाक उपस्करम् ॥३७
श्वित्री वस्त्र सारस च भिल्ली लवणहारक. ।
उक्त आध्यात्मिकस्ताप. शस्त्राद्यं राधिभौतक ॥३८
ग्रहाग्न्यादभि.पीडाद्यं र (रा) धिदैविक ईरित. ।
त्रिधा ताप हि ससार ज्ञानयोगाद्विनाशयेत् ॥३६
कृच्छ्रे श्र तैश्च दानाद्यं विष्णुपूजादिभिर्नर. ॥४०

जो जिसमे सस्पर्श करता है इनम वह उसी लिङ्गवाला उत्पन्न हुआ करता है। अन्न का हरण करने वाला मायावी तथा वाणी का अपहरण करने वाला गूगा होता है। धान्य का हरणकर्त्ता अतिरिक्त अङ्ग वाला हो जाता है पिशुन पूति नासिका वाला होता है। तैल का हर्त्ता तैलपायी होता है। सूचक पूति मुख वाला हुआ करता है। दूसरे की स्त्री का हरण करने वाला तथा ब्राह्मण के धन का अपहर्त्ता निर्जन अरण्य देश मे ब्रह्मराक्षस होकर जन्म लेता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ रत्नो का हरण करने वाला हीन जाति मे जन्म लेता है। शुभ गन्धो का चुराने वाला छछू दर होता है। शाक पत्र का हर्त्ता शिखी होता है धान्यहारक मुखर होता है ॥ ३६ ॥ पशु का हर्त्ता बकरा–दूध को चुराने वाला काक–यान का हर्त्ता उष्ट्र–फल का चोर बन्दर होता है। मधु को चुराने वाला दश–फल का चोर गिद्ध और उपस्कर का चोर गृह काक होता है ॥ ३२ ॥ वस्त्र का चोर श्वित्री (सफेद कोढी) होता है। नमकहारक भिल्ली होता है। इस प्रकार से यह आध्यात्मिक ताप बता दिया गया है। शास्त्र आदि के द्वारा जो पीडा होती है वह आधिभौतिक ताप होता है। ग्रह-अग्नि और बीमारी आदि के द्वारा जो दु ख होता है वह आधिदैविक ताप कहा गया है। इस तरह इन तीन तापो से युक्त इस ससार को ज्ञान के योग

से विनष्ट करना चाहिए। इसके अतिरिक्त मनुष्य इन तापों की पीडा को कृच्छ्र व्रतों से—दान आदि से और विष्णु की पूजादि से भी विनष्ट कर सकता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

१८३ यमनियमाः

ससारतापमुक्त्यर्थं वक्ष्याम्यष्टाङ्गयोगकम् ।
ब्रह्मप्रकाशक ज्ञान योगस्तत्रैकचित्तता ॥१
चित्तवृत्तिनिरोधश्च जीवब्रह्मात्मनो पर. ।
अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ॥२
यमा पञ्च स्मृता विप्र नियमा भुक्तिमुक्तिदा ।
शौच सतापतपसी स्वाध्यायेश्वरपूजने ॥३
भूतापीडा ह्यहिंसा स्यादहिंसा धर्म उत्तम- ।
यथा गजपदेऽन्यानि पदानि पथगामिनाम् ॥४
एव सर्वमहिंसाया धर्मार्थमभिधीयते ।
उद्वेगजनन हिंसा सतापकरण तथा ॥५
रुक्कृति शोणितकृति पैशुन्यकरण तथा ।
हितायातिनिषेधश्च मर्मोद्घाटनमेव च ॥६
सुखापह्नुति सरोधो वधो दशविधा च सा ।
यद्भूतहितमत्यन्त वच सत्यस्य लक्षणम् ॥७
सत्य ब्रूयात्प्रिय ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।
प्रिय च नानृत ब्रूयादेष. धर्म. सनातन. ॥८

इस अध्याय मे यम और नियम बताये जाते हैं। श्री अग्निदेव ने कहा—ससार के तापो की मुक्ति के लिए अब मैं अष्टाग योग को बतलाता हू। ब्रह्म को प्रकाश करने वाला ज्ञान होता है। उस ब्रह्म मे चित्त की एकाग्रता के होने को ही योग कहा जाता है ॥ १ ॥ और चित्त की वृत्ति का निरोध जीव और ब्रह्म की आत्मा का परम योग हुआ करता है। अहिंसा—सत्य—अस्तेय—ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाच नियम होते हैं जो भुक्ति और मुक्ति के प्रदान

करने वाले हुआ करते हैं। शौच—सन्तोष—तप—स्वाध्याय–ईश्वर का पूजन ये भी पाँच नियम हैं। प्राणिमात्र को कोई भी पीड़ा का नहीं देना अहिंसा कही जाती है। यह अहिंसा सर्वोत्तम धर्म होता है जिस प्रकार से हाथी के पैर के खोज में समस्त मार्ग गामियों के खोज आजाया करते हैं उसी प्रकार सभी धर्मों के मर्म अहिंसा में आजाया करते हैं। किसी के हृदय को उद्वेग उत्पन्न कर देना तथा सन्ताप कर देना—रक्रुनि—शोणितस्रुति (रक्त का निकाल देना) पैशुन्य (चुगली या बुराई करना)—हित का अत्यन्त निषेध—मर्मों का उद्घाटन—सुख की अपन्हुति—संरोध और वध यह दश प्रकार की हिंसा होती है। जो भूतों का अत्यन्त हितकारी वचन होता है वही सत्य का लक्षण होता है ॥२।३।४।५।६।७॥ सर्वदा सत्य बोलना चाहिए और प्रिय बोलना चाहिए ऐसा सत्य कभी नहीं बोले जो अप्रिय हो और ऐसा प्रिय भी नहीं बोलना चाहिए जो मिथ्या हो—यही सर्वदा से चले आने वाला धर्म होता है ॥८॥

मैथुनस्य परित्यागो ब्रह्मचर्यं तदष्टधा ।
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥९
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥१०
ब्रह्मचर्यं क्रियामूलमन्यथा विफला क्रिया ।
वशिष्ठश्चन्द्रमा शुक्रो देवाचार्यः पितामहः ॥११
तपोवृद्धा वयोवृद्धास्तेऽपि स्त्रीभिर्विमोहिताः ।
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेयास्त्रिविधा सुरा ॥१२
चतुर्थी स्त्री सुरा ज्ञेया ययेदं मोहितं जगत् ।
माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरां पीत्वा तु माद्यति ॥१३
यस्माद्दृष्टमदा नारी तस्मात्तां नावलोकयेत् ।
यद्वा तद्वा परद्रव्यमपहृत्य बलान्नरः ॥१४
अवश्यं याति तिर्यक्त्वं जग्ध्वा चैवाहुतं हविः ।
कौपीनाच्छादनं वासः कन्था शीतनिवारिणीम् ॥१५

पादुके चापि गृह्णीयात्कुर्यान्नान्यस्य सग्रहम् ।
देहस्थितिनिमित्तस्य वस्त्रादे स्यात्परिग्रह ॥१६

मैथुन का परित्याग कर देना ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है । वह मैथुन जो आठ प्रकार का होता है । स्त्रियो का स्मरण करना उनका कीर्त्तन अर्थात् चर्चा करना—स्त्रियो के साथ क्रीडा करना—उनको घूर कर देखना—स्त्रियो के साथ गुप्त वार्त्तालाप करना—सकल्प–अध्यवसाय तथा क्रिया का आनन्द लेना यह आठ तरह के अङ्गो वाला मैथुन मनीषी लोग कहा करते हैं ॥६।१०॥ ब्रह्मचर्य क्रिया का मूल होता है । ब्रह्मचर्य के बिना समस्त क्रियाऐ विफल होती हैं । वसिष्ठ मुनि–चन्द्रदेव–शुक्राचार्य–देवो के गुरु बृहस्पति—पितामह ब्रह्मा और परमतपो वृद्ध तथा वयोवृद्ध लोग भी स्त्रियो के द्वारा विमोहित होजाया करते हैं । गौडी—पैष्टी–माध्वी ये तीन प्रकार की सुरा होती है और चौथी सुरा स्त्री होती है जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् मोहित हो जाया करता है । प्रमदा को देख कर भी यह युक्त उन्मुक्त सा हो जाता है और सुरा तो पी लेने पर उन्मत्त कर दिया करती है ॥११।१२।१३॥ जिस नारी के देखने मात्र से ही मद हो जाता है उस नारी को कभी नही देखना चाहिए । यद्वा–तद्वा मनुष्य पराये द्रव्य को बल पूर्वक अपहरण करके अवश्य ही तिर्यक् योनि को प्राप्त किया करता है और आहुत हवि को खाकर भी तिर्यक् की गति प्राप्त होती है । अतएव कौपीन का आच्छादन वस्त्र और शीत का निवारण करने वाली कन्था तथा पादुकाएँ यह ही रखना चाहिए । इनके अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु का सग्रह नहीं करना चाहिए । देह की स्थिति रखने के लिए वस्त्र आदि का परिग्रह आवश्यक होता है । अत उतना ही वस्त्र अपने पास रक्खे ॥१४से१६॥

शरीर धर्मसयुक्त रक्षणीय प्रयत्नत ।
शौच तु द्विविध प्रोक्त बाह्यम (मा) भ्यन्तर तथा ॥१७
मृज्जलाभ्या स्मृत बाह्य भावशुद्धिरथाऽन्तरम् ।
उभयेन शुचिर्यस्तु स शुचिर्नेतर शुचि ॥१८

यथाकथचित्प्राप्त्या च सन्तोषस्तुष्टिरुच्यते ।
मनसश्चेन्द्रियाणां च ऐकाग्र्य तप उच्यते ।।१६
तज्जय· सर्वधर्मेभ्य· स धर्मः पर उच्यते ।
वाचिक मन्त्रजप्यादि मानस रागवर्जनम् ।।२०
शारीर देवपूजादि सर्वद तु त्रिधा तप. ।
प्रणवाद्यास्ततो वेदा. प्रणवे पर्यवस्थिता. ।।२१
वाङ्मयः प्रणवः सर्वं तस्मात्प्रणवमभ्यसेत् ।
अकारश्च तथोकारो मकारश्चार्धमात्रया ।।२२
तिस्रो मात्रास्त्रयो वेदा लोका भूरादयो गुणाः ।
जाग्रत्स्वप्न. सुषुप्तिश्च ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा. ।।२३
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च स्कन्ददेवीमहेश्वरा. ।
प्रद्युम्नः श्रीर्वासुदेवः सर्वमोकारक. क्रमात् । २४

धर्म से सयुक्त शरीर की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए। शौच दो प्रकार का होता है। एक बाह्य अर्थात् बाहिरी और दूसरा शौच आभ्यन्तर होता है ।।१७।। बाहिरी शौच मिट्टी और जल से हुआ करता है और आन्तरिक शौच भाव की शुद्धि करने से होता है। दोनों बाहिरी और भीतरी शौच के द्वारा जो शुचि होता है वह ही शुचि है अन्य कोई शुचि अर्थात् शुद्ध नहीं हुआ करता है ।।१८।। यथा कथञ्चित् जो कुछ भी प्राप्त हो उसी में सन्तोष रखना तुष्टि कही जाती है। मन की और इन्द्रियों की जो एकाग्रता है उसी को तप कहा जाता है ।।१६।। उसका जप समस्त धर्मों में परम धर्म कहा जाता है। वह तप भी तीन प्रकार का होता है—वाचिक—मानस और शारीरिक, मन्त्रादि का जप आदि वाचिक तप होता है। राग-द्वेष आदि का त्याग कर देना मानसिक तप है और देवों की पूजा आदि सब देने वाला शारीरिक तप होता है। इसके अनन्तर प्रणव जिनके आदि में है वे वेद हैं। प्रणव में पर्यवस्थित होते हैं ।।२०।२१।। प्रणव वाङ्मय होता है अत. सब प्रणव का अभ्यास करना चाहिए। प्रणव में अकार—उकार और मकार अर्ध मात्रा के साथ है। तीन

मात्रा तीन वेद है, भू आदि लोक हैं, गुण हैं अर्थात् तीन लोक और तीन सत्व आदि गुण हैं। जाग्रत्–स्वप्न और सुषुप्ति तीन अवस्था हैं, ब्रह्म-विष्णु और महेश्वर तीन देव हैं ॥२२।२३॥ ब्रह्मा–विष्णु–रुद्र–स्कन्द–देवी और महेश्वर–प्रद्युम्न—श्री—वासुदेव यह नव क्रम से ओङ्कार ही हैं ॥२४॥

अमात्रो नष्टमात्रश्च द्वैतस्यापगम शिव ।
ओंकारो विदितो येन स मुनिर्नेतरो मुनि ॥२५
चतुर्थी मात्रा गान्धारी प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ।
तत्तुरीय पर ब्रह्म ज्योतिर्दीपो घटे यथा ॥२६
तथा हृत्पद्मनिलय ध्यायेन्नित्य जपेन्नर ।
प्रणवो धनु शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥२७
अप्रमत्तेन वेद्धव्य शरवत्तन्मयो भवेत् ।
एतदेकाक्षर ब्रह्म एतदेकाक्षर परम् ॥२८
एतदेकाक्षर ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ।
छन्दोऽस्य देवी गायत्री अन्तर्यामी ऋषि. स्मृतः ॥२९

अमात्र–नष्टमात्र और द्वैत का अपगम शिव है। ओङ्कार जिनके द्वारा विदित होता है वही मुनि है इतर मुनि नहीं हुआ करता है॥ २५ ॥ चौथी गान्धारी मात्रा है वह प्रयुक्त की हुई मूर्धा में लक्षित होती है। वह चौथा पर-ब्रह्म ज्योति है जिस प्रकार से घट में दीप होता है ॥२६॥ इसी प्रकार से हृदय रूपी कमल में अथवा हृदय में स्थित कमल में जिसका स्थान है उसका ध्यान करना चाहिए और नित्य ही मनुष्य को जपना चाहिए। प्रणव धनुष है, आत्मा शर है और उस शर का लक्ष्य ब्रह्म कहा जाता है ॥२७॥ मनुष्य को अप्रमत्त अर्थात् पूर्ण सावधान होकर शर की भाँति तन्मय होकर वेध करना चाहिए। यह एक ही अक्षर है और यही एक अक्षर परम वस्तु है ॥२८॥ इस एक ही अक्षर का ज्ञान प्राप्त करके जो जिस वस्तु की इच्छा करता है वही उसको मिला करती है। इसका (प्रणव) छन्द गायत्री देवी और अन्तर्यामी ऋषि होता है ॥२९॥

देवता परमात्माऽस्य नियोगो भुक्तिमुक्तये ।
भूरग्न्यात्मने हृदय भुवः प्रा (प्र) जापत्यात्मने ॥३०
शिर. स्व. सूर्यात्मने च शिखा कवचमुच्यते ।
ओ भूर्भुवः स्व कवचं सत्यात्मने ततोऽस्त्रकम् ॥३१
विन्यस्य पूजयेद्विष्णुं जपेद्वं भुक्तिमुक्तये ।
जुहुयाद्व तिलाज्यादि सर्वं सपद्यते नरे ॥३२
यस्तु द्वादशसाहस्र जपमन्वहमाचरेत् ।
तस्य द्वादशभिर्मासैः पर ब्रह्म प्रकाशते ॥३३
अणिमादि कोटिजप्याल्लक्षात्सारस्वतादिकम् ।
वैदिकस्तान्त्रिको मिश्रो विष्णोर्नै त्रिविधो मरव. ॥३४
त्रयाणामीप्सितेनैकविधिना हरिमर्चयेत् ।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् ॥३५
भ या गतिमवाप्नोति न ता क्रतुशतैरपि ।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन ॥३६

परमात्मा इसका देवता है । भुक्ति और मुक्ति के लिए इसका नियोग होता है । भूरग्न्यात्मा के लिये हृदय—प्राजापत्यात्मा के लिए भुव शिर–स्वः सूर्यात्मा के लिए शिरका, अब कवच कहा जाता है । ओ भूर्भुव स्वः कवच सत्यात्मा के लिये है । इसके अनन्तर अस्त्र विन्यास करके विष्णु का पूजन करना चाहिए और भोग तथा मोक्ष के लिए जप करे तथा हवन भी करना चाहिए जोकि तिल तथा घृत आदि के द्वारा किया जाता है । इसके करने से मनुष्य सभी कुछ प्राप्त कर लिया करता है ॥३०।३१।३२॥ जो मनुष्य प्रतिदिन बारह सहस्र जप करता है उसको बारह मासो में परब्रह्म का प्रकाश हो जाया करता है ॥३३॥ एक करोड जप से अणिमा–महिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ होती हैं और लक्ष जाप से सारस्वत आदि की प्राप्ति होती है । मख भी वैदिक—तान्त्रिक और दोनो का मिश्रित तीन तरह का होता है । तीनों तरह का विष्णु का मख होता है ।३४। इन तीनो प्रकार के मखो में से किसी भी एक के द्वारा विधि

कि साथ हरि का अर्चन करे। भूमि में दण्डे की भाँति लेटकर प्रणाम करे और नमस्कार पूर्वक जो हरि की अर्चना किया करता है। वह जिस गति को प्राप्त होता है उसे तो क्रतुओं के द्वारा भी प्राप्त नहीं किया करता है। जिसकी देवता में परा भक्ति होती और जैसी देव में हुआ करती है वैसी गुरु में भी होती है। ऐसे ही महान् आत्मा वाले के ये अर्थ प्रकाशित होते हैं ॥३२।३६॥

१८४ आसनप्राणायामप्रत्याहाराः

आसनं कमलाद्युक्तं तद् बद्ध्वा चिन्तयेत्परम् ।
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ॥१
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ॥२
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ॥३
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ।
पार्ष्णिभ्यां वृषणौ रक्षंस्तथा प्रजननं पुनः ॥४
ऊरुभ्यामुपरि स्थाप्य बाहू तिर्यक्प्रयत्नतः ।
दक्षिणं करपृष्ठं च न्यसेद्वामतलोपरि ॥५
उन्नम्य शनकैर्वक्त्रं मुखं विष्टभ्य चाग्रतः ।
प्राणः स्वदेहजो वायुस्तस्याऽऽयामो निरोधनम् ॥६
नासिकापुटमङ्गुल्याऽऽपीड्यैकेन च परेण च ।
औदरं रेचयेद्वायुं रेचनाद्रेचकः स्मृतः ॥७
बाह्येन वायुना देहं दृतिवत्पूरयेद्यथा ।
तथा पूर्णश्च संतिष्ठेत्पूरणात्पूरकः स्मृतः ॥८

इस अध्याय में आसन-प्राणायाम और प्रत्याहार का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—कमल आदि आसन कहे गये हैं अर्थात् पद्मासन। उस आसन को बाँधकर ही पर का चिन्तन करना चाहिए। किसी पवित्र स्थान में अपना आसन स्थिर रूप से प्रतिष्ठापित करे ॥१॥ आसन न तो अधिक ऊँचाई

पर हो और न अधिक निचाई पर होना चाहिए। आसन वस्त्र—कुशा और मृग चर्म आदि का उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माना गया है। उस आसन पर बैठ कर सर्व प्रथम अपने मन को एकाग्र करना चाहिए। इन्द्रियों और चित्त की क्रिया को यत कर लेना चाहिए अर्थात् चित्त की चलायमानता को वायू में कर लेवे। ॥२॥ आसन पर बैठ कर अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए। अपना शरीर—शिर और गरदन समान अवस्था में अचल एवं स्थिर होना चाहिए ॥३॥ अपनी नासिका के अग्र भाग को भली भाँति देखकर इधर-उधर दिशाओं को नहीं देखना चाहिए। पार्ष्णियों से दोनों वृषणों की रक्षा करते हुए फिर जननेन्द्रिय की रक्षा करे ॥४॥ दोनों बाहुओं को अपने ऊरुओं के ऊपर तिर्यक् स्थापित करके वाम तल के ऊपर दक्षिण करके पृष्ठ को रखना चाहिए ॥५॥ धीरे से मुख को उन्नमित करके आगे से मुख को विष्टम्भित करे। अपनी काया में उत्पन्न होने वाला वायु प्राण है उसका आयाम अर्थात् निरोधक करने को प्राणायाम कहा जाता है ॥६॥ नासिका के पुट को अँगुलि से आपीडित करके दूसरे से उदर की वायु का रेचन करना चाहिए। इसीसे इसका नाम रेचक कहा गया है ॥७॥ बाहिरी वायु के द्वारा देह को दृति की भाँति पूरित करे और जब वह पूरित हो जावे तो उसे कुछ समय तक वहीं पर रोक देवे। पूरण करने से इसका नाम पूरक कहा जाता है ॥८॥

न मुञ्चति न गृह्णाति वायुमन्तर्वहिः स्थितम्।
सपूर्णकुम्भवत्तिष्ठेदचल स तु कुम्भक ॥९
कन्यक सकृदुद्घात स वै द्वादशमात्रिक।
मध्यमश्च वि (द्वि) रुद्घातश्चतुर्विंशतिमात्रिक ॥१०
उत्तमश्च त्रिरुद्घात षट्त्रिंशत्तालमात्रिक।
स्वेदकम्पाभिघातानां जननश्चोत्तमोत्तम ॥११
अजिता नाऽऽरुहेद् भूमिं हिक्काश्वासादयस्तथा।
जिते प्राणे स्वल्पदोषविण्मूत्रादि प्रजायते ॥१२

आरोग्य शीघ्रगामित्वमुत्साह् स्वरसौष्ठवम् ।
बलवर्णप्रसादश्च सर्वदापक्षय फलम् ॥१३
जपध्यान बिनाऽगर्भ सगर्भस्तत्समन्वित ।
इन्द्रियाणा जयार्थाय सगर्भं धारयेत्परम् ॥१४
ज्ञानवैराग्ययुक्ताभ्या प्राणायामवशेन च ।
इन्द्रियाश्च (यागि) विनिर्जित्य सर्वमेव जित भवेत् ॥१५
इन्द्रियाण्येव तत्सर्व यत्स्वर्गनरकावुभौ ।
निगृहीतविसृष्टानि स्वर्गाय नरकाय च ॥१६

न तो त्यागता है और ग्रहण ही किया करता है ऐसा अन्तर्वहि स्थित वायु जिस समय रहता है और वह सब पूर्ण कुम्भ की भाँति अचल हो जाता है। इसलिए इसका नाम कुम्भक कहा गया है ॥६॥ एक बार उद्घात द्वादश मात्रिक कन्यक होता है। दो बार उद्घात चौबीस मात्रा वाला मध्यम होता है। तीन बार उद्घात छत्तीस तान मात्रा वाला उत्तम होता है। स्वद-कम्प और उद्घातो का जनन करने वाला उत्तमोत्तम हुआ करता है ॥ १०।११ ॥ अजित भूमि का आरोहण नहीं करना चाहिए प्राण के जित होने पर हिक्का श्वास आदि और स्वल्प दोष विण्मूत्र आदि होते हैं ॥ १२ ॥ प्राणायाम का फल आरोग्य-शीघ्रगामी होना-उत्साह-स्वर का सौष्ठव-बल-वर्ण-प्रसाद और समस्त दोषों का क्षय होना है ॥१३॥ जप ध्यान के बिना अगर्भ-सगर्भ और तत्समन्वित होता है। इन्द्रियो के जयार्थ पर सगर्भ को धारण करना चाहिए ॥१४॥ ज्ञान और वैराग्य से और प्राणायाम वश से इन्द्रियों को जीत कर ऐसा हो जाता है कि उसके लिए सब कुछ जीते हुए हो जाया करते हैं ॥१५॥ यह सब कुछ इन्द्रियाँ ही हैं। ये ही स्वर्ग और नरक दोनो हैं। जिसकी इन्द्रियाँ निगृहीत होती हैं वह स्वर्ग के लिये है और जिसकी इन्द्रियाँ विसृष्ट होती हैं वही नरक के लिए हुआ करता है ॥१६॥

शरीर रथमित्याहुरिन्द्रियाण्यस्य वाजिन ।
मनश्च सारथि प्रोक्त प्राणायाम कशा स्मृत ॥१७

ज्ञानवैराग्यरश्मिभ्या मायया विधृत मन ।
शनैर्निश्चलतामेति प्राणायामैकसहितम् ॥१८
जलबिंदु कुशाग्रेण मासे मासे पिबेत्तु य ।
सवत्सरशत साग्र प्राणायामश्च तत्सम. ॥१९
इन्द्रियाणि प्रसक्तानि प्रविश्य विषयोदधौ ।
आहृत्य यो निगृह्णाति प्रत्याहार स उच्यते ॥२०
उद्धरेदात्मनाऽऽत्मान मज्जमान यथाऽम्भसि ।
भोगनद्यतिवेगेन ज्ञानवृक्ष समाश्रयेत् ॥२१

इस मानव के शरीर को रथ कहा जाता है। इस रथ का वहन करने वाले अश्व इन्द्रियाँ होती हैं। मन सारथि है। ये सब प्राणायाम रूपी कशा (कोडा) से वश मे किये जाते है। इन्द्रियाँ प्रसक्त होती है और विषयो के सागर मे डुबकियाँ मारा करती हैं। जो इनका आहरण करके निगृहीत कर लेना है वही प्रत्याहार कहा जाता है ॥१७ से २०॥ जिस तरह जल मे डूबता हुआ अपने आप ही अपने को बचाता है वैसे ही भोगो की नदी के अत्यन्त प्रचण्ड वेग से ज्ञानरूपी वृक्ष का समाश्रय लेना चाहिए ॥२१॥

१८५ ध्यानम्

ध्यै चिन्तायां स्मृतो धातुर्विष्णुचिन्ता मुहुर्मुहुः ।
अनाक्षिप्तेन मनसा ध्यानमित्यभिधीयते ॥१
आत्मन समनस्कस्य मुक्ताशेषोपधस्य च ।
ब्रह्मचिन्ता समा शक्तिर्ध्यान नाम तदुच्यते ॥२
ध्येयालम्बनसस्थस्य सदृशप्रत्ययस्य च ।
प्रत्ययान्तरनिर्मुक्तः प्रत्ययो ध्यानमुच्यते ॥३
ध्येयावस्थितचित्तस्य प्रदेशे यत्र कुत्रचित् ।
ध्यानमेतत्समुद्दिष्टं प्रत्ययस्यैकभावना ॥४
एव ध्यानसमायुक्तः स्वदेह यः परित्यजेत् ।
कुल स्वजनमित्राणि समुद्धृत्य हरिर्भवेत् ॥५

एव मुहूर्तमर्धं वा ध्यायेद्य श्रद्धया हरिम् ।
सोऽपि या गतिमाप्नोति न ता सर्वैर्महामखैः ॥६
ध्याता ध्यान तथा ध्येय यच्च ध्यानप्रयोजनम् ।
एतच्चतुष्टय ज्ञात्वा योग युञ्जीत तत्त्ववित् ॥७
योगाभ्यासाद्भवेन्मुक्तिरैश्वर्य चाष्टधा महत् ।
ज्ञानवैराग्यसपन्न श्रद्धान. क्षमान्वित ॥८

इस अध्याय म केवल ध्यान का वर्णन किया जाता है । अग्निदेव ने कहा—"ध्यै"—यह धातु चिन्ता के अर्थ मे कही गई है । बार बार अनाक्षिप्त मन के द्वारा भगवान् विष्णु की चिन्ता का करना ध्यान नाम से कहा जाता है ॥१॥ मन के सहित और मुक्त समस्त उपधा वाली आत्मा की ब्रह्म की चिंता के समान जो शक्ति है वही ध्यान के नाम मे पुकारा जाता है ॥ २ ॥ ध्येयालम्बन सस्थ और सदृश के प्रत्यय का जो अन्य प्रत्यय से निर्मुक्ति वाला प्रत्यय है वह ध्यान कहा जाता है ॥३॥ अपने ध्यान करने के योग्य मे स्थित चित्त वाले का प्रदेश म जहाँ कही भी प्रत्यय की एक भावना होती है यह ध्यान कहा गया है ॥४॥ इस प्रकार के ध्यान से समायुक्त जो अपने शरीर का त्याग किया करता है वस अपने जन-मित्र और कुल का उद्धार करके स्वय हरि हो जाया करता है । ५॥ इस प्रकार से एक मुहूर्त्त भर या आधे मुहूर्त्त तक श्रद्धा से हरि का ध्यान किया करता है वह भी जिस गति को प्राप्त करता है उसको समस्त प्रकार के मखो के द्वारा भी नही प्राप्त करता है ॥६॥ ध्याता (ध्यान करने वाला)—ध्यान-ध्येय (ध्यान करने के योग्य या ध्यान का विषय) और ध्यान करने का प्रयोजन-इन चारो वस्तुओ का भली भाँति ज्ञान प्राप्त करके तत्त्वो के जानने वाले को योग करना चाहिए ॥७॥ योग के अभ्यास से मुक्ति होती है और आठ प्रकार का महान् ऐश्वर्य भी होता है । ध्याता जो होता है वह ज्ञान वैराग्य से युक्त—श्रद्धा वाला और क्षमा से युक्त हुआ करता है ॥८॥

विष्णुभक्त. सदोत्साही ध्यातेत्य पुरुष स्मृतः ।
मूर्तामूर्तं पर ब्रह्म हरेर्ध्यान हि चिन्तनम् ॥६

सकलो निष्कलो ज्ञेयः सर्वज्ञः परमो हरि ।
अणिमादिगुणैश्वर्यं मुक्तिर्ध्यानप्रयोजनम् ॥१०
फलेन योजको विष्णुरतो ध्यायेत्परेश्वरम् ।
गच्छंस्तिष्ठन्स्वपञ्जाग्रदुन्मिषन्निमिषन्नपि ॥११
शुचिर्वाऽप्यशुचिर्वाऽपि ध्यायेत्सततमीश्वरम् ।
स्वदेहायतनस्यान्ते मनसि स्थाप्य केशवम् ॥१२
हृत्पद्मपीठिकामध्ये ध्यानयोगेन पूजयेत् ।
ध्यानयज्ञः परः शुद्धः सर्वदोषविवर्जितः ॥१३
तेनेष्ट्वा मुक्तिमाप्नोति बाह्यशुद्धैश्च नाध्वरैः ।
हिंसादोषविमुक्तित्वाद्विशुद्धिश्चित्तसाधनः ॥१४
ध्यानयज्ञः परस्तस्मादपवर्गफलप्रदः ।
तस्मादशुद्धं सत्यज्य ह्यनित्यं बाह्यसाधनम् ॥१५
यज्ञाद्यं कर्म सत्यज्य योगमत्यर्थमभ्यसेत् ।
विकारमुक्तमव्यक्तं भोग्यभोगसमन्वितम् ॥१६

ध्याता विष्णु का भक्त—सर्वदा उत्साह से युक्त पुरुष ही कहा जाता है। ब्रह्म पर और मूर्त्त तथा अमूर्त्त होता है उसके लिए हरि का ध्यान ही चिन्तन होता है ॥६॥ हरि को सकल—निष्कल—सर्वज्ञ और परम जानना चाहिए। अणिमादि गुणों का ऐश्वर्य मुक्ति ही ध्यान का प्रयोजन होता है ॥१०॥ विष्णु फल के द्वारा योजक है इसलिए उस परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए और प्रत्येक अवस्था में जाते—स्थित रहते—सोते हुए—जागते हुए और उन्मेष एवं निमेष करते हुए हर समय हरि का ध्यान करना आवश्यक होता है ॥११॥ इसमें शुचिता का भी कोई नियम नहीं होता है। चाहे पवित्र हो या अशुचि हो ईश्वर का निरंतर ध्यान करते रहना चाहिए। अपने देह रूपी आयतन के अन्दर मन में केशव को स्थापित करके हृदय की पीठिका के मध्य में ध्यान के योग से उनका पूजन करना चाहिए। यह ध्यान का यज्ञ सबसे पर—शुद्ध और समस्त दोषों से वर्जित होता है ॥१२।१३॥ ध्यान के द्वारा यजन करके मानव मुक्ति

की प्राप्ति करता है। बाहिरी शुद्ध यज्ञों द्वारा नहीं प्राप्त किया करता है। ध्यान रूपी यज्ञ हिंसा के दोष से विमुक्त होता है अतएव चित्त की विशुद्धि का वह सच्चा साधन है ॥१४॥ इसी कारण से ध्यान यज्ञ पर और अपवर्ग के फल को प्रदान करने वाला होता है। इसी कारण अनित्य और अशुद्ध बाहिरी साधन का त्याग कर देवे ॥ १५ ॥ यज्ञ आदि कर्म का त्याग कर देवे जोकि विकारों से युक्त—अव्यक्त और भोग्य एवं भोग से समन्वित हुआ करता है। केवल योग का ही अत्यन्त अभ्यास करना चाहिए ॥१६॥

चिन्तयेद् हृदये पूर्वं क्रमादादौ गुणत्रयम् ।
तम प्रच्छाद्य रजसा सत्त्वेन च्छादयेद्रज ॥१७
ध्यायेत्त्रिमण्डल पूर्वं कृष्ण रक्त सितं क्रमात् ।
सत्त्वोपाधिगुणातीत पुरुष पञ्चविशक: ॥१८
ध्येयमेतदशुद्धं च त्यक्त्वाशुद्धं विचिन्तयेत् ।
ऐश्वर्यं पङ्कज दिव्य पुरुषोपरि सस्थितम् ॥१९
द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं शुद्ध विकसितं सितम् ।
नालमष्टाङ्गुल तस्य नाभिकन्दसमुद्भवम् ॥२०
पद्मपत्राष्टक ज्ञेयमणिमादिगुणाष्टकम् ।
कर्णिकाकेसर नाल ज्ञानवैराग्यमुत्तमम् ॥२१
विष्णुधर्मश्च तत्कन्दमिति पद्म विचिन्तयेत् ।
तद्धर्मज्ञानवैराग्य शिवैश्वर्यमय परम् ॥२२
ज्ञात्वा पद्मासन सर्व सर्वदु खान्तमाप्नुयात् ।
तत्पद्मकर्णिकामध्ये शुद्धदीपशिखाकृतिम् ॥२३
अङ्गुष्ठमात्रममल ध्यायेदोंकारमीश्वरम् ।
कदम्बगोलकाकार तारं रूपमिव स्थितम् ॥२४
ध्यायेद्वा रश्मिजालेन दीप्यमान समन्तत: ।
प्रधान पुरुषातीत स्थित पद्मस्थमीश्वरम् ॥२५

ध्यायेज्जपेच्च सततमोंकार परमक्षरम् ।
मन स्थित्यर्थमिच्छन्ति स्थूलध्यानमनुक्रमात् ॥२६

सर्व प्रथम आदि में हृदय में क्रम से तीनों गुणों का चिन्तन करना चाहिए । रजोगुण से तमोगुण का प्रच्छादन करके फिर सत्व गुण द्वारा रजोगुण का प्रच्छादन करना चाहिए ॥१७॥ पहिले क्रम से कृष्ण—रक्त और सित त्रिमण्डल का ध्यान करे। सत्वोपाधि गुणों से अतीत पुरुष पञ्च विशक है। इस प्रकार से इस अशुद्ध और त्यक्त्वा शुद्ध का विचिन्तन करना चाहिए। ऐश्वर्य पङ्कज दिव्य है और पुरुष के ऊपर संस्थित है ॥१८।१६॥ वह पङ्कज बारह अंगुल विस्तार वाला–शुद्ध–सित और विकास से युक्त होता है। उसका नाल नाभि के कन्द से उत्पन्न होने वाला आठ अंगुल का है ॥२०॥ आठ दलों वाला पद्म है जिनमें कि अणिमा आदि आठ गुण उपस्थित होते हैं। कर्णिका का केशर वाला नाल उत्तम ज्ञान और वैराग्य पूर्ण है ॥२१॥ विष्णु के धर्म वाला उसका कन्द है ऐसे पद्म का विचिन्तन करे। उसको धर्म–ज्ञान–वैराग्य पूर्ण एवं शिव ऐश्वर्य से परिपूर्ण परम जान कर समस्त पद्मासन को सम्पूर्ण दु खों का अन्त करने वाला प्राप्त करे। उसकी कर्णिका के मध्य में शुद्ध दीपक की शिखा की आकृति वाले अंगुष्ठ मात्र मल रहित ओङ्कार स्वरूप ईश्वर का ध्यान करना चाहिए जोकि कदम्ब गोलक के आकार वाला तार रूप की भाँति स्थित है ॥२२।२३ २४॥ अथवा चारों ओर से रश्मि के समूह से दीप्यमान का ध्यान करे। प्रधान–पुरुषातीत पद्म पर स्थित ईश्वर का ध्यान करना चाहिए। और परमाक्षर ओङ्कार का ही निरन्तर जप करना चाहिए। मन की स्थिति के लिए अनुक्रम से स्थूल ध्यान की इच्छा किया करते हैं ॥२५।२६॥

तद्भूत निश्चलीभूत लभेत्सूक्ष्मेऽपि संस्थितम् ।
नाभिकन्दे स्थित नाल दशाङ्गुलसमायतम् ॥२७
नालेनाष्टदल पद्म द्वादशाङ्गुलविस्तृतम् ।
सकर्णिके केसराले सूर्यसोमाग्निमण्डलम् ॥२८
अग्निमण्डलमध्यस्थः शङ्खचक्रगदाधर ।
पद्मी चतुर्भुजो विष्णुरथ वाऽष्टभुजो हरि ॥२९

शार्ङ्गाक्षवलयधरः पाशाङ्कुशधरः परः ।
स्वर्णवर्णं श्वेतवर्णं सश्रीवत्सः सकौस्तुभः ॥३०
वनमाली स्वर्णहारी स्फुरन्मकरकुण्डलः ।
रत्नोज्ज्वलकिरीटश्च पीताम्बरधरो महान् ॥३१
सर्वाभरणभूषाढ्यो वितस्तिर्वा यथेच्छया ।
अहं ब्रह्म ज्योतिरात्मा वासुदेवो विमुक्त ओम् ॥३२
ध्यात्वाऽऽत्मानं जपेन्मन्त्रं जपाच्छान्तश्च चिन्तयेत् ।
जपध्यानादियुक्तस्य विष्णुः शीघ्रं प्रसीदति ॥३३
जपयज्ञस्य वै यज्ञाः कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
जपिनं नोपसर्पन्ति व्याधयश्चाऽऽधयो ग्रहाः ॥३४
भुक्तिर्मुक्तिर्मृत्युजयो जपेन प्राप्नुयात्फलम् ॥३५

उसमें होने वाला नाभिकन्द में स्थित विश्वीभूत दशाङ्गुल समायत नाल को मूहर में भी प्राप्त करे ॥२७। उस नाल से आठ दलों वाला पद्म जोकि बारह अङ्गुल विस्तार वाला है। कर्णिक केसरान में सूर्य-सोमाग्नि मण्डल है। उस अग्नि मण्डल के मध्य में स्थित शङ्ख चक्र और गदादि को धारण करने वाले तथा पद्मधारी—चार भुजाओं से युक्त अथवा आठ भुजाओं वाले हरि एवं विष्णु विराजमान हैं ॥२८।२९॥ शार्ङ्गाक्षवलय को धारण करने वाले—पाश, अंकुशधारी सबसे पर—स्वर्ण के समान वर्ण वाले—श्वेत वर्ण से युक्त श्रीवत्स के चिह्न से विभूषित एवं कौस्तुभ धारी उनका स्वरूप है। वनमाला वाले—स्वर्ण के हार वाले और स्फुरमाण मकराकृति कुण्डलों के धारण करने वाले तथा रत्नों से एकदम समुज्ज्वल किरीट धारी एवं पीताम्बर धारण करने वाले उनका महान् स्वरूप है ॥३०।३१॥ इस प्रकार से समस्त आभरणों से परम विभूषित एवं युक्त यथेच्छा से एक वितस्ति आकार वाले हैं। अहं (मैं) ही ब्रह्म हूँ—आत्मा ज्योति स्वरूप है और ओम् यही विमुक्त वासुदेव हैं—ऐसे ध्यान से शान्त स्वरूप होकर मन्त्र का जाप करे। और शान्त होकर चिन्तन करना चाहिए। इस प्रकार से जप और ध्यान से युक्त पुरुष पर विष्णु शीघ्र

ही प्रसन्न होते हैं ।।३२।३३।। इस तरह के जप यज्ञ की सोलहवी कला को भी यज्ञ प्राप्त नहीं किया करते हैं । ऐसे जाप करने वाले को व्याधियाँ तथा मानसी व्यथाऐं कभी भी समीप मे आकर नही घेरा करती हैं और न कोई ग्रह ही सताते हैं । जप से भुक्ति-मुक्ति और मृत्यु के जय का फल प्राप्त हो जाता है ।।३४,३५ ।

१८६—धारणा

धारणा मनसो ध्येये संस्थितिर्ध्यानवद् द्विधा ।
मूर्त्तामूर्त्तहरिध्यानमनोधारणतो हरिः ।।१
यद्वाह्यावस्थितं लक्ष्य तस्मान्न चलते मनः ।
तावत्काल प्रदेशेषु धारणा मनसि स्थितिः ।।२
कालावधिपरिच्छिन्नं देवे संस्थापित मनः ।
न प्रच्यवति यल्लक्ष्याद्धारणा साऽभिधीयते ।।३
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादशधारणा ।
ध्यान द्वादशक यावत्समाधिरभिधीयते ।।४
धारणाभ्यासयुक्तात्मा यदि प्राणैर्विमुच्यते ।
कुलैकविंशमुत्तार्यस्वर्याति परम पदम् ।।५
यस्मिन्यस्मिन्भवेदङ्गे योगिना व्याधिसम्भव. ।
तत्तदङ्ग धिया व्याप्य धारयेत्तत्त्वधारणम् ।।६
आग्नेयी वारुणी चैव ऐशानी चामृतात्मिका ।
साग्निः शिखा फडन्ता च विष्णोः कार्या द्विजोत्तम ।।७
नाडीभिर्विकट दिव्य शूलाग्र वेधयेच्छुभम् ।
पादाङ्गुष्ठात्कपोलान्त रश्मिमण्डलमावृतम् ।।८

इस अध्याय मे धारणा के स्वरूप का वर्णन किया जाता है । अग्निदेव ने कहा—ध्येय मे अर्थात् ध्यान के य ग्य इष्ट देव मे जो मन की संस्थिति है वह धारणा कही जाती है । वह धारणा दो प्रकार की होती है । जिस तरह ध्यान दो प्रकार का होता है । मूर्त्त तथा अमूर्त्त हरि का ध्यान जोकि मन के

धारण से हरि की धारणा होती है। बाहिर में अवस्थित जो लक्ष्य होता है उससे मन नहीं चलता है उतने समय तक मन में जो स्थिति होती है वह धारणा होती है ॥ १।२ ॥ काल की अवधि से परिच्छन्न मन जोकि देव में सस्थापित किया गया है वह लक्ष्य से प्रच्युत नहीं होता है उस प्रच्यवन न होने को ही धारणा नाम से कहा जाता है ।।३।। द्वादश याम वाली धारणा होती है और द्वादश धारणा वाला ध्यान होता है तथा बारह ध्यान की समाधि कही जाती है ।।४।। धारणा के अभ्यास में युक्त आत्मा यदि प्राणों से मुक्ति पा जाया करता है तो वह अपने बीस कुलों का उद्धार करके स्वयं परम यह स्वर्ग को जाया करता है ।।५।। योगियों के जिस–जिस अङ्ग में व्याधियों की उत्पत्ति होती है। उस–उस अङ्ग को धी से व्याप्य करके तत्त्व धारण को धारना चाहिए ॥ ६ ॥ हे द्विजो में उत्तम ! आग्नेयी–वारुणी–ऐशानी और अमृतात्मिका अग्नि के रहित और फट् अन्त वाली विष्णु की शिखा करनी चाहिए। नाडियों से विकट—दिव्य—शूलाग्र–शुभ–पाद के अगुष्ठ से कपोल पर्यन्त आवृत रश्मि मण्डल को वेधन करे ।।७।८।।

तिर्यक्चाधोर्ध्वभागेभ्य प्रयान्त्योऽग्नीव तेजसाम् ।
चिन्तयेत्साधकेन्द्रस्तु यावत्सर्वं महामुने ॥९
भस्मीभूत शरीर स्व ततश्चैवोपसहरेत् ।
शीतश्लेष्मादय पाप विनश्यन्ति द्विजानय ॥१०
शिरो धीर विचार च कण्ठ चाधोमुखे स्मरेत् ।
ध्यायेदच्छिन्नचित्तात्मा भूयोभूतेन चाऽऽत्मना ॥११
स्फुरन्छीव रसस्पर्शप्रभूते हिमगामिभिः ।
धाराभिरखिल विश्वमापूर्य भुवि चिन्तयेत् ॥१२
ब्रह्मरन्ध्राच्च सक्षोभाद्यावदाधारमण्डलम् ।
सुषुम्नान्तर्गतो भूत्वा सपूर्णेन्दुकृतालयम् ॥१३
सप्लाव्य हिमसस्पर्शतोयेनामृतमूर्तिना ।
क्षुत्पिपासाक्रमप्रायसतापपरिपीडित ॥१४

धारयेद्वारुणी मन्त्री तुष्ट्यर्थं चाप्यतन्द्रितः ।
वारुणी धारणा प्रोक्ता ऐशानी धारणा शृणु ॥१५
व्योम्नि ब्रह्ममये पद्मे प्राणापाने क्षयं गते ।
प्रसादं चिन्तयेद्विष्णोर्यावच्चिन्ता क्षयं गता ॥१६

हे महामुने ! मायेन्द्र की तिर्यक्–अधो भाग और ऊर्ध्व भागों से वे तेज की किरणें जाती हुई जब तक सब में व्याप्त हों तब तक चिन्तन करना चाहिए ॥ ६ ॥ फिर अपने इस भस्मी भूत शरीर को उपसंहृत करे। द्विजाति पीत श्लेष्मा आदि पाप का विनाश कर देते हैं ॥१०॥ शिर ग्रीव और विचार को तथा कण्ठ को अधोमुख में स्मरण करना चाहिए। अच्छिन्न आत्मा होकर भूयोभूत आत्मा के द्वारा ध्यान करना चाहिए ॥११॥ स्फुरित सी करों (बूंदो) के सम्पर्श से प्रभूत में हिमगामिनी धाराओं के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को आपूरित करके भूमि में चिन्तन करे ॥१२॥ और ब्रह्मरन्ध्र से मध्य में से आधार मण्डल तक सुषुम्ना के अन्तर्गत होकर सम्पूर्ण इन्दु कुन्तालय का अमृत मूर्ति हिमसम्पर्शी जल से सम्प्लावित करे। क्षुधा–पिपासा के क्रम से प्रयत्न. सन्ताप–परिपीड़ित मन्त्री तुष्टि के लिये वारुणी को धारण करे और अतन्द्रित रहे। इस प्रकार से वारुणी धारणा बतादी गई है। अब ऐशानी धारणा का श्रवण करो ॥१३॥ ॥१४॥१५॥ आकाश में ब्रह्ममय पद्म में प्राण और अपान क्षय को प्राप्त होने पर जब तक चिन्तन क्षीण हो तब तक विष्णु के प्रसाद का चिन्तन करना चाहिए ॥१६॥

महाभाव जपेत्सर्वं ततो व्यापक ईश्वरः ।
अर्धेन्दु परमं शान्तं निराभासं निरञ्जनम् ॥१७
असत्यं सत्यमाभाति तावत्सर्वं चराचरम् ।
यावत्स्वस्पन्दरूपं तु न दृष्टं गुरुवक्त्रतः ॥१८
दृष्टे तस्मिन्परे तत्त्वे आब्रह्म सचराचरम् ।
प्रमातृमानमेयं च ध्यानहृत्पद्मकम्पनम् ॥१६

मातृमोदकवत्सर्वं जपहोमार्चनादिकम् ।
विष्णुमन्त्रेण वा कुर्यादमृता धारणा वदे ॥२०
सम्पूर्णेन्दुनिभं ध्यायेत्कमलं तन्निमुष्टिगम् ।
शिरःस्थं चिन्तयेद्यत्नाच्छशाङ्कायुतवर्चसम् ॥२१
सम्पूर्णमण्डलं व्योम्नि शिवकल्लोलपूर्णितम् ।
तथा हृत्कमले ध्यायेत्तन्मध्ये स्वतनुं स्मरेत् ॥
साधको विगतक्लेशो जायते धारणादिभिः ॥२२

समस्त महाभाव का जप करे । इसके अनन्तर ईश्वर व्यापक है । अर्घेन्दु—परम—शान्त—निराभास—निरञ्जन का जप करे । यह समस्त चराचर जब तक असत्य सत्य प्रतीत होता है जब तक स्वस्पन्द रूप गुरु के मुख से दृष्ट नहीं होता है । उस पर तत्त्व देखने पर यह सचराचर ब्रह्म पर्यन्त प्रमातृ मानमेय और ध्यान हृत्पद्म कल्प है ॥१७।१८।१९॥ यह सब जप-होम और अर्चन आदि माता के मोदक के समान है । अथवा विष्णु मन्त्र के द्वारा इसे करना चाहिए । अब अमृता नाम वाली धारणा को बतलाते हैं ॥२०॥ तन्नि मुष्टि में रहने वाले सम्पूर्ण चन्द्र के तुल्य कमल का ध्यान करना चाहिए । दश सहस्र शशाङ्कों के वर्चस वाले शिर में स्थित का यत्न से चिन्तन करना चाहिए ॥२१॥ व्योम में शिव के कल्लोल से पूर्णित सम्पूर्ण मण्डल का तथा हृदय कमल में ध्यान करना चाहिए और उसके मध्य में अपने शरीर का स्मरण करना चाहिए धारणा आदि के द्वारा साधक विगत क्लेश वाला हो जाया करता है ॥२२॥

१८७ समाधिः

यदात्ममात्रं निर्भासं स्तिमितोदधिवत्स्थितम् ।
चैतन्यरूपवद्ध्यानं तत्समाधिरिहोच्यते ॥१
ध्यायन्मनः संनिवेश्य यस्तिष्ठेदचलः स्थिरः ।
निर्वातानलवद्योगी समाधिस्थः प्रकीर्तितः ॥२

न शृणोति न चाऽघ्राति न पश्यति न अस्यति ।
न च स्पर्शं विजानाति न सङ्कल्पयते मन ॥३
न चाभिगम्यते किंचिन्न च बुध्यति काष्ठवत् ।
एवमीश्वरसंलीन समाधिस्थ स गीयत ॥४
यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ।
ध्यायतो विष्णुमात्मानं समाधिस्थस्य योगिन ॥५
उपसर्गा प्रवर्तन्ते दिव्या सिद्धिप्रसूचका ।
पातित श्रावणो धातुर्दर्शनस्वाङ्गवेदना ॥६
प्रार्थयन्ति च ता देवा भोगैर्दिव्यैश्च योगिनम् ।
नृपाश्च पृथिवीदानैर्धनैश्च सुधनाधिपा ॥७
वेदादिसर्वशास्त्रं च स्वयमेव प्रवर्तते ।
अभीष्टच्छन्दो विषय काव्यं चास्य प्रवर्तते ॥८

इस अध्याय मे समाधि का वर्णन किया जाता है । अग्निदेव ने कहा—जो निर्भान आत्म मात्र स्तिमित सागर की भाँति स्थित चैतन्य रूप की तरह ध्यान होता है वह समाधि कही जाती है ॥१॥ ध्यान करते हुए साधक का मन ध्येय इष्टदेव मे सन्निवेशित करके जब अचल और एक ही लक्ष्य म स्थिर हो जाता है तो निर्वात स्थान म अग्नि की भाँति योगी समाधि म स्थित कहलाया करता है ॥२॥ योगी जब समाधि की अवस्था म होता है तो वह कुछ भी सुनता नही है—न कुछ सूँघता है—न किसी भी पदार्थ को देखता है और न वह कुछ खाता या स्वाद लेता है । योगी समाधिस्थ होकर किसी भी स्पर्श का ज्ञान नही रखता है और उसका मन कुछ भी सङ्कल्प नही किया करता है ॥३॥ न वह कुछ भी अभिगमन किया करता है और न कुछ भी ज्ञान रखता है । वह तो उस समय काष्ठ की भाँति हो जाता है । इस प्रकार स एकमात्र ईश्वर म लीन होकर समाधि में स्थित रहने वाला कहा जाया करता है ॥४॥ जिस तरह से दीपक की शिखा निर्वात (विना वायु वाले) स्थान म बिल्कुल भी हिलती—जुलती नही है वही समाधि की अवस्था बताई गई है । भाने भाप्ती

विष्णु का ध्यान करने वाले समाधि में स्थित योगी के दिव्य गव सिद्धि की सूचना दन वाल उपसग प्रवृत्त हुआ करत हैं। श्रावण धातु पतित होता है और दशन स्वाङ्ग वेदना वाले दव उस योगी की दिव्य भोगों क द्वारा प्रार्थना किया करते हैं। और भुवन के स्वामी राजा लोग पृथिवी का दान और धनो से उस की प्राथना किया करत हैं। ५।६।७।। वेद आदि समस्त शास्त्र उस योगी को स्वय ही आकर प्रवृत्त हा जाया करते हैं। जो भी च ह वैसे ही अभीष्ट छन्द वाला काव्य का विषय इसको स्वय ही उपस्थित हो जाता है ।।८।।

रसायनानि दिव्यानि दिव्याश्चौषधयस्तथा ।
समस्तानि च शिल्पानि कला सर्वाश्च विन्दति ।।९
सुरेन्द्रकन्या इत्याद्या गुणाश्च प्रतिभादय ।
तृणवत्ता त्यजेद्यस्तु तस्य विष्णु प्रसीदति ।।१०
अणिमादिगुणैश्वर्यं शिष्ये ज्ञान प्रकाश्य च ।
भुक्त्वा भोगान्यथेच्छातस्तनु त्यक्त्वा लयात्तन ।।११
तिष्ठेत्स्वात्मनि विज्ञान आनन्दे ब्रह्मणीश्वरे ।
मलिनो हि यथाऽऽदर्श आत्मज्ञानाय न क्षम. ।।१२
तथा विपक्वकरण आत्मज्ञानाय न क्षम ।
सर्वाश्रयान्निजे देहे देही विन्दति वेदनाम् ।।१३
योगयुक्तस्तु सर्वदा योगान्नाऽऽप्नोति वेदनाम् ।
आकाशमेक हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत् ।।१४
तथाऽऽत्मैको ह्यनेकेषु जलाधारेष्विवांशुमान् ।
ब्रह्म खानिलतेजांसि जलभूक्षितिधातव ।।१५
इमे लोका एप चाऽऽत्मा तस्माच्च सचराचरम् ।
मृद्दण्डचक्रसयोगात्कुम्भकारो यथा घटम् ।।१६

दिव्य रसायन तथा दिव्य औषधें—सब प्रकार के शिल्प और कला वह प्राप्त कर लेता है ।। ९ ।। सुरेन्द्र की कन्याएँ और प्रतिभा आदि गुण इनको तृण की भाँति वह त्याग दिया करता है जिसके ऊपर भगवान् विष्णु प्रसन्न

हो जाते हैं ॥१०॥ अणिमा आदि गुणों के ऐश्वर्य वाला योगी शिष्य को ज्ञान का प्रकाश देकर यथेच्छया भोगों का उपभोग करके इस शरीर का त्याग करके लय से फिर वह स्व रमा में विज्ञान और आनन्द स्वरूप ईश्वर ब्रह्म में स्थित रहा करता है। जिस तरह मैला शीशा अपने स्वरूप के यथार्थ ज्ञान कराने समर्थ नहीं होता है वैसे ही विपक्ष करण में आत्म ज्ञान कराने की क्षमता नहीं होती है। सर्वाश्रय होने से यह देही अपने देह में वेदना का अनुभव किया करता है ॥११॥१२॥१३॥ जो योग से युक्त होता है वह सबके योग से वेद-ना नहीं प्राप्त किया करता है। जिस प्रकार से एक ही आकाश घट-मठ आदि में पृथक् दिखलाई देता है वैसे ही एक ही आत्मा अनेकों में दिखाई दिया करता है। विभिन्न जल के आधारों में जैसे अंशुमान् एक होते हुए भी अनेक प्रतीत होता है। ब्रह्म आकाश—वायु—तेज-जल और पृथिवी धातुऐं ये लोक हैं और यह आत्मा है। इसमें यह चराचर होता है। जिस तरह मिट्टी-दण्ड और चक्र के योग से कुम्हार घट की रचना किया करता है इसी तरह से इस चराचर की रचना होती है ॥१४॥१५॥१६॥

करोति तृणमृत्काष्ठैर्गृहं वा गृहकारकः ।
करणान्येवमादाय तासु तास्विह योनिषु ॥१७
सृजत्यात्मानमात्मैव संभूय करणानि च ।
कर्मणा दोषमोहाभ्यामिच्छयैव स बध्यते ॥१८
ज्ञानाद्विमुच्यते जीवो धर्माद्योगी न रोगभाक् ।
वर्त्याधारस्नेहयोगाद्यथा दीपस्य संस्थितिः ॥१९
विक्रियाऽपि च दृष्टैवमकाले प्राणसंक्षयः ।
अनन्ता रश्मयस्तस्य दीपवद्यः स्थितो हृदि ॥२०
सितासिता कद्रुनीला कपिला. पीतलोहिता. ।
ऊर्ध्वमेकः स्थितस्तेषां यो भित्वा सूर्यमण्डलम् ॥२१
ब्रह्मलोकमतिक्रम्य तेन याति परां गतिम् ।
यदस्यान्यद्रश्मिशतमूर्ध्वमेव व्यवस्थितम् ॥२२

तेन देवनिकायानि धामानि प्रतिपद्यते ।
येनैकरूपाश्चाधस्तादूरश्मयोऽस्य मृदुप्रभाः ॥२३
इह कर्मोपभोगाय तैश्च संचरते हि सः ।
बुद्धीन्द्रियाणि सर्वाणि मनःकर्मेन्द्रियाणि च ॥२४

गृहों का निर्माण करने वाला तृण—मिट्टी और काष्ठों में उन—उन योनियों में ऐसे करणों को लेकर आत्मा ही अपने आप ही करण बन कर सृजन किया करता है। कर्म के द्वारा दोष और मोह से इच्छा ही से वह बद्ध हो जाया करता है ॥ १७।१८ ॥ यह जीव स्मा ज्ञान प्राप्त करके उसी से विमुक्त हुआ करता है और धर्म से योगी रोगों का भाजन नहीं बनता है। वत्ती—आधार और स्नेह (तैल आदि) के योग में दीपक की सस्थिति हुआ करती है ॥१९॥ और क्रिया भी हो जाती है इस प्रकार से देखकर अकाल ही में प्राण का सक्षय भी हो जाता है। उसकी अनन्त रश्मियाँ होती हैं जो दीप की भाँति हृदय में स्थित रहता है ॥२०॥ उन रश्मियों के रूप सित—असित—कद्रु—नील—कपिल—पीत और लोहित होते हैं। उनमें एक ऊर्ध्व भाग में स्थित है जो सूर्य मण्डल का भेदन करके और ब्रह्मलोक का अतिक्रमण करके उससे परागति को वह जाया करता है। जो इसकी अन्य सौ रश्मियाँ ऊर्ध्व भाग में ही अवस्थित हैं, उनसे देवों के निकाय जो धाम होते हैं उनका प्राप्त किया करता है। इसके अधोभाग में मृदुप्रभा वाली तथा एक रूप वाली रश्मियाँ हैं उनके द्वारा यहाँ ससार में अपने इन कर्मों के उपभोग प्राप्त करने के लिए वह सञ्चरण किया करता है। वे समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ—मन—कर्मेन्द्रियाँ हैं ॥२१ से २४॥

अहङ्कारश्च बुद्धिश्च पृथिव्यादीनि चैव हि ।
अव्यक्त आत्मा क्षेत्रज्ञ क्षेत्रस्यास्य निगद्यते ॥२५
ईश्वरः सर्वभूतस्य सदसत्सदसच्च सः ।
बुद्धेरुत्पत्तिरव्यक्ता ततोऽहङ्कारसंभवः ॥२६
तस्मात्खादीनि जायन्ते एकोत्तरगुणानि तु ।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च तद्गुणाः ॥२७

यो यस्मिन्नाश्रितश्चैषां स तस्मिन्नेव लीयते ।
सत्त्व रजस्तमश्चैव गुणास्तस्यैव कीर्तिता. ॥२८
रजस्तमोभ्यामाविष्टश्चक्रवद्भ्राम्यते हि स ।
अनादिरादिमानश्च स एव पुरुष पर ॥२९
लिङ्गेन्द्रियैरुपग्राह्य स विकार उदाहृत ।
यतो वेदा पुराणानि विद्योपनिषदस्तथा ॥३०
श्लोका सूत्राणि भाष्याणि यच्चान्यद्वाङ्मय भवेत् ।
पितृयानोपवीथ्याश्च यदगस्त्यस्य चाऽन्तरम् ॥३१
तेनाग्निहोत्रिणो यान्ति प्रजाकामा दिव प्रति ।
ये च दानपरा. सम्यगष्टाभिश्च गुणैर्युताः ॥३२
अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो गृहमेधिन. ।
पुनरावर्तने बीजभूता धर्मप्रवर्तका. ॥३३

अहङ्कार—बुद्धि और पृथिवी आदि हैं । यह सब ही इस आत्मा का क्षेत्र कहा जाता है । आत्मा अव्यक्त और क्षेत्रज्ञ कहा जाया करता है । समस्त भूतो का सद्—असद् और सदसत् वह ईश्वर ही है । बुद्धि की उत्पत्ति अव्यक्त है । इससे फिर अहङ्कार की उत्पत्ति होती है ॥२५।२६॥ उससे एकोत्तर गुण वाले आकाश आदि उत्पन्न होते हैं । शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध ये उनके गुण होते हैं ॥२७॥ इनमें जो भी जिसमें आश्रित होता है वह उसीमें ही लीन हो जाया करता है । सत्त्व-रज और तम ये उसी के गुण कहे गये हैं ॥२८॥ वह रज और तम इन दोनों से आविष्ट होकर चक्र की भाँति भ्रमण कराया जाया करता है । वह ही अनादि और आदि मान पर पुरुष होता है ॥२९॥ वह लिङ्गेन्द्रियों के द्वारा उप ग्रहण करने के योग्य होता है । उसे ही विकार कहा जाता है । जिसमें वेद-पुराण-विद्योपनिषद तथा श्लोक-सूत्र—भाष्य और अन्य जो भी वाङ्मय होता है । पितृयान-उप वीथी और जो अगस्त्य का अन्तर है उसके द्वारा अग्नि होत्र करने वाले जाया करते हैं । जो प्रजा की कामना वाले हैं वे दिव के प्रति जाया करते हैं । और दान परायण दानी लोग

होते हैं वे भी स्वर्ग को जाते है। भली भाँति अष्ट सिद्धियों से और गुणों से युक्त अट्ठासी सहस्र गृह मेधी मुनिगण पुनरावर्त्तन में यजन स्वरूप और धर्म के प्रवर्त्तक हैं ।।३१।३२।३३।।

> सप्तर्षिनागवीथ्याश्च देवलोक समाश्रिता ।
> तावन्त एव मुनयः सर्वारम्भविवर्जिता· ।।३४
> तपसा ब्रह्मचर्येण सङ्गत्यागेन मेधया ।
> यत्र यत्रावतिष्ठन्ते यावदाहू (भू) तसप्लवम् ।।३५
> वेदानुवचन यज्ञा ब्रह्मचर्य तपो दमः ।
> श्रद्धोपवास· सत्यत्वमात्मनो ज्ञानहेतव ।।३६
> सत्त्वाश्रमैनिदिध्यास्य· समस्तैरेवमेव तु ।
> द्रष्टव्यस्त्वथ मन्तव्य श्रोतव्यश्च द्विजातिभि· ।।३७
> य एवमेव विन्दन्ति ये चाऽऽरण्यकमाश्रिताः ।
> उपासते द्विजा सत्य श्रद्धया परया युता ३८
> क्रमात्ते सभवन्त्यर्चिरह शुक्ल तथोत्तरम् ।
> अयन देवलोक च सवित्तार सविद्युतम् ।।३९

सप्तर्षि नाग वीथ्य और देवलोक मे समाश्रित उतने मुनि लोग समस्त प्रकार के आरम्भो से विवर्जित हैं ।।३४।। तपस्या से—ब्रह्मचर्य से—सङ्ग के त्याग से—मेधा से जहाँ—जहाँ भी वे अवस्थित रहते हैं और जो भूत सप्लव है वहाँ वेदों का अनु वचन—यज्ञ—ब्रह्मचर्य—तप—दम—श्रद्धा—उपवास और सत्य ब्रह्म के स्वरूप वाले तथा ज्ञान के हेतु हैं ।।३५।३६।। सत्त्वाश्रम वाले सबके द्वारा वह ही निदिध्यासन करने के योग्य, द्विजातियो के द्वारा देखने योग्य—मानने के योग्य और श्रवण करने के योग्य है ।।३७।। जो भी अरण्य का आश्रय लेने वाले इस प्रकार से प्राप्त किया करते हैं और द्विज उपासना किया करते हैं तथा परम श्रद्धा से युक्त रहा करते हैं वे क्रम मे अर्चि—अह—शुक्ल तथा उत्तर अयन—देवलोक एवं सविद्युत् सविता वे यहाँ सम्भूत होते हैं ।३८।३९।।

ततस्तान्पुरुषोऽभ्येत्य मानसो ब्रह्म लौकिकान् ।
।४०
।
धूम निशा कृष्णपक्ष दक्षिणायनमेव च ।।४१
पितृलोक चन्द्रमस नभो वायु जल महीम् ।
क्रमात्ते सभवन्तीह पुनरेव व्रजन्ति च ।।४२
एतद्यो न विजानाति मार्गद्वितयमात्मनः ।
दन्दशूकः पतङ्गो वा भवेत्कीटोऽथ वा कृमिः ।।४३
हृदये दीपवद् ब्रह्मध्यानाज्जीवोऽमृतो भवेत् ।
न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः ।।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते ।।४४

इसके अनन्तर उन लौकिकों के पास मानस पुरुष आकर उन्हें ब्रह्म कर देता है अर्थात् वे ब्रह्म का ही स्वरूप बन जाते हैं। फिर इस ससार मे उनकी पुनरावृत्ति नहीं रहती है ।।४०।। यज्ञ के द्वारा—तपस्या और दानों से जो जन स्वर्ग का जप करने वाले हैं वे धूमनिशा—कृष्ण पक्ष—दक्षिणायन मे जाते हैं वे पितृलोक—चन्द्रलोक, नभ—वायु—जल और मही मे यहाँ उत्पन्न हुआ करते हैं और पुन. गमन किया करते हैं ।।४१।४२।। जो इस आत्मा के मार्ग द्वितय को नही जानता है वह दन्दशूक—पतङ्ग—कीट अथवा कृमि होता है। जिसके हृदय में दीपक की भाँति ब्रह्म का ध्यान हो वह जीवात्मा अमृत होता है न्याय से प्राप्त धन वाला—तत्त्व ज्ञान मे निष्ठित—अतिथियों से प्रेम करने वाला श्रद्धालु और सत्यवादी गृहस्थ भी विमुक्त होता है ।।४३।४४।।

१८८ ब्रह्मज्ञानम् (१)

ब्रह्मज्ञान प्रवक्ष्यामि ससाराज्ञानमुक्तये ।
अयमात्मा पर ब्रह्म अहमस्मीति मुच्यते ।।१
देह आत्मा न भवति दृश्यत्वाद्य घटादिवत् ।
प्रसुप्ते मरणे देहादात्माऽन्यो ज्ञायते ध्रुवम् ।।२

देह स चेन्द्रयवहरेदविकार्योदिमनिभः ।
चक्षुरादीनीन्द्रियाणि नाऽऽत्मा वै करण त्वतः ॥३
मनो धीरपि आत्मा न दीपवत्करण त्वत ।
प्राणोऽप्यात्मा न भवति सुषुप्ते चिदभावत ॥४
जाग्रत्स्वप्ने च चतन्य संकीर्णत्वान्न बुध्यते ।
विज्ञानरहित प्राण सुषुप्ते ज्ञायते यतः ।५
मनो नाऽऽत्मेन्द्रिय तस्मादिन्द्रियादिवमात्मन ।
अहंकारोऽपि नैवाऽऽत्मा देहवद् व्यभिचारत ॥६
उक्तेभ्यो व्यतिरिक्तोऽयमात्मा सर्वहृदि स्थित ।
सर्वद्रष्टा च भोक्ता च नक्तमुज्ज्वलदीपवत् ॥७
समाध्यारम्भकाले च एव सचिन्तयेन्मुनि- ।
मनो बह्मण आकाश खाद्वायुर्वायुतोऽनल ॥८

इस अध्याय में ब्रह्म ज्ञान का वर्णन किया जाता है। श्री अग्निदेव ने कहा—इस ससार के अज्ञान से छुटकारा पाने के लिये अब हम ब्रह्मज्ञान को बतायेंगे। यह आत्मा को जब यह भावना करना है कि मैं ही परब्रह्म हू वो मुक्त होता है घट आदि पदार्थों की भाँति दृश्य होने से यह देह आत्मा नहीं होता है। प्रसुप्त और मरण मे इस देह से आत्मा अन्य है ऐसा निश्चित रूप से जान लिया जाता है अर्थात् उस समय स्पष्टतया आत्मा का देह से भिन्न होना प्रतीत हो जाया करता है ॥ १ ॥ २ ॥ यदि अविकार्यादि सन्निभ यह देह ही व्यवहार किया जाता है तो चक्षु आदि इन्द्रियाँ आत्मा नहीं हैं क्योंकि ये कारण होते हैं ॥ ३ ॥ मन और बुद्धि भी आत्मा नहीं हैं क्योंकि ये दीपक की भाँति करण होते हैं। प्राण भी आत्मा नहीं हो सकता है क्योंकि सुषुप्त में चित् के अभाव होने से जाग्रत् और स्वप्न म चैतन्य सङ्कीर्णत्व होने से नहीं जाना जाता है। सुषुप्त मे विज्ञान रहित प्राण जाना जाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥ इसलिए इन्द्रिय आत्मा नहीं है बल्कि इन्द्रिय आदिक आत्मा के हैं। देह की भाँति व्यभिचार होने से अहङ्कार भी आत्मा नहीं होता है ॥ ६ ॥ इन समस्त

देह इन्द्रिय आदि से व्यतिरिक्त यह आत्मा सबके हृदय में स्थित होता है। यह आत्मा सर्वद्रष्टा और भोक्ता है जैसे कि रात्रि के समय में उज्ज्वल दीपक होता है ॥ ७ ॥ मननशील मुनि को समाधि के आरम्भ काल में इसी प्रकार से भली-भाँति चिन्तन करना चाहिए क्योंकि ब्रह्म से आकाश और आकाश से वायु और वायु से अग्नि होता है ॥ ८ ॥

अग्नेरापो जलात्पृथ्वी ततः सूक्ष्मं शरीरकम् ।
अपञ्चीकृतभूतेभ्य आसन्पञ्चीकृतान्यतः ॥९
स्थूल शरीरं ध्यात्वाऽस्माल्लयं ब्रह्मणि चिन्तयेत् ।
पञ्चीकृतानि भूतानि तत्कार्यं च विराट् स्मृतम् ॥१०
एतत्स्थूलं शरीरं हि आत्मनोऽज्ञानकल्पितम् ।
इन्द्रियैरर्थविज्ञानं धीरा जागरितं विदुः ॥११
विश्वस्तदभिमानी स्यात्त्रयमेतदकारकम् ।
अपञ्चीकृतभूतानि तत्कार्यं लिङ्गमुच्यते ॥१२
संयुक्तं सप्तदशभिर्हिरण्यगर्भसंज्ञितम् ।
शरीरमात्मनः सूक्ष्मं लिङ्गमित्यभिधीयते ॥१३
जाग्रत्संस्कारजः स्वप्नः प्रत्ययो विषयात्मकः ।
आत्मा तदुपमानी स्यात्तैजसो ह्यप्रपञ्चतः ॥१४
स्थूलसूक्ष्मशरीराख्यद्वयस्यैकं हि कारणम् ।
आत्मा ज्ञानं च सभासं तदव्याहृतमुच्यते ॥१५
न सन्नासन्न सदसदेतत्सावयवं न तत् ।
निर्गतावयवं नेति नाभिन्नं भिन्नमेव च ॥१६
भिन्नाभिन्नं ह्यनिर्वाच्यं बन्धसंसारकारकम् ।
एकं सद्ब्रह्मविज्ञानात्प्राप्तं नैव च कर्मभिः ॥१७

अग्नि से जल और जल से पृथ्वी, इसके अनन्तर सूक्ष्म शरीर होता है। अपञ्चीकृत भूतों से पञ्चीकृत हुए। इससे स्थूल शरीर का ध्यान करके ब्रह्म में लय का चिन्तन करे। भूत पञ्चीकृत हैं और उनका कार्य यह विराट्

कहा गया है ॥ ९ ॥ १० ॥ यह स्थूल शरीर आत्मा का इन्द्रियों के द्वारा अज्ञान से कल्पित होता है । धीर पुरुष विज्ञान को जागरित करते हैं ॥ ११ ॥ विश्व उसका अभिमानी होता है । यह त्रय कारक होता है । अपञ्चीकृत भूत हैं और उनका कार्य लिङ्ग कहा जाता है ॥ १२ ॥ सत्रह से संयुक्त हिरण्यगर्भ संज्ञा से युक्त होता है आत्मा का सूक्ष्म शरीर लिङ्ग इस नाम से कहा जाया करता है ॥ १३ ॥ जाग्रत् अवस्था में जो भी कुछ संस्कार हुआ करते हैं उन्हीं से ज यमान स्वप्न होता है । वह विषयात्मक प्रत्यय होता है । आत्मा उसका उपमानी होता है जो प्रप्रयस्थ स तैजस होता है ॥ १४ ॥ स्थूल और सूक्ष्म इन दोनों शरीरों का एक ही कारण होता है । आत्मा और ज्ञान साभास और उसका अध्याहृत कहा जाता है ॥ १५ ॥ वह न सत है न असत् होता है और न सदसत् तथा न सावय वही है । न निर्गतावयव है, न अभिन्न है और न भिन्न ही होता है । भिन्ना-भिन्न-अनिर्वाच्य और बन्ध संसार का कारक होता है । एक ब्रह्म विज्ञान से प्राप्त होता है कर्मों के द्वारा प्राप्त नहीं होता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

सर्वात्मना हीन्द्रियाणा स हार कारणात्मनाम् ।
बुद्धे स्थान सुपुप्त स्यात्तद्द्वयस्याभिमानवान् ॥१८
प्राज्ञ आत्मा त्रय चैतन्मकार प्रणव स्मृत ।
अकारश्च उकारोऽसौ मकारो ह्ययमेव च ॥१९
अह साक्षी च चिन्मात्रा जाग्रत्स्वप्नादिकस्य च ।
नाज्ञान चैव तत्कार्यं स सारादिकबन्धनम् ॥२०
नित्यशुद्धबन्ध (बुद्ध) मुक्तसत्यमानन्दमद्वयम् ।
ब्रह्माहमस्म्यह ब्रह्म पर ज्योतिर्विमुक्त ओम् ॥२१
अह ब्रह्म पर ज्ञान समाधिर्बन्धघातक ।
चिरमानन्दक ब्रह्म सत्य ज्ञानमनन्तकम् ॥२२
अयमात्मा पर ब्रह्म तद्ब्रह्म त्वमसी (सी) ति च ।
गुरुणा बोधितो जीवो ह्यह ब्रह्मास्मि बाह्यत ॥२३

सो (योऽ) ऽसावादित्यपुरुष सोऽसावहमखण्ड ओम् ।
मुच्यतेऽसारससाराद् ब्रह्मज्ञो ब्रह्म तद् भवेत् ।२४

कारणात्मा इन्द्रियों का सर्वात्मा के द्वारा सहार होता है। बुद्धि का स्थान सुपुप्त होता है। उस द्वय के अभिमान वाला प्राज्ञ, आत्मा यह त्रय मकार प्रणव कहा जाता है। अकार—उकार और मकार यह ही है ॥ १८ ॥ ॥ १९ ॥ चिन्मात्र मैं साक्षी हूँ अर्थात् जाग्रत् स्वप्न आदि का साक्षी देखने वाला हूँ। न अज्ञान है और न उसका कार्य ससार आदिक बन्धन है ॥ २० ॥ नित्य शुद्ध और बन्ध से मुक्त सत्य और आनन्द स्वरूप अद्वय मैं ब्रह्म हूँ। पर ज्योति विमुक्त ओम् ब्रह्म हूँ। मैं ब्रह्म, पर ज्ञान समाधि जो बध का घातक है। चिर आनन्द ब्रह्म सत्य अनन्तक ज्ञान है। यह आत्मा पर ब्रह्म है। वह ब्रह्म तू है—यह गुरु के द्वारा बोधित अर्थात् बोध कराया गया जीव मैं ब्रह्म हू। वह यह आदित्य पुरुष है वह मैं अखण्ड ओम् हू। जो ब्रह्म का ज्ञाता है वह इस ससार से छुटकारा पा जाता है और फिर वह ब्रह्म का स्वरूप ही हो जाया करता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ २४ ॥

१८६ ब्रह्मज्ञानम् (२)

अहं ब्रह्म पर ज्योति पृथिव्यव (व) नलोज्झितम् ।
अहं ब्रह्म पर ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम् ॥१
अहं ब्रह्म पर ज्योतिरादिकार्यविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म पर ज्योतिर्विराडात्मविवर्जितम् ॥२
अहं ब्रह्म पर ज्योतिर्जाग्रत्स्थानविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म पर ज्योतिर्विश्वभावविवर्जितम् ॥३
अहं ब्रह्म पर ज्योतिराकाराक्षरवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म पर ज्योतिर्वाक्पाण्यङ्घ्रिविवर्जितम् ॥४
अहं ब्रह्म पर ज्योति पायूपस्थविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म पर ज्योति श्रोत्रत्वक्चक्षुरुज्झितम् ॥५

अहं ब्रह्म परं ज्योति रसरूपविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योति सर्वगन्धविवर्जितम् ।६
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योति स्पर्शशब्दविवर्जितम् ।।७
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मनोबुद्धिविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिश्चित्ताहंकारवर्जितम् ।।८

इस अध्याय में ब्रह्मज्ञान का वर्णन किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—मैं ज्योति–पृथिवी और अनल से उज्झित अर्थात् रहित परब्रह्म हूं। मैं परब्रह्म ज्योति–वायु और आकाश से विवर्जित हूं ।। १ ।। मैं परब्रह्म पर ज्योति हूं जो कि आदि कार्य से विवर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जोकि विराट् आत्मा से विवर्जित हूं ।। २ ।। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो जाग्रत स्थान से विवर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो विश्व भाव से विवर्जित है ।। ३ ।। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो अकाराक्षर से वर्जित हूं। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो वाक्–पाणि और चरण से रहित है ।। ४ ।। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो पायु–उपस्थ से वर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति का स्वरूप हूं जो श्रोत्र–त्वक्–चक्षु से उज्झित है ।। ५ ।। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो रस और रूप से विवर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जोकि सब प्रकार के गन्ध से रहित है ।। ६ ।। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो जिह्वा और घ्राण से विवर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो स्पर्श और शब्द से विवर्जित है ।। ७ ।। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जोकि चित्त और अहङ्कार से वर्जित है ।। ८ ।।

अहं ब्रह्म परं ज्योति प्राणापानविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम् ।९
अहं ब्रह्म परं ज्योति समानपरिवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम ।।१०
अहं ब्रह्म परं ज्योति शोकमोहविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योति क्षुत्पिपासाविवर्जितम् ।।११

अहं ब्रह्म परं ज्योतिः शब्दोद्भूतादिवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्हिरण्यमभिवर्जितम् ॥१२
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्वप्नावस्थाविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्तेजसादिविवर्जितम् ॥१३
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरपकारादिवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सभाज्ञानविवर्जितम् ॥१४
अहं ब्रह्म परं ज्योतिरध्याहृतविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सत्त्वादिगुणवर्जितम् ॥१५
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सदसद्भाववर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सर्वावयववर्जितम् ॥१६

मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो प्राण और अपान से वर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो व्यान और उदान से वर्जित है ॥ ९ ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति का स्वरूप हूँ जोकि समान से परिवर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूँ जो जरा और मरण से रहित है ॥ १० ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति हूँ जोकि शोक तथा मोह से विवर्जित होता है। मैं ब्रह्म पर ज्योति का स्वरूप हूँ जो भूख और प्यास से रहित है ॥ ११ ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति हूँ जो शब्दोद्भूतादि से वर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो हिरण्य गर्भ से विवर्जित होता है ॥ १२ ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो स्वप्नावस्था से रहित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूँ जो तेजसादि से वर्जित है ॥ १३ ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो कि अपकारादि से वर्जित हूँ। मैं ब्रह्म पर ज्योति का स्वरूप वाला हू जोकि सभा के ज्ञान से विवर्जित है ॥ १४ ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो अध्याहृत से विवर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति हूँ जो सत्त्वादि गुण से विवर्जित हैं ॥ १५ ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो सद् और असद् भाव से वर्जित है। मैं ब्रह्म पर ज्योति स्वरूप हू जोकि समस्त अवयवों से वर्जित है ॥ १६ ॥

अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्भेदाभेदविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सुषुप्तिस्थानवर्जितम् ॥१७

अहं ब्रह्म परं ज्योति. प्राज्ञभावविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिमकारादिविवर्जितम् ॥१८
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मानमेयविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्मितिमातृविवर्जितम् ॥१६
अहं ब्रह्म परं ज्योति साक्षित्वादिविवर्जितम् ।
अहं ब्रह्म परं ज्योति कार्यकारणवर्जितम् ॥२०
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहंकारवर्जितम् ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिमुक्तं ब्रह्म तुरीयकम् ॥२१
नित्यशुद्धबुद्धमुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् ।
ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म सविज्ञानं विमुक्त ओम् ॥२२
अहं ब्रह्म हरं ज्योति समाधिर्मोक्षदः परः ॥२३

मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो भेद और अभेद से रहित है मैं ब्रह्म पर ज्योति हूँ जो सुषुप्ति के स्थान से वर्जित है ॥ १७ ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जो प्राज्ञ भाव से विवर्जित है । मैं ब्रह्म पर ज्योति हूं जोकि मकारादि से विवर्जित है ॥ १८ ॥ मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो ज्योति मानमेय से वर्जित का स्वरूप हूँ जो मिति-मातृ से है ॥ १६ ॥ मैं ब्रह्म ज्योति हूँ जोकि साक्षित्व आदि से वर्जित है । मैं ब्रह्म पर ज्योति हू जो कि कार्य—कारण से विवर्जित है ॥ २० ॥ देह—इन्द्रिय—मन—बुद्धि—प्राण और अहङ्कार से वर्जित तथा जाग्रत-स्वप्न और सुषुप्ति आदि से मुक्त ब्रह्म तुरीयक होता है ॥ २१ । नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-सत्य और आनन्द-अद्वय ब्रह्म मैं हू और मैं सविज्ञान विमुक्त ओम् ब्रह्म हू । मैं ब्रह्म पर ज्योति समाधि और मोक्ष प्रदान करने वाला पर ब्रह्म हूँ ॥ २२ ॥ २३ ॥

१६० ब्रह्मज्ञानम् (३)

यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पदम् ।
ब्रह्मणः कर्मसन्यासाद्वैराग्यात्प्रकृतौ लयम् ॥१

ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्य पञ्चैता गतयः स्मृताः ।
प्रीतितापविषादादेर्विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥२
सन्यासः कर्मणा त्यागः कृतानामकृतैः सह ।
अव्यक्तादौ विशेषान्ते विकारोऽस्मिन्निवर्तते ॥३
चेतनाचेतनान्यत्वज्ञानेन ज्ञानमुच्यते ।
परमात्मा च सर्वेषामाधारः परमेश्वरः ॥४
विष्णुनाम्ना च देवेषु वेदान्तेषु च गीयते ।
यज्ञेश्वरो यज्ञपुमान्प्रवृत्तैरिज्यते ह्यसौ ॥५
निवृत्तैर्ज्ञानयोगेन ज्ञानमूर्ति स चेष्यते ।
ह्रस्वदीर्घप्लुताद्य तु वचस्तत्पुरुषोत्तमः ॥६
तत्प्राप्तिहेतुर्ज्ञानं च कर्म चोक्त महामुने ।
आगमोक्त विवेकाच्च द्विधा ज्ञान तथोच्यते ॥७
शब्दब्रह्माऽऽगममय परं ब्रह्म विवेकजम् ।
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये ब्रह्मशब्द (शब्दब्रह्म) परं च यत् ॥८

श्री अग्निदेव ने कहा— यज्ञो के द्वारा देवों की प्राप्ति करता है—तप के द्वारा वैराज पद को प्राप्त करता है—कर्मों के संन्यास से ब्रह्म को प्राप्त करता है और वैराग्य से प्रकृति मे लय को प्राप्त करता है ॥ १ ॥ ज्ञान से कैवल्य की प्राप्ति होती है ये पाँच गतियाँ कही गई हैं। प्रीति–ताप और विषादादि की विशेष रूप से निवृत्ति को विरक्तता कहते हैं ॥ २ ॥ सद्कृतो के साथ किये हुए कर्मों के त्याग को सन्यास कहा जाता है। अव्यक्तादि मे विशे-षान्त मे इसमे विकार निवृत्त हो जाता है ॥ ३ ॥ चेतना-चेतन के अन्यत्व ज्ञान से ज्ञान कहा जाता है। परमात्मा सभी का आधार है अतएव वह पर-मेश्वर कहा जाता है ॥ ४ ॥ देवों मे और वेदान्तों मे वही परमेश्वर विष्णु के नाम से गाया जाया करता है। यज्ञो का ईश्वर यज्ञ पुरुष है और वह प्रवृत्तो के द्वारा यजन किया जाता है ॥ ५ ॥ निवृत्तो के द्वारा ज्ञान योग से मूर्ति वही यजन किया जाता है। ह्रस्व–दीर्घ और प्लुत वचन उस पुरुषोत्तम के लिये है ॥ ६ ॥ उसकी प्राप्ति का हेतु ज्ञान होता है और हे महामुने ! कर्म भी

बताया गया है। वह ज्ञान दो प्रकार का कहा जाता है—एक तो आगम के द्वारा कहा हुआ ज्ञान होता है और दूसरा विवेक से हुआ करता है ॥ ७ ॥ आगम मय जो ज्ञान है वह शब्द ब्रह्म होता है और विवेक से उत्पन्न ज्ञान पर ब्रह्म होता है। इस प्रकार से दो ब्रह्म जानने चाहिएं। एक तो शब्द ब्रह्म होता है और दूसरा पर ब्रह्म होता है ॥ ८ ॥

वेदादिविद्या ह्यपरमक्षर ब्रह्म सत्परम् ।
तदेतद्भगवद्वाच्यमुपचारेऽचनेऽयत ॥६
सभर्तेति तथा भर्ता भकारोऽर्थद्वयान्वित ।
नेता गमयिता स्रष्टा गकारोऽय महामुने ॥१०
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस श्रिय ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णा भग इतीङ्गना ॥११
वसन्ति विष्णौ भूतानि स च धातुस्त्रिधात्मक ।
एव हरौ हि भगवाञ्छब्दोऽन्यत्रापचारत ॥१२
उत्पत्ति प्रलय चैव भूतानामगति गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्या च स वाच्या भगवानिति ॥१३
ज्ञानशक्ति परैश्वर्य वीर्य तेजास्यशेषत ।
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभि ॥१४
खाण्डिक्य (क्यो) जनकायाऽऽह योऽय केशिध्वज पुरा ।
अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या आत्मस्वमिति या मति ॥१५
अविद्याभवसभूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम् ।
पञ्चभूतात्मके देह देही मोहतमाश्रित ॥१६

वेदादि विद्या अपार है अक्षर सत्पर ब्रह्म होता है। जो वह यह भगवान् इस शब्द से वाच्य होता है और इसका उपयोग उपचार में तथा अन्यत्र अर्चन में होता है। हे महामुने ! सभर्त्ता तथा भर्त्ता इस प्रकार से यह भकार दो अर्थों से युक्त हुआ करता है। नेता—सृजन करने वाला और गमयिता इन अर्थों के बताने वाला गकार होता है ॥ ९ ॥ १० ॥ समग्र ऐश्वर्य—वीर्य—यश

श्री-ज्ञान और वैराग्य इन छै का नाम " भग "—यह कहा गया ॥ ११ ॥ विष्णु में भूतों का वास होना है और त्रिधात्मक धातु है। इस प्रकार से भगवान् यह शब्द हरि में ही होता है अर्थात् केवल हरि को ही बतलाता है क्योंकि उपयुक्त षट् ऐश्वर्य आदि हरि ही में हुआ करते हैं। हरि के अतिरिक्त जहाँ भी भगवान् का प्रयोग होना है यह उपचार से ही किया जाता है ॥१२॥ प्राणियों की उत्पत्ति–प्रलय–अगति–गति–विद्या और अविद्या को जानता है वह भगवान् इस शब्द के द्वारा वाच्य होता है ॥ १३ ॥ ज्ञान की शक्ति–वीर्य और तेज जो कि पूर्ण रूप वाले होते हैं ये सभी हेय गुणों के बिना भगवत् शब्द के द्वारा वाच्य हुआ करते हैं ॥ १४ ॥ पहिले समय में खाण्डिक्य ने जनक से कहा था जो कि यह केनिध्वज था। अनात्मा में आत्म बुद्धि जोकि आत्मत्व की मति होती है ॥ १५ ॥ अविद्या भवसभूति बीज यह दो प्रकार का है। इस पचभूतात्मक देह में यह देही (आत्मा) मोह के तम से आश्रित रहा करता है ॥१६॥

अहमेतदितीत्युच्चैः कुरुते कुमतिर्मतिम् ।
इत्थं च पुत्रपौत्रेषु तद्देहोत्पातितेषु च ॥१७
करोति पण्डितः साम्यमनात्मनि कलेवरे ।
सर्वदेहोपकाराय कुरुते कर्म मानवः ॥१८
देहश्चान्यो यदा पुंसस्तदा बन्धाय तत्परम् ।
निर्वाणमय एवायमात्मा ज्ञानमयोऽमलः ॥१९
दुःखज्ञानमयो धर्मः प्रकृतेः स तु नात्मनः ।
जलस्य नाग्निना सङ्गः स्थालीसङ्गात्तथाऽपि हि ॥२०
शब्दास्ते कादिका धर्मास्तत्कृत्वा वै महामुने ।
तथाऽऽत्मा प्रकृतौ सङ्गादभिमानादिभूषितः ॥२१
भजते प्राकृतान्धर्मानन्यस्तेभ्यो हि सोऽव्ययः ।
बन्धाय विषयासङ्गं मनो निर्विषयं धिये ॥२२
विषयात्तत्समाकृष्य ब्रह्मभूतं हरिं स्मरेत् ।
आत्मभावं नयत्येनं तद्ब्रह्मध्यायिनं मुने ॥२३

विचार्य स्वात्मन. शक्त्या लोहमाकर्षको यथा ।
आत्मप्रयत्नसापेक्षा विशिष्टा या मनोगति ॥२४

यह कुत्सित मति वाला इस पञ्चभूतात्मक देह को ही यही मैं हूँ—ऐसी उच्च मति किया करता है अर्थात् इस शरीर को ही स्वयं अपना स्वरूप मान लेता है। इसी प्रकार से पुत्र पौत्रादिक में और उस देह से उत्पादितो मे भी ऐसी मति मान लिया करता है ॥ १७ ॥ सद्—असद् विवेक की बुद्धि वाला पण्डित आत्मा में और कलेवर में साम्य किया करता है। मानव समस्त देह के उपकार के लिये कर्म किया करता है। जब देह पुरुषों का अन्य है तो बन्ध के लिये तत्पर होता है। यह आत्मा ही निर्वाणमय—ज्ञानमय और अमल होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ दु:ख ज्ञानमय प्रकृति का धर्म है वह आत्मा का धर्म नहीं होता है। अग्नि के साथ जल का कोई भी सङ्ग नहीं होता है, स्थाली के सङ्ग से ही जल का अग्नि से सम्पर्क हुआ करता है ॥ २० ॥ हे महामुने! वे शब्दकादिक धम होते हैं तत्कृत ही शब्द ब्रह्म होता है। उसी प्रकार से यह आत्मा प्रकृति में सङ्ग से मानादि से भूषित हुआ करता है ॥ २१ ॥ उनसे अन्य जो प्राकृत धर्मों का सेवन करता है वह अव्यय है। जो विषयों में आसंग रखने वाला मानव का मन होता है वह बन्ध के लिये होता है। निर्विषय मन बुद्धि के लिये अर्थात् ज्ञान के लिये होता है ॥ २२ ॥ उस मन को विषयों से खींच कर अर्थात् हटाकर ब्रह्मभूत हरि का स्मरण तथा ध्यान करना चाहिए। हे मुने! ब्रह्म का ध्यान करने वाले इसको आत्मभाव को प्राप्त कराना चाहिए ॥ २३ ॥ अपनी आत्मा की शक्ति से विचार करके करे, जिस प्रकार से आकर्षक चुम्बक लौह को अपनी ओर खींच लेता है वैसे ही आत्मा के प्रयत्नों की सापेक्ष विशिष्ट मन की गति हुआ करती है ॥२४॥

तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते ।
विनिष्पन्द. समाधिस्थ पर ब्रह्माधिगच्छति ॥२५
यमैः सनियमैं स्थित्वा प्रत्याहृत्या मरुज्जवैः ।
प्राणायामेन पवनै. प्रत्याहारेण चेन्द्रियै ॥२६

वशीकृतैस्ततः कुर्यात्स्थितं चेत शुभाश्रये ।
आश्रयश्चेतनो ब्रह्म मूर्तं चामूर्तकं द्विधा ॥२७
सनन्दनादयो ब्रह्मभावभावनया युता. ।
कर्मभावनया चान्ये देवाद्या स्थावरान्तका ॥२८
हिरण्यगर्भादिषु च ज्ञानकर्मात्मिका द्विधा ।
त्रिविधा भावना प्रोक्ता विश्व ब्रह्म उपास्यते ॥२९
प्रत्यस्तमितभेदं यत्सत्तामात्रमगोचरम् ।
वचसामात्मसंवेद्य तज्ज्ञान ब्रह्मसंज्ञितम् ॥३०
तच्च विष्णो परं रूपमरूपस्याजमक्षरम् ।
अशक्य प्रथमं ध्यातुमतो मूर्तादि चिन्तयेत ॥३१
मद्भावभावमापन्नस्ततोऽसौ परमात्मना ।
भवत्यभेदी भेदश्च तस्याज्ञानकृतो भवेत् ॥३२

उस मन की गति का ब्रह्म में जो संयोग होता है वह ही योग कहा जाता है। निष्पन्द से रहित अर्थात् स्थिर होकर जो समाधि में स्थित हो जाता है वह पर ब्रह्म को प्राप्त किया करता है ॥ २५ ॥ यमों के द्वारा—नियमों के द्वारा—स्थित होकर प्रत्याहार से, मरुद्वेग पवनों से—प्राणायाम और प्रत्याहार के द्वारा वश में की हुई इन्द्रियों को करके शुभाश्रय में (ब्रह्मभूत हरि में) चित्त को स्थित करना चाहिए। इस चित्त का आश्रय ब्रह्म ही होता है। वह ब्रह्म मूर्त स्वरूप अर्थात् साकार रूप वाला और अमूर्त अर्थात् निराकार स्वरूप वाला दो प्रकार का होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ सनक सनन्दन आदि ब्रह्म की भावना से युक्त थे। अन्य देवादि स्थावरान्त कर्म की भावना से युत थे हिरण्यगर्भादि में ज्ञान और कर्म स्वरूप दो प्रकार की भावना होती है। इस तरह तीन प्रकार की भावना कही गई है और उसके द्वारा यह ब्रह्म उपासित किया जाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥ प्रत्यस्तमित भेद वाला—सत्तामात्र—अगोचर अर्थात् वाणी के द्वारा अनिर्वचनीय केवल आत्मा के द्वारा भली-भाँति अनुभव करने के योग्य जो वह ज्ञान होता है वह ब्रह्म

की संज्ञा वाला कहा जाता है ॥ ३० ॥ और वह विष्णु का ही, जो कि रूप रहित हैं, वह अज और अक्षर रूप होता है। उस रूप रहित ब्रह्म का ध्यान नहीं किया जा सकता है और उस निराकार पर मन टिक नहीं पाता है इस लिये मूर्त्त ब्रह्म का ही सर्व प्रथम चिन्तन करना चाहिए ॥ ३१ ॥ मद्भाव के भाव को प्राप्त होकर फिर वह परमात्मा के साथ भेद रहित हो जाता है। जो भी भेद होता है वह तो अज्ञान के द्वारा ही हुआ करता है। जब ज्ञान हो जाता है तो फिर कोई भेद नहीं रहता है ॥३२॥

१६० —अद्वैतब्रह्मविज्ञानम्

अद्वैतब्रह्मविज्ञान वक्ष्ये यद्भरतोऽगदत् ।
शालग्रामे तपश्चक्रे वासुदेवार्चनादिकृत् ॥१
मृगसङ्गान्मृगो भूत्वा ह्यन्तकाले स्मरन्मृगम् ।
जातिस्मरो मृग त्यक्त्वा देहं योगात्स्वतोऽभवत् ॥२
अद्वैतब्रह्मभूतश्च जडवल्लोकमाचरत् ।
क्षत्ता सौवीरराजस्य विष्टियोगममन्यत ॥३
उवाह शिविकामस्य क्षत्तुर्वचनचोदित. ।
गृहीतो विष्टिना ज्ञानी उवाहाऽऽत्मक्षयाय तम् ॥४
ययौ जडगति पश्चाद्ये त्वन्ये त्वरित ययु ।
शीघ्रानुशीघ्रगतान्दृष्ट्वा अशीघ्र त नृपोऽब्रवीत् ॥५
किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वान त्वयोढा शिविका मम ।
किमायाससहो न त्व पीवा नासि निरीक्ष्यसे ॥६
नाह पीवा न वै वोढा शिविका भवतो मया ।
न श्रान्तोऽस्मि न वाऽऽयासो वोढव्योऽसि महीपते ॥७
भूमौ पादयुग तस्थौ जङ्घे पादद्वये स्थिते ।
ऊरू जङ्घाद्वयावस्थौ तदाधार तयोदरम् ॥८
वक्षःस्थल तथा बाहू स्कन्धौ चोदरसंस्थितौ ।
स्कन्धस्थितेय शिविका मम भारोऽत्र किं कृतः ॥६

इस अध्याय मे अद्वैत ब्रह्म के विज्ञान के विषय मे निरूपण किया जाता है। अग्निदेव ने कहा—अब मैं अद्वैत ब्रह्म के विज्ञान के विषय मे बताऊँगा जो आपसे कहा था। भगवान् वासुदेव की अर्चना करने वाले ने शालग्राम मे तप किया था। मृग के सङ्ग से मृग होकर अन्तकाल मे मृग का स्मरण करते हुए देह त्याग किया था। जाति स्मर मृग देह को त्याग कर फिर योग से स्वत हुआ था ॥१।२॥ अद्वैत ब्रह्म भूत होकर एक जड की भाँति इस लोक में अपना आचरण किया करता था। सौवीर राज का नृप ने विष्टि योग को माना था ॥ ३ ॥ उस क्षत्रिय राजा के वचन से प्रेरित होकर इसने उसकी पालकी का वहन किया था। विष्टि के द्वारा गृहीत ज्ञानी ने आत्म क्षय के लिए उसका वहन किया था ॥४॥ यह जड गति वाला धीरे–धीरे जा रहा था और अन्य जो लोग उस पालकी के वहन करने मे संलग्न थे वे शीघ्रता जा रहे थे। इस प्रकार से शीघ्र और मन्द गति वालों को देखकर उस मन्द गमन करने वाले से राजा ने कहा ॥५॥ राजा बोला—क्या तू थक गया है ? तूने तो थोडे से ही मार्ग तक मेरी इस शिविका (पालकी) का वहन किया है अर्थात् अभी अधिक समय भी नही हुआ है। क्या तू परिश्रम करना नही चाहता है ? तू तो मोटा–ताजा है। ऐसा कमजोर दिखलाई नही देता है ॥६॥ ब्राह्मण ने कहा—न मैं मोटा हू, न मैं वहन करने वाला हूं, मैंने आपकी पालकी नही वहन की है। न मैं थका हुआ हूं और न मुझे कोई परिश्रम ही हुआ है। हे महीपते ! आप वहन करने के योग्य है। भूमि मे दोनो पैर स्थित है और दोनों पैरो पर दो जङ्घाऐ स्थित हैं। दोनों जङ्घाओ पर दो ऊरु हैं और उनके सहारे पर उदर है। उसके ऊपर वक्ष स्थल टिका है तथा बाहु और कन्धे हैं। जोकि उदर पर स्थित रहते हैं। उस स्कन्ध पर यह पालकी स्थित है अर्थात् पालकी का वहन किये जाने वाला डण्डा है। इसलिए मुझे भार किस कारण से हो सकता है ॥७।८।९॥

शिबिकाया स्थित चेद देह त्वदुपलक्षितम् ।
तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ॥१०

अहं त्वं च तथाऽन्ये च भूतैरुह्याम पार्थिव ।
गुणप्रवाहपतितो गुणवर्गो हि यास्ययम् ॥११
कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते ।
अविद्यानचितं कर्म तच्चाशेषेषु जन्तुषु ॥१२
आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
प्रवृद्ध्यपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु ॥१३
यदा नोपचयस्तस्य यदा नापचयो नृप ।
तदा पीवा न (ना) सीति त्वं कया युक्त्या त्वयेरितम् ॥१४
भूजङ्घापादकट्यूरुजठरादिषु संस्थिता ।
शिबिकेयं तथा स्कन्धे तदा भारः समस्त्वया ॥१५
तदन्यजन्तुभिर्भूपशिबिकोत्थानकर्मणा ।
शैलद्रुमगृहोत्थोऽपि पृथिवीसंभवोऽपि वा ॥१६
यथा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः करणैर्नृप ।
सोढव्यः स महाभारः कतरो नृपते मया ॥१७

इस शिबिका में तुम अवस्थित अर्थात् तुम्हारा कहे जाने वाला यह देह स्थित है। यहाँ पर तुम और यहाँ पर मैं कहे जाया करते हैं। हे पार्थिव ! यह कहना है। मैं—तू तथा अन्य भूतों के द्वारा वहन किये जाते हैं। गुणों के प्रवाह में पतित यह गुणों का समुदाय ही जाया करता है ॥१०।११॥ हे पृथिवी पते ! ये गुण भी कर्म के वश होते हैं। जो कि सत्वाद्य हैं। कर्म अविद्या से संचित होता है और वह समस्त जन्तुओं में होता है ॥१२॥ यह आत्मा तो परम शुद्ध—अक्षर अर्थात् नाशविहीन—शान्त—निर्गुण और प्रकृति से पर होता है। इसकी न तो प्रवृद्धि ही है और न कोई अपचय ही होता है। यह समस्त जन्तुओं में एक ही होता है ॥१३॥ हे नृप ! जबकि इसका उपचय तथा अपचय ही नहीं होता है तो आपने यह कैसे कह दिया कि क्या तू मोटा—ताजा नहीं है। यह आपने किस युक्ति से कहा जाता था ? भूमि—जाँघ—पैर—कमर—ऊरु और जठर आदि पर स्थित यह पालकी है तब स्कन्ध पर तेरे सम ही भार

है ॥१४।१५॥ सो अन्य जन्तुओं के द्वारा भूमि और पालकी के उठाने के कर्म से शील द्रव्य से गृहीत उदय अथवा पृथिवी से सम्भव जिस प्रकार से प्राकृत करणों से पुरुष का पृथग्भाव होता है उसी तरह हे नृपते ! वह महाभार कितना सहना करना चाहिए ॥१६।१७॥

यद्द्रव्या शिविका चेयं तद्द्रव्यो भूतसंग्रहः ।
भवतो मेऽखिलस्यास्य समत्वेनोपबृंहितः ॥१८
तच्छ्रुत्वोवाच राजा तं गृहीत्वाऽङ्घ्री क्षमाप्य च ।
प्रसादं कुरु त्यक्त्वेमां शिविकां ब्रूहि शृण्वते ॥
यो भवान्यन्निमित्तं वा यदागमनकारणम् ॥१९
श्रूयतां योऽहमित्येतद्वक्तुं नैव च शक्यते ।
उपभोगनिमित्तं च सर्वत्राऽऽगमनक्रिया ॥२०
सुखदुःखोपभोगौ तु तौ देश (शा) द्युपपादकौ ।
धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देशादिमृच्छति ॥२१

जिस द्रव्य वाली यह पालकी है उसी द्रव्य वाला भूतों का संग्रह भी होता है । चाहे वह आपका हो या मेरा हो, इस समस्त भूत जात का समत्व से ही उपबृंहित है ॥१८॥ यह सुनकर राजा ने कहा और उनके चरणों का स्पर्श कर क्षमा कर देने की प्रार्थना की और कहा—आप मुझ पर प्रसन्न होवें तथा इस पालकी का त्याग कर देवें । आप मुझे कृपा कर बताइये कि आप कौन हैं और किस निमित्त से यहाँ आपका आगमन हुआ है ॥१९॥ ब्राह्मण ने कहा—आप सुनिये, मैं जो हूँ—यह बताया नहीं जा सकता है । उपभोग करने के कारण से ही सर्वत्र आगमन करने की क्रिया होती है ॥२०॥ सुख और दुःख के उपभोग देश आदि के उत्पादक हुआ करते हैं । यह जन्तु धर्म और अधर्म से होने वाले सुख दुःखों को भोगने के लिए देशादि को प्राप्त हुआ करता है ॥२१॥

योऽस्ति सोऽहमिति ब्रह्मन्कथं वक्तुं न शक्यते ।
आत्मन्येष न दोषाय शब्दोऽहमिति यो द्विज ॥२२

शब्दोऽहमिति दोषाय नाऽऽत्मन्येष तथैव तत् ।
अनात्मन्यात्मविज्ञान शब्दो वा भ्रा न्तलक्षण· ॥२३
यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थित ।
तदा हि को भवान्कोऽहमित्येतद्विफल वच ॥२४
त्व राजा शिविका चेय वय वाहा· पुर सरा ।
अय च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते २५
वृक्षाद्दारु ततश्चेय शिविका त्वदधिष्ठिता ।
का वृक्षसज्ञा जाताऽस्य दारुसज्ञाऽथ वा नृप ॥२६
वृक्षारूढो महाराजो नाय वदति चेतनः ।
न च दारुणि सर्वस्त्वा ब्रवीति शिविकागतम् ॥२७
शिविका दारुसघाता रचनास्थितिसस्थित ।
अन्विष्यता नृपश्रेष्ठ तद्भेदे शिविका त्वया ॥२८
पुमान्स्त्री गौरय वाजी कुञ्जरो विहगस्तरु ।
देहेषु लोकसज्ञेय विज्ञेया कर्महेतुषु ॥२६
जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तोष्ठौ तालुक नृप ।
एतेनाह यत सर्वे वाङ्निष्पादनहेतव । ३०

राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जो है वह मैं हूँ—यह कैसे नहीं बताया जा सकता है। आत्मा में, हे द्विज ! जो अहम् यह शब्द है वह दोष के लिए नहीं होता है। ब्राह्मण ने कहा—शब्द ऽहम्-यह दोष के लिए नहीं होता है। यह उसी प्रकार से आत्मा म है। अनात्मा में आत्म-विज्ञान अथवा शब्द भ्रान्ति लक्षण होता है ॥२२।२३॥ जब एक ही पुमान् समस्त देहों में अवस्थित रहता है तो फिर आप कौन हैं और मैं कौन हू—यह वचन ही सब फल रहित होता है ॥२४॥ तुम राजा हो—यह शिविका है—हम वहन करने वाले हैं—यह आपका लोक है—यह सम्पूर्ण वचनावलि हे नृप ! असत् ही कही जाया करती है। वृक्ष से काष्ठ होता है और फिर उस काष्ठ से यह शिविका की रचना हुई है जिस पर आप बैठे हुए हैं। हे नृप ! वृक्ष की कौन सी सज्ञा हुई ? वृक्ष

की अथवा काष्ठ की, इसकी क्या संज्ञा होती है ? कोई भी चेतना रखने वाला यह नहीं कह सकता है कि महाराज वृक्ष पर आरूढ हैं। और सब कोई शिविका पर स्थित आपको काष्ठ पर स्थित भी नहीं कहा करता है ॥ २५ ॥ ॥२६॥२७॥ रचना की स्थिति से संस्थित दारु (काष्ठ) का एक संघात ही शिविका है। हे नृपों में श्रेष्ठ ! उसके भेद में आपको शिविकाही खोज करनी चाहिए ॥२८॥ पुरुष–स्त्री–यह गौ–अश्व–हाथी–पक्षी और वृक्ष इस प्रकार से देहों में जो कि कर्मों के हेतु वाले होते हैं–यह लोक संज्ञा से जाननी चाहिए ॥२९॥ हे नृप ! जिह्वा—दाँत–दोनों ओठ और तालु यह सब 'अहम्' अर्थात् 'मैं'—इसे बोला करते हैं। इससे 'अहम्' बोला जाया करता है। ये सब वाक् के निष्पादन के हेतु होते हैं ॥३०॥

किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम् ।
तथाऽपि वाङ्नाहमेतदुक्तं मिथ्या न युज्यते ॥३१
पिण्डः पृथग्यतः पुंसः शिरःपाण्यादिलक्षणः ।
ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन्करोम्यहम् ॥३२
यदन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम ।
तदेषोऽहमयं चान्यो वक्तुमेवमपीष्यते ॥३३
परमार्थभेदो न नगो न पशुर्न च पादपः ।
शरीराणि विभेदाश्च य एते कर्मयोनयः ॥३४
यस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभटात्मकम् ।
तच्चान्यच्च नृपेत्थं तु न सत्सम्यगनामयम् ॥३५
त्वं राजा सर्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः ।
पत्न्याः पतिः पिता सूनोः कस्त्वां भूप वदाम्यहम् ॥३६
त्वं किमेतच्छिरः किं तु शिरस्तव तथोदरम् ।
किमु पादादिकं त्वं तवैतत्किं महीपते ॥३७
समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग्भूतो व्यवस्थितः ।
कोऽहमित्यत्र निपुणो भूत्वा चिन्तय पार्थिव ॥
तच्छ्रुत्वोवाच राजा तमवधूतं द्विजं हरिम् ॥३८

हेतुओं के द्वारा यह वाणी 'अहम्' यह बोला करती है सो क्या यह वाक् ही स्वयं अहम् अर्थात् मैं है ? तो भी यह वाक् अहम् नहीं है। इसलिए यह वचन मिथ्या है और उसको कहना ठीक नहीं होता है ॥३१॥ पुरुष का शिर-पाद आदि लक्षणों वाला पिण्ड तो अहम् से एक पृथक् ही होता है। हे राजन् ! आप ही बताइये, मैं अहम्—इस संज्ञा का प्रयोग किसमें और कहाँ करूँ ? ॥३२॥ हे राजाओं में श्रेष्ठ ! मुझसे पर कोई अन्य ही है सो यह अहम् है और वह अन्य ही है। इस प्रकार से कहा जा सकता है ॥३३॥ परमार्थ में कोई भी भेद नहीं होता है। शरीर से जो ये विभिन्न भेद हैं वे सब कर्म योनियाँ होते हैं ॥३४॥ जो राजा का कहना और लोक में राजा के भट आदि का कथन होता है यह तथा अन्य सभी, हे नृप ! सत् कथन तथा सम्यक् कथन और असम्यक् कथन नहीं हैं ॥३५॥ तू इस समस्त लोक का राजा है—पिता का पुत्र है—शत्रु का तू शत्रु है—पत्नी का पति है और पुत्र का पिता है। हे भूप ! मैं आपको क्या बोलूँ अर्थात् क्या कह कर पुकारूँ ? ॥३६॥ तू क्या यह शिर है ? शिर तो तेरा है। क्या तू उदर है ? उदर भी तेरा है तू नहीं होता है। क्या पैर आदि तू है ? ये सब भी तेरे ही हैं। हे महीपते ! तू इन समस्त अवयवों से पृथक् ही व्यवस्थित है। हे पार्थिव ! मैं कौन हूँ—यहाँ पर बहुत ही होशियारी से सावधान होकर विचार करो ॥३७।३८॥

श्रेयोर्थमुद्यत प्रष्टु कपिलर्षिमहं द्विज।
तस्यांश कपिलर्षेस्त्वं मत्कृते दा (ज्ञा) नदो भुवि ॥३९
ज्ञानवीच्युदधेर्यस्माद्यच्छ्रेयस्तन्मे वद ॥४०
भूय पृच्छसि किं श्रेय परमार्थं न पृच्छसि।
श्रेयांसि परमार्थानि अशेषाण्येव भूपते ॥४१
देवताराधनं कृत्वा धनसंपत्तिमिच्छति।
पुत्रानिच्छति राज्यं च श्रेयस्तस्यैव किं नृप ॥४२
विवेकिनस्तु संयोग श्रेयो य परमात्मन।
यज्ञादिका क्रिया न स्यान्नास्ति द्रव्योपपत्तिता ॥४३

परमार्थात्मनोर्योगः परमार्थ इतीष्यते ।
एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुण. प्रकृतेः पर. ॥४४
जन्मवृद्धयादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्यय. ।
पर (र) ज्ञानमयोऽसङ्गी गुणजात्यादिभिर्विभुः ॥४५
निदाघऋतुसंवादं वदामि द्विज त शृणु ।
ऋतुर्ब्रह्मसुतो ज्ञानी तच्छिष्योऽभूत्पुलस्त्यज ॥४६

यह सुनकर राजा उस अवधूत द्विज हरि से बोला—हे द्विज ! मैं श्रेय अर्थ पूछने के लिये कपिल ऋषि के पास गया था। अब उन्ही कपिल ऋषि के अंश स्वरूप आप मेरे लिये दान देने वाले भूमि पर आ गये हैं। अत ज्ञान की तरङ्गो वाले इस सागर से जो भी श्रेय हो वह मुझे कृपा कर बताइयेगा ॥३६।४०॥ ब्राह्मण ने कहा—फिर आप मुझसे क्या श्रेय पूछते हैं और परमार्थ को नही पूछते हैं। श्रेय तो सभी परमार्थ ही हुआ करते हैं ॥४१॥ हे नृप ! देवो की आराधना करके धन-सम्पत्ति की इच्छा किया करता है, पुत्र की चाह करता है, राज्य की कामना करता है उस इन सबकी चाह करने वाले का श्रेय होता है ? लोक दृष्टि से मानव इनको ही श्रेय समझता है किन्तु जो विवेकशील होता है उसका तो परमात्मा के साथ जो सयोग होता है वही श्रेय है। यज्ञ आदि की क्रिया भी श्रेय नही है और द्रव्योपपत्तिता भी श्रेय नहीं होता है। परमार्थ मे तो आत्मा और परमात्मा का योग ही श्रेय है और यही परमार्थ भी कहा जाता है। यह आत्मा एक-व्यापी-सम-शुद्ध-निर्गुण-प्रकृति से पर—जन्म वृद्धि आदि से रहित-सर्वगत-अव्यय-पर-ज्ञानमय-गुण जाति आदि का असङ्गी-विभु होता है ॥४२ से ४५॥ हे राजन् ! अब मैं एक निदाघ और ऋतु का सम्वाद बताता हू उसका तुम श्रवण करो। ऋतु ब्रह्मा का पुत्र और ज्ञानी था। उसका शिष्य पुलस्त्यज था ॥४६॥

निदाघ आसीच्चोऽस्मान्नगरे वै पुरे स्थित ।
देविकायास्तटे त च तर्कयामास वै ऋतुः ॥४७

दिव्ये वर्षसहस्रेऽगान्निदाघमवलोकितुम् ।
निदाघो वैश्वदेवान्ते भुक्त्वाऽन्नं शिष्यमब्रवीत् ॥
भुक्त्यन्ते तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिदा साक्षया यतः ॥४८
क्षुदस्ति यस्य भुक्तेऽन्ने तुष्टिर्ब्राह्मण जायते ।
न मे क्षुदभवत्तृप्ति कस्मात्त्वं परिपृच्छसि ॥४६
क्षुत्तृष्णे देहधर्माख्ये न ममैते यतो द्विज ।
पृष्टोऽहं तत्त्वया ब्रूया तृप्तिरस्त्येव मे सदा ॥५०
पुमान्सर्वगतो व्यापी आकाशवदयं ततः ।
अतोऽहं प्रत्यगात्माऽस्मीत्येतदर्थे भवेत्कथम् ॥५१
सोऽहं गन्ता न चाऽऽगन्ता नैकदेशनिकेतनः ।
त्वं चान्यो न भवेन्ना (नो) पि नान्यस्त्वत्तोऽस्मि वाऽप्यहम् ॥५२
मृन्मयं हि गृहं यद्वन्मृदा लिप्तं स्थिरी भवेत् ।
पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ॥५३
ऋतुरस्मि तवाऽऽचार्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज ।
इहाऽऽगतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः ॥५४

इससे विद्या प्राप्त करने वाला निदाघ नगर मे स्थित रहता था । ऋतु ने उसे देविका के तट पर तक्ति किया था । दिव्य एक सहस्र वर्षों के हो जाने पर निदाघ मे मिलने को गया था । निदाघ वैश्वदेव के अन्त में अन्न को खाकर शिष्य से बोला—भुक्ति के अन्त मे तृप्ति उत्पन्न हुई जोकि तुष्टि के देने वाली और क्षय रहित होती है ? ऋतु ने कहा–अन्न के खा लेने पर जिसको क्षुधा है, हे ब्राह्मण ! उसे तुष्टि होती है । मुझे क्षुधा ही नही हुई फिर आप तृप्ति के विषय कैसे पूछते हैं ॥४७।४८।४६॥ हे द्विज ! ये क्षुधा और तृष्णा देह के धर्म कहे जाते हैं । क्योंकि ये मेरे नही हैं । आपके द्वारा मैं पूछा गया हू इसलिये बताता हूँ कि मुझे तो सदा ही तृप्ति रहा करती है । ५०॥ यह पुमान् सर्वगत व्यापी आकाश की भांति होता है । इसलिये मैं प्रत्यगात्मा हू–यह इस अर्थ मे कैसे होता है ॥५१॥ वह मैं गन्ता (गमन करने वाला) नही हूँ–आगन्ता नहीं

हूं और एक देश में निकेतन वाला नही हूं । तू भी अन्य नहीं है अथवा मैं भी तुझसे अन्य नही हू ।। ५२ ।। जिस प्रकार से मिट्टी से लिपा हुआ मृन्मय यह घर स्थिर होता है उसी तरह से पार्थिव परमाणुओं से यह देह भी पार्थिव ही होता है ।। ५३ ।। हे द्विज ! मैं तेरा आचार्य ऋतु हूं और तुझे प्रज्ञा के दान करने के लिए यहां आया हूं और तुझे परमार्थ कहकर जाऊंगा ।।५४।।

एकमेवमिद विद्धि न भेद सकलं जगत् ।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ।।५५
ऋतुर्वर्षसहस्रान्ते पुनस्तन्नगर ययौ ।
निदाघ नगरप्रान्त एकान्ते स्थितमब्रवीत् ।।
एकान्ते स्थीयते कस्मान्निदाघ ऋतुमब्रवीत् ।।५६
भो विप्र जनसवादो महानेप नरेश्वर. ।
प्रविवीक्ष्य पुर रम्य तेनात्र स्थीयते मया ।।५७
नराधिपोऽत्र कतम. कतमश्चेतरो जन. ।
कथ्यता मे द्विजश्रेष्ठ त्वमभिज्ञो द्विजोत्तम् ।।५८
योऽय गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुत्थितम् ।
अधिरूढो नरेन्द्रोऽय परिवारस्तथेतर ।।५६
गजो योऽयमधो ब्रह्मन्नुपर्येष स भूपति ।
ऋतुराह गजः कोऽत्र राजा चाऽह निदाघकः ।।६०
ऋतुर्निदाघ आरूढो दृष्टान्त पश्य वाहनम् ।
उपर्यह यथा राजा त्वमध कुञ्जरो यथा ।।६१

यह सब एक ही जानो, समस्त जगत् एक ही है । कोई भी भेद नही होता है । यह जगत् वासुदेव नामक परमात्मा का स्वरूप है ।।५५।। फिर ऋतु एक सहस्र वर्षों के अन्त में नगर मे गया । नगर के प्रान्त मे एकान्त मे स्थित निदाघ से बोला । निदाघ ऋतु से बोला—आप किस कारण से एकान्त में स्थित रहा करते हैं । निदाघ ने कहा—हे विप्र ! यह महान् जन सम्वाद है । पुर को सुन्दर देखकर मैं यहाँ पर स्थित रहता हूँ ।।५६।५७।। ऋतु ने कहा—

यहाँ पर नरों का अधिप कौन सा है और इतर जन कौन हैं ? हे द्विज श्रेष्ठ! आप पूर्ण ज्ञाता हैं । अतएव मुझसे कहिए ॥ ५८ ॥ निदाघ ने कहा—जो यह नरेन्द्र पर्वत के शिखर के समान समुत्थित उन्मत्त गजेन्द्र पर आरूढ है—यह परिवार तथा अन्य गज जो यह अधो भाग में है और हे ब्रह्मन् ! जो भूपति ऊपर के भाग में है । ऋतु ने कहा—यहाँ गज कौन सा है और राजा कौन है ? निदाघ बोला—निदाघ पर आरूढ ऋतु है । वाहन के दृष्टान्त को देखो । जिस प्रकार से राजा है वैसे ऊपर मैं हूँ और जिस तरह कुञ्जर है वैसे नीचे तुम हो ॥५६।६०।६१॥

ऋतुः प्राह निदाघं तं कतमस्त्वामहं वदे ।
उक्तो निदाघस्तं नत्वा प्राह मे त्वं गुरुर्ध्रुवम् ॥६२
नान्यस्माद्द्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा ।
ऋतुः प्राह निदाघं तं ब्रह्मज्ञानाय चागतः ॥६३
परमार्थं सारभूतमद्वैतं दर्शितं मया ॥६४
निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत् ।
सर्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदाऽऽत्मनि ॥६५
अवाप मुक्तिं ज्ञानात्स तथा त्वं मुक्तिमाप्स्यसि ।
एकः समस्तं त्वं चाहं विष्णुः सर्वगतो यतः ॥६६
पीतनीलादिभेदेन यथैकं दृश्यते नभः ।
भ्रान्तिदृष्टिभिरात्माऽपि तथैकः स पृथक्पृथक् ॥६७
मुक्तिं ह्यवाप भवतो ज्ञानसारेण भूपतिः ।
संसाराज्ञानवृक्षारिं ज्ञानं ब्रह्मेति चिन्तय ॥६८

ऋतु उस निदाघ से बोला मैं तुमको कौन बताऊँ । इस तरह से बताया हुआ निदाघ बोला और उसको प्रणाम किया । तुम मेरे निश्चित रूप से गुरु हो । इस द्वैत के संस्कार से संस्कृत मन वाले मुझको अन्य से उस प्रकार का ज्ञान नहीं होता है । ऋतु ने उस निदाघ से कहा—ब्रह्म ज्ञान के लिए आगत हुआ हूँ । मैंने यह सारभूत अद्वैत जो वस्तुतः परमार्थ है, दिखला दिया है ।

ब्राह्मण ने कहा—उस उपदेश से निदाघ भी अद्वैत पर हो गया। तब उसने समस्त प्राणियो को आत्मा मे अन्य भेद से देखा था। वह इस ज्ञान से मुक्ति को प्राप्त हुआ था। उसी भाँति तू मुक्ति को प्राप्त करेगा। तू और मैं सब एक ही हैं क्योंकि सर्वगत विष्णु हैं ॥६२ से ६६॥ जिस तरह पीत—नील आदि के भेद वाला दिखाई दिया करता है किन्तु वह नभ एक ही होता है। उसी तरह यह एक ही आत्मा भी एक है और भ्रान्ति की दृष्टि से पृथक् पृथक् दिखाई देता है। अग्निदेव ने कहा—आपके इस ज्ञान के सार से राजा मुक्ति को प्राप्त हुआ। इस असार के अज्ञान वृक्ष के शत्रु ब्रह्मज्ञान का चिन्तन करो ॥६७।६८॥

१८१—गीतासारः

गीतासार प्रवक्ष्यामि सर्वगीतोत्तमोत्तमम्।
कृष्णो यमर्जुनायाऽह पुरा वै भुक्तिमुक्तिदम् ॥१
गतासुरगतासुर्वा न शोच्यो देहवानज.।
आत्माऽजरोऽमरोऽभेद्यस्तस्माच्छोकादिक त्यजेत् ॥२
ध्यायतो विषयान्पु स: सङ्गस्तेपूपजायते।
सङ्गात्कामस्तत क्रोध क्रोधात्समोह एव च ॥३
समोहात्स्मृतिविभ्रशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।
दु सङ्गहानि सत्सङ्गान्मोक्षकामी च कामनुत् ॥४
कामत्यागादात्मनिष्ठ स्थिरप्रज्ञस्तदोच्यते।
या निशा सर्वभूताना तस्या जागर्ति सयमी ॥५
यस्या जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुने।
आत्मन्येव च सतुष्टस्तस्य कार्य न विद्यते ॥६
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
तत्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयो: ॥७
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते।
सर्व ज्ञानप्लवेनैव वृजिन सतरिष्यति ॥८

इस अध्याय में गीता के सार को बताया जाता है। अग्निदेव ने कहा—अब हम समस्त गीतों से उत्तमोत्तम गीता के सार को बतावेंगे जोकि भगवान् कृष्ण ने पहिले अर्जुन के लिए समस्त प्रकार के सांसारिक भोगों के उपभोग और अन्त समय में इस प्रकार संसार के आवागमन से छुटकारा देने वाले मोक्ष का देने वाला कहा था ॥१॥ श्री भगवान् ने कहा था—इस अजन्मा देहवान् को मृत तथा जीवित का भी शोक नहीं करना चाहिए अर्थात् कौन मर गया है और कौन जिन्दा है इस बात की कुछ भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि यह आत्मा अमर है अर्थात् कभी मरा नहीं करती है। यह अजर है अर्थात् इसको किसी समय भी बुढ़ापा नहीं आता है। यह आत्मा भेदन करने के योग्य भी नहीं है। इस कारण से इस आत्मा के विषय में सब प्रकार के शोक आदि का त्याग कर देना चाहिए ॥२॥ मनुष्य जब संसार के विषयों की ओर अपना मन लगाया करता है तो उसके ध्यान से उन विषयों में एक प्रकार की आसक्ति उत्पन्न होने लग जाती है। जब सङ्ग (आसक्ति) होता है तो उससे उसको कामना (इच्छा) होती है। फिर उस काम की पूर्ति न होने पर उसे क्रोध हो जाता है। क्रोध से सम्मोह की उत्पत्ति हुआ करती है ॥३॥ जब सम्मोह होता है तो स्मृति का विभ्रम हो जाता है और स्मृति के विभ्रंश होते ही बुद्धि का नाश हो जाता है। बुद्धि के नाश होने से वह नष्ट हो जाता है। इसलिये सङ्ग बुरा नहीं होना चाहिए क्योंकि दुःसङ्ग से हानि होती है। सत् सङ्ग से मोक्ष की कामना करने वाला सज्जन और कामच्युत् होता है ॥ ४ ॥ काम के त्याग से आत्म आत्म निष्ठ होता है और तभी वह स्थिर प्रज्ञा वाला कहा जाया करता है। जो समस्त प्राणियों के लिये रात्रि हुआ करती है अर्थात् जिस समय में सब सोया करते हैं उस समय में जो संयमशील पुरुष होता है वह जागरण किया करता है ॥५॥ जिस समय में समस्त भूत जगा करते हैं वह समय दीन की निशा समझो वह अपनी आत्मा ही में सन्तुष्ट रहा करता है। उसको कुछ भी कार्य नहीं होता है ॥ ६ ॥ उसका यहाँ कृत से कुछ भी अर्थ नहीं होता है और न अकृत से ही कुछ प्रयोजन हुआ करता है। हे महाबाहो! वह तो गुण और कर्म के विभागों का तत्त्ववेत्ता होता है ॥७॥ गुण गुणों रहा करते हैं—

यह मानकर ही वह प्रस्तुत रहता है। वह तत्त्वों का वेत्ता समस्त पाप को ज्ञान रूपी प्लव से ही सतीर्ण कर लेता है ॥८॥

ज्ञानाग्नि. सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्ग त्यक्त्वा करोति. य ॥९
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ।
सर्वभूतेषु चाऽऽत्मान सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ॥१०
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्रसमदर्शन. ।
शुचीना श्रीमता गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥११
न हि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गति तात गच्छति ।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥१२
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१३
चतुर्विधा भजन्ते मा ज्ञानी चैकत्वमास्थित· ।
अक्षर ब्रह्म परम स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ॥१४
भूतभावोद्भवकरो विसर्ग. कर्मसज्ञितः ।
अधिभूत क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम् ॥१५
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृता वर ।
अन्तकाले स्मरन्मा च मद्भाव यात्यसशय ॥१६

हे अर्जुन ! जो सग अर्थात् आसक्ति का त्याग करके समस्त कर्मों को ब्रह्म में समर्पित करके किया करता है वह अपनी ज्ञान रूपी अग्नि के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों को भस्मसात् कर दिया करता है ॥ ९ ॥ जिस तरह कमलिनी का पत्र सर्वदा जल के ऊपर ही रहा करता है और वह जल से लिप्त नहीं होता है उसी तरह तत्त्ववेत्ता पुरुष भी पापों से कभी लिप्त नहीं हुआ करता है। समस्त प्राणियो मे आत्मा को अर्थात् अपने आपको और अपने आप मे समस्त भूतो को वह देखा करता है। योग से युक्त आत्मा वाला पुरुष सर्वत्र समान दृष्टि रखने वाला है अर्थात् सबको अपने ही समान समझता है। जो आदमी

योग से किसी कारण वश भ्रष्ट हो जाता है वह परम पवित्र और श्रीमानों के घर में आकर उत्पन्न हुआ करता है ॥१०।११॥ कोई भी कल्याण कृत् दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है। हे तात ! यह गुणमयी दैवी मेरी माया बहुत ही दुरत्यय हुआ करती है अर्थात् इसका जानना बहुत ही कठिन होता है ॥१२॥ जो पुरुष सब ओर से अपनी मनोवृत्ति को हटाकर मेरी ही शरणागति में आ जाया करते हैं वे ही मेरी इस माया पर विजय प्राप्त करते हैं। मेरे भजन वाले भक्त भी चार प्रकार के होते हैं। हे भरतर्षभ ! मेरे कुछ भक्त तो आर्त होते हैं अर्थात् परम दुःखित होकर मेरी भक्ति किया करते हैं। कुछ मेरे भक्त जिज्ञासु रूप में हुआ करते हैं अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाले होकर मेरा भजन किया करते हैं। कुछ धन-सम्पत्ति के वैभव को प्राप्त करने की इच्छा से मेरी भक्ति करते हैं जो अर्थार्थी कहे जाते हैं और एक भक्त ऐसे होते हैं, जिन्हें मेरा पूर्ण ज्ञान होता है वे ज्ञानी भक्त कहे जाते हैं ॥१३॥ ज्ञानी एक रस में आस्थित होता है। परमब्रह्म अक्षर होता है और अपने में उसका जो भाव होता है उसे अध्यात्म कहा जाता है ॥ १४ ॥ भूत भाव के उत्पन्न करने वाला विसर्ग कर्म की संज्ञा से युक्त होता है। जो क्षर भाव है वही अधिभूत होता है और पुरुष अधिदैवत होता है ॥१५॥ यहाँ देह में मैं ही अधियज्ञ हूँ। हे देहधारियों में परमश्रेष्ठ ! जो अन्तकाल में मेरा स्मरण करते हुए देह त्याग किया करता है वह बिना किसी संशय के मेरे भाव को ही प्राप्त होता है ॥१६॥

यं यं भावं स्मरन्नन्ते त्यजेद्देहं तमाप्नुयात् ।
प्राणं न्यस्य भ्रुवोर्मध्ये अन्ते प्राप्नोति मत्परम् ॥१७
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म वदन्देहं त्यजेत्तथा ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ता सर्वा मम विभूतयः ॥१८
श्रीमदूर्जितः सर्वे ममांशा प्राणिनः स्मृताः ।
अहमेको विश्वरूप इति ज्ञात्वा विमुच्यते ॥१९
क्षेत्रं शरीरं यो वेत्ति क्षेत्रज्ञः स प्रकीर्तितः ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥२०

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचरा ॥२१
इच्छा द्वेष. सुख दुख सघातश्चेतना धृति ।
एतत्क्षेत्र समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥२२

अन्त समय मे यह प्राणी जिस–जिस भी भाव का स्मरण करते हुए इस पाञ्च भौतिक देह का त्याग करता है उसी को वह प्राप्त किया करता है। जो प्राण का त्याग करके अन्त मे भृकुटियो क मध्य मे दृष्टि लगा कर मत्परायण होता है और 'ओम्' इस एकाक्षर ब्रह्म का जाप करते हुए देह का त्याग करता है वह मुझको प्राप्त किया करता है। ब्रह्म से स्तम्ब पर्यन्त सभी मेरी ही विभूतियाँ हैं ॥१७।१८॥ जो श्रीमान् और ऊर्जित प्राणी होते हैं वे सभी प्राणी मेरे ही अश कहे गये हैं। मैं एक विश्व रूप हूँ—ऐसा ज्ञान प्राप्त करके ही इस ससार से प्राणी विमुक्त होता है ॥ १९ ॥ जो मानव इस शरीर को क्षेत्र जानता है वह क्षेत्रज्ञ अर्थात् क्षेत्र क ज्ञान रखने वाला कहा गया है। जो इस शरीर रूपी क्षेत्र और उस के ज्ञाता क्षेत्रज्ञ का ज्ञान माना गया है ॥२०॥ महाभूत—अहङ्कार—बुद्धि—अव्यक्त—ग्यारह इन्द्रिया और पाच इन्द्रियो के गोचर–इच्छा—द्वेष—सुख—दु ख—सघात–चेतना और धृति यह सक्षेप से विकार युक्त क्षेत्र कहा गया है ॥२१।२२॥

अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासन शौच स्थैर्यमात्मविनिग्रह ॥२३
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदु खदोषानुदर्शनम् ॥२४
असक्तिरनभिष्वङ्ग पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्य च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥२५
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी ।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनससदि ॥२६

अध्यात्मज्ञाननिष्ठत्व तत्त्वज्ञानानुदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञान यदतोऽन्यमथा ॥२७
ज्ञेय यत्तत्प्रवक्ष्यामि य ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादि परम ब्रह्म सत्त्व नाम तदुच्यते ॥२८
सर्वत पाणिपादान्त सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥२९
सर्वेन्द्रियगुणाभास सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्त सर्वभृच्चैव निर्गुण गुणभोक्तृ च ॥३०

मान वाला न होना—दम्भ रहित होना—अहिंसा—क्षान्ति—आर्जव अर्थात् सरलता—आचार्य वर्ग की उपासना करना—शुद्धि—स्थिरता—आत्मा का विशेष रूप से निग्रह—इन्द्रियों के अर्थों म अर्थात् विषयों मे वैराग्य—अहङ्कार का न होना—जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधियों मे दुख तथा दोषों का अनुदर्शन करना—आसक्ति—पुत्र—स्त्री और घर आदि में अनभिषङ्ग—नित्य चित्त का समभाव रखना चाहे कोई अभीष्ट वस्तु हो या अनिष्ट की उपपत्ति हो, सबमे समान चित्तता—मुझमे अव्यभिचार रहित अनन्य योग से भक्ति का रखना—एकान्त स्थान का सेवन—जन समुदाय म रति का न रखना—अध्यात्म ज्ञान मे निष्ठित रहना—तत्त्व ज्ञान का अनुदर्शन करते रहना—यह ज्ञान कहा गया है और इसमे भिन्न सभी अज्ञान होता है ॥ २३ से २७ ॥ अब जो ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य है उसे बतलाते हैं जिसका ज्ञान प्राप्त करके अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है । परमब्रह्म अनादि है और उसका सत्त्व नाम कहा जाता है ।२८। उसके सभी ओर पाणि (हाथ) और पाद हैं । वह सब तरफ शिर—नेत्र और मुख वाला है । वह लोके मे सब ओर श्रुति वाला है और सबको आवृत करके स्थित रहता है ॥२९॥ यह सब इन्द्रियों के गुणों के आभास वाला और समस्त इन्द्रियों से रहित है । सबका भरण करने वाला है और असक्त है । वह स्वय गुण रहित है और गुणों का भोक्ता भी है ॥३०॥

वहिरन्तश्च भूतानामचर चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेय दूरस्थ चान्तिकेऽपि यत् ॥३१

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।
भूतभर्तृ च विज्ञेय ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥३२
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्य हृदि सर्वस्य संस्थितम् ॥३३
ध्यानेनाऽऽत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये साख्येन योगेन कर्मयोगेन (ण) चापरे ॥३४
अन्ये त्वेवमजानन्त. श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चाऽऽशु तरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणा ॥३५

भूतो के बाहिर और अन्दर चर एव अचर हैं । किन्तु वह इतना सूक्ष्म है कि इस कारण से नही जानने के योग्य होता है । वह बहुत दूर में स्थित है और सबके बिल्कुल समीप मे रहने वाला भी है । वह भूतो मे अविभक्त होते हुए भी विभक्त की भाँति स्थित रहता है । भूतो का भर्ता है और उसे ग्रसिष्णु तथा प्रभविष्णु जानना चाहिए ॥ ३१।३२ ॥ वह ज्योतियो को भी ज्योति देने वाला है और तम से पर कहा जाता है । वह ज्ञान स्वरूप है—ज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य और ज्ञान के द्वारा गम्य है । वह सबके हृदयो मे सस्थित रहा करता है । कुछ लोग ध्यान के द्वारा आत्मा मे आत्मा से ही उस आत्मा को देखते हैं । अन्य लोग साख्य योग के द्वारा और दूसरे कर्मयोग के द्वारा उसे देखा करते हैं या प्राप्त करते हैं ॥३३।३४॥ अन्य लोग ऐसे हैं जो इन उक्त विधियो से उसको न जानते हुए अन्यो के द्वारा श्रवण कर उसकी उपासना किया करते हैं । वे श्रुति परायण भी लोग मृत्यु को शीघ्र ही तरण कर जाते हैं ॥३५॥

सत्त्वात्सजायते ज्ञान रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥३६
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।
मानावमानमित्रारितुल्यस्त्यागी स निर्गुण. ॥३७

ऊर्ध्वमूलमध शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्त वेद स वेदवित् ॥३८
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
अहिंसादि. क्षमा चैव दैवी सम्पत्ततो नृणाम् ॥३६
न शौच नापि वाऽऽ (चा) चारो ह्यासुरी सपदोद्भवः ।
नरकात्वात्त्रो धलोभकामास्तस्मात्त्रय त्यजेत् ॥४०
यज्ञस्तपस्तथा दान सत्त्वाद्यैस्त्रिविध स्मृतम् ।
आयु सत्त्व बलारोग्यसुखायान्न तु सात्त्विकम् ॥४१
दु खशोकामयायान्न तीक्ष्णरूक्ष तु राजसम् ।
अमेध्योच्छिष्टपूत्यन्न तामस नीरसादिकम् ॥४२

सत्व से ज्ञान की उत्पत्ति होती है, रजोगुण से लोभ होता है और तमोगुण से प्रमाद और मोह तथा अज्ञान उत्पन्न हुआ करता है ॥३६॥ ये गुण व्यवहार किया करते हैं इस प्रकार के ज्ञान वाले जो अवस्थित रहते हैं और कोई भी इच्छित नहीं करते हैं तथा मान–अपमान, मित्र और शत्रु इनमे तुल्य भाव रखने हैं एव त्यागी होते है व निर्गुण ही हैं ॥३७॥ जिसका मूल तो ऊर्ध्व भाग मे है और शाखाएँ अधोभाग मे हैं ऐसे अश्वत्थ को अव्यय कहते हैं। छन्द जिसके पत्ते हैं। जो उसको जानता है वह वेद का वेत्ता होता है ॥३८॥ लोक मे प्राणियो की सृष्टि दो प्रकार की होती है। एक दैव भूतसर्ग होता है और दूसरा आसुर है। अहिंसा आदि—क्षमा ये सब मनुष्यो की दैवी सम्पत् होती हैं। न तो शुद्धि और न आचार ही है—ऐसा जिन मानवो को होता है वह सब आसुरी सम्पत्ति मे उत्पन्न होता है। मनुष्यो को नरक मे पहुंचाने वाले काम–क्रोध और लोभ ये तीन प्रकार के द्वार होते हैं। इसलिये जो अपनी सुगति चाहता है तो उस इन तीनो का त्याग कर देना चाहिए ॥३६।४०॥ सत्त्वादि से यज्ञ–तप तथा दान ये तीन प्रकार के कहे गये हैं। सात्त्विक अन्न आयु–सत्त्व–बल—आरोग्य और सुख के लिए होता है। जो अन्न तीक्ष्ण और रूक्ष होता है वह राजस होता है। ऐसा अन्न दुःख–शोक

और रोग करने वाला होता है। अमेध्य (अपवित्र)—उच्छिष्ट (झूठा) और दुर्गन्ध युक्त अन्न तथा नीरस आदि अन्न तामस हुआ करता है ॥४१॥४२॥

यष्टव्यो विधिना यज्ञो निष्कामाय स सात्त्विकः।
यज्ञः फलाय दम्भाय राजसस्तामसः क्रतुः ॥४३
श्रद्धामन्त्रादिविद्युक्तं तपः शारीरमुच्यते।
देवादिपूजाऽहिंसादि वाङ्मयं तप उच्यते ॥४४
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं स्वाध्यायसञ्जपः।
मानसं चित्तसंशुद्धिर्मौनमात्मविनिग्रहः ॥४५
सात्त्विकं च तपोऽकामं फलाद्यर्थं तु राजसम्।
तामसं परपीडायै सात्त्विकं दानमुच्यते ॥४६
देशादौ चैव दातव्यमुपकाराय राजसम्।
अदेशादावज्ञातं तामसं दानमीरितम् ॥४७
ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
यज्ञदानादिकं कर्म भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् ॥४८
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥४९
तामसः कर्मसंयोगान्मोहात्क्लेशभयादिकात्।
राजसः सात्त्विकोऽकामात्स्वर्थे ते कर्महेतवः ॥५०

जो यज्ञ निष्काम भावना से विधि पूर्वक यजन किया जाता है वह सात्त्विक होता है। जो यज्ञ फल प्राप्ति के लिए किया जाता है वह राजस होता है और दम्भ के लिए किया और मन्त्रादि विधि से युक्त तप शारीर कहा जाता है। देव आदि की पूजा और अहिंसा आदि वाङ्मय तप कहा जाता है ॥४०॥ उद्वेग न करने वाला वाक्य—सत्य वाक्य और स्वाध्याय करना यह भी वाङ्मय तप होता है। जप—चित्त संशुद्धि—मौन और आत्म विनिग्रह यह मानस तप होता है ॥४५॥ जो किसी भी कामना से नहीं किया जाता है वह सात्त्विक तप होता है। किसी फल आदि की प्राप्ति के लिए जो तप

किया जाता है वह राजस तप होता है । दूसरो को पीडा पहुँचाने के लिये जो तप किया जाता है वह तामस तप होता है । अब सात्त्विक दान के विषय मे बताते हैं । देश–काल और पात्र मे उपकार के लिए जो दिया जाता है वह सात्त्विक दान है । अदेशादि मे जो दिया जाता है वह राजस और जो अवज्ञा करके दिया जाता है वह तामस दान होता है ॥४६।४७॥ ओ तत्सद्–यह ब्रह्म का तीन प्रकार का निर्देश कहा गया है । यज्ञ और दान आदिक कर्म मनुष्यों को भुक्ति और मुक्ति दोनो ही देने वाले होते हैं ॥४८॥ कर्म के अनिष्ट इष्ट और मिश्रित ये तीन प्रकार के फल हुआ करते हैं । यह जो त्यागी नही होते हैं उनको मरण के पश्चात् होते हैं और सन्यासियो को कभी नही होते हैं ॥४९॥ तामस कर्म तो सयोग से और मोह से होता है । क्लेश के भय आदि से राजस कर्म होता है । बिना ही कामना के सात्त्विक कर्म होता है । कर्म के फल प्र नि क पाँच हेतु हुआ करते हैं ॥५०॥

अधिष्ठान तथा कर्ता करण च पृथग्विधम् ।
त्रिविधाश्च पृथक्चेष्टा दैव चैवात्र पञ्चमम् ॥५१
एक ज्ञान सात्त्विक स्यात्पृथग्ज्ञान तु राजसम् ।
अतत्त्वार्थं तामस स्यात्कर्माकामाय सात्त्विकम् ॥५२
कामाय राजस कर्म मोहात्कर्म तु तामसम् ।
सिद्धयसिद्धयो सम कर्ता सात्त्विको राजसो ह्यपि ॥५३
शठोऽलसस्तामस स्यात्कार्यादिधीश्च सात्त्विकी ।
कार्यार्थं सा राजसी स्याद्विपरीता तु तामसी ॥५४
मनोधृति सात्त्विकी स्यात्प्रीतिकामेति राजसी ।
तामसी तु प्र (पुत्र) शोकादौ सुख सत्त्वात्तदन्तगम् ॥५५
सुख तद्राजस चाग्रे अन्ते दु ख तु तामसम् ।
अत प्रवृत्तिर्भूताना येन सर्वमिद ततम् ॥५६
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य विष्णु सिद्धि च विन्दति ।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ॥५७

ब्रह्मादिस्तम्यपर्यन्तं जगद्विष्णुं च वेत्ति यः ।
सिद्धिमाप्नोति भगवद्भक्तो भागवतो ध्रुवम् ॥५८

कर्म करने करने वा अधिष्ठान—कर्त्ता अर्थात् कर्म करने वाला—करण अर्थात् कर्म करने के विविध प्रकार के साधन—चेष्टा अर्थात् विभिन्न भाँति की चेष्टाऐं और पाँचवाँ हेतु दैव होता है । तात्पर्य यह है कि यह सभी हेतु जब समुचित और अनुकूल होते हैं तभी कर्म का फल प्राप्त होता है ॥५१॥ सात्त्विक ज्ञान एक होता है । पृथक् ज्ञान राजस होता है । तत्त्व से रहित जो ज्ञान है वह तामस होता है । सात्त्विक कर्म काम के अभाव के लिए होता है ॥५२॥ कामना के लिए जो कर्म होता हैं वह राजस हैं मोह से जो कर्म किया जाता हैं वह तामस कर्म होता हैं । कर्म की सिद्धि और असिद्धि दोनों में जो तुल्य मन स्थिति वाला कर्त्ता होता है वह सात्त्विक कर्म कर्त्ता है । ऐसा ही राजस कर्त्ता होता है । जो शठ—आलसी कर्म के करने वाला होता है वह तामस कर्म कर्त्ता होता हैं । कार्य के आदि मे ही होने वाली बुद्धि सात्त्विकी होती हैं । जो कार्य के लिये ही होती हैं वह राजसी होती हैं और इस विपरीत जो बुद्धि होती हैं वह तामसी होती हैं ॥५३।५४॥ मनोधृति सात्त्विकी—प्रीतिकाम राजसी और शोकादि मे होने वाली तामसी होती हैं । अन्तगामी जो सुख होता है वह सात्त्विक सुख है । आगे जो सुख है वह राजस और अन्त में जिस सुख के दु ख हो वह तामस सुख होता है । इसलिए प्राणियों की प्रवृत्ति होती है । जिसने इस समस्त जगत् का विस्तार किया है उस विष्णु का अपने कर्म के द्वारा अर्चन करके यह मानव सिद्धि को प्राप्त किया करता है इसलिए कर्म—मन और वचन के द्वारा सभी अवस्थाओं में सर्वदा उसका यजनार्चन करना चाहिए ॥५५।५६।५७॥ जो ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्भ पर्यन्त इस जगत् को विष्णु का स्वरूप ही जानता है वह भगवान् का भक्त परम भागवत निश्चय ही सिद्धि को प्राप्त किया करता है ॥५८॥

१६२—यमगीता

यमगीतां प्रवक्ष्यामि उक्ता या नाचिकेतसे ।
पठतां शृण्वतां भुक्त्यै मुक्त्यै मोक्षार्थिनां सताम् ॥१

आसनं शयनं यानं परिधानगृहादिकम् ।
वाञ्छत्यहोऽतिमोहेन सुस्थिरं स्वयमस्थिरः ॥२
भोगेषु श (व्यस) क्तिः सततं तथैवाऽऽत्मावलोकनम् ।
श्रेयः परं मनुष्याणां कपिलाद्गीतमेव हि ॥३
सर्वत्र समदर्शित्वं निर्ममत्वमसङ्गता ।
श्रेयः परं मनुष्याणां गीतं पञ्चशिखेन हि ॥४
आगर्भजन्मबाल्यादिवयोऽवस्थादिवेदनम् ।
श्रेयः परं मनुष्याणां गङ्गाविष्णुप्रगीतकम् ॥५
आध्यात्मिकादिदुःखानामाद्यन्तादिप्रतिक्रिया ।
श्रेयः परं मनुष्याणां जनकोद्गीतमेव च ॥६
अभिन्नयोर्भेदकरः प्रत्ययो यः पुरातनः ।
तच्छान्तिपरमं श्रेयो ब्रह्मोद्गीतमुदाहृतम् ॥७
कर्तव्यमिति यत्कर्म ऋग्यजुःसामसंज्ञितम् ।
कुरुते श्रेयसेऽसङ्गाज्जैगीषव्येण गीयते ॥८

इस अध्याय में यमगीता का निरूपण किया जाता है । अग्निदेव ने कहा—अब मैं यमगीता को बताऊँगा जोकि नचिकेता के लिए कही गई थी । जो इसका पाठ—श्रवण करने वाले पुरुष हैं उनको भोगों की प्राप्ति कराने वाली है और जो मोक्ष की कामना रखने वाले हैं उन सत्पुरुषों को यह मुक्ति प्रदान करने वाली होती है ॥१॥ यमराज ने कहा—जो आसन, शयन यान, परिधान, गृह आदि की सुस्थिर होकर अत्यन्त मोह से इच्छा किया करता है, वह स्वयं ही अस्थिर होता है ॥२॥ भोगों में शक्ति वाला पुरुष सर्वदा आत्मा का अवलोकन करता है । यह मनुष्यों का परम श्रेय है । यही कपिल के द्वारा भी उद्गीत हुआ है ॥ ३ ॥ सर्वत्र समदर्शी होना तथा ममता से रहित होना और असङ्गता यह मनुष्यों का परम श्रेय होता है—यह पञ्चशिख के द्वारा कहा गया है ॥४॥ गर्भ से लेकर जन्म और बाल्य आदि वय तथा अवस्था आदि का ज्ञान रखना मनुष्यों का परम श्रेय होता है—यह गङ्गा विष्णु

के द्वारा प्रगीत किया गया है ।।५।। आध्यात्मिक और चाधिदैविक तथा आधि-भौतिक दुःखों की आदि से अन्त तक जो प्रतिक्रिया है वही मनुष्यों का श्रेय होता है—यह जनक के द्वारा कहा गया है ।।६।। अभिज्ञों का जो परमात्मा को भेद के करने वाला प्रत्यय होता है वह उसकी शान्ति वाला परम मनुष्यों का श्रेय होता है—ऐसा ब्रह्मा के द्वारा कहा गया उद्गीत कहा है ।।७।। जो कर्म कर्त्तव्य है अर्थात् करने के योग्य है जिसका नाम ऋक्-यजु और साम हो, उसे जो संग रहित होकर करता है वह कल्याण के लिए होता है—ऐसा जैगीषव्य के द्वारा गाया जाता है ।।८।।

हानि सर्वविधित्सानामात्मन सुखहेतुकी ।
श्रेय पर मनुष्याणा देवलोद्गीतमीरितम् ।।९
कामत्यागात्तु विज्ञान सुख ब्रह्म पर पदम् ।
कामिना न हि विज्ञान सनकोद्गीतमेव तत् ।।१०
प्रवृत्त च निवृत्त च कार्यं कर्म परेऽब्रवीत् ।
श्रेयसा श्रेय एतद्धि नैष्कर्म्यं ब्रह्म तद्धरि ।।११
पुमाश्चाधिगतज्ञानो भेद नाऽऽप्नोति सत्तम ।
ब्रह्मणा विष्णुसज्ञेन परमेणाव्ययेन च ।।१२
ज्ञान विज्ञानमास्तिक्य सौभाग्य रूपमुत्तमम् ।
तपसा लभ्यते सर्वं मनसा यद्यदिच्छति ।।१३
नास्ति विष्णुसम ध्येय तपो नानशनात्परम् ।
नास्त्यारोग्यसम धन्य नास्ति गङ्गासमा सरित् ।।१४
न सोऽस्ति बान्धव कश्चिद्विष्णु मुक्त्वा जगद्गुरुम् ।
अधश्चोर्ध्वं हरिश्चाग्रे देहेन्द्रियमनोमुखे ।।१५
इत्येव सस्मरन्प्राणान्यस्त्यजेत्स हरिर्भवेत् ।
यत्तद् ब्रह्म यत सर्वं यत्सर्वं तस्य सस्थितम् ।।१६

अपने सब प्रकार की करने की इच्छाओं की जो हानि है वही सुख की हेतु होती है और यही मनुष्यों का परम श्रेय होता है—ऐसा देवल ने कहा

है ।.९।। काम के त्याग से जो विज्ञान होता है वह परम सुख है और यही ब्रह्म का पद है । जो कामी होते हैं उनको विज्ञान नहीं होता है—ऐसा सनक ने कहा है ।।१०।। प्रवृत्त और निवृत्त कर्म करना चाहिए अर्थात् प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग के समस्त कार्य करने चाहिए—ऐसा दूसरे लोगों ने कहा था, समस्त श्रेयों का श्रेय यही है कि कर्म मे निष्कर्मता होनी चाहिए—यही ब्रह्म तथा हरि हैं ।।११।। जिस पुरुष ने ज्ञान प्राप्त कर लिया है वह सत्पुरुषों में परम श्रेष्ठ है और वह विष्णु सज्ञा वाले परम अव्यय ब्रह्म के साथ कोई भी भेद नहीं प्राप्त किया करता है ।। १२ ।। ज्ञान–विज्ञान–आस्तिक्य–सौभाग्य और उत्तम रूप यह सब कुछ तप से प्राप्त किया जाता है जो भी मन से इच्छा करता है ।।१३।। भगवान् विष्णु के समान अन्य कोई भी ध्येय नहीं है और अनशन (भोजन न करना) से परे कोई भी अन्य तप नहीं होता है । आरोग्य अर्थात् स्वस्थ रहना इसके तुल्य अन्य कुछ नहीं है और भागीरथी गंगा के बराबर अन्य परम पवित्र कोई भी नहीं है ।। १४ ।। जगत् के गुरु विष्णु को छोड़कर अन्य कोई भी बान्धव नहीं है । नीचे और ऊपर तथा आगे देह–इन्द्रिय–मन और मुख में सर्वत्र हरि विद्यमान हैं—इसी प्रकार से संस्मरण करता हुआ जो अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह हरि हो जाता है । जो भी है वह ब्रह्म है क्योंकि सभी कुछ उसमें संस्थित होता है ।।१५।१६।।

अग्राह्यमनिर्देश्य सुप्रतिष्ठ च यत्परम् ।
परापरस्वरूपेण विष्णु सर्वहृदि स्थित. ।।१७
यज्ञेश यज्ञपुरुष केचिदिच्छन्ति तत्परम् ।
केचिद्विष्णु हर केचित्केचिद् ब्रह्माणमीश्वरम् ।।१८
इन्द्रादिनामभि. केचित्सूर्य सोम च कालकम् ।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्त जगद्विष्णु वदन्ति च ।।१९
स विष्णु परम ब्रह्म यतो नाऽऽवर्तते पुन ।
सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनै. ।।२०

ध्यानैर्व्रतैः पूजया च धर्मश्रुत्या तदाप्नुयात् ।
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥२१
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचरान् ॥२२

अग्राह्यक-अनिर्देश्य और जो पर सुप्रतिष्ठ है परापर स्वरूप से विष्णु सभी के हृदय में स्थित रहते हैं ॥१७॥ कुछ लोग यज्ञेश यज्ञ पुरुष को परम पुरुष चाहा करते हैं—कुछ भगवान् विष्णु को कहते हैं—कुछ लोग महादेव को तो कुछ ब्रह्मा को ही ईश्वर कहते हैं ॥१८॥ अन्य लोग इन्द्र आदि नामों के द्वारा ईश्वर को बताया करते हैं। कुछ सूर्य को—सोम को तथा काल को बताते हैं। ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त इस समस्त जगत् को कुछ लोग विष्णु कहते हैं ॥ १९ ॥ वह विष्णु परम ब्रह्म है जहाँ से पुनः आवर्त्तन नहीं होता है। सुवर्ण आदि के महा दान से तथा पुण्य तीर्थों के अवगाहन करने से—ध्यान से—व्रतों से—पूजा से और धर्म के श्रवण से उसे ही प्राप्त करना चाहिए। इस आत्मा को रथी और इस शरीर को रथ जानना या समझना चाहिए। अपनी बुद्धि को उस शरीर रूपी रथ का वहन करने वाला सारथि समझे। मन को प्रग्रह (बागडोर) और इन्द्रियों को उस रथ के अश्व कहा जाता है। जितने भी गोचर है वे सब विषय होते हैं ॥२०।२१।२२॥

आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ।
यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तमनसा सदा ॥२३
न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ।
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ॥२४
स तत्पदमवाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ॥२५
सोऽध्वानः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ।
इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥२६
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ।
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥२७

पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ।
एषु सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ।।२८
दृश्यते त्वग्र (ग्य्र) या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।
यच्छेद्वाङ मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञानमा (न आ) त्मनि ।।२९
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेच्छान्त आत्मनि ।
ज्ञात्वा ब्रह्मात्मनोर्योग यमाद्यैर्ब्रह्म सद्भवेत् ।।३०

मनीषि लोग आत्मा—इन्द्रिय और मन से युक्त को भोक्ता कहते हैं । जो विज्ञान से रहित होता है वह सदा अयुक्त मन वाला है । ऐसा पुरुष कभी भी सत्पद की प्राप्ति नही किया करता है । वह संसार मे ही रहता है अर्थात् उसका आवागमन नहीं छूटता है । जो विज्ञान वाला पुरुष होता है वह सदा युक्त मन के द्वारा उस परम पद को प्राप्ति करता है जहाँ से पुनः आकर जन्म प्राप्त नहीं होता है । जिसका सारथि विज्ञान है और मनके प्रग्रह वाला जो मानव है वह उस परम मार्ग को प्राप्त हो जाता है । वही विष्णु का परम पद है । इन्द्रियो से पर अर्थ हैं और अर्थों से भी पर मन हैं ।।२३ से २६।। मन से परा बुद्धि हैं—बुद्धि से आत्मा और आत्मा से महान् हैं । महत् से पर अव्यक्त और अव्यक्त से पर पुरुष होता है । इस पुरुष से पर कुछ भी नहीं हैं । वहीं पराकाष्ठा और परागति है । इन समस्त भूतो मे आत्मा गूढ होने के कारण प्रकाशित नही होता है ।। २७।२८ ।। सूक्ष्म दर्शियों के द्वारा पैनी और सूक्ष्म बुद्धि से वह दिखलाई देता है । प्राज्ञ उसे वाणी मन मे रक्खे तथा उस ज्ञान को आत्मा मे धारण करना चाहिए । शान्त और महान् आत्मा मे ज्ञान को धारण करे । ब्रह्म और आत्मा के योग का ज्ञान प्राप्त करके यमादि के द्वारा ब्रह्म के तुल्य हो जाता हैं ।।२९।३०।।

अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
यमाश्च नियमा पञ्च शौच सतोपमत्तप ।।३१
स्वाध्यायेश्वरपूजा च आसनं पद्मकादिकम् ।
प्राणायामो वायुजय प्रत्याहार. स्व निग्रह ।।३२

शुभे ह्येकत्र विषये चेतसो यत्प्रधारणम् ।
निश्चलत्वात्तु धीमद्भिर्धारणा द्विज कथ्यते ॥३३
पौन पुन्येन तत्रैव विषयेष्वेव धारणा ।
ध्यान स्मृता समाधिस्तु अहं ब्रह्मात्मसंस्थिति ॥३४
घटध्वंसाद्यथाऽऽकाशमभिन्नं नभसा भवेत् ।
मुक्तो जीवो ब्रह्मणैव सद्ब्रह्म ब्रह्म वै भवेत् ॥३५
आत्मानं मन्यते ब्रह्म जीवो ज्ञानेन नान्यथा ।
जीवो ह्यज्ञानतत्कार्यमुक्तः स्यादजरामर. ॥३६
वशिष्ठ यमगीतोक्ता पठता भुक्तिमुक्तिदा ।
आत्यन्तिको लय प्रोक्तो वेदान्तब्रह्मधीमय' ॥३७

अहिंसा–सत्य–अस्तेय–ब्रह्मचर्य—अपरिग्रह—यम–पाँच नियम–शौच–सन्तोष–सत्तप–स्वाध्याय, ईश्वर–पूजा–पद्मादि आसन—प्राणायाम—वायु के ऊपर विजय है—अपना निग्रह प्रत्याहार कहा जाता है ॥३१।३२॥ एक किसी शुभ विषय मे चित्त का जो प्रधारण किया जाता है और वह फिर निश्चल हो जाता है । हे द्विज ! धीमानो के द्वारा वही धारणा कही जाती है । ३३॥ बार–बार वहाँ विषयों पर ही जो धारणा की जाती है वही ध्यान कहा गया है । मैं ही ब्रह्म स्वरूप हूँ—इस प्रकार की जो संस्थिति होती है वह समाधि होती है ॥ ३४ ॥ घट के ध्वंस होने पर जैसे आकाश नभ से अभिन्न होता है उसी प्रकार से मुक्त होने वाला यह जीव ब्रह्म से अभिन्न होकर वह ब्रह्म ही हो जाया करता है ॥ ३५ ॥ यह जीव अपने आपको ज्ञान के द्वारा ही ब्रह्म मानता है अन्य किसी भी प्रकार से नहीं । यह जीव अज्ञान से प्रयुक्त कार्य से मुक्त अजर और अमर हो जाया करता है ॥ ३६ ॥ अग्निदेव ने कहा—हे वसिष्ठ ! मैंने यह यमगीता तुम्हें बता दी है जोकि पढने वाले पुरुषों को भुक्ति और मुक्ति दोनों के प्रदान करने वाली होती है । आत्यन्तिक लय वेदान्त ब्रह्म धीमय कहा गया है ॥३७॥

१६३ आग्नेयमहापुराणमाहात्म्यम् ।

आग्नेय ब्रह्मरूप ते पुराण कथित मया ।
सप्रपञ्च निष्प्रपञ्च विद्याद्वयमय महत् ॥१
ऋग्यजु सामाथर्वाख्या विद्या विष्णुर्जगज्जनि ।
छन्द शिक्षाव्याकरण (ण) निघण्टुज्योतिरादयका ॥२
निरुक्तधर्मशास्त्रादिमीमासान्यायविस्तरा ।
आयुर्वेदपुराणाख्या धनुर्गन्धर्वविस्तरा ॥३
विद्या सेवार्थशास्त्राख्या वेदान्ताख्या हरिर्महान् ।
इत्येषा चापरा विद्या परविद्याऽक्षर परम् ॥४
यस्य भावाऽखिल विष्णुस्तस्य नो बाधते कलि ।
अनिष्ट्वा तु महायज्ञानकृत्वाऽपि पितृस्वधाम् ॥५
कृष्णमभ्यर्चयन्भक्त्या नैनसो भाजन भवेत् ।
सर्वकारणमत्यन्त विष्णु ध्यायन्न सीदति ॥६
अन्यत-आदिदोषोत्थो विषयाकृष्टमानस. ।
कृत्वाऽपि पाप गोविन्द ध्यायन्पापै प्रमुच्यते ॥७
तद्ध्यान यत्र गोविन्द सा कथा यत्र केशव. ।
तत्कर्म यत्तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितै ॥८

इस अध्याय मे आग्नेय महा पुराण का माहात्म्य बताया जाता है। अग्निदेव ने कहा—मैने तुमसे यह ब्रह्म रूप आग्नेय महा पुराण कहा है। यह सप्रपञ्च और निष्प्रपञ्च दानो विद्याओं से परिपूर्ण है और महान् है ॥ १ ॥ ऋक्–यजु –साम और अथर्व नाम वाली विद्या है। इस जगत् को जन्म देने वाले विष्णु हैं। छन्द—शिक्षा–व्याकरण–निघण्टु और ज्योतिष नाम वाली हैं ॥ २ ॥ निरुक्त–धर्मशास्त्र आदि–मीमासा—न्याय के विस्तार वाली ये विद्यायें हैं। आयुर्वेद और पुराण नाम वाली होती हैं। धनुर्वेद और गन्धर्व वेद के विस्तार वाली हैं। अर्थशास्त्र के नाम वाली विद्या है तथा अन्य वेदान्त भी विद्या है। हरि महान् हैं—यह अपरा विद्या है पर विद्या परम अक्षर है

॥ ३ ॥ ४ ॥ जिसको पूर्ण भाव विष्णु होता है उसको यह कलि कोई भी बाधा नहीं किया करता है। वह महान् यज्ञों का यजन न करके तथा पितृगण के लिये स्वधापण भी न करके केवल भक्ति के भाव से श्री कृष्ण का अर्चन करता हुआ कभी भी पाप का पात्र नहीं हुआ करता है। सबका कारण स्वरूप भगवान् विष्णु का अत्यन्त ध्यान यजन करने वाला कभी दुःखित नही हुआ करता है ॥ ५ ॥ ६ ॥ अन्य तन्त्र आदि के दोषों से उत्थित और विषयों में आकृष्ट मन वाला प्राणी पाप करके भी गोविन्द का ध्यान करने पर पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥ ७ ॥ वही वास्तविक ध्यान है जिसमे गोविन्द है और वही सची कथा है जिसमे केशव भगवान् की चर्चा होती है तथा वह ही ठीक कर्म है जो विष्णु के लिये किया गया है। इससे अधिक बहुत कहने से क्या लाभ है ॥ ८ ॥

न तत्पिता तु पुत्राय न शिष्याय गुरुर्द्विजः ।
परमार्थं परं ब्रूयाद्यदेतत्ते मयोदितम् ॥९
संसारे भ्रमता लभ्य पुत्रदारधनं वसु ।
सुहृदश्च तथैवान्ये नोपदेशो द्विजेदृश ॥१०
किं पुत्रदारैर्मित्रैर्वा किं मित्रक्षेत्रबान्धवैः ।
उपदेशः परो बन्धुरीदृशो या विमुक्तये ॥११
द्विविधो भूतसर्गोऽयं दैव आसुर एव च ।
विष्णुभक्तिपरो दैवो विपरीतस्तथाऽऽसुर ॥१२
एतत्पवित्रमारोग्यं धन्यं दुःस्वप्ननाशनम् ।
सुखप्रीतिकरं नृणां मोक्षकृद्यत्तवेरितम् ॥१३
येषां गृहेषु लिखितमाग्नेयं हि पुराणकम् ।
पुस्तकं स्थास्यति सदा तत्र नेशुरुपद्रवा ॥१४
किं तीर्थैर्गोप्रदानैर्वा किं यज्ञैः किमुपोषितैः ।
आग्नेयं ये हि शृण्वन्ति ग्रहन्यहनि मानवा ॥१५

वह पिता नहीं है जिसने पुत्र के लिय और वह गुरु नही है जिसने

अपने शिष्य के लिये परमार्थ नहीं बताया है—यह मैंने तुमको बतला दिया है ॥ ९ ॥ इस संसार की यात्रा में भ्रमण करने वाला मानव पुत्र–दारा–धन और सभी वैभव प्राप्त किया करता है। उसे बहुत से सुहृद तथा अन्य लोग भी प्राप्त हो जाया करते हैं किन्तु हे द्विज ! इस प्रकार का उपदेश नहीं मिला करता है। जिससे कल्याण होता है ॥ १० ॥ पुत्र–स्त्री और मित्र तथा बन्धु–बान्धवों के प्राप्त होने से क्या लाभ है। उपदेश ही परम बन्धु होता है जोकि ऐसा हो जिससे इस संसार के आवागमन से मुक्ति होती है ॥ ११ ॥ यह प्राणियों की सृष्टि दो प्रकार की हुआ करती है। एक दैवभूत सर्ग होता है और दूसरा आसुर होता है। जो प्राणियों की सृष्टि भगवान् विष्णु की भक्ति में परायण होती है वही दैवी सृष्टि कही जाती है। इसके विपरीत जो सर्ग होता है वह आसुरी सृष्टि कही जाया करती है ॥ १२ ॥ यह परम पवित्र–आरोग्य अर्थात् स्वास्थ्य प्रद–धन्य और दुःस्वप्नों के नाश करने वाला–सुख एवं प्रीति के करने वाला तथा मनुष्यों को मोक्ष देने वाला यह पुराण मैंने तुमको बताया है ॥ १३ ॥ जिनके घरों में यह आग्नेय पुराण लिखा हुआ है और सर्वदा वह लिखित पुस्तक स्थापित रहती है वहां कोई भी उपद्रव नहीं आया करते हैं ॥ १४ ॥ जो मानव प्रतिदिन इस अग्निपुराण का पठन किया करते हैं उनको तीर्थों के करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है और न गोदान–यज्ञ और उपवास ही करने से कोई उन्हें प्रयोजन होता है ॥१५॥

यो ददाति तिलप्रस्थं सुवर्णस्य च माषकम् ।
शृणोति श्लोकमेकं च आग्नेयस्य तदाप्नुयात् ॥१६
कपिलानां शते दत्ते यद्भवेज्ज्येष्ठपुष्करे ॥१७
तदाग्नेयं पुराणं हि पठित्वा फलमाप्नुयात् ॥१८
प्रवृत्तं च निवृत्तं च धर्मं विद्याद्वयात्मकम् ।
आग्नेयस्य पुराणस्य शास्त्रस्यास्य समं न हि ॥१९
पठन्नाग्नेयकं नित्यं शृण्वन्वाऽपि पुराणकम् ।
भक्तो वशिष्ठ मनुजः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२०

नोपसर्गा न चानर्था न चौरारिभयं गृहे ।
तस्मिन्स्याद्यत्र चाऽऽग्नेयपुराणस्य हि पुस्तकम् ॥२१
न गर्भहारिणी भीतिर्न च बालग्रहा गृहे ।
यत्राऽऽग्नेय पुराणं स्यान्न पि (पं) शाचादिक भयम् ॥२२
शृण्वन्विप्रो वेदवित्स्यात्क्षत्रिय पृथिवीपति ।
ऋद्धिं प्राप्नोति वैश्यश्च शूद्रश्चाऽऽरोग्यमृच्छति ॥२३

जो एक प्रस्थ तिल और एक प्रस्थ सुवर्ण का दान देकर अग्नि पुराण का एक श्लोक भी सुन लता हैं उसे महान् पुण्य प्राप्त होता है। पुष्कर तीर्थ में जो सौ गौओं के दान का फल होता है वही फल अग्नि पुराण के पारायण स मिलता है ॥ १६ ॥ १८ ॥ प्रवृत्त और निवृत्त दो प्रकार की विद्या के स्वरूप वाला धर्म इस आग्नेय पुराण शास्त्र के समान नहीं होत हैं ॥ १६ ॥ नित्य इस आग्नेय पुराण को पढता हुआ तथा इसका श्रवण करता हुआ मनुष्य हे वसिष्ठ ! समस्त प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है ॥ २० ॥ जिस स्थान पर यह आग्नेय पुराण की पुस्तक स्थित रहा करती है वहा कोई भी उपसर्ग तथा अनर्थ नही हुआ करते हैं। उस घर म कभी शत्रु और चोर का भय भी नहीं होता है ॥ २१ ॥ उस स्थान मे गर्भ के हरण करने वाला कोई भय नही होता है और घर म बालग्रह भी नही रहते है। जहाँ यह अग्नि पुराण विद्यमान रहता है वहा पिचाशों का भी भय नही हुआ करता है ॥ २२ ॥ जो ब्राह्मण इस पुराण का श्रवण करता है वह वेदो के यथार्थ का ज्ञाता होजाता है, क्षत्रिय इसे सुनकर पृथ्वी का राजा बन जाता है, वैश्य ऋद्धि प्राप्त करता है और शूद्र आरोग्य का लाभ करता है ॥ २३ ॥

यः पठेच्छृणुयान्नित्य समर्च्यविष्णुमानस ।
ब्रह्माऽऽग्नेय पुराणं सततं नश्यन्त्युपद्रवा ॥२४
दिव्यान्तरी (रि) क्षभूमाद्यादौ दु स्वप्नाद्यभिचारका: ।
यच्चान्यद्दुरित किंचित्तत्सर्वं हन्ति केशव ॥२५
पठन शृण्वत पुं स पुस्तकं यजतो महत् ।

आग्नेयं श्रीपुराणं हि हेमन्ते यः शृणोति वै ॥२६
प्रपूज्य गन्धपुष्पाद्यैरग्निष्टोमफलं लभेत् ।
शिशिरे पुण्डरीकस्य वसन्ते चाश्वमेधजम् ॥२७
ग्रीष्मे तु वाजपेयस्य राजसूयस्य वर्षति ।
गोसहस्रस्य शरदि फलं तत्पठनो श्रुतौ ॥२८
आग्नेयं हि पुराणं यो भक्त्याग्रे पठते हरेः ।
सोऽर्चयेच्च वसिष्ठेह ज्ञानयज्ञेन केशवम् ॥२९
यस्याऽऽग्नेयपुराणस्य पुस्तकं तस्य वै जयः ।
लिखितं पूजितं गेहे भुक्तिर्मुक्तिः करेऽस्ति हि ॥३०

जो इसका नित्य ही समान दृष्टि रख कर विष्णु के चरणों में मन लगाते हुए श्रवण किया करता है या पाठ करता है उनका कल्याण होता है। यह आग्नेय पुराण यहां है वहाँ पर समस्त उपद्रव नष्ट हो जाया करते हैं।२४। दिव्य—अन्तरिक्ष और भूमि में होने वाले दुःस्वप्न आदि अभिचारक तथा जो कोई भी अन्य दुरित (पाप) होता है उन सबको भगवान् केशव नष्ट कर दिया करते हैं ॥ २५ ॥ इस अग्नि पुराण का पठन—श्रवण और यजन करने वाले के समस्त पाप क्षीण हो जाते हैं। हेमन्त ऋतु में जो इस आग्नेय पुराण का श्रवण करता है और गन्धासन पुष्पादि के द्वारा इसका पूजन किया करता है वह अग्निष्टोम के फल को प्राप्त किया करता है। शिशिर में पुण्डरीक का तथा वसन्त में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ॥ २६ ॥ २७ ॥ ग्रीष्म ऋतु में वाजपेय का पुण्यफल पाता है और वर्षा ऋतु में पठन—श्रवण से राजसूय यज्ञ का फल पा जाता है। शरद ऋतु में पाठ करने वाले को एक सहस्र गो दान करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ जो इस आग्नेय पुराण को भगवान् हरि के आगे भक्ति से पढ़ता है वह हे वसिष्ठ ! ज्ञान यज्ञ के द्वारा भगवान् केशव का अर्चन किया करता है ॥ २९ ॥ जिस मानव के समीप में यह अग्नि पुराण का ग्रन्थ होता है उसका सर्वदा सर्वत्र जय हुआ करता है। जिनके घर में यह पवित्र ग्रन्थ लिखा गया हो या पूजित होता है उस गृह के स्वामी के

हाथ में दानारिक समस्त भोगों के उपभोग और सांसारिक जन्म-मरण के आवागमन का छुटकारा स्वरूप मोक्ष रहा करता है ॥ ३० ॥

इति कालाग्निरूपेण गीत मे हरिणा पुरा ।
आग्नेयं हि पुराण वै ब्रह्मविद्याद्वयास्पदम् ॥
विद्याद्वय वशिष्ठेद भक्तेभ्यः कथयिष्यसि ॥३१
व्यासाऽऽग्नेयपुराण ते रूप विद्याद्वयात्मकम् ।
कथित ब्रह्मणो विष्णोरग्निना कथितं यथा ॥३२
सार्धं देवैश्च मुनिभिर्मह्यं सर्वार्थदर्शकम् ।
पुराणमग्निना गीतमाग्नेय ब्रह्मसमितम् ॥३३
य पठेच्छृणुयाद्व्यास लिखेद्वा लेखयेदपि ।
श्रावयेत्पाठयेद्वाऽपि पूजयेद्धारयेदऽपि ॥३४
सर्वपापविनिर्मुक्त प्राप्तकामो दिवं व्रजेत् ।
लेखयित्वा पुराण यो दद्याद्विप्रेभ्य उत्तमम् ॥३५
स ब्रह्मलोकमाप्नोति कुलानां शतमुद्धरेत् ।
एक श्लोकं पठेद् यस्तु पापपङ्काद्विमुच्यते ॥३६
तस्माद् व्यास सदा श्राव्य शिष्येभ्य. सर्वदर्शनम् ।
शुकाद्यैर्मुनिभिः सार्धं श्रोतुकामै. पुराणकम् ॥३७
आग्नेय पठितं ध्यात शुभ स्याद् भुक्तिमुक्तिदम् ।
अग्नये तु नमस्तस्मै येन गीत पुराणकम् ॥३८

पहिले समय में कालाग्नि स्वरूप हरि ने मेरे सामने यह कहा है कि यह आग्नेय पुराण दोनों विद्याओं का स्थान है। हे वशिष्ठ ! इन दोनों विद्याओं को तुम भक्तों से कह देना। वशिष्ठ जी ने कहा—हे व्यास ! मैंने विद्याद्वयात्मक यह आग्नेय पुराण तुमको कह दिया है जिस प्रकार से ब्रह्मा से और विष्णु से अग्निदेव ने कहा था ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ समस्त देवगण और सभी मुनि वर्ग के साथ मुझमे सम्पूर्ण अर्थों के दिखा देने वाले इस ब्रह्म के तुल्य आग्नेय पुराण को अग्नि देव ने कहा था ॥ ३३ ॥ हे व्यास ! जो इसका पाठ करता है अथवा

जो इसका पठन करता है अथवा जो इसका श्रवण किया करता है, जो इस पुराण को लिखता है अथवा जो भी कोई इस पुराण को लिखवाता है, या जो इस श्रवण कराता है या इस अग्नि पुराण को पढ़वाता है, जो इस परम पवित्र पुराण की पूजा करता है या इसको धारण करता है वह सब तरह के पापों से मुक्त हो जाता है और जो भी उसके हृदय मे कामनाऐं होती हैं वे पूर्ण हो जाती हैं तथा अन्त समय में वह स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है। इस उत्तम पुराण को लिखवा कर जो ब्राह्मणों को इसका दान करता है वह ब्रह्म लोक की प्राप्ति किया करता है और अपने सौ कुलों का उद्धार करता है। जो इसका एक भी श्लोक पढ़ लेता है वह पापो के पङ्क (कीच) से विमुक्त हो जाता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इसलिये हे व्यास ! शुक आदि मुनियों के साथ जोकि इसके श्रवण करने की कामना रखते हैं सबके दिखा देने वाले इस उत्तम पुराण का सदा शिष्यों के लिये सुनाना चाहिए ॥ ३७ ॥ इस आग्नेय पुराण का पठन—ध्यान शुभ होता है। उन अग्निदेव के लिये सादर नमस्कार है जिन देव ने इस परमोत्तम आग्नेय पुराण को कहा है ॥३८॥

वसिष्ठेन पुरा गीत सूतैतत्ते मयोदितम् ।
परा विद्याऽपरा विद्या स्वरूप परम पदम् ॥३९
आग्नेय दुर्लभ रूप प्राप्यते भाग्यसयुतै ।
ध्यायन्तो ब्रह्म चाऽऽग्नेय पुराण हारमागता. ।४०
विद्यार्थिनस्तथा विद्या राज्य राज्यार्थिनो गता ।
अपुत्रा पुत्रिण सन्ति नाश्रया आश्रय गता ॥४१
सौभाग्यार्थी च सौभाग्य मोक्ष मोक्षार्थिनो गता ।
लिखन्तो लेखयन्तश्च निष्पापाश्च श्रिय गता ॥४२
शुकपैलमुखै सूत आग्नेय तु पुराणकम् ।
रूप चिन्तय यातासि भुक्ति मुक्ति न सशय ॥४३
श्राश्रय रत्न च निष्पैन्यो भवनेभ्यश्च पुराणकम् ॥४४

व्यासप्रसादादाग्नेयं पुराणं श्रुतमादरात् ।
आग्नेयं ब्रह्मरूपं हि मुनयः शौनकादयः ॥४५
भवन्तो नैमिषारण्ये यजन्तो हरिमीश्वरम् ।
तिष्ठन्तः श्रद्धया युक्तास्तस्माद्व समदीरितम् ॥४६

श्री व्यास जी ने कहा—प्राचीन समय में पहिले इस पुराण को हे सूत ! वशिष्ठ जी ने कहा था और मैंने इसे तुम से कहा है । पराविद्या और अपरा विद्यायें परम पद का रूप हैं ॥ ३६ ॥ जो परमोत्तम भाग्य वाले होते हैं उनके द्वारा यह दुर्लभ रूप वाला आग्नेय पुराण प्राप्त किया जाया करता है । ब्रह्म का ध्यान करते हुए इस आग्नेय पुराण के समीप प्राप्त हुए हैं ॥ ४० ॥ जो विद्या की चाह रखने वाले हैं वे विद्या की प्राप्ति करते हैं और जो राज्य के इच्छुक होते हैं वे राज्य का लाभ किया करते हैं । जिनके पुत्र नहीं है वे पुत्र वाले हो जाते हैं और जो आश्रय हीन होते हैं उन्हें आश्रयों की प्राप्ति होती है ॥ ४१ ॥ जो सौभाग्य के प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं वे सौभाग्य को पा जाते हैं । जो मोक्ष की चाह किया करते हैं वे इस सांसारिक जन्म और मरण के आवागमन से छुटकारा पा जाते हैं । इस पुराण के लिखने वाले और लिखाने हुए लोग पापों से रहित हो जाते हैं तथा श्रेष्ठ श्री की प्राप्ति किया करते हैं ॥ ४२ ॥ हे सूत ! शुक मुनि और पैल के मुख से इस आग्नेय पुराण के रूप का चिन्तन करो तो भुक्ति और मुक्ति को प्राप्त हो जाओगे—इसमें कोई भी संशय नहीं है । तुम भी इस उत्तम पुराण को शिष्यों के लिये और भक्तों के लिये सुना देना ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ सूतजी ने कहा—हे शौनकादि मुनिगण ! मैंने श्री व्यास जी के प्रसाद से यह आग्नेय पुराण बहुत ही आदर के साथ सुना है । यह आग्नेय पुराण साक्षात् ब्रह्म का ही स्वरूप है ॥ ४५ ॥ आप लोग भी इस नैमिष नामक अरण्य में सर्वेश्वर हरि का यजनार्चन करने वाले हैं । आप लोग परम श्रद्धा वाले होकर यहाँ स्थित हैं । इसी कारण से मैंने इस पुराण को आपके समक्ष में सुनाया है ॥ ४६ ॥

अग्निना प्रोक्तमाग्नेयं पुराणं वेदसम्मितम् ।
ब्रह्मविद्याद्वयोपेतं भुक्तिदं मुक्तिदं महत् ॥४७
नास्मात्परतरं सारो नास्मात्परतरं सुहृत् ।
नास्मात्परतरो ग्रन्थो नास्मात्परतरा गतिः ॥४८
नास्मात्परतरं शास्त्रं नास्मात्परतरा श्रुतिः
नास्मात्परतरं ज्ञानं नास्मात्परतरा स्मृतिः ॥४६
नास्मात्परो ह्यागमोऽस्ति नास्माद्विद्या पराऽस्ति वै ।
नास्मात्परः स्यात्सिद्धान्तो नास्मात्परममङ्गलम् ॥५०
नास्मात्परोऽस्ति वेदान्तः पुराणं परमं शिवदम् ।
नास्मात्परतरं भूमौ विद्यते वस्तु दुर्लभम् ॥५१
आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन्सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः ।
सर्वे मत्स्यावताराद्या गीता रामायणं त्विह ॥५२
हरिवंशो भारतं च नव सर्गाः प्रदर्शिताः ।
आगमो वैष्णवो गीतः पूजा दीक्षा प्रतिष्ठया ॥५३
पवित्रारोहणादीनि प्रतिमालक्षणादिकम् ।
प्रासादलक्षणाद्यं च मन्त्रा वै भुक्तिमुक्तिदाः ॥५४

इस आग्नेय पुराण को जोकि वेद के तुल्य है अग्निदेव ने कहा है। यह दोनों प्रकार की ब्रह्म विद्याओं से युक्त है और भुक्ति तथा मुक्ति दोनों का प्रदान करने वाला महान् ग्रन्थ है यह परम कल्याण करने वाला है ॥ ४७ ॥ संसार में इस आग्नेय पुराण से परतर अर्थात् अधिक अच्छा सार नहीं है और इस सर्वोत्तम आग्नेय पुराण से पर तर कोई भी सुहृत् अर्थात् हित करने वाला नहीं है। इससे परतरा अन्य कोई गति भी नहीं है ॥ ४८ ॥ इस आग्नेयपुराण से परतर कोई शास्त्र नहीं है और इससे उत्तम कोई श्रुति भी नहीं है। इस आग्नेय पुराण में इतना विशाल ज्ञान भरा हुआ है कि इससे परतर अन्य कोई ज्ञान का भण्डार नहीं है तथा इससे परतरा अन्य कोई स्मृति भी नहीं है ।४६। इस अग्निपुराण से श्रेष्ठ अन्य कोई आगम नहीं है और इससे परतरा अन्य कोई

विद्या नहीं है। इस अग्नि पुराण से पर अन्य कोई सिद्धान्त नहीं है और इससे अधिक परम मङ्गलदायक कुछ भी नहीं है ॥ ५० ॥ वेदान्त का विषय इस आग्नेय पुराण में इतना अधिक और अच्छा है कि इससे पर अन्य कोई भी वेदान्त नहीं है। पुराणों में तो यह सर्वोत्तम पुराण है। इससे श्रेष्ठ अन्य कोई भी पुराण नहीं है। यह आग्नेय पुराण इतना उत्तम है कि इससे अधिक उत्तम इस भू-मण्डल में कोई भी दुर्लभ वस्तु नहीं है ॥ ५१ ॥ इस परम विशाल आग्नेय पुराण में सभी विद्याऐं दिखलाई गई हैं और ऐसी कोई विद्या नहीं है जिसका निरूपण इसमें नहीं किया गया हो। मत्स्यावतार से आदि से लेकर समस्त अवतारों का इसमें वर्णन किया गया है जोकि विष्णु भगवान् ने समय-समय पर धारण किये हैं। अर्जुन के प्रति भारत के महायुद्ध में उपदेश स्वरूप में कृष्ण भगवान् के द्वारा कही गई गीता का सार इसमें वर्णित किया गया है और इस में रामायण का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया है। हरिवंश पुराण तथा भारत नव सर्गप्रदर्शित किये गये हैं। वैष्णव आगम भी कहा गया है अर्थात् वैष्णव सिद्धान्त का शास्त्र बताया गया है। पूजा की पद्धति—दीक्षा का विधान—प्रतिष्ठा प्रणाली—पवित्रारोहण आदि का क्रम और प्रतिमा के लक्षण आदि का इस पुराण में वर्णन किया गया है। प्रासाद के लक्षण आदि का निरूपण है और जो भोग तथा मोक्ष के देने वाले मन्त्र हैं उनको भी इस पुराण में बताया गया है। ५२।५३।५४॥

शैवागमस्तदर्थश्च शाक्तेय सौर एव च।
मण्डलानि च वास्तुश्च मन्त्राणि विविधानि च ॥५५

प्रतिसर्गश्चानुगीतो ब्रह्माण्डपरिमण्डलम्।
गीतो भुवनकोषश्च द्वीपवर्षादिनिम्नगाः ॥५६

गयागङ्गाप्रयागादितीर्थमाहात्म्यमीरितम्।
ज्योतिश्चक्र ज्योतिषादि गीतो युद्धजयार्णव ॥५७

मन्वन्तरादयो गीता धर्मा वर्णादिकस्य च।
अशौच द्रव्यशुद्धिश्च प्रायश्चित्त प्रदर्शितम् ॥५८

श्राद्धधर्मा दानधर्मा व्रतानि विविधानि च ।
व्यवहाराः शान्तयश्च ऋग्वेदादिविधानकम् ॥५९

सूर्यवंशः सोमवंशो धनुर्वेदश्च वैद्यकम् ।
गान्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं मीमांसा न्यायविस्तरः ॥६०

पुराणसंख्यामाहात्म्यं छन्दो व्याकरणं स्मृतम् ।
अलङ्कारो निघण्टुश्च शिक्षा कल्प इहोदितः ॥६१

शिव की पञ्चमोपासनादि के बताने वाला शैव आगम तथा उनका विस्तार सब इस आग्नेय पुराण में कहा गया है । शाक्तेय अर्थात् शक्ति की उपासनादि का शास्त्र और सौर अर्थात् सूर्य की उपासना का शास्त्र एवं विधान इसमें प्रकट किया गया है । मण्डलों का वर्णन है तथा वास्तु का निरूपण है एवं इस विशाल पुराण में विविध प्रकार के मन्त्रों का भी वर्णन किया गया है ॥५५॥ प्रति सर्ग में ब्रह्माण्ड परिमण्डल का अनुगान इसमें किया गया है । इस सम्पूर्ण भुवन कोष का भी इस आग्नेय पुराण में गान किया है । समस्त द्वीपों का—सम्पूर्ण वर्षों का और सब निम्नगाओं का इसमें वर्णन किया गया है ॥ ५६ ॥ समस्त प्रमुख तीर्थों का, जिनमें गया—गङ्गा—प्रयाग आदि हैं, माहात्म्य का वर्णन भी किया है ज्योतिश्चक्र तथा ज्योतिष आदि का गान भी किया गया है और युद्ध में जिस प्रकार से जय प्राप्त हो उन युद्ध जयार्णव का निरूपण इस आग्नेय पुराण में किया गया है ॥ ५७ ॥ जितने भी मन्वन्तर होते हैं वे सभी बताये गये हैं । चारों वर्णों तथा आश्रमों के क्या—क्या कैसे धर्म तथा कर्त्तव्य होते हैं इन सबका वर्णन किया है । आशौच कब और कैसा हुआ करता है—यह बतलाया गया है और द्रव्य की शुद्धि का प्रकार भी निरूपित किया है । किये हुए पापों के प्रायश्चित्त किस तरह किये जाया करते हैं और वे कौन-कौन से होते हैं इसका प्रदर्शन भी इस महा पुराण में भली-भाँति किया गया है ॥ ५८ ॥ राजाओं के क्या धर्म होते हैं यह बताया है दान करने के धर्मों का भी वर्णन किया है । विविध प्रकार के व्रतोपवास आदि का वर्णन किया है । सामाजिक व्यवहारों का भी वर्णन इस पुराण में किया